12218

Vijaya™

संस्कृत भाषा का शिक्षण शास्त्र

(PEDAGOGY OF SANSKRIT LANGUAGE)

VIJAYA PUBLICATIONS

LUDHIANA

CONTENTS

UNIT–I

1. भाषा और उसका महत्त्व 3–17
2. संस्कृत भाषा एवं साहित्य का महत्त्व व वर्तमान स्थिति 18–46
3. संस्कृत भाषा के लक्ष्य और उद्देश्य एवं सिद्धान्त और सूत्र 47–68
4. संस्कृत भाषा शिक्षण में श्रवण तथा पठन का अभ्यास 69–82

UNIT–II

5. संस्कृत पाठ्य–पुस्तक निर्माण एवं समीक्षा 85–114
6. संस्कृत भाषा शिक्षण की विधियां 115–128

   पाठशाला विधि

   पाठ्य–पुस्तक विधि

   प्रत्यक्ष विधि

   व्याकरण अनुवाद विधि
7. संस्कृत अध्यापक तथा दृश्य–श्रव्य साधन प्रयोग 129–142

UNIT–III

8. संस्कृत में व्याकरण शिक्षण, महत्त्व एवं प्रक्रिया, पाठ योजना 143–169
9. संस्कृत गद्य शिक्षण–प्रक्रिया, उद्देश्य एवं सोपान, पाठ योजना 170–197
10. संस्कृत पद्य शिक्षण–प्रक्रिया, उद्देश्य एवं सोपान, पाठ योजना 198–221
11. संस्कृत रचना शिक्षण–प्रक्रिया, उद्देश्य एवं सोपान, पाठ योजना 222–243
12. संस्कृत नाटय शिक्षण–प्रक्रिया, उद्देश्य एवं सोपान, पाठ योजना 244–252
13. संस्कृत में अनुवाद शिक्षण–प्रक्रिया, उद्देश्य एवं सोपान, पाठ योजना 253–259
14. संस्कृत शिक्षम में मूल्यांकन, अर्थ, स्वरूप एवं परीक्षाओं के प्रकार 260–296

15. गृह कार्य एवं संशोधन प्रक्रिया 297–305
16. संस्कृत भाषा की सहपाठ्य क्रियाएं 306–324

UNIT–IV

17. संस्कृत में उच्चारण शिक्षण–'अशुद्धि' उच्चारण के प्रकार, कारण तथा सुधार के उपाय 327–334
18. संस्कृत में अक्षर विन्यास शिक्षण–सामान्य अशुद्धियां, कारण तथा निवारण के उपाय 335–343
19. संस्कृत विषय-वस्तु 344–356
20. शब्दार्थ तथा अनुवाद 357–398
संस्कृत प्रश्न-पत्र 399–404

अध्याय 1

भाषा और उसका महत्त्व

भूमिका (Introduction)–कल्पना कीजिए, वह युग कैसा रहा होगा जब भाषा नहीं थी। गूंगों की बस्ती में किस प्रकार लोग अपनी बात दूसरों को समझाते होंगे और उनकी बात को समझते होंगे। उनकी अभिव्यक्ति कितनी अपूर्ण तथा कितनी अस्पष्ट होती होगी। अपनी बात कहने के लिए उनके पास कुछ आंगिक संकेतों के अतिरिक्त था ही क्या? उनके मन में कितनी भावनाएं उठती होंगी, परन्तु अभिव्यक्ति के किसी स्पष्ट और सुबोध माध्यम के अभाव में चेहरों पर अपनी झलक दिखाकर विलीन हो जाती होंगी। उस आदिम युग और आज के युग में कितना अन्तर है? यह अन्तर वस्तुतः सभ्यता और संस्कृति के विकास का द्योतक है और इस विकास की कहानी लिखी है 'भाषा' ने।

भाषा के आविष्कार और विकास के साथ ही मानव सभ्यता और संस्कृति निरन्तर विकास पथ पर अग्रसर रही। तभी तो **मारियो ए० पेई** (Mario A. Pei) ने कहा था, "भाषा की कहानी सभ्यता की कहानी है।" (Story of language is the story of civilisation.)

भाषा वह प्रकाश है जिसने असभ्यता और अज्ञान के अंधकार को चीरकर सभ्यता और ज्ञान का पथ अवलोकित किया। **काव्यदर्श** में कहा गया है, "यदि शब्द रूपी ज्योति अर्थात् भाषा का प्रकाश न होता तो तीनों लोक अंधकारपूर्ण होते।" भाषा ने मनुष्य को स्पष्ट, सशक्त और सुबोध अभिव्यक्ति प्रदान की है। भाषा उसकी अनुभूतियों और विचारों की संरक्षिका है। भाषा विकास के नए-से-नए आयाम खोलती है, भाषा निरन्तर विकासशील है; इसलिए मनुष्य भी निरन्तर विकासशील है।

भाषा क्या है?
[What is Language?]

जिस भाषा ने मनुष्य को इतना कुछ दिया, अज्ञान के अंधकार से ज्ञान के प्रकाश की ओर अग्रसर किया, वह भाषा है क्या? विभिन्न विद्वानों और मनीषियों ने अपने-अपने ढंग से इस प्रश्न पर विचार किया है और इसे किसी-न-किसी परिभाषा में बांधने का प्रयास किया है; जैसे–

1. **पतंजलि मुनि का विचार** (Views of Patanjali)–पतंजलि मुनि ने अ 'महाकाव्य' में भाषा को परिभाषित करते हुए कहा है, "व्यक्तां वाचि वर्णा येषां तं व्यक्तवाच्" अर्थात् भाषा वह व्यापार है जिसमें हम वर्णात्मक अथवा व्यक्त शब्दों के द्व अपने विचारों को प्रकट करते हैं।

2. **श्री बाबूराम सक्सेना का विचार** (Views of Sh. Babu Ram Saxena) विख्यात भाषा वैज्ञानिक श्री बाबू राम सक्सेना के मतानुसार, "जिन ध्वनि चिन्हों द्व मनुष्य परस्पर विचार-विमर्श करता है, उनको स्पष्ट रूप से भाषा कहते हैं।"

3. **विश्वकोष ब्रिटेनिका के अनुसार** (According to Encyclopaed Britannica)–विश्वकोष ब्रिटेनिका में भाषा की परिभाषा इस प्रकार दी गई है, "भ उच्चारण अवयवों से उच्चरित ध्वनि प्रतीकों की वह व्यवस्था है जिसके द्वारा एक समाज लोग आपस में भावों और विचारों का आदान-प्रदान करते हैं।"

4. **स्वीट महोदय का विचार** (Views of Sweet)–भाषा वैज्ञानिक स्वीट (Swe महोदय ने भाषा को परिभाषित करते हुए कहा है, "ध्वनियों द्वारा विचारों की अभिव्य भाषा है।" (Language is the expression of thought by speech sounds.)

5. **ओटो जेसपर्सन का विचार** (Views of Otto Jesperson)–भाषा-विद् ओ जेसपर्सन के कथनानुसार, "भाषा मानव मस्तिष्क और हृदय की चेरी है जो उस भावनाओं को ध्वनि रूप में या लिखित रूप में व्यक्त करती है।" (A language is t vocal or written expression of the emotions, constituting, itself, as it do the hand maid of the intellect and the heart.)

6. **महाकवि सुमित्रानंदन पंत का विचार** (Views of Sumitra Nandan Pant हिंदी के विख्यात छायावादी कवि सुमित्रानंदन पंत के विचारानुसार, "भाषा संसार नादमय चित्र है, ध्वनिमय स्वरूप है, यह विश्व की हृदयतंत्री की झंकार है।"

उपर्युक्त भाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि भाषा ऐसा ध्वनि समूह जिसके उच्चारण अथवा लिपिबद्ध रूप द्वारा मनुष्य अपने भावों एवं विचारों को व्य करता है। सामाजिक प्राणी होने के कारण मनुष्य को दूसरों के साथ अपने विचारों त भावों का आदान-प्रदान करना पड़ता है। इसके लिए मुख्यत: वह 'भाषा' को ही प्र करता है।

भाषा के आधार
[Basis of Language]

विभिन्न भाषा शास्त्रियों द्वारा दी गई परिभाषाओं से संबंधित तीन मुख्य बातें स्प होती हैं–भाषा ध्वनि समूह है, भाषा द्वारा मनुष्य अपने भावों और विचारों को प्रकट क

है; भाषा द्वारा मनुष्य दूसरों के साथ अपने विचारों और भावों का आदान-प्रदान करता है। इन तीन मुख्य बातों को ध्यान में रखते हुए भाषा के निम्नलिखित आधार निश्चित किए जा सकते हैं–

1. भौतिक आधार (Physical Basis)
2. मानसिक आधार (Intellectual Basis)
3. सामाजिक आधार (Social Basis)

1. **भौतिक आधार** (Physical Basis)–ध्वनियां भाषा को नैतिक आधार प्रदान करती हैं। जिन ध्वनियों को भाषा के रूप में प्रयोग किया जाता है, वे ध्वनियां जीभ, होंठ, नाक, गला, तालू तथा अन्य स्वर तंत्रियों के सहयोग से पैदा होती हैं। शरीर के यह अंग ध्वनि-उच्चारण में भाषा को भौतिक आधार प्रदान करते हैं। इसी प्रकार भाषा को लिखते समय हाथ उसे भौतिक आधार प्रदान करते हैं। भाषा का शिक्षण प्रदान करते समय उसी भौतिक आधार को भी प्रशिक्षित करना अनिवार्य होता है। अर्थात् विद्यार्थियों को शुद्ध उच्चारण सिखाने के लिए उन्हें स्वर तंत्रियों–नाक, जीभ, तालु, होंठ आदि का उचित प्रयोग करना सिखाना होता है। इसी प्रकार विद्यार्थियों को सुंदर ढंग से लिखना सिखाने के लिए उन्हें हाथ और अंगुलियों का ठीक प्रयोग करना सिखाना पड़ता है। भाषा का यह भौतिक आधार जितना सशक्त होगा, उतना ही भाषा का विकास शुद्ध, सुचारू तथा प्रभावशाली होगा।

2. **मानसिक आधार** (Intellectual Basis)–भाषा विचारों एवं भावों को प्रकट करने का माध्यम है। यह विचार और भाव भाषा को मानसिक आधार प्रदान करते हैं, क्योंकि यह मन में उत्पन्न होते हैं और भाषा द्वारा व्यक्त होते हैं। यदि मन में विचार उत्पन्न ही न हों तो भाषा व्यक्त किसे करेगी? वस्तुत: विचार और भाव ही भाषा को अस्तित्व प्रदान करते हैं। पशुओं में भाषा के न विकसित होने का कारण ही यही है कि उनमें विचार करने की शक्ति नहीं है। भाषा शिक्षण में बच्चों की स्वर-तंत्रियों को ही केवल प्रशिक्षित नहीं करना होता बल्कि उनमें विचार करने की मानसिक प्रक्रिया को ही सशक्त बनाना होता है। तभी वे भाषा का कुशल प्रयोग सीख पाते हैं।

3. **सामाजिक आधार** (Social Basis)–विचार करने की मानसिक प्रक्रिया विचारों के आदान-प्रदान से विकसित होती है और दूसरों के विचारों का आदान-प्रदान करना मनुष्य की सामाजिक प्रवृत्ति है। यही सामाजिक प्रवृत्ति भाषा का सामाजिक आधार है। भाषा की मर्यादा भी इसी सामाजिक आधार पर आधारित है। भाषा शिक्षण को प्रभावशाली बनाने के लिए विद्यार्थियों को सामाजिक आधार प्रदान करना भी अत्यन्त आवश्यक है।

भाषा की प्रकृति
[Nature of Language]

'भाषा' के निरन्तर हो रहे विकास में उसकी प्रकृति निहित है। भाषा की प्रकृति को समझे बिना न तो उसका कुशलतापूर्वक अध्ययन किया जा सकता है और न ही उसका प्रभावशाली शिक्षण संभव हो सकता है। भाषा की प्रकृति की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं-

1. भाषा मूल रूप से मौखिक साधन (Language as basically verbal Means)-भाषा का उद्गम मौखिक ध्वनियों से हुआ। इसलिए इसकी मूल प्रकृति मौखिक है। जिह्वा बोलने में प्रमुख भाग लेती है। संभवत: यही कारण है कि कई भाषाओं में 'भाषा' और 'जिह्वा' के लिए समान शब्द है। फ़ारसी का 'ज़बान', अंग्रेज़ी में 'टंग', लैटिन का 'लिंगवा' आदि शब्द 'भाषा' के अर्थ में भी प्रयोग होते हैं और 'जिह्वा' के अर्थ में भी। अत: भाषा का मूल रूप मौखिक ही है। इसे लिखित रूप तो सभ्यता और संस्कृति ने प्रदान किया। आज भी कई अर्द्ध-विकसित जातियां भाषा के केवल मौखिक रूप का ही प्रयोग करती हैं।

2. भाषा चिह्नात्मक (Education is Symbolic)-भाषा को लिखने के लिए कुछ चिह्नों का प्रयोग करना पड़ता है। इन चिह्नों की बनावट को सीखकर और याद करके ही हम भाषा का लिखित रूप में प्रयोग कर सकते हैं। ध्वनि का क्षेत्र सीमित है। परन्तु लेख का क्षेत्र अपेक्षाकृत विस्तृत है। भाषा की इस चिह्नात्मक प्रकृति के कारण हम सदियों पहले हुए विचारकों के विचार जान सकते हैं और दूर बैठे लोगों तक अपने विचार पहुंचा सकते हैं। मौखिक ध्वनियों को लिपिबद्ध करने के लिए निश्चित चिह्नों का प्रयोग किया जाता है। जैसे 'गाय' एक पशु-विशेष का नाम है। हम पहले इसे अपनी मौखिक ध्वनियों द्वारा उच्चारण करते हैं और फिर प्रत्येक ध्वनि के प्रतिनिधि 'चिह्न' का प्रयोग करके इसे लिखित रूप में परिणत करते हैं।

3. भाषा निरन्तर गतिशील है (Language is moving Continuously)-भाषा निरन्तर गतिशील रहती है। यह कहीं रुकती नहीं। जब से भाषा का उद्गम हुआ है, तब से यह निरन्तर प्रवाह रूप से चली आ रही है। यह प्रवाह कब से और कहां से शुरू हुआ, इसका कोई पता नहीं। परन्तु यह अटल सत्य है कि इसके प्रवाह को आज तक कोई नहीं रोक सका। मनुष्य हमेशा से इसे लिखता चला आया है और जीवन पर्यन्त इसे सीखता हुआ इसका प्रयोग करता रहता है।

4. भाषा निरन्तर परिवर्तनशील है (Language is changing Continuously)-भाषा की गतिशीलता में ही उसकी परिवर्तनशीलता निहित है। किसी भी भाषा को ले लें-उसके आधुनिक और पुराने रूप में पर्याप्त अंतर मिलेगा। उस पर बाहरी परिस्थितियों का

प्रभाव पड़ता रहता है और नये संबंधों के कारण उसमें नये-नये शब्द समाविष्ट होते रहते हैं। भाषा में यह परिवर्तन बहुत धीरे-धीरे होता है परन्तु होता अवश्य है। मनुष्य परिवर्तनशील है और क्योंकि भाषा मनुष्य के विचारों को व्यक्त करती है, इसलिए उसका परिवर्तनशील होना स्वाभाविक है।

5. भाषा मनुष्य को जन्म से प्राप्त नहीं होती (Language is not got by man by Birth)-भाषा कोई चल या अचल सम्पत्ति नहीं जो मनुष्य को अपने पूर्वजों से बैठे-बिठाये ही प्राप्त हो जाए। इसे मनुष्य को अर्जित करना पड़ता है। कहने का तात्पर्य यह है कि मनुष्य मां के पेट से भाषा सीख कर नहीं आता है, भाषा सीखने का सामर्थ्य मनुष्य के स्वभाव में ही होता है और यदि उसे उचित और अनुकूल वातावरण मिल जाए तो वह भाषा सीख जाता है।

6. भाषा अनुकरण से सीखी जाती है (Language is learnt by Immitation)-भाषा सीखने का एकमात्र साधन अनुकरण है। बच्चा बड़ों का अनुकरण करके भाषा सीखता है। किसी नई भाषा को सीखने के लिए आवश्यक है कि उस भाषा को बोलने वालों में ही रह कर उनकी मौखिक ध्वनियों का अनुकरण किया जाए।

7. भाषा में अनेकरूपता और विभिन्नता होती है (There is variety and diversity in Language)-क्योंकि मनुष्य भाषा दूसरों से सीखता है, इसलिए भाषा में कभी एकरूपता नहीं रह सकती। कोई भी दो व्यक्ति बिल्कुल एक तरह से भाषा नहीं बोल सकते। एक ही परिवार के दो व्यक्तियों की भाषा में भी भिन्नता अवश्य होगी, यद्यपि यह व्यवहार में प्रतीत नहीं होती। शारीरिक विभिन्नता, भौगोलिक विभिन्नता, जातीय भेद, मानसिक स्थितियों के अंतर आदि के कारण भाषा में भी अनेकरूपता एवं विभिन्नता उत्पन्न होती रहती है।

8. भाषा में प्रयुक्त ध्वनियों का अर्थ व्यावहारिक होता है, नियत नहीं (The meaning of sounds used in language is practical not Fixed)-भाषा के संबंध में यह बात याद रखनी चाहिए कि जो ध्वनियां किसी वस्तु-विशेष या जीव-विशेष का बोध कराती हैं, उनका उस वस्तु या जीव से कोई नियत संबंध नहीं होता, बल्कि सामाजिक व्यवहार का सम्बन्ध होता है जो कालान्तर में रूढ़ हो जाता है। यदि कोई नियत संबंध होता तो प्रत्येक भाषा में एक जैसे शब्द और अर्थ होते और भाषा में अनेकरूपता, विभिन्नता और परिवर्तनशीलता न आ पाती। भाषा में विद्यमान विभिन्नता इस बात का सबल प्रमाण है कि प्रत्येक भाषा के ध्वनि-समूहों और उनके अर्थों में नियत स्वाभाविक संबंध नहीं होता अपितु सामयिक व्यवहार का सम्बन्ध होता है। हो सकता है जिन शब्दों को आज हम निरर्थक समझते हैं, कभी सार्थक रहे हों या भविष्य में सार्थक हो जाएं।

9. भाषा का सभ्यता के साथ सम्बन्ध (Language is related to Civilisation)-भाषा अपनी जाति, समाज, समुदाय और देश की सभ्यता का चित्रण करती है।

यह सभ्यता के प्रभाव ग्रहण करती है क्योंकि सभ्यता की अभिव्यक्ति उसी के माध्यम से होती है। भाषा सभ्यता को प्रभावित भी करती है अर्थात् भाषा सभ्यता की अनुगामिनी भी है और सभ्यता को विकास की ओर भी अग्रसर करती है। यही कारण है कि **बेन जॉनसन** (Ben Johanson) ने भाषा को सभ्यता का साधन कहा है, "Language is the instrument of civilization." और **ए० पाई** (A. Pai) ने भाषा की कहानी को सभ्यता की कहानी कहा है। "Story of language is the story of civilization."

भाषा की उपर्युक्त प्राकृतिक विशेषताओं से स्पष्ट होता है कि भाषा की कोई सीमा नहीं, कोई अंत नहीं। यह हमेशा अपूर्ण है और पूर्णता की तलाश में निरन्तर प्रवाहमान रहती है। अनेक रूप होने के कारण उसके किसी रूप को अच्छा या बुरा कहना व्यर्थ है। भाषा दिलों को जोड़ने में सहायक होती है क्योंकि भाषा के प्रत्येक रूप को सीखने की सामर्थ्य मनुष्य में है।

भाषा के विभिन्न रूप
[Different Forms of Language]

(क) प्रयोग की दृष्टि से भाषा के तत्त्व (Forms of language from the point of view of Use)–भाषा ऐसा ध्वनि समूह है जिसके उच्चारण या लिखित रूप के द्वारा मनुष्य अपने विचारों एवं भावों को प्रकट करता है। भाषा की इस सामान्य परिभाषा से स्पष्ट होता है कि मनुष्य इसका प्रयोग दो रूपों में करता है–

(1) उच्चरित रूप और (2) लिखित रूप।

1. उच्चरित रूप (Pronounced Form)–भाषा का आदि रूप उच्चरित है। भाषा का आविष्कार उच्चारण से ही हुआ था। जबान, होंठ, तालू, कण्ठ तथा अन्य स्वरतन्त्रियों के सहयोग से विभिन्न ध्वनियों का प्रयोग करके मनुष्य अपने विचारों को प्रकट करता है। यही उच्चारण है। जब हम एक-दूसरे से बातचीत करते हैं, गीत गाते हैं, एक दूसरे के प्रति बोलकर अपने उद्‌गार प्रकट करते हैं, तब वस्तुत: हम उच्चरित भाषा का ही प्रयोग कर रहे होते हैं।

2. लिखित या लिपि का रूप (Written Form)–जब मनुष्य लिखकर अपने विचारों एवं भावों को प्रकट करता है तब वह भाषा के लिपिबद्ध रूप का प्रयोग करता है। भाषा पहले उच्चरित रूप में प्रकट हुई और फिर लिखित रूप में विकसित हुई। उच्चरित भाषा अस्थायी होती है परन्तु लिखित भाषा अपेक्षाकृत स्थायी होती है। दूर-दूर बैठे लोगों तक अपने विचार पहुंचाने के लिए मनुष्य भाषा के लिखित रूप का प्रयोग करता है। लिखित भाषा के माध्यम से ही एक पीढ़ी का ज्ञान दूसरी पीढ़ी तक पहुंचता है। लिखित भाषा मनुष्य के ज्ञान का अक्षय भण्डार है। मनुष्य जब कोई पत्र लिखता है, किसी को

लिखकर कोई सन्देश भेजता है, लिखकर अपने भाव और विचार प्रकट करता है, कोई पुस्तक लिखता है; तब वस्तुत: वह भाषा के लिखित रूप का ही प्रयोग कर रहा होता है।

(ख) व्यवहार की दृष्टि से भाषा के रूप (Forms of language from the point of view of Use)–मनुष्य के व्यवहार के अलग-अलग रूप होते हैं और उसी के अनुसार भाषा के रूपों में भी विविधता आ जाती है। व्यवहार की दृष्टि से भाषा के मुख्य रूप निम्नलिखित हैं–

1. मातृभाषा (Mother Tongue)–बच्चा अपनी मां से जिस भाषा को ग्रहण करता है, वह उसकी 'मातृभाषा' कहलाती है। क्योंकि मां का सम्बन्ध किसी वर्ग या समुदाय से होता है। इसलिए उस समुदाय में बोली जाने वाली भाषा उस समुदाय के सभी लोगों की 'मातृभाषा' ही होती है। वस्तुत: मनुष्य के अपने क्षेत्र की भाषा, जिस क्षेत्र में उसका जन्म और पालन-पोषण हुआ हो उसकी 'मातृभाषा' है। मातृभाषा मनुष्य की सहज अभिव्यक्ति का साधन है। इस भाषा में मनुष्य जितनी आसानी के साथ अपनी बात कह सकता है वह अन्य भाषा में नहीं कह सकता है। मातृभाषा सहज अभिव्यक्ति का ही नहीं सहज-बोध का भी साधन है अर्थात् मातृ भाषा में कही गई बात मनुष्य को बहुत जल्दी समझ आती है। यही कारण है कि विख्यात शिक्षा-शास्त्रियों ने मातृभाषा के माध्यम से बच्चे को शिक्षा देने की आवश्यकता पर ज़ोर दिया है। महात्मा गांधी ने तो यहां तक कहा है कि "मनुष्य के मानसिक विकास के लिए मातृ भाषा इतनी ही आवश्यक है जितना के बच्चे के शारीरिक विकास के लिए माता का दूध।"

2. बोली (Dialect)–एक सुविख्यात कहावत है, 'कोस कोस पर बदले पानी दस कोस पर बानी' अर्थात् थोड़े-थोड़े फासले के बाद भाषा का रूप बदलता रहता है। सीमित क्षेत्र में बोली जाने वाली 'भाषा' को बोली कहा जाता है। 'बोली' में सम्बन्धित क्षेत्र के लोगों का लगभग एक जैसा उच्चारण तथा शब्द-समूह होता है। 'ब्रज', 'भोजपुरी' आदि हिन्दी की बोलियां हैं। 'मुलतानी', 'डोगरी' आदि पंजाबी की बोलियां हैं। कोई भी बोली परिष्कृत, लोकप्रिय और विस्तृत होकर भाषा का रूप भी धारण कर सकती है। संक्षेप में यूं कहा जा सकता है कि बोली भाषा का वह रूप है जिसका किसी सीमित क्षेत्र में प्रयोग किया जाता है।

3. प्रादेशिक भाषा (Regional Language)–किसी प्रदेश-विशेष में सामान्यता बोली जाने वाली भाषा को प्रादेशिक भाषा कहते हैं। प्रादेशिक भाषा के क्षेत्र में कई बोलियां भी प्रयुक्त होती रहती हैं और प्रादेशिक भाषा को प्रभावित भी करती रहती हैं। जैसे उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार आदि प्रदेशों की प्रादेशिक भाषा हिन्दी है, परन्तु इन प्रदेशों के कई क्षेत्रों में 'ब्रज', 'अवधी ', 'भोजपुरी' आदि कई बोलियों का भी प्रयोग होता है। प्रादेशिक भाषा अपने प्रदेश के खास लोगों की प्राय: मातृ भाषा होती है। परन्तु

यह शाश्वत नियम नहीं है। कई प्रदेशों में ऐसे लोग भी बस जाते हैं जिनकी मातृभाषा प्रादेशिक भाषा से अलग होती है। उदाहरण स्वरूप यदि कोई बंगाली पंजाब में आकर बस जाए तो उसकी मातृ भाषा पंजाबी नहीं बल्कि बंगाली होगी, यद्यपि पंजाब की प्रादेशिक भाषा 'पंजाबी' है। इस प्रकार आन्ध्र प्रदेश की प्रादेशिक भाषा तेलगु है, परन्तु वहां पर रहने वाले कई लोगों की मातृभाषा उर्दू है। अत: स्मरण रहे कि–

(*i*) प्रादेशिक भाषा के साथ-साथ कई बोलियों का भी अस्तित्व बना रहता है।

(*ii*) प्रादेशिक भाषा अपने प्रदेश के खास लोगों की मातृ भाषा भी होती है, परन्तु उस प्रदेश में ऐसे लोग भी बस सकते हैं जिनकी मातृ भाषा अलग हो।

4. राष्ट्र भाषा (National Language)–एक राष्ट्र में कई प्रकार की प्रादेशिक भाषाओं और बोलियों का प्रयोग किया जाता है, परन्तु समूचे राष्ट्र को भावात्मक एकता के सूत्र में बांधने और राज्य के प्रशासनिक कार्य को उचित रूप से चलाने के लिए राष्ट्र की एक भाषा होना अनिवार्य है। इसे राष्ट्र भाषा कहते हैं। सभी प्रदेश अपने-अपने क्षेत्रों में अपनी प्रादेशिक भाषाओं का प्रयोग अवश्य करते हैं। परन्तु समूचे राष्ट्र के सार्वजनिक कामों तथा प्रशासनिक कार्यों में राष्ट्र भाषा का प्रयोग किया जाता है और किया जाना चाहिए। भारतीय संविधान ने हिन्दी को राष्ट्र भाषा होने का गौरव प्रदान किया है क्योंकि यह भारत की अधिकतम जनता द्वारा भली-भांति समझी और बोली जाती है। हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, दिल्ली, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, बिहार आदि प्रदेशों की तो यह प्रादेशिक भाषा है। अन्य राज्यों में भी इसका प्रयोग किया जाता है। अत: हिन्दी राष्ट्र भाषा होने में पूर्ण रूप से समर्थ है।

5. अन्तर्राष्ट्रीय भाषा (International Language)–जिस भाषा में विभिन्न देशों एवं राष्ट्रों में परस्पर कार्य व्यवहार चलता है उसे अन्तर्राष्ट्रीय भाषा कहते हैं। आज जब कि वैज्ञानिक उन्नति के कारण सभी देश एक दूसरे के निकट आ रहे हैं और उनमें परस्पर राजनीतिक, आर्थिक, व्यापारिक एवं सांस्कृतिक सम्बन्ध बढ़ रहे हैं तो ऐसी स्थिति में अन्तर्राष्ट्रीय भाषा का होना अनिवार्य है। अन्तर्राष्ट्रीय भाषा अपने देश-विशेष की राष्ट्र-भाषा तो होती है, इसके साथ-साथ वह अधिकांश राष्ट्रों में भी पर्याप्त रूप में प्रयुक्त की जाती है। आजकल अन्तर्राष्ट्रीय भाषा का गौरव 'अंग्रेज़ी' को प्राप्त है।

6. सांस्कृतिक भाषा (Cultural Language)–किसी जाति की संस्कृति, कला, ज्ञान, आचार-विचार आदि को प्रकट करने वाली प्राचीन भाषा को सांस्कृतिक भाषा कहा जाता है। इसी सांस्कृतिक भाषा में उस जाति का समूचा ज्ञान भण्डार तथा उसकी परम्पराएं सुरक्षित रहती हैं। अपनी संस्कृति तथा प्राचीन गौरवपूर्ण मान्यताओं का परिचय प्राप्त करने के लिए सांस्कृतिक भाषा की शिक्षा दी जाती है। यूरोप की सांस्कृतिक भाषाएं ग्रीक और लेटिन हैं। भारत की सांस्कृतिक भाषा 'संस्कृत' है। यद्यपि संस्कृत भाषा का व्यावहारिक

प्रयोग नहीं होता, परन्तु भारत के प्राचीन ज्ञान तथा गौरवपूर्ण सांस्कृतिक परम्पराओं का परिचय प्राप्त करने के लिए संस्कृत भाषा का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है।

7. स्वीकृत या आदर्श भाषा (Standard Language)–भाषा का रूप तो हर दस कोस के बाद बदल जाता है। परिणामस्वरूप एक भाषा क्षेत्र में कई बोलियों का प्रयोग होता रहता है। इन बोलियों में जो बोली व्याकरण, रचना, काव्य आदि के आधार पर लोकप्रियता प्राप्त कर लेती है, वह स्वीकृत भाषा या आदर्श भाषा के रूप में ग्रहण कर ली जाती है और राजकीय कामों, शिक्षालयों तथा अन्य सार्वजनिक संस्थाओं में इसी भाषा का प्रयोग किया जाता है। उदाहरणस्वरूप हिन्दी भाषा की कई बोलियां हैं, परन्तु 'खड़ी बोली' ही उसके आदर्श रूप में स्वीकृत है। यही कारण है कि 'खड़ी बोली' को ही आदर्श मान कर हिन्दी का प्रयोग किया जाता है। हिन्दी शिक्षण में यह बोली ही आदर्श मानी जाती है, शेष सभी बोलियों को गौण स्थान प्राप्त है।

8. मूल भाषा (Original Language)–प्राचीन भाषा को मूल-भाषा कहते हैं। इन्हीं मूल भाषाओं ने भौगोलिक परिस्थितियों के कारण कई शाखाओं में बंट कर विभिन्न भाषा वर्गों को जन्म दिया है। आधुनिक भाषाओं का जन्म इन्हीं मूल भाषाओं से ही हुआ है। उत्तर भारत की जितनी आर्य भाषाएं हैं उनकी मूल भाषा प्राचीन संस्कृत है। इसी प्रकार यूरोपियन भाषाओं की मूल भाषा ग्रीक और लेटिन है।

भाषा का महत्त्व
[Importance of Language]

मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में भाषा का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। भाषा न होती तो मानव सभ्यता और संस्कृति का अस्तित्व न होता और मनुष्य पशुओं के समान जीवन व्यतीत कर रहा होता। संसार के सूनेपन को भाषा ने ज़िंदगी प्रदान की है। पं० **सीताराम चतुर्वेदी** का यह कथन कितना सार्थक है कि "भाषा के अविर्भाव से सारा मानव-संसार गूंगों की विराट बस्ती होने से बच गया।" भाषा का महत्त्व निम्नलिखित तथ्यों से आंका जा सकता है–

1. भाषा व्यक्तित्व का विकास करती है (Language develops the Personality)–भावनाओं और विचारों की अभिव्यक्ति के बिना मनुष्य के व्यक्तित्व का सम्यक् विकास नहीं हो सकता और भाषा अभिव्यक्ति का सशक्त साधन है। अत: भाषा मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास में सहायक होती है। भाषा के इस महत्त्व का उल्लेख करते हुए **रायबर्न महोदय** (W.H. Ryburn) ने कहा है, "भाषा ज्ञान के बिना बौद्धिक विकास, ज्ञान वृद्धि, आत्माभिव्यक्ति और रचनात्मक शक्ति का विकास असम्भव है।" इस बात से कौन इन्कार कर सकता है कि इनके बिना मनुष्य का व्यक्तित्व कभी भी विकसित नहीं हो सकता। वस्तुत: मानव-व्यक्तित्व की प्रगतिशीलता भाषा के प्रभावोत्पादक प्रयोग पर ही

निर्भर है। यदि शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य का सर्वतोन्मुखी विकास है तो भाषा इस उद्देश्य की पूर्ति में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

2. भाषा अच्छे नागरिक पैदा करती है (Language makes good Citizens)- मनुष्य का बौद्धिक विकास कितना ही क्यों न हुआ हो, परन्तु यदि वह अच्छा नागरिक नहीं है तो उसका बौद्धिक विकास उसके अपने लिए और समाज के लिए विनाशकारी सिद्ध होगा। भाषा मनुष्य के केवल बौद्धिक विकास में ही सहायता प्रदान नहीं करती अपितु उसका नैतिक, चारित्रिक और सामाजिक विकास करके उसे अच्छा नागरिक बनाती है। भाषा के माध्यम से ही मनुष्य दूसरे के भावों और विचारों को अच्छी तरह समझ सकता है और दूसरों को समझना नागरिकता का एक महत्त्वपूर्ण लक्षण है। माईकल बैस्ट ने अपनी पुस्तक 'Language of Education' में कहा है, "भाषा का महत्त्व केवल बौद्धिक विकास में ही नहीं, बल्कि चारित्रिक विकास में भी है।"

3. भाषा विचार-विनिमय का सर्वोत्तम साधन है (Language is the best means of exchange of Views)–विचार-विनिमय विकास को प्रेरणा प्रदान करता है और इस प्रेरणा का स्रोत भाषा है। विचारों का आदान-प्रदान केवल संकेतों से नहीं किया जा सकता। उसके लिए भाषा का प्रयोग अत्यन्त अनिवार्य है। वस्तुत: भाषा और विचार का चोली दामन का साथ है। दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। हम बोल कर, लिखकर और सुन कर या पढ़ कर विचारों का जितनी सुगमता से आदान-प्रदान कर सकते हैं, वह किसी अन्य साधन से सम्भव नहीं है। अत: भाषा विचार-विनिमय का सर्वोत्तम साधन है।

4. भाषा शिक्षा और ज्ञान का प्रमुख साधन है (Language is the main source of education and Knowledge)–शिक्षा और ज्ञान प्राप्ति के विभिन्न साधन हो सकते हैं, परन्तु सर्वप्रमुख साधन है 'भाषा'। माना कि हम किसी वस्तु को प्रत्यक्ष देखकर उसका ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं परन्तु जब तक हम उस वस्तु की सूक्ष्मताओं तथा उसमें निहित विभिन्न कार्य प्रक्रियाओं के सम्बन्ध में कहीं से पढ़ेंगे या सुनेंगे नहीं; तब तक उस वस्तु का सम्यक् ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकेगा। आज शिक्षा संस्थाओं में कई प्रकार के विषय पढ़ाये जाते हैं, परन्तु उन्हें पढ़ने के लिए भाषा को ही माध्यम बनाया जा सकता है। वस्तुत: भाषा के बिना शिक्षा और ज्ञान प्राप्त करना असम्भव है। सभी लोग भाषा के माध्यम से ही अपने भाव प्रकट करते हैं, कई प्रकार के प्रश्न पूछते हैं और इस प्रकार निरन्तर अपने ज्ञान भण्डार में वृद्धि करते रहते हैं। यह ठीक है कि शिशु कुछ संकेतों के माध्यम से अपनी बात प्रकट करता है, परन्तु कब तक? शैशव काल के समाप्त होते ही उसे भाषा की शरण में आना पड़ता है क्योंकि इसके बिना वह शिक्षा और ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता।

5. भाषा ज्ञान का संरक्षण करती है (Language preserves Knowledge)- भाषा मनुष्य के ज्ञान तथा अनुभवों को सुरक्षित रखने का महत्त्वपूर्ण दायित्व निभाती है। आदिकाल से लेकर आज तक जितना ज्ञान प्राप्त किया गया है वह सब कुछ भाषा के

लिपिबद्ध रूप में सुरक्षित है। यह भाषा का ही कमाल है कि हम आज सदियों पहले हुए वाल्मीकी, कालिदास, शेक्सपीयर आदि महान् साहित्यकारों की अनुभूतियों से भाव-विभोर हो सकते हैं। वेदों, उपनिषदों, पुराणों आदि का ज्ञान हमें पुस्तकों (भाषा) के माध्यम से ही प्राप्त होता है। विज्ञान जो आज हमें इतनी सुविधाएं प्रदान कर रहा है उसका मुख्य कारण यही है कि वैज्ञानिकों ने अपने विचारों और आविष्कारों को लिपिबद्ध करके आने वाली पीढ़ियों के हाथों में सौंप दिया है। भाषा न होती तो सभ्यता और संस्कृति का इतना विकास सम्भव न होता। भाषा ज्ञान का संग्रह करती है; उसे सुरक्षित रखती है और नयी पीढ़ियों को सौंप देती है। भाषा हमारी संस्कृति, सभ्यता दर्शन, इतिहास आदि को स्पष्ट रूप से प्रतिबिम्बित करती है। भाषा के कारण ही हम परम्परागत ज्ञान का प्रयोग कर सकते हैं। ससार के जिस कोने में भी ज्ञान का प्रकाश हुआ या होता है वह हमें भाषा के माध्यम से पुस्तकों के रूप में प्राप्त हो जाता है। **इमर्सन** (Emerson) ने ठीक ही कहा है, "भाषा एक नगर के समान है जिसके निर्माण में प्रत्येक मानव ने एक पत्थर रखा है।" (Longuage is the city to the building of which every human being brought a stone.) अत: ज्ञान को सुरक्षित रखने की जितनी क्षमता भाषा में है वह अन्य किसी साधन में नहीं है।

6. भाषा राष्ट्रीय एकता को विकसित करती है (Language develops national Unity)–सम्पूर्ण राष्ट्र में भावात्मक एकता स्थापित करने में भाषा, राष्ट्र भाषा, महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। सभी प्रदेशों में लोग अपनी-अपनी प्रादेशिक भाषा का प्रयोग अवश्य करते हैं परन्तु जब विभिन्न भाषा-भाषी लोगों को मिलकर राष्ट्रीय कार्यों में सक्रिय सहयोग देना होता है तब राष्ट्र भाषा उनमें एकता की भावना उत्पन्न करती है। भावात्मक एकता पैदा करने में भाषा का सबसे बड़ा भाग होता है। समूचे राष्ट्र की सामाजिक, आर्थिक, व्यापारिक, औद्योगिक और सांसारिक उन्नति का सशक्त माध्यम है 'राष्ट्रभाषा'। यही कारण है प्रत्येक देश में अलग-अलग बोलियां और प्रादेशिक भाषाएं होते हुए भी, उसकी अपनी एक राष्ट्र भाषा है जो सभी देशवासियों को भावात्मक एकता के सूत्र में बांधती है।

7. भाषा अन्तर्राष्ट्रीय भ्रातृभाव विकसित करती है (Language develops international Brotherhood)–आधुनिक युग अन्तर्राष्ट्रीयवाद का युग है। विश्व शान्ति के लिए अन्तर्राष्ट्रीयवाद का ज़ोरों से समर्थन किया जा रहा है। आज के युग में कोई भी देश अकेला नहीं रह सकता। अपने विकास के लिए एक देश को दूसरे देशों के साथ सहयोग और सद्भावना का सम्बन्ध स्थापित करना होता है और इसका सशक्त साधन है भाषा। जिस प्रकार राष्ट्र भाषा सभी प्रान्तों को एकता के सूत्र में पिरो कर उनमें राष्ट्रीय भावना को विकसित करती है। दूसरे देशों की भाषा या अन्तर्राष्ट्रीय भाषा के माध्यम से हम वहां के लोगों के आचार-विचार, रीति-रिवाज़, कार्य व्यवहार तथा उनकी विभिन्न समस्याओं

का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। यह ज्ञान प्राप्ति एक ओर तो तनाव की स्थिति को समाप्त करती है और दूसरी ओर देशों में बंधुत्व, सद्भावना और सहयोगात्मकता को विकसित करती है। यही कारण है कि अन्तर्राष्ट्रीय भ्रातृभाव के विकास के लिए अन्तर्राष्ट्रीय भाषा (अंग्रेजी) के शिक्षण और अध्ययन पर ज़ोर दिया जाता है।

8. **भाषा सामाजिक एकता में सहायता प्रदान करती है** (Language helps in social Unity)–भाषा जहां राष्ट्रीय एकता की द्योतक है वहां सामाजिक एकता की भी द्योतक है। भारत के बाहर जब दो व्यक्ति अचानक मिलते हैं और बातों-बातों में हिन्दी के प्रयोग पर उतर आते हैं तो दोनों एक ही भाव-लहरी में बहने लगते हैं। उनमें सहज ही आत्मीयता जाग उठती है। किसी भी समाज में बोली जाने वाली भाषा उस समाज के सदस्यों में एकता उत्पन्न कर देती है, यहां तक कि भाषा के आधार पर ही उस समाज का नाम रख दिया जाता है; जैसे बंगाली, पंजाबी, गुजराती, काशमीरी आदि। व्यक्ति किसी भी जाति या धर्म से सम्बन्धित क्यों न हो, परन्तु उस पर अपनी भाषा की छाप इतनी गहरी होती है कि उसे उसी भाषा के नाम से पुकारा जाता है, जैसे पंजाबी भाषा का प्रयोग करने वाला कोई व्यक्ति हिंदू हो या मुसलमान उसे पंजाबी कहा जाता है। जिस क्षेत्र में पृथक् भाषा का प्रयोग होता है वहां के निवासियों का अपना जातीय अस्तित्व और चरित्र है। उन्हें एक जातीय एकता में बांधे रखने का श्रेय 'भाषा' को ही जाता है। भारत के विभिन्न प्रदेशों की जातीय विशेषताओं को सुरक्षित रखने के लिए भारत के राज्यों का पुनर्गठन भी भाषा के आधार पर किया गया है।

9. **भाषा सरसता प्रदान करती है** (Language creates Interest)–मनुष्य केवल रोटी पर नहीं जीता। उसके मन-मस्तिष्क को भोजन चाहिए। इसी भोजन से उसके जीवन में सरसता आती है और इस भोजन का महत्त्वपूर्ण आधार है भाषा। कवित्वपूर्ण साहित्य ग्रन्थों में पढ़कर व्यक्ति भाव विभोर हो उठता है। उसकी आत्मा आनन्द से झूम उठती है। यदि भाषा न होती तो मनुष्य इस अलौकिक आनन्द की अनुभूति से वंचित रह जाता। भाषा की इस उपदेयता की ओर संकेत करते हुए **श्री रायबर्न** (W.M. Ryburn) ने कहा है "यह एक उपकरण है, एक साधन है; आनन्द, प्रसन्नता और ज्ञान का; यह निदेशक है रुचियों और अनुभूतियों का।" (It is at once a tool, a source of joy and happiness and knowledge, a director of taste and feeling.)

उपर्युक्त तथ्यों से भाषा का महत्त्व स्वत: स्पष्ट हो जाता है। भाषा सभ्यता और संस्कृति की जननी है; यह ज्ञान और भावनाओं को व्यक्त करती है, प्रेरित करती और सुरक्षित करती है; यह ज्ञान और शिक्षा का सशक्त माध्यम है; यह सामाजिक एवं राष्ट्रीय एकता की प्रेरक है और विश्व-बंधुत्व का पथ प्रशस्त करती है, यह मनुष्य के व्यक्तित्व का विकास करती है और उसे सृजनात्मक कार्यों की ओर अग्रसर करती है।

Komal Dayal

संस्कृत भाषा

संस्कृत का अर्थ है–**संस्कार की हुई, परिमार्जित, शुद्ध, परिष्कृत भाषा**। सम् + कृ + क्त प्रत्यय के योग से **'संस्कृत'** की रचना हुई है।

संसार की भाषाओं के **वर्गीकरण करने पर संस्कृत** "भारत यूरोपीय परिवार की भाषा है। भारत यूरोपीय परिवार में भारतीय आर्य भाषा शाखा की यह प्राचीनतम सांस्कृतिक भाषा है। संस्कृत में संसार का प्राचीनतम साहित्य उपलब्ध है। संसार की भाषाओं में सर्वाधिक प्राचीन होते हुए भी यह वर्तमान में भी जीवन्त भाषा है।"

संस्कृत के विशाल साहित्य का परिचय–संस्कृत साहित्य की जानकारी के लिए संस्कृत भाषा के विकास को निम्नांकित चार युगों में विभक्त किया जा सकता है–

1. वैदिक साहित्य काल–5000 ई० पूर्व से 800 ई० पूर्व तक।
2. स्मृति व रामायण पुराण काल–800 ई० पूर्व से 100 ई० तक।
3. लौकिक संस्कृत काल–100 ई० से 1800 ई० तक।
4. आधुनिक काल–1800 ई० से अब तक।

1. वैदिक साहित्य काल–(क) **चार वेद** (ऋग्, यजु, साम, अथर्व) (ख) **उपनिषद**–ग्यारह, (ग) **ब्राह्मण ग्रंथ**–चार, (घ) **आरण्यक ग्रंथ**–आठ, (ङ) **वेदांग**–छह।

2. रामायण काल-महाभारत काल–(क) वाल्मीकि रामायण, (ख) महाभारत, (ग) पुराण–अठारह, (घ) स्मृतियां–चार।

3. लौकिक साहित्य–लौकिक साहित्य में अनेक महाकाव्य, खण्डकाव्य, उपन्यास, नाटक, कथाएं, आख्यायिकाएं, चम्पू साहित्य, गीतिकाव्य उपलब्ध हैं।

4. अन्य विषयक साहित्य–

(1) दर्शनशास्त्र–उपनिषद्, वेदान्त, गीता, सांख्य दर्शन, मीमांसा, षट्दर्शन के ग्रंथ संस्कृत साहित्य की निधियां हैं।

(2) विधि विज्ञान–मनु, याज्ञवल्क्य, पराशर, नारद आदि की 18 स्मृतियां धार्मिक व्यावहारिक नीति शास्त्र के ग्रंथ हैं।

(3) राजनीति शास्त्र–बृहस्पति, शुक्र, चाणक्य का अर्थशास्त्र, नीलकण्ठ का राजनीति-मयूख प्रसिद्ध हैं।

(4) इतिहास–रामायण, महाभारत, पुराण, विक्रमांकदेव चरित आदि।

(5) भौतिक विज्ञान–महर्षि कणाद, उदयनाचार्य, विज्ञानभिक्षु ने परमाणु, सूर्य तथा पदार्थ विज्ञान के महान् ग्रंथ संस्कृत में लिखे हैं।

(6) चिकित्सा शास्त्र–चरक, सुश्रुत, बाणभट्ट, माधव के अनेक ग्रंथ हैं।

(7) **ज्योतिष विज्ञान**–वराहमिहिर, आर्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त, भास्कराचार्य के ग्रंथ

(8) **गणित विज्ञान**–शल्व सूत्रों में रेखा गणित है, शून्य, दशमलव पद्धति भारतीय गणित की देन है।

(9) **व्याकरण शास्त्र**–पाणिनि, कात्यायन, पतंजलि के व्याकरण ग्रंथ विश्व प्रसिद्ध हैं।

(10) **छंद शास्त्र**–वृत्तरत्नाकर, श्रुतबोध, पिंगल शास्त्र प्रसिद्ध हैं।

(11) **अलंकार शास्त्र**–आनन्दवर्धन, धनंजय, मम्मट, विश्वनाथ के अलंकार शास्त्र के ग्रंथ हैं।

संस्कृत का पठन-पाठन सामान्य रूप से भारत, नेपाल, श्रीलंका, तिब्बत, बर्मा, मॉरिशस आदि देशों में होता है।

संसार के विकसित राष्ट्रों के विश्वविद्यालयों में जर्मनी, इंग्लैंड, अमेरिका, रूस, फ्रांस, उज्बेकिस्तान में संस्कृत अध्ययन की व्यवस्था है।

वर्तमान काल में कम्प्यूटर के लिए सर्वाधिक उपयुक्त भाषा के रूप में संस्कृत को स्वीकार किया गया है।

सारांश यह है कि संस्कृत पूर्णत: विकसित, मनोवैज्ञानिक, विशाल शब्द-भण्डार, विशाल साहित्य वाली भाषा है।

संस्कृत और संस्कृति
[Sanskrit and Culture]

संस्कृत भाषा भारत की प्राचीन भाषा है। भारतीय संस्कृति के जितने प्राचीन ग्रंथ हैं वे संस्कृत भाषा में ही लिखे हुए हैं। वेद, उपनिषद्, गीता, रामायण, महाभारत, पुराण, स्मृतियां, जैन दर्शन के ग्रंथ, बौद्ध दर्शन के ग्रंथ, ये सभी संस्कृत भाषा में लिखे हुए हैं। यों कहना चाहिए कि भारतीय संस्कृति की आत्मा संस्कृत है।

भारतीय संस्कृति का स्रोत '**संस्कृत**' भाषा है। हमारी संस्कृति व सभ्यता वेद, स्मृतियों एवं पुराणों से निकली है। हमारे सोलह संस्कार संस्कृत भाषा में ही कराए जाते हैं। संस्कृत मन्त्रों के साथ ही बालक का जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन, यज्ञोपवीत आदि संस्कार होते हैं। हम भारतीय व्यक्तियों के नाम सदा सार्थक शब्दों में होते हैं। हम स्पष्ट रूप से अपने से बड़े के समक्ष नमस्कार या प्रणाम करते हैं अर्थात् हम अपने से बड़े के गौरव के समक्ष अपना शीश झुकाते हैं। हमारे आशीर्वाद भी सार्थक हैं। "आयुष्मान् भव" "सौभाग्यवती भव" आदि कह कर हम अभिवादन एवं आशीर्वाद दोनों को सफल कर देते हैं। अतिथि का सत्कार, सामान्य वार्तालाप आदि सभी से हमारी सांस्कृतिक परम्परा शास्त्रीय आदेशों से नियन्त्रित हैं। भारतीय समाज जीवन शास्त्रीय मर्यादाओं से नियन्त्रित

है। आजकल किशोर प्राय: शिष्टाचार के नियमों की अवहेलना करते हुए दिखाई देते हैं। इसका प्रमुख कारण यह है कि वे संस्कृत भाषा से अपरिचित हैं। भाषा और संस्कृति का बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। हमारे यहां की संस्कृति में शीतल जल से अतिथि का स्वागत किया जाता है।

भारतीय संस्कृति के विषय में भी सामान्य युवक के मस्तिष्क में कुछ भ्रम विद्यमान रहता है। सामाजिक जीवन की शैली को हम संस्कृति के नाम से पुकारते हैं। आज भारतीय समाज की जो जीवन-पद्धति है, उसके जो आदर्श हैं, उसके जो मूल्य हैं; वे सभी भारतीय नहीं हैं। इसीलिए तो कभी-कभी भारतीय संस्कृति के पुनरुद्धार की बात कही जाती है। सभ्यता का सदा विकास होता रहता है किन्तु संस्कृति के विषय में सभ्यता के परिवर्तन वाली बात पूर्णत: लागू नहीं होती। संस्कृति में भी परिवर्तन होता है किन्तु बाह्य कलेवर में ही। संस्कृति की आत्मा निर्विकार बनी रहती है। जिस राष्ट्र ने अपनी संस्कृति की इस अजर-अमर आत्मा को नहीं पहचाना वह राष्ट्र अपना अस्तित्व ही खो देता है।

संस्कृति साहित्य के अक्षय भण्डार का रसास्वादन करने के लिए, और भारतीय संस्कृति से परिचय प्राप्त करने के लिए संस्कृत भाषा का अध्ययन आवश्यक है।

अभ्यास के प्रश्न

1. भाषा किसे कहते हैं? विभिन्न परिभाषाओं के आधार पर स्पष्ट करें।
2. भाषा के विविध रूपों का संक्षिप्त परिचय दें।
3. मानव जीवन में भाषा का क्या महत्त्व है?
4. "भाषा के अविर्भाव से सारा मानव संसार गूंगों की विराट बस्ती बनने से बच गया।" इस उक्ति के आधार पर भाषा का महत्त्व बताएं।
5. भाषा की प्रकृति का संक्षेप में उल्लेख कीजिए। यह प्रकृति शिक्षक की किस प्रकार सहायता करती है?
6. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखें–
   (क) भाषा ज्ञान का संरक्षण करती है।
   (ख) भाषा अर्जित सम्पत्ति है।
   (ग) भाषा शिक्षा का माध्यम है।
   (घ) भाषा निरन्तर परिवर्तनशील रहती है।
7. संस्कृत भाषा विश्व की समस्त भाषाओं की जननी है। चर्चा करें।

❑❑❑

अध्याय 2

संस्कृत भाषा एवं साहित्य का महत्त्व व वर्तमान स्थिति

संस्कृत भाषा भारतीयों की प्राणभूत भाषा है। वस्तुत: संस्कृत भाषा में भारतीयों का मनन, चिन्तन, गवेषण तथा अनुभूति समन्वित है। इसका इतिहास कम-से-कम पांच सहस्र वर्ष का है। वैदिक काल से लेकर अब तक इसकी अक्षुण्ण धारा प्रवाहित हो रही है। विश्व के इतिहास में इस समय तक ज्ञात ग्रंथों में ऋग्वेद ही सबसे प्राचीनतम ग्रंथ है। इसी ग्रंथ से संस्कृत साहित्य का क्षेत्र आरम्भ होता है तथा आज तक फलता-फूलता चला आ रहा है। विद्वानों ने समस्त संस्कृत साहित्य को दो भागों में विभाजित किया है-वैदिक साहित्य एवं लौकिक साहित्य।

वैदिक साहित्य की परम्परा

वैदिक भाषा में संहिता तथा ब्राह्मणों आदि की रचना हुई तथा लौकिक संस्कृत में वाल्मीकीय रामायण, महाभारत आदि की रचना हुई है। वेद अथवा संहिता ग्रंथ हमारे सबसे प्राचीन धर्म ग्रंथ हैं। इसलिए धर्म के विकास का पूर्ण निरुपण वेदों के अध्ययन से ही किया जा सकता है। वेद के प्रधानतया दो विभाग हैं-संहिता और ब्राह्मण। मंत्रों के समुदाय का नाम 'संहिता' है। दूसरी ओर ब्राह्मण ग्रंथों में इन्हीं मंत्रों की एक प्रकार से विस्तृत व्याख्या हुई है। ब्राह्मण के पुन: तीन खण्ड किए जाते हैं-ब्राह्मण, आरण्यक एवं उपनिषद।

भाव और विषय भेद आदि की दृष्टि से वेद चार हैं-ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद। इन चारों संहिताओं में ऋग्वेद संहिता सबसे प्राचीन मानी जाती है। अन्य संहिताओं में ऋग्वेद के अनेक मन्त्र उपलब्ध होते हैं। ऋग्वेद में विभिन्न देवों की स्तुति का यथास्थान निर्देश है। वस्तुत: ऋच (ऋक्) का अर्थ है-स्तुतिपरक मंत्र तथा किसी देवता विशेष की स्तुति में प्रयुक्त होने वाले अर्थ को स्मरण कराने वाले वाक्य को 'मंत्र' कहते हैं। ऐसे मंत्रों के समुदाय ही 'संहिता' कहलाते हैं। अथ: चारों वेदों को क्रमश-ऋक् संहिता, यजु: संहिता, साम संहिता तथा अथर्व संहिता भी कहा जाता है। वस्तुत: इन संहिताओं का संकलन महर्षि वेदव्यास ने यज्ञ की आवश्यकता को दृष्टि में रखकर किया

था। प्राचीन काल में यज्ञ के लिए चार ऋत्विजों (पुरोहितों) की आवश्यकता होती थी-होता, अध्वर्यु, उद्गाता एवं ब्रह्मा। होता का सम्बन्ध ऋक् संहिता या ऋग्वेद से होता है क्योंकि होता ही यज्ञ के अवसर पर विशिष्ट देवता के प्रशंसात्मक मंत्रों का उच्चारण कर उस देवता का आह्वान करता है। अध्वर्यु का काम यज्ञों का विधिवत् सम्पादन करना है, अत: उसके लिए आवश्यक मंत्रों का समुदाय यजुर्वेद कहलाता है। उच्च स्वर से ऋचाओं को गाने वाला ऋत्विज उद्गाता होता है। अत: उसी के कार्य के लिए सामवेद का संकलन किया गया है। ब्रह्मा नामक ऋत्विज यज्ञ का पूर्ण रूप से निरीक्षण करता है तथा अनुष्ठान की निर्विघ्नता का उत्तरदायित्व इसी पर होता है। अत: सभी वेदों के ज्ञाता ब्रह्मा का अपना विशिष्ट वेद अथर्ववेद होता है। इस प्रकार मुख्यता वेद चार ही हैं, परन्तु प्रत्येक वेद की आगे चलकर कई शाखाएं हो गईं।

ऋग्वेद जहां धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, ऐतिहासिक, राजनीतिक, आर्थिक, दार्शनिक एवं काव्य-शास्त्रीय दृष्टि से अत्यन्त सारगर्भित एवं महत्त्वपूर्ण हैं, वहां यजुर्वेद कर्मकाण्ड का वेद है। अत: इस वेद का सम्बन्ध यज्ञानुष्ठान के साथ सबसे अधिक है। इसके दो भेद हैं-कृष्णयजु: तथा शुक्लयजु:। शुक्ल यजुर्वेद विशुद्ध मंत्रात्मक भाग है तथा कृष्ण यजुर्वेद में मंत्रों के साथ ही व्याख्या तथा विनियोग का अंश भी मिश्रित है। सामवेद में उपासना प्रमुख है तथा इसमें मुख्यत: सामयोग से सम्बद्ध मंत्रों का संकलन हुआ है। वस्तुत: ऋग्वेद के मंत्र जब विशिष्ट ज्ञान पद्धति से गाए जाते हैं, तो उनको समान (साम) कहते हैं। साम संहिता के भी दो भाग हैं-पूर्वार्चिक तथा उत्तरार्चिक। इन्हीं दोनों आर्चिकों में संगीत का मूल तत्त्व उपलब्ध होता है। वस्तुत: आध्यात्मिक दृष्टि से सोम ब्रह्म या शिव-तत्त्व है। उसकी प्राप्ति का साधन उपासना है तथा सामवेद संगीत एवं भक्ति के द्वारा उसकी प्राप्ति का साधन है। अथर्ववेद का यद्यपि यज्ञ-यागों से बहुत ही कम सम्बन्ध होता है, परन्तु इस वेद का महत्त्व कई दृष्टियों से सर्वोपरि माना जाता है। यह वेद-वैदिक दर्शन का सबसे पुष्ट एवं प्रामाणिक स्त्रोत है। वस्तुत: आरण्यक, उपनिषद आदि में प्राप्य दार्शनिक चिन्तन अथर्ववेद का ही विकसित रूप है। तत्कालीन सभ्यता तथा संस्कृति की दृष्टि से, सामाजिक और राजनीतिक स्थिति के ज्ञान के लिए, उस समय प्रचलित रीति-रिवाज, प्रथाएं, मान्यताएं, अंध-विश्वास, जादू-टोने, अभिचार-कर्म, अध्यात्म-चर्चा आदि विविध विषयों का यह वेद विश्व कोष कहा जाता है। इस प्रकार अथर्ववेद सार्वजनिक जनता का त्रेद है। यह सभी वर्ग के लोगों द्वारा समान रूप से सेव्य है। इस प्रकार अथर्ववेद का दृष्टिकोण संकीर्ण न होकर सार्वभौम है। वह यज्ञ-कर्म में ही बद्ध न रहा, अपितु उसने आध्यात्मिक, राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, दार्शनिक, शास्त्रीय एवं आयुर्वेदिक आदि सभी विषयों पर अपनी दृष्टि डाली है।

संहिताओं के अन्तर्गत ब्राह्मण ग्रंथ आते हैं। इन ग्रंथों को ब्राह्मण कहने के तीन कारण माने जाते हैं, तदनुसार इनके तीन अर्थ हैं-(1) 'ब्रह्मन्' का अर्थ मंत्र है, अत: मंत्रों

की व्याख्या एवं विनियोग प्रस्तुत करने के कारण इन्हें ब्राह्मण कहते हैं। (2) 'ब्रह्मन्' का अर्थ यज्ञ भी है, अत: यज्ञों की व्याख्या और विवरण प्रस्तुत करने वाले ग्रंथ को ब्राह्मण कहते हैं। (3) 'ब्रह्मन्' का अर्थ रहस्य भी है, अत: वैदिक रहस्यों का उद्घाटन करने के कारण इन्हें ब्राह्मण कहते हैं। प्रत्येक वेद के अपने-अपने ब्राह्मण हैं। ऋग्वेद के ऐतरेय और कौषीतकि, यजुर्वेद का शतपथ, सामवेद के ताण्ड्य महाब्राह्मण और उसके परिशिष्ट तथा अथर्ववेद का गोपथ ब्राह्मण उपलब्ध है। कृष्ण यजुर्वेद का तौत्तिरीय ब्राह्मण और जैमिनीय सामवेद का जैमिनीय ब्राह्मण भी उल्लेखनीय है। वस्तुत: ब्राह्मणों में यज्ञों का आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा वैज्ञानिक महत्त्व प्रस्तुत किया गया है। यही नहीं यज्ञों के विस्तृत विवेचन के साथ ही साथ इनमें अनेक आख्यान, शब्दों की व्युत्पत्ति तथा प्राचीन राजाओं या ऋषियों की कथाएं भी मिलती हैं। इस प्रकार अनेक वेदाङ्गों के बीच इन बाह्मणों की स्थिति आती है।

ब्राह्मणों के अन्तिम भाग आरण्यक कहलाते हैं। इनमें वेद के अध्यात्म पक्ष का विवेचन हुआ है। **सायण** के मतानुसार, "जो अरण्य में पढ़ा या पढ़ाया जाए, उसे आरण्यक कहते हैं।" इनमें मुख्यत: आत्म-विद्या, तत्त्व-चिन्तन एवं रहस्यात्मक विषयों का वर्णन हुआ है। ये ग्रंथ ग्रहस्थ जीवन से निवृत्त वानप्रस्थों के लिए थे, जो वन में रहकर मनन, चिन्तन, स्वाध्याय, जप, तप एवं धार्मिक कार्यों में संलग्न रहते थे। वस्तुत: ऐसे विषयों के लिए नगरों का वातावरण अनुपयुक्त समझा जाता था। आरण्यक ग्रंथ उपनिषदों के पूर्व रूप कहे जा सकते हैं। वास्तव में इन्हीं का विस्तार आगे उपनिषदों में पाया जाता है।

वेदों के सार उपनिषदों में आत्मा, परमात्मा, सृष्टि-उत्पत्ति, ज्ञान, कर्म, उपासना एवं तत्त्व-ज्ञान का ही प्रतिपादन मुख्यत: हुआ है। ईश, केन, कठ, मुण्डक, माण्डूक्य, श्वेताश्वतर, ऐतरेय, तैत्तिरीय, कौषीतकि, बृहदारण्यक और छान्दोग्य ही प्रामाणिक उपनिषद हैं। वैसे अब तक अनेक उपनिषदों की प्राप्ति हो चुकी है। मुक्तिकोपनिषद में 108 उपनिषदों के नाम दिए गए हैं। प्रत्येक वेद के अपने-अपने उपनिषद् हैं। वैसे ऊपर गिनाई गई 11 उपनिषदें ही प्रमुख मानी जाती हैं और इन प्रामाणिक उपनिषदों पर ही शंकराचार्य ने अपना भाष्य लिखा है। उपनिषद शब्द वास्तव में उप तथा नि उपसर्गक सद् धातु से बना है। 'सद' धातु के तीन अर्थ होते हैं-(1) विशरण-नाश होना, (2) गति-प्राप्त होना तथा, (3) अवसादन-शिथिल करना। अत: उपनिषद् का मुख्य अर्थ अध्यात्म विद्या लिया जा सकता है, जिसके अध्ययन करने से मुमुक्षु लोगों की अविद्या नष्ट हो जाती है, जो विद्या उन्हें ब्रह्मा की प्राप्ति करा देती है तथा जिसके अभ्यास से गर्भवास आदि नाना प्रकार के दु:ख शिथिल हो जाते हैं। उपनिषद् सचमुच भारतीय अध्यात्मशास्त्र के देदीप्यमान रत्न हैं, जिनकी प्रभा पर काल का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। यही नहीं उपनिषद वह आध्यात्मिक मानसरोवर है जिससे भिन्न-भिन्न ज्ञान सरिताएं निकल कर इस पुण्यभूमि आर्यावर्त में मनुष्य के सांसारिक अभ्युदय तथा पारलौकिक कल्याण के लिए प्रवाहित हुई हैं।

वैदिक साहित्य का अन्तिम सोपान सूत्र ग्रंथों में पाया जाता है। इनमें इस काल तक के समस्त वेद विज्ञान का संक्षिप्त पदों में वर्णन किया गया है। सामान्य रूप से इन ग्रंथों को वेदाङ्ग भी कहा जाता है, जो संख्या में छ: हैं-शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंद और ज्योतिष। वेदांग का अर्थ है-वेदस्य अङ्गानि-वेद के अंग, वेद के उपकारक तत्त्व। अत: वेदों के वास्तविक अर्थ के ज्ञान के लिए जिन साधनों की उपयोगिता होती है, उन्हें वेदांग कहते हैं। वेदांगों के द्वारा ही वेद के मंत्रों का अर्थ, उनकी व्याख्या एवं यज्ञादि में उनके विनियोग का बोध होता है। 'पाणिनीय शिक्षा' में वेद पुरुष के 6 अंगों के रूप में ही वेदांगों का वर्णन आता है। व्याकरण वेद का मुख है, ज्योतिष नेत्र, निरुक्त श्रोत्र (कान), कल्प हाथ, शिक्षा नासिका तथा छंद दोनों पाद (पैर)। इस प्रकार वेदांग का वेद से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है।

ये वेदांग सामान्यत: सूत्र शैली में लिखे गए हैं। इनमें (1) शिक्षा उन ग्रंथों को कहते हैं, जिनकी सहायता से वेदों के उच्चारण का भली-भांति ज्ञान प्राप्त होता है। अत: शिक्षा का उद्देश्य है वर्णोच्चारण की शिक्षा देना। प्रत्येक वेद की पृथक्-पृथक् शिक्षा है और इनका वैदिक संहिताओं से घनिष्ठ सम्बन्ध है। वेदों की प्रत्येक शाखा से सम्बन्ध होने के कारण इन्हें 'प्रातिशाख्य' भी कहते हैं। प्रातिशाख्यों में ऋक् प्रातिशाख्य, शुक्लयजु: प्रातिशाख्य, कृष्ण यजुर्वेद का तैत्तिरीय प्रातिशाख्य, अथर्ववेद का अथर्व-प्रातिशाख्य एवं सामवेद का साम प्रातिशाख्य, पुष्पसूत्र एवं पञ्चविध सूत्र विशेष उल्लेखनीय हैं। इन प्रातिशाख्यों के अतिरिक्त छोटे आकार के कुछ शिक्षा ग्रंथ भी मिलते हैं। इनमें विशेष उल्लेखनीय हैं- पाणिनीय शिक्षा, याज्ञवल्कय शिक्षा, नारद शिक्षा, माण्डूकी शिक्षा, वसिष्ट शिक्षा, पराशर शिक्षा आदि। उपलब्ध शिक्षा ग्रंथों की व्याख्या वैसे 34 गिनाई जाती है।

(2) व्याकरण के वेद पुरुष का मुख माना जाता है-'मुखं व्याकरणं स्मृतम्'। इस वेदांग का एकमात्र उद्देश्य वेदों के अर्थ को समझना तथा वेदांग की रक्षा करना है। आजकल पाणिनि की व्याकरण ही इस वेदांग का प्रतिनिधि ग्रंथ है। वैसे पाणिनि ने अपनी 'अष्टाध्यायी' में आपिशलि, कश्यप आदि 10 वैयाकरणों का उल्लेख किया है। अत: यह सिद्ध होता है कि व्याकरण पाणिनि से भी पुराना है।

(3) छंदस्-वैदिक मंत्रों के उच्चारण के लिए छंद का सम्यक् ज्ञान होना अनिवार्य है। वास्तव में छंद का बिना ज्ञान प्राप्त किए हुए वेद मंत्रों का ठीक-ठाक उच्चारण हो ही नहीं सकता। शौनक-विरचित 'ऋक्', प्रातिशाख्य के अंत में छंदों का पर्याप्त विवेचन मिलता है, परन्तु इस वेदांग का एकमात्र स्वतन्त्र ग्रंथ 'पिंगल-प्रणीत छंद-सूत्र' ही माना जाता है। इसमें वैदिक तथा लौकिक दोनों प्रकार के छंदों का वर्णन मिलता है।

(4) निरुक्त वेदांग में शब्दों की व्युत्पत्ति दिखलाई गई है। वास्तव में वेद के अर्थ जा ने के लिए शब्दों के निर्वचन की बड़ी आवश्यकता होती है। सम्प्रति महर्षि यास्क

(800 ई० पू० के लगभग) कृत निरुक्त ही इस विषय का प्रामाणिक ग्रंथ उपलब्ध है जो 'निघण्टु' नामक वैदिक शब्द-कोष पर आश्रित है। निघण्टु में वेद के कठिन शब्दों की क्रमबद्ध तालिका दी गई है। वास्तव में इसी ग्रंथ पर यास्क ने एक विस्तृत भाष्य बनाया जो 'निरुक्त' नाम से प्रसिद्ध है। वैसे यास्क ने अपने पूर्ववर्ती निरुक्तकारों का अपने निरुक्त में उल्लेख किया है। निरुक्त-शब्द-व्युत्पत्ति, शब्द-निर्वचन-शास्त्र, भाषा-विज्ञान तथा अर्थ-विज्ञान का सबसे प्राचीन ग्रंथ कहा जा सकता है।

(5) ज्योतिष का भी वेद के अंगों में विशेष महत्त्व है। वास्तव में वैदिक यज्ञों में शुभ मुहूर्त-निर्धारण के लिए 'ज्योतिष' नामक वेदांग की आवश्यकता होती है। यह शास्त्र यज्ञों का काल विधान बताता है। कहा गया है कि जो व्यक्ति ज्योतिष को जानता है वह यज्ञ को जानता है-'यो ज्योतिषं वेद स वेद यज्ञम्।' शंकर बालकृष्ण के अनुसार 1400 ई० पूर्व का वेदांग ज्योतिष नाम का एक प्राचीन ग्रंथ प्राप्त होता है, जिसका सम्बन्ध यजुर्वेद (43 श्लोक) तथा ऋग्वेद (36 श्लोक) माना जाता है। इस ग्रंथ पर **सोमाकर** की प्राचीन टीका तथा **सुधाकर द्विवेदी** का नाम 'सुधाकर' भाष्य प्रसिद्ध है।

(6) कल्पसूत्रों का वेदांगों में महत्त्वपूर्ण स्थान है। वास्तव में ब्राह्मण काल में यज्ञ-योग का इतना अधिक विस्तार हुआ कि उनके यथोचित ज्ञान के लिए कतिपय संक्षिप्त एवं पूर्ण परिचय देने वाली रचनाओं की आवश्यकता प्रतीत होने लगी। अत: इसी की पूर्ति कल्पसूत्रों के द्वारा की गई। इसी प्रकार यज्ञ-विधियों का समर्थन तथा प्रतिपादन करने वाले एवं वैदिक कर्मों को व्यवस्थित रूप देने वाले वेदांग का नाम ही कल्प है। कल्प सूत्रों के चार भेद हैं- श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र, धर्मसूत्र तथा शुल्वसूत्र। (*i*) श्रौतसूत्रों में महत्त्वपूर्ण वैदिक यज्ञों (अग्निहोत्र, दर्श, पौर्णमास, पशुयाग, वाजपेय, राजसूय, सोमयाग आदि) का क्रमबद्ध वर्णन मिलता है। प्राय: सभी वेदों के अपने-अपने श्रौतसूत्र हैं। (*ii*) गृह्यसूत्रों के गृहस्थ जीवन से सम्बद्ध सभी संस्कारों और विधियों (गृह-निर्माण, गृह-प्रवेश, पशु-पालन, रोगनाशक आदि) का वर्णन मिलता है। इन्हीं गृह्यसूत्रों के साथ धर्मसूत्र भी सम्बद्ध हैं। श्रौतसूत्रों की भान्ति ही प्रत्येक वेद का अपना-अपना गृह्यसूत्र उपलब्ध है। (*iii*) धर्मसूत्रों में नीति, धर्म, रीति, प्रथाओं, चारों वर्णों और आश्रमों के कर्त्तव्यों, राजा और प्रजा के कर्त्तव्यों तथा सामाजिक नियमों का वर्णन मिलता है। इन्हीं धर्मसूत्रों से आगे चलकर स्मृतियों की उत्पत्ति हुई, जिनकी व्यवस्था आज भी हमारे लिए मान्य है। आज केवल अथर्ववेद को छोड़कर शेष सभी वेदों के धर्म सूत्र हैं। (*iv*) शुल्वसूत्रों का साक्षात् सम्बन्ध श्रौतसूत्रों से माना जाता है। शुल्व का अर्थ है मापसूत्र अथना नापने का डोरा। नाम के अनुरूप शुल्वसूत्रों में वेदियों का नापना, उनके लिए स्थान चुनना तथा उनकी रचना आदि विषयों का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया गया है। **मैकडानल** ने शुल्वसूत्रों को भारतीय ज्यामिति तथा गणित-शास्त्रीय ग्रंथ के रूप में स्वीकार किया है। आजकल केवल यजुर्वेद का ही शुल्व सूत्र उपलब्ध होता है।

इन वेदांगों के अतिरिक्त वेदों से संबंधित अनुक्रमणिकाओं का भी वैदिक साहित्य में महत्त्व माना जाता है, जिनकी रचना वेदों की रक्षा तथा वेदार्थ की मीमांसा के लिए की गई थी। इनमें ऋषियों, देवताओं, छंदों आदि विषयों की विस्तृत सूचियां दी हुई हैं। शौनक कृत आर्षानुक्रमणी तथा कात्यायन-कृत सर्वानुक्रमणी इस विषय के प्रामाणिक तथा उपादेय ग्रंथ हैं।

वैदिक साहित्य में और विशेष कर अथर्ववेद में चारों वेदों के नामोल्लेख के बाद इतिहास, पुराण, गाथा तथा नाराशंसी का उल्लेख मिलता है। भले ही वैदिक साहित्य में इन चारों शब्दों का प्रयोग पारिभाषिक अर्थ में किया गया था, परन्तु बाद में लौकिक साहित्य की स्मृति के साथ ही प्राचीन शब्दों को नवीन अर्थों में अपना लिया गया। वेदों में वर्णित इतिहास प्राचीन एवं शाश्वत इतिहास है। पुरावृत्त-पुरातत्व आदि से सम्बद्ध सभी विषय पुराण में आते हैं। गाथा में नैतिक, वास्तविक या काल्पनिक सभी प्राचीन कथाएं सम्मिलित हैं तथा नाराशंसी के अन्तर्गत वीर-स्तुति, वीर-गाथा, व्यक्ति-अभिनन्दन आदि विषयों का समावेश किया गया है, परन्तु परकालीन साहित्य से यह ज्ञात होता है कि इतिहास से ही कालान्तर में ऐतिहासिक काव्य; पुराण से पुराण या पुरातत्त्व ग्रंथ; गाथा से कथा और आख्यान-साहित्य तथा नाराशंसी से ऐतिहासिक वीर काव्य, रामायण, महाभारत आदि विकसित हुए।

इस प्रकार वैदिक साहित्य के अनुरूप भारतीय साहित्य में पुराणों का भी विशेष महत्त्व माना जाता है। पुराण का वास्तविक अर्थ प्राचीन या पुराना है। इसमें प्राचीन कथानक, वंशावली, इतिहास, भूगोल, ज्ञान-विज्ञान आदि सभी प्राचीन तत्त्वों का समावेश है, अत: इसे 'पुराण' नाम दिया गया। वस्तुत: भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति को साधारण जनता से प्रचारित करने का श्रेय इन्हीं पुराणों को है। आज भी हिन्दू धर्म के मूलाधार ये पुराण ही हैं। पुराण का लक्षण इस प्रकार से किया गया है-

"सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्॥"

अर्थात् पुराणों में पांच बातें होती हैं-(1) **सर्ग**-सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन, (2) **प्रतिसर्ग**-प्रलय एवं सृष्टि का पुन: प्रादुर्भाव, (3) **वंश**-देवों और ऋषियों की वंशावली, (4) **मन्वन्तर**-प्रत्येक मनु का काल तथा उस समय की प्रमुख घटनाएं, (5) **वंशानुचरित**-सूर्य और चन्द्रवंशी राजाओं का जीवन-चरित। ये पांचों लक्षण मुख्यतया विष्णु पुराण पर घटित होते हैं। अन्य पुराणों में इनके अतिरिक्त भी विषय मिलते हैं। जैसे-प्रार्थना, उपवास, व्रत, तीर्थ, भौगोलिक स्थान, ज्योतिष, शरीर-विज्ञान, आयुर्वेद, व्याकरण, काव्यशास्त्र आदि का वर्णन। पुराणों के रचनाकाल के सन्दर्भ में **यह कहा**

जाता है कि इनकी पूर्व सीमा 600 ई० पूर्व के लगभग है तथा अन्तिम सीमा 500 ई० लगभग है। यद्यपि पुराणों की संख्या तथा नाम में पर्याप्त मतभेद हैं, फिर भी महापुराण 18 हैं तथा उपपुराण भी 18 माने जाते हैं। पुराणों में मत्स्य, मार्कण्डेय, भविष्य, भागवत, ब्रह्माण्ड, ब्रह्मवैवर्त, ब्रह्म, वामन, बराह, विष्णु, वायु (शिव), अग्नि, नारद, पद्म, लिङ्ग, गरुड़, कूर्म एवं स्कन्द के नाम आते हैं। गरुड़ पुराण में सनत्कुमार, नारसिंह आदि 18 उपपुराणों के नाम गिनाए गए हैं।

षड्दर्शनों का मूलधार भी वेद ही माने जाते हैं। यद्यपि इन दर्शनों के सिद्धान्त और मान्यताएं सार्वकालिक और सार्वभौम हैं, किन्तु इनका सम्बन्ध इन सिद्धान्तों को सूत्रबद्ध करने वाले ऋषियों के नाम से जोड़ा जाता है। न्याय के गौतम, वैशेषिक के कणाद, योग के पातञ्जलि, मीमांसा के जैमिनी, सांख्य के कपिल तथा वेदान्त के वेदव्यास सूत्रकार हैं। दर्शन ग्रन्थों की भाषा वैदिक न होकर लौकिक संस्कृत है। श्रुति का अनुगमन करने वाली स्मृतियों (पुरातन कानून ग्रंथ) तथा धर्म की प्रतिष्ठा का श्रेय लेने वाले पुराणों की भाषा भी लौकिक संस्कृत ही है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि वैदिक साहित्य के अनन्तर ही लौकिक साहित्य का उदय हुआ। वस्तुतः लौकिक संस्कृत में लिखा गया साहित्य विषय, भाषा, भाव आदि की दृष्टि से अपना विशिष्ट स्थान रखता है। लौकिक साहित्य में महर्षि वाल्मीकि कृत रामायण 'आदि काव्य' समझा जाता है तथा वाल्मीकि 'आदि कवि' माने जाते हैं। रामायण और महाभारत हमारे जातीय इतिहास हैं। भारतीय सभ्यता का भव्य रूप इन ग्रंथों में जिस प्रकार से उपलब्ध होता है वैसा अन्यत्र नहीं मिलता।

लौकिक साहित्य की परम्परा

लौकिक संस्कृत में काव्य परम्परा के आदि प्रवर्तक महर्षि वाल्मीकि हैं और उनकी कृति 'रामायणम्' न केवल संस्कृत का अपितु विश्व साहित्य का आदि महाकाव्य है। परवर्ती लक्षणकारों ने महाकाव्यों के लक्षणों का निर्माण रामायण की रचना शैली को ही मुख्य रूप से देखकर किया है। रामायण तथा वेदव्यास रचित महाभारत में भारतीय परम्परा के अनुसार यद्यपि एक पूरे युग का अन्तर है, किन्तु इन दोनों के मध्य किसी अन्य काव्य ग्रंथ की उपलब्धि नहीं होती। इतना अवश्य है कि महाभारत में आई बीसियों ऐसे विशाल आख्यानों को देखकर, जिनका महाभारत की मूल कथा से कोई सम्बन्ध नहीं है, यह सहज ही कल्पना की जा सकती है कि वे आख्यान किसी ऐसे समय अपने काव्यात्मक रूप से जनहृदय को अत्याधिक आन्दोलित कर चुके थे तथा परवर्ती महाकाव्यों, खण्ड काव्यों, नाटकों, कथाओं आदि के लिए बीजों को सुरक्षित रखे हुए थे।

1. महाकाव्य–लौकिक संस्कृत के महाकाव्यों के रचयिताओं में महाकवि कालिदास का नाम अग्रगण्य है। उनसे पूर्व पाणिनि लिखित 'पाताल विजय' और 'जाम्बवती विजय काव्यों के केवल नाम ही मिल पाये हैं। कालिदास प्रथम शताब्दी ईस्वी पूर्व के महाकवि हैं जिन्होंने 'रघुवंश' तथा 'कुमार संभव' नामक दो महाकाव्यों की रचना की। अश्वघोष का नाम संस्कृत तथा बौद्ध कवियों में सर्वोच्च है। वे ईसा की प्रथम शताब्दी में हुए। 'सौन्दरनन्द' तथा 'बुद्धचरित' ये दो महाकाव्य अश्वघोष ने रचे। महाकवि भारवि का नाम महाकाव्यों में एक नए युग प्रवर्तक के रूप में स्मरण किया जाता है। वे अलंकृत शैली के प्रवर्तक हैं। उनका एकमात्र महाकाव्य 'किरातार्जुनीयम' है। भारवी का समय छह सौ ईस्वी के आसपास का है। महाकवि भट्टि जिन्होंने 'रावणवधम' महाकाव्य की रचना की, का समय ईसा की छठी शताब्दी का उत्तरार्ध तथा सातवीं शताब्दी का प्रारम्भ है। बाईस सर्गों के इस विशाल महाकाव्य का उद्देश्य काव्य के माध्यम से व्याकरण की शिक्षा देना रहा है, जो विश्व साहित्य में अपने ढंग का अनोखा प्रयोग है। कुमारदास रचित 'जानकीहरण' के 25 सर्गों में केवल 15 सर्ग उपलब्ध हैं। इस महाकाव्य में रामायण की चिरपरिचित कथा को नवीन कलेवर प्रदान करने का प्रयास किया गया है। कवि कुमारदास का स्थिति काल 650 ई० से 750 ई० के बीच माना जाता है। 'शिशुपालवधम्' अलंकृत महाकाव्य शैली में लिखा हुआ दूसरा विशिष्ट महाकाव्य है। इसके रचयिता महाकवि माघ हैं जिनका स्थिति काल अंतरंग तथा बाह्य प्रमाणों के आधार पर 750 ई० के आसपास सिद्ध होता है। संस्कृत महाकाव्यों में सबसे अधिक बृहत्काय महाकाव्य रत्नाकर विरचित 'हरविजय' है। हरविजय में 50 सर्ग और 4320 श्लोक हैं। इसमें शिव द्वारा अंधकासुर के वध की कथा वर्णित है। शैव दर्शन, नीति शास्त्र, कामसूत्र तथा इतिहास पुराण एवं नाट्य-संगीत आदि का सम्यक् ज्ञान इस महाकाव्य में सर्वत्र लक्षित होता है।

जैन महाकाव्यों में हरिश्चन्द्र विरचित, 'धर्मशर्माभ्युक्ष्य' नामक 21 सर्ग का महाकाव्य उल्लेखनीय है। 'राघवपाण्डवीयम्' महाकाव्य के कर्त्ता कविराज का स्थिति काल 12वीं शताब्दी था। राघवपाण्डवीयम् एक ऐसा अद्भुत महाकाव्य है जिसके प्रत्येक श्लोक में श्लेष द्वारा रामायण और महाभारत की कथा का साथ-साथ वर्णन किया गया है। राघवपाण्डवीयम् का कई कवियों ने अनुकरण किया। हरदत्त सूरि के 'राघवनैषधीयम्' में राम और नल की तथा चिदम्बर कृत 'राघवयादवपाण्डीयम' में रामायण, महाभारत और भागवत की कथा एक साथ वर्णित है। विद्यामाधव रचित 'पार्वतीरुक्मिणीयम' में शिव-पार्वती तथा कृष्ण रुक्मिणी के विवाह का एक साथ वर्णन किया गया है। सबसे अधिक कुतूहलोत्पादक तो वेंकटाध्वरि का 30 श्लोकों का 'याद्वराघवीयम्' है जिसे सीधा पढ़ने से राम की कथा तथा उल्टा पढ़ने से कृष्ण की कथा का वर्णन मिलता है, इस प्रकार का शाब्दिक कौतूहल संस्कृत के अतिरिक्त संसार की अन्य किसी भाषा में नहीं पाया जाता है।

कन्नौज में राजा जयचंद राठौर के राजकवि श्री हर्ष के 'नैषधीयचरितम' का स्थान संस्कृत के महाकाव्यों में बड़ा ऊंचा है। 'उदिते नैषधे काव्ये क्व माघः क्व च भारविः' की उक्ति सर्वत्र प्रसिद्ध है। किरातार्जुनीयम, शिशुपालवधम, नैषधीयचरितम् ये तीनों संस्कृत महाकाव्यों की परम्परा में बृहत्त्रयी के नाम से जाने जाते हैं। नैषध के उपरान्त संस्कृत में कोई उल्लेखनीय महाकाव्य नहीं मिलता। इस समय के बाद काव्य साहित्य में गीति, शतक, स्तोत्र संग्रह आदि का ही प्राधान्य रहा।

2. **नाटक**–श्रव्यकाव्य की परम्परा से दृश्य काव्य की परम्परा बहुत अर्वाचीन नहीं है। श्रव्यकाव्य के कर्त्ता वाल्मीकि आदि कवि हैं, किन्तु नाट्य शास्त्र के प्रणेता भरतमुनि को भी भारतीय अनुश्रुति उसी युग से जोड़ती है। पाणिनि मुनि के व्याकरण अष्टाध्यायी में 'नट सूत्र' के उल्लेख से स्पष्ट है कि पाणिनि के समय में या उनसे पूर्व ही नाटक रचे जा चुके होंगे। इसके बाद संस्कृत नाटकों की संख्या में उत्तरोतर वृद्धि और परिष्कार होता गया। पतंजलि के महाकाव्य में **कंसवध** और **बलिवध** नामक दो नाटकों का स्पष्ट उल्लेख आता है। संस्कृत में उपलब्ध महाकवि भास के तेरह नाटक कालक्रम के आधार पर सर्वाधिक प्राचीन हैं। इनके भास्कृत होने के सम्बन्ध में तर्क संगत समाधान न होने पर भी ये बहुसम्मति से भासकृत ही मान लिए गए हैं। इनमें 'अभिषेक' तथा 'प्रतिमा' नाटक रामायण की कथा पर आधारित है। दूतवाक्यम्, कर्णभारम, दूतघटोत्कचम, उरुभंगम, मध्यम व्यायोगम्, पंचरात्रम्–इन छः की कथा महाभारत से ली गई है। बाल चरितम् में श्रीकृष्ण के जन्म से लेकर कंस वध तक की कथा है और अविमारक में कुंतीभोज की रूपवती कन्या कुरंगी का राजकुमार अविभारक से प्रच्छन्न विवाह वर्णित है। **स्वप्नवासवदत्तम्** महाकवि भास की नाट्य कला का चूड़ान्त निदर्शन है। इसे प्रतिज्ञायोगन्धरायण का उत्तरार्ध समझना चाहिए। चारुदत्तम् नामक प्रकरण के केवल चार अंक उपलब्ध हुए हैं। प्रतीत होता है कि भास की मृत्यु हो जाने के कारण यह ग्रंथ सम्पूर्ण नहीं हो सका। कुछ लोग 'वीणावासवदत्ता' तथा 'यज्ञफलम्' को भी भास कृत बताते हैं। भास का रचना काल ईसा से तीन चार शताब्दी पूर्व माना जाता है।

शूद्रक (ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी)–इनका 'मृच्छकटिकम्' नामक प्रकरण विश्व प्रसिद्ध है। इसका अनेक विदेशी भाषाओं में अनुवाद भी हो चुका है। इस नाटक की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें समाज के सभी वर्गों के पात्र लिए गए हैं। **कालिदास** (प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व)–संस्कृत नाटकों का पूर्ण विकास कालिदास की रचनाओं में पाया जाता है। इन्होंने तीन नाटकों की रचना की–'मालविकाग्निमित्रम्', 'विक्रमोर्वशीयम्' तथा 'अभिज्ञान-शाकुन्तलम्'। अभिज्ञान-शाकुन्तलम् का स्थान विश्व के सर्वश्रेष्ठ नाटकों में सबसे ऊंचा है।

अश्वघोष (ईसा की प्रथम शताब्दी)–'शारिपुत्रप्रकरण' इनका प्रख्यात नाटक है जिसमें बुद्ध धर्म की महत्ता बताई गई है। हर्ष (ईसा की सातवीं सदी का पूर्वार्द्ध)–सम्राट् हर्षवर्धन लिखित तीन नाटक हैं–'प्रियदर्शिका', 'रत्नावली' एवं 'नागानंद'। भवभूति

(650 से 750 ई० के मध्य)–ये महान् नाटककार थे। इनके नाटक भास, कालिदास, शूद्रक तथा विशाखदत्त के नाटकों से किसी भी प्रकार कम नहीं हैं। इनके नाटक हैं–'महावीरचरितम्', 'मालतीमाधवम्' तथा 'उत्तररामचरितम्'। इनकी सर्वश्रेष्ठ रचना उत्तररामचरितम् है। **विशाखदत्** (छठी शताब्दी का अंत)–इस महान् नाटककार ने 'मुद्राराक्षसम्' नाटक की रचना करके अमर कीर्ति प्राप्त की। यह एक उच्चकोटि का राजनीतिक-ऐतिहासिक नाटक है। **बाण** (700 से 750 ई०)–इनके द्वारा लिखे गए नाटक का नाम 'पार्वती परिणय' है। **भट्टनारायण** (आठवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध)–इनका 'वेणीसंहारम्' महाभारत पर आधारित एक श्रेष्ठ नाटक है। **मुरारि** (लगभग 800 ई०)–इन्होंने 'अनर्धराघवम्' नामक एक अच्छे नाटक की रचना की है। **शक्तिभद्र** (नवीं शताब्दी का आरम्भ)–इनके नाटक का नाम 'आश्चर्य चूड़ामणि' है जो रामायण-कथा पर आधारित है। **राजशेखर** (लगभग 900 ई०)–इन्होंने कर्पूर मञ्जरी, 'विद्धशालभंजिका', 'बालरामायणम्' और 'प्रचण्ड पाण्डवम्' आदि नाटकों की रचना की है। **क्षेमीश्वर** (लगभग 900 ई०)–इनके नाटक इस प्रकार हैं–'नैषधानन्दम्' (नलदमयन्ती कथा पर आधारित) तथा 'चण्डकौशिकम्' (सत्यवादी हरिश्चन्द्र की कथा पर आधारित)। **कृष्णमिश्र** (ग्यारह सौ ईस्वी)–इनका 'प्रबोधचन्द्रोदय' नाटक प्रतीक नाटक है, जिसमें अद्वैत वेदान्त के दर्शन होते हैं। इस नाटक के पात्र लोभ, ज्ञान, बुद्धि, विश्वास, ईर्ष्या आदि का प्रतिनिधित्व करते हैं। **जयदेव** (1200 ई०)–इनकी रचना 'प्रसन्न राघवम्' है। **वत्सराज** (बारहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध)–इन्होंने छः नाटकों की रचना की है–'किरातार्जुनीयम्', 'कर्पूरचरितम्', 'हास्य चूड़ामणि', 'रुक्मिणीहरणम्', 'त्रिपुरदाहम्' तथा 'समुद्रमन्थनम्'। **रुद्रदास** (बारहवीं शताब्दी) ने 'चन्द्र रेखा' नामक एकांकी नाटक लिखा है।

बारहवीं शताब्दी के बाद रचे गए संस्कृत नाटकों का प्रचार जनता में कम हुआ। इनमें **जय सिंह सूरी** कृत 'हम्मीरमदमर्दनम्', **जगदीश्वर** कृत हास्यर्णवम्, **रामभद्रदीक्षित** कृत 'जानकी-परिणयम्' और **कृष्णमाचारी** कृत 'वासन्तिक-स्वप्नम्' **लक्ष्मण सूरी** कृत 'दिल्ली साम्राज्यम्', **मूलशंकर याज्ञेक** कृत 'छत्रपति-साम्राज्यम्, प्रतापविजयम् संयोगिता स्वयंवरम्' विशेष उल्लेखनीय हैं। संस्कृत नाटकों का रचनाक्रम अभी जारी है। पाणिनीयम् नेहरुविजयम् कृषकाणां नागपाशः, केसरिचक्रमः, लक्ष्मीविडम्बनम्, महती विचित्रता आदि सैंकड़ों अन्य नाटक भारत की स्वतन्त्रता के पश्चात् प्रकाशित हुए हैं। भास का स्वप्नवासवदत्तम्, शूद्रक का मृच्छकटिकम, कालिदास का अभिज्ञान-शाकुन्तलम्, भवभूति का उत्तररामचरितम् तथा विशाखदत् का मुद्राराक्षसम्–ये पांचों नाटक संस्कृत के पञ्च रत्न माने जाते हैं।

3. **गीति काव्य**–संस्कृत गीति काव्य की प्राचीनतम उपलब्ध रचनाएं महाकवि कालिदास की ही हैं। इनके 'ऋतुसंहार' में 6 सर्ग तथा 144 पद्य हैं। इसमें ग्रीष्म, वर्षा,

शरद्, हेमन्त, शिशिर और बसन्त ऋतुओं का यथाक्रम वर्णन हुआ है। 'मेघदूत' के
पद्यों में कालिदास ने विरही पक्ष की मनोव्यथा का मार्मिक चित्रण किया है। इसके दो
हैं-पूर्वमेघ और उत्तरमेघ। 'शृंगार तिलक' नाम का एक 23 पद्यों का लघुगीति-काव्य भी
कालिदास के नाम से प्रचलित है। घटकर्पर को महाराज विक्रमादित्य के नवरत्नों में से एक
माना जाता है। वे भी कालिदास के समकालीन हैं। इनके गीतिकाव्य का नाम भी 'घटकर्पर'
ही है। इस लघु काव्य में केवल 22 पद्य हैं। हाल की 'गाथा सप्तशती' का गीति काव्यों में
स्थान अत्यधिक ऊंचा है। हाल का दूसरा नाम सातवाहन था। 'गाथा सप्तशती' में 700
गाथाओं (आर्या छन्दों) का संग्रह हुआ है। इस प्रकार यह सुभाषित संग्रह का प्रथम ग्रंथ
है। भर्तृहरि ने 'नीति शतक', 'शृंगार शतक' तथा 'वैराग्य शतक' की रचना द्वारा गीति
काव्य को जन-जन की वाणी पर अधिष्ठित किया है। अमरु अथवा अमरुक द्वारा विरचित
अमरुक शतक का शृंगार काव्यों में विशिष्ट स्थान माना जाता है। विल्हण ने 11वीं शताब्दी
के उत्तरार्ध में 'चौरपञ्चाशिका' नामक 50 पद्यों के एक लघु गीति काव्य की रचना की।
धोयी लिखित 'पवनदूत' का स्थान उन संदेश काव्यों में प्रमुख है, जिनकी रचना मेघदूत के
अनुकरण पर हुई। गोवर्धनाचार्य कृत 'आर्यासप्तशती' की रचना हाल कृत 'सप्तशती' के
अनुकरण पर हुई। जयदेव कृत 'गीतगोविन्दम्' संस्कृत गीति काव्य का एक अनूठा रत्न है।
इसमें श्लोक, गद्य और गीत तीनों के मिले-जुले प्रयोग द्वारा एक अनुपम रचना-माधुर्य का
समावेश किया गया है। राधा-कृष्ण की केलि-कथाओं तथा उनकी अभिसार लीलाओं का
रहस्यमय शृंगार इस रचना का वर्ण्य-विषय है। जयदेव के पश्चात् गीतकाव्य साहित्य में
उल्लेखनीय नाम पंडितराज जगन्नाथ का आता है जिन्होंने 'पीयूष लहरी, सुधा लहरी,
अमृत लहरी, करुणा लहरी और लक्ष्मी लहरी' आदि अनेक गीति काव्यों की रचना की।
'भामिनीविलास' पंडित राज के मुक्तक गीतात्मक पद्यों का सुन्दर संग्रह है।

संस्कृत के गीतिकाव्य के इतिहास में उन सुभाषित संग्रहों का भी महत्त्व है, जिनमें
सूक्तियों का संकलन किया गया है। इनमें एक से एक सुन्दर गीतात्मक या मुक्तक पद्य
पड़े हैं। सबसे प्राचीन सूक्ति संग्रह ग्रंथ 'कवीन्द्ररस समुच्चय' है। अन्य सुभाषित अथवा
सूक्ति साहित्य में श्रीधर दास कृत 'सदुक्तिकर्णामृतम्', जल्हणकृत 'सूक्तिमुक्तावली',
वल्लभ वेद कृत 'सुभाषितावली', रूप गोस्वामी कृत 'पद्यावली', लक्ष्मणभट्ट कृत 'सुभाषित
रचना', जीवानन्द कृत 'काव्य संग्रह', पूर्ण चन्द्रदेव कृत 'उद्धट सागर' हैं। 'शङ्गधर पद्धति'
तथा 'सुभाषित रत्न भण्डरागार' भी इस प्रकार की विशिष्ट रचनाएं हैं। इन सूक्ति ग्रंथों में
सुन्दर पद्यों के संकलन के साथ ऐसी अनेक फुटकर रचनाएं भी मिलती हैं जो इन ग्रंथों के
अभाव में सम्भवत: विस्मृति के गर्त में विलीन हो जाती हैं।

4. गद्य साहित्य-लौकिक संस्कृत में गद्य काव्य के लेखकों में सबसे प्राचीन
कृतियां महाकवि दण्डी की उपलब्ध होती हैं। उनका आविर्भाव काल 500 ई० से 800

माना जाता है। 'दशकुमार चरित' उनकी प्रसिद्ध रचना है। 'वासवदत्ता' नामक गद्य
व्य के रचयिता सुबन्धु का स्थिति काल भी दण्डी के स्थिति काल के समान ही
निश्चित है। सुबन्धु की 'वासवदत्ता' संस्कृत गद्य काव्य की एक विशेष विधा का
तिनिधित्व करती है। पर देखा जाए तो संस्कृत साहित्य में गद्य काव्य का चरमोत्कर्ष
णभट्ट की कृतियों में ही पाया जाता है। बाण ने दो गद्य काव्य लिखे-'हर्षचरितम्' और
दम्बरी'। इनमें हर्षचरित आख्यायिका (ऐतिहासिक काव्य) हैं और कादम्बरी कथा
ाल्पनिक उपन्यास) है। बाणभट्ट के पश्चात् भी गद्य काव्य लिखे जाते रहे, पर उनमें
य: बाण की कृतियों का ही अनुकरण है। धनपाल की 'तिलक मञ्जरी', वादीभ सिंह
'गद्य चिन्तामणि' पर कादम्बरी का तथा वामनभट्ट के 'वेमभूपाल चरितम्' पर हर्षचरितम्
प्रभाव स्पष्ट है।

इस शताब्दी के गद्य काव्यों में अम्बिकादत्त के 'शिवराज विजय' का स्थान सर्वोपरि
यह रचना आधुनिक उपन्यासों में रोचकता की दृष्टि से भी किसी प्रकार घट कर नहीं
मेधातिथि का 'कुमुदिनि चन्द्र' एवं श्री निवास शास्त्री का 'चन्द्रमहीपति' एवं 'सूर्यप्रभा'
सिद्ध करते हैं कि संस्कृत लेखन में प्रतिभा का अवरोध उत्पन्न नहीं हुआ। श्री निवास
स्त्री सौ उपन्यास लिखना चाहते थे पर अर्थाभाव बाधक बन गया। प्राचीन संस्कृत
हित्य में निबन्ध लेखन का प्रचार नहीं था। आधुनिक समय में ऋषिकेश भट्टाचार्य ने
माजिक विषयों पर सुरुचिपूर्ण निबन्ध लिखकर मौलिक प्रणाली का प्रचार किया है।
के लेखों का एक संग्रह 'प्रबन्ध मञ्जरी' प्रकाशित भी हुआ है। प्रबन्ध मञ्जरी की भाषा
त्यन्त प्राञ्जल एवं प्रवाहपूर्ण है। संस्कृत में व्यंग्य शैली का प्रथम प्रादुर्भाव इन्हीं निबन्धों
माना जाएगा।

संस्कृत में गद्य काव्य इस धारणा के पोषक हैं कि कविता के लिए छन्द अनिवार्य
है, छन्दोबद्धता तो उसका केवल बाह्य परिछंद है। गद्य और पद्य दोनों में समान रूप
कविता की रचना हो सकती है।

5. आख्यान साहित्य-विश्व साहित्य में भारत के आख्यान साहित्य का अत्यन्त
त्वपूर्ण स्थान है। मौलिकता, रचना-निपुणता तथा विश्व-व्यापक प्रभाव की दृष्टि से
अनुपम और अद्वितीय सिद्ध हो चुका है। इसे आख्यान साहित्य को दो भागों में
ाजित किया जा सकता है-नीति कथा और लोक कथा। नीति कथा साहित्य में
धिक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ 'पंचतन्त्र' है, जिसकी रचना विष्णु शर्मा ने महिलारोप्य के राजा
र शक्ति के तीन मूर्ख पुत्रों को नीति शास्त्र में पारंगत बनाने के उद्देश्य से की थी। मित्र
मित्रलाभ, काकोलूकीय, लब्ध प्रणाश तथा अपरीक्षित कारक इन पांच तंत्रों (भागों)
कारण ही इसका नाम पंचतन्त्र है। पंचतन्त्र के बाद नीति कथाओं में दूसरा महत्त्वपूर्ण
'हितोपदेश' का है। इसकी रचना नारायण पंडित ने पंचतन्त्र के आधार पर ही की है।

इसके चार परिच्छेदों-मित्रलाभ, सुहृदभेद, विग्रह और सन्धि में से प्रथम दो की कथावस्तु का सम्बन्ध पंचतन्त्र से ही है। पंचतन्त्र की अपेक्षा भाषा की सरलता के कारण उत्तर भारत में हितोपदेश का प्रचलन अधिक है।

लोक कथाओं में सबसे प्राचीनतम संग्रह गुणाढ्य की 'बृहत्कथा' है। संस्कृत में इसके तीन संक्षिप्त रूपांतर प्राप्त हैं-(1) बुद्धस्वामी कृत 'बृद्धत्कथा श्लोक संग्रह', (2) क्षेमेन्द्र कृत 'बृहत्कथा मञ्जरी' तथा (3) सोमदेव कृत 'कथासरित्सागर'। बृहत्कथा तथा उसके संस्कृत रूपांतरों के अतिरिक्त लोक कथा साहित्य में 'वेताल पञ्चविंशतिका', 'सिंहासन द्वात्रिंशिका', 'शुकसप्तति', 'पुरुष परीक्षा', 'कथार्णन', 'भोज प्रबन्ध', 'आरण्ययामिनी', 'ईसन्नीति कथा' प्रसिद्ध हैं। इनमें अन्तिम दो अरबी तथा अंग्रेजी में अनूदित हैं। बौद्धों के कथा संग्रह 'अवदान' नाम से प्रसिद्ध हैं। इनमें सबसे प्राचीन 'अवदान शतक' है। आर्यशूर कृत संस्कृत 'जातकमाला' चौथी शताब्दी की रचना है। जैन कथा संग्रहों में उल्लेखनीय हेमचन्द्र रचित 'परिशिष्टपर्वन्' है।

6. ऐतिहासिक काव्य-ऐतिहासिक काव्यों में बाणभट्ट के 'हर्षचरित' के बाद उल्लेखनीय कृतियां पद्मगुप्त का 'नवसाहसांक चरितम्', बिल्हण का 'विक्रमांकदेव चरितम्' कल्हण कृत 'राजतरंगिणी', हेमचन्द्र कृत 'कुमारपालचरितम्', जयानक कृत 'पृथ्वीराजविजयम्' के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

7. चम्पूकाव्य-संस्कृत में चम्पूकाव्य की भी दीर्घ परम्परा रही है। वस्तुतः गद्य और पद्य मिश्रित रचना को चम्पू कहा जाता है। चम्पू परम्परा का प्रारम्भ हमें अथर्ववेद में प्राप्त होता है, जिसमें गद्य और पद्य का मिश्रित प्रयोग हुआ है। ब्राह्मण ग्रन्थों के उपाख्यानों में भी गद्यों और पद्यों का प्रयोग किया गया है। ऐतरेय ब्राह्मण का 'हरिश्चन्द्रोपाख्यान' चम्पू शैली का उत्कृष्ट उदाहरण है। अब तक उपलब्ध साहित्य के आधार पर संस्कृत में इस शैली के सर्वप्रथम प्रवर्तक 'त्रिविक्रम भट्ट' माने जाते हैं। उनका लिखा 'नलचम्पू' उच्छ्वास में विभक्त है। इसमें नल और दमयन्ती की प्रसिद्ध प्रणय कथा वर्णित है। त्रिविक्रम भट्ट समकालीन तथा उत्तरकालीन चम्पू काव्य रचयिताओं की एक लम्बी परम्परा है। इस हरिश्चन्द्र कृत 'जीवन्धर चम्पूः' और सोमदेवसूरि कृत 'यशस्तिलक चम्पूः' को अधिक प्रसिद्धि प्राप्त हुई है। भोजराज कृत 'रामायण चम्पू' अपनी विशिष्ट शैली तथा अपने गाम्भीर्य की दृष्टि से बेजोड़ है। इसमें वाल्मीकीय रामायण का आश्रय लेकर राम कथा किष्किन्धा काण्ड तक लिखी गई है। श्री लक्ष्मण ने युद्ध काण्ड और वेंकटराज ने उत्तर काण्ड लिखकर इसकी पूर्ति की है। यह वैदर्भी रीति में लिखा गया है। सोड्ढल रचित 'उदय सुन्दरी कथा' गद्य पद्यात्मक होने के कारण चम्पू काव्य में ही सम्मिलित की गई है। अनन्त भट्ट ने 'भारत चम्पू' और 'भागवत चम्पू' की रचना की है। इसमें 'भारत चम्पू' एक विशालकाय चम्पू ग्रंथ है, जिसमें महाभारत की कथा संक्षेप में प्रस्तुत की गई है। तिरुमलाम्बा कृत 'वरदाम्बिका-परिणय चम्पू' भी अपना विशेष महत्त्व रखता है। यह

संस्कृत वाङ्मय के उत्थान में स्त्रियों के योगदान का ज्वलन्त उदाहरण है। अर्हदास कृत 'पुरुदेव चम्पू', कर्णपूर कृत 'आनन्द विलास चम्पूः', जीव गोस्वामी कृत 'गोपाल चम्पूः', वेंकटाध्वरि कृत 'विश्वगुणादर्श चम्पूः', शंकर कवि का 'शंकरचेतो-विलास चम्पूः' भी विशेष उल्लेखनीय है।

वास्तव में चम्पू ग्रंथों की यह परम्परा आज तक बड़े व्यापक रूप में प्रवाहमान रही है। कुछ मुख्य चम्पू ग्रंथ ये हैं-पुरुदेव चम्पू, अमोघराघव चम्पू, विजय चम्पू, रुक्मिणी परिणय चम्पू, नृसिंह चम्पू, माधव चम्पू, स्वाहा सुधाकर चम्पू, द्रौपदी प्रणय चम्पू, उत्तर चम्पू, श्री निवास चम्पू, चित्र चम्पू, आनन्द चम्पू और श्री प्रताप चम्पू आदि। अब तक प्रकाशित तथा अप्रकाशित चम्पुओं की संख्या 250 से अधिक है।

संस्कृत भाषा एवं साहित्य का महत्त्व
[Importance of Sanskrit Language and its Literature]

वास्तव में संस्कृत साहित्य भारतीय संस्कृति का प्रधान वाहन तथा निर्मल दर्पण है एवं संस्कृत भाषा हमारी प्राणभूत तथा मूल भाषा है, जिसका 'देववाणी' नाम अपनी प्राचीनता का द्योतक है। भारत के साहित्यिक, ऐतिहासिक, धार्मिक, आध्यात्मिक और राजनीतिक जीवन की पूरी व्याख्या संस्कृत भाषा के साहित्य में समाविष्ट है। वेदों के अति रहस्यमय ज्ञान से लेकर सामान्य जन-जीवन के मनोविनोद से सम्बन्धित 'पंचतंत्र', 'हितोपदेश' की कथाओं तथा अन्य अनेक नीतिकाव्यों तक जितना भी संस्कृत वैभव विद्यमान है, वह संस्कृत भाषा में ही सुरक्षित है। संसार की अन्य भाषाओं के साहित्य में शायद ही कोई ऐसी भाषा हो जिसमें प्रेम तथा श्रेय दोनों प्रकार की उपलब्धि हो।

संस्कृत हमारे मनन, चिन्तन, गवेषण, अनुभूति और राष्ट्रीय चैतन्य शक्ति का समग्र रूप प्रस्तुत करती है। हमारे पांच सहस्रों से भी अधिक समय के जातीय इतिहास, सामाजिक मान्यताओं एवं राष्ट्रीय चिन्तन की भावनाओं का इस भाषा में पूर्ण आंकलन हुआ है। यह भाषा विद्वानों, मनीषियों और शिष्टों तथा तत्त्ववेताओं की भाषा है। यह 'देववाणी, गीवविवाणी गीर्वाणगी:' आदि नामों से पुकारी जाती है और कहा जाता है कि ''संस्कृत स्वर्गिणां भाषा शब्दशास्त्रेषु निश्चिता।'' यह मनुष्य जीवन को सुखमय बनाने के साथ ही उसे कल्याण के मार्ग की ओर अग्रसर करने में भी परम सहायक रही है। यही कारण है कि देश-विदेश के लाखों-करोड़ों मानव हृदयों में यह आज भी श्रद्धा का संचार कर रही है। स्वर्गीय **डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी जी** के ये शब्द इस प्रसंग में विशेष रूप से उल्लेख के योग्य हैं-''संस्कृत साहित्य को एक सरसरी निगाह से देखने पर हजारों वर्षों निरन्तर प्रवाहमय मानव चिन्तन का एक विराट स्रोत प्रत्यक्ष दिखाई दे जाता है। हम हजारों वर्षों से मनुष्य के साथ एक सूत्र में आबद्ध हो जाते हैं।''

वस्तुतः संस्कृत के वाङ्मय ने हमारे कलात्मक और सामाजिक मूल्यों के माध्यम से देश को भावनात्मक एकता में बांधने में बड़ा उपकार किया है। वस्तुतः अर्थों की प्राचीनतम

भाषा, संस्कृति, धर्म और सभ्यता आदि इसी साहित्य में उपलब्ध है। आधुनिक भारत की राष्ट्रभाषा एवं अन्य प्रान्तीय भाषाओं के विकास एवं सुसमृद्धि के लिए भी संस्कृत भाषा और साहित्य का अध्ययन परम आवश्यक है। धार्मिक विचारों के क्रमिक विकास के अध्ययन के लिए भी संस्कृत में प्राचीनतम ग्रंथों का भंडार होने से यह सब साहित्यों से अधिक गौरवशाली है। संस्कृत साहित्य में ब्राह्मण तथा बौद्ध धर्मों का उदय और विकास भी निहित है। यहां पर षड्दर्शनों और अन्य कई दर्शनों का विकास भी स्वतन्त्र और मौलिक रूप से हुआ है। अत: संस्कृत के साहित्य से ही भारतीय धर्म तथा दर्शन के विकास के प्रत्येक स्तर का ज्ञान प्राप्त होता है।

यही नहीं पाणिनि की अष्टाध्यायी, निघण्टु तथा यास्क के निरुक्त वेदों के विभिन्न प्रकार के पाठ या विकृतियां आदि संसार के साहित्य में अद्वितीय हैं। सूत्र ग्रंथों की भी अपनी विलक्षणता है जो अन्यत्र उपलब्ध नहीं होती। वस्तुत: संस्कृत भाषा में साहित्य के लगभग प्रत्येक अंग का सुचारु और विलक्षण विकास हुआ है। इसके अतिरिक्त समग्र संस्कृत साहित्य की विशेष महिमा उसकी मौलिकता में निहित है। संस्कृत साहित्य की एक महान् देन यह भी है कि इसने प्राचीनकाल में विभिन्न राजनैतिक प्रदेशों और राज्यों में विभक्त इस देश को एक सूत्र में बांधा हुआ था। संस्कृत देश के कोने-कोने में समझी और शिष्टों द्वारा बोली जाती थी। पालि, प्राकृत और द्रविड़ भाषाओं के बोलने वाले भी इसका व्यवहार करते थे। रामायण काल में भी आर्य, वानर और राक्षस आदि सभी जातियां संस्कृत का व्यवहार करती थीं।

संस्कृत साहित्य वस्तुत: सर्वाङ्गीण साहित्य है। इसमें मानव चिन्तन की परिधि में आने वाला कोई विषय अछूता नहीं रहा है। इसमें काव्य, नाटक, गद्य, चम्पू, मुक्तक, कथा, आख्यान, आख्यायिका, इतिहास पुराण आदि ही उपलब्ध नहीं हैं। अपितु विज्ञान, धर्म, ज्योतिष, विधिशास्त्र, गणित, राजनीति, वैद्यक, शिल्प, स्थापत्य, संगीत, दर्शन, छन्द, कल्प, कोष, अलंकार, व्याकरण, छंद आदि अनेकानेक महत्त्वपूर्ण विषयों पर पूर्णव्यवस्थित और वैज्ञानिक सूझ-बूझ से मण्डित साहित्य मिलता है। ज्योतिष हो या सामुद्रिक-शास्त्र, धर्म हो या काम-सभी विषयों पर भारतीय मनीषियों ने तर्कमण्डित बुद्धि से विचार किया है। विंटरनिट्स के अनुसार, "भारतीय साहित्य की प्राचीनता, भूगोल तथा विकास की दृष्टि से व्यापकता, उसकी आन्तरिक सम्भूति एवं कमनीयता और मानव संस्कृति के इतिहास की दृष्टि से उसका मूल्य-ये सब चीजें हैं जो पाश्चात्य जगत को इसकी महत्ता, मौलिकता तथा प्राचीनता की ओर बरबस आकर्षित कर लेती हैं।"

इसी कारण से इस साहित्य की मुक्त-कंठ से प्रशंसा करते हुए वे फिर लिखते हैं, "साहित्य अपने व्यापक अर्थ में जो कुछ भी सूचित कर सकता है, वह संस्कृत में विद्यमान है। धार्मिक और इतिहासपरक रचनाएं, महाकाव्य, लिरिक (गीतिकाव्य), नाटकीय और नीति सम्बन्धी कविता, वर्णात्मक, अलंकृत तथा वैज्ञानिक गद्य ये सब कुछ इसमें भरा पड़ा

है। वस्तुत: विश्व ज्ञान-विज्ञान के भी सम्भव विषयों पर संस्कृत वाङ्मय में विचार हुआ है।"

आचार्य बलदेव उपाध्याय कला की दृष्टि से भी संस्कृत साहित्य को उपेक्षणीय नहीं मानते। जिस साहित्य में कालिदास जैसे कमनीय कविता लिखने वाले महाकवि हुए, भवभूति जैसे नाटककार हुए जिनकी वशवर्तिनी बनकर सरस्वती ने अपूर्व लास्य दिखलाया, बाणभट्ट जैसे गद्य लेखक हुए, जिन्होंने अपने सरस-मसृण काव्य से त्रिलोक सुन्दरी कादम्बरी की कमनीय कथा सुना-सुनाकर श्रोताओं को मत्त बनाया, जयदेव जैसे गीतिकाव्य के लेखक विद्यमान थे जिन्होंने अपनी मधुर कोमलकान्त पदावली द्वारा विदग्धों के चित्त में मधुर रस की वर्षा की, श्री हर्ष जैसे पण्डित कवि हुए जिन्होंने काव्य और दर्शन का अपूर्व सम्मिलन प्रस्तुत किया, उस साहित्य की महिमा का वर्णन समुचित शब्दों में कैसे किया जा सकता है।

अंत में यह कहा जा सकता है कि संस्कृत भाषा और साहित्य भारत की एकता के प्रतीक, धार्मिक, सांस्कृतिक और दार्शनिक अनुभूति के स्रोत, अनेक आधुनिक विज्ञानों की उत्पत्ति और विकास के कारण, भारतीय इतिहास के निर्माण में सहायक आधुनिक भाषाओं के विकास में परम उपयोगी और अमूल्य ग्रंथ रत्नों का भण्डार होने से सब को पढ़ने चाहिएं।

संस्कृत का महत्त्व
[Importance of Sanskrit]

संस्कृत के महत्त्व को दृष्टिगत रखते हुए निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है-

1. सांस्कृतिक महत्त्व
2. कलात्मक महत्त्व
3. साहित्यिक महत्त्व
4. भावात्मक एकता की दृष्टि से महत्त्व
5. बौद्धिक विकास की दृष्टि से महत्त्व
6. व्यावसायिक दृष्टि से महत्त्व

1. सांस्कृतिक महत्त्व-विश्व में प्रत्येक राष्ट्र की अपनी संस्कृति एवं सभ्यता होती है। इस संस्कृति को जीवित रखना उस राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक का पुनीत कर्त्तव्य होता है। वही संस्कृति सम्पूर्ण राष्ट्र को एक सूत्र में बांधती है। इसी प्रकार संस्कृत भाषा सम्पूर्ण विश्व को एकता के सूत्र में बांधने का प्रयत्न करती है। भारतीय संस्कृति हमें इस बात का ज्ञान कराती है कि हम सभी एक हैं और हमारी संस्कृति भी एक है। इस संस्कृति का ज्ञान

संस्कृत भाषा के अध्ययन से ही सम्भव हो सकता है। संस्कृत भाषा के अध्ययन द्वारा ही हम अपनी संस्कृति को जान सकते हैं। इसलिए सभी छात्रों को संस्कृत भाषा का अध्ययन करना आवश्यक है।

2. कलात्मक महत्त्व–हमारे प्राचीन ग्रंथ जो संस्कृत भाषा में लिखे गए हैं उनमें मूर्तिकला, संगीतकला, नृत्यकला आदि कलाओं का ज्ञान बहुतायत में मिलता है। काव्य, नाटक आदि लक्ष्य ग्रंथों के अतिरिक्त संस्कृत में लक्षण ग्रंथों की बहुलता है। भरतमुनि का नाट्यशास्त्र, अभिनय, नृत्य एवं संगीत का विवेचन करने वाला सबसे प्राचीन एवं विकसित ग्रंथ है। भामह, दंडी से लेकर पण्डित राज जगन्नाथ तथा अलंकार, रस, वक्रोति, नायिका भेद, पिंगल शब्दशक्ति आदि का विवेचन करने वाले सैंकड़ों उत्कृष्ट ग्रंथ संस्कृत साहित्य की अमूल्य निधि हैं। इस प्रकार अपनी संस्कृति की कलात्मकता को जानने के लिए संस्कृत भाषा का ज्ञान अति आवश्यक है।

3. साहित्यिक महत्त्व–संस्कृत वाङ्मय अनन्त एवं अनुपम ज्ञान का प्राचीनतम भण्डार है। मानव के कल्पना क्षेत्र के अन्तर्गत आने वाले इहलौकिक, पारलौकिक, दृष्ट एवं अदृष्ट अर्थात् धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष सम्बन्धी सभी अगणित विषयों के ज्ञान की तथा सर्वविध परम्परागत अनुभवों की अतुल राशि केवल संस्कृत वाङ्मय में ही निहित है, जो समग्र जगत की प्रेरणा एवं गवेषणा का अक्षय स्रोत है। इस तथ्य को विदेशी विद्वान् भी हृदय से स्वीकार करते हैं। मैक्समूलर के शब्दों में, "यदि हमें समग्र जगत् पर दृष्टिपात करके यह पता लगाना हो कि प्रकृति ने अपनी क्षमता भर सम्पूर्ण सामर्थ्य, समृद्धि एवं सौन्दर्य किस देश को प्रदान किया है तो मैं भारत की ओर इंगित करूंगा।"

संस्कृत वाङ्मय के दो अंग हैं–पहला वैदिक वाङ्मय, दूसरा लौकिक वाङ्मय। वैदिक वाङ्मय के अन्तर्गत ज्ञान के कल्पवृक्ष चारों वेद, छः वेदाङ्ग, विघण्टु, निरुक्त, बहुसंख्यक, उपनिषद्, आरण्यक, ब्राह्मण, प्रतिशाख्य शूल्वादि सूत्र, विपुल स्मृतियां एवं पुराणोपपुराण आदि हैं। केवल वैदिक वाङ्मय ही इतना गम्भीर, व्यापक तथा उपादेय है कि इसमें निहित अपार ज्ञान राशि की थाह लगा पाना दुष्कर है। वेदादि न केवल परमज्ञान (ब्रह्मज्ञान), धर्म तथा मोक्ष की बल्कि समस्त इहलौकिक कामनाओं की भी सिद्धि के अनन्य साधन हैं।

उपनिषदों की विशाल एवं गम्भीर ज्ञान राशि से प्रभावित शोपेन हॉवर नामक प्रसिद्ध पाश्चात्य दार्शनिक ने कहा है कि उपनिषदों का अध्ययन हमारे शान्तिमय जीवन का साधन है और हमारी शान्तिपूर्ण मृत्यु का भी साधन होगा।

4. भावात्मक एकता की दृष्टि से महत्त्व–संस्कृत भाषा के शिक्षण से छात्रों में भावात्मक एकता, नैतिकता एवं सदाचरण का विकास होता है। उनमें राष्ट्रीयता की भावना की जागृति होती है। वे जातीयता, प्रान्तीयता और भाषावाद से ऊपर उठकर भारतीयता के आराधक बनते हैं। मानव मात्र के कल्याण को अपना कर्त्तव्य समझते हैं।

5. बौद्धिक विकास की दृष्टि से महत्त्व–विद्यार्थियों में भारोपीय परिवार आर्य भाषाओं और आर्येतर द्रविड़ भाषाओं का ज्ञान हो जाता है। इससे उनकी विश्लेषणात्मक, संश्लेषणात्मक, विचारात्मक एवं स्मरण शक्तियों का विकास इस भाषा के माध्यम से ही सम्भव हो पाता है।

6. व्यावसायिक दृष्टि से महत्त्व–संस्कृत साहित्य में गणित, ज्योतिष तथा विज्ञान के क्षेत्र में किये गये अनुसंधानों का विस्तृत वर्णन पाया जाता है। गणित एवं ज्योतिष की पुष्कल सामग्री वेदों में पायी जाती है। उसके पश्चात् भूमि-मापन में रेखागणित का उपयोग पाया जाता है। जो विज्ञान आज ग्रहों-उपग्रहों के सम्बन्ध में जानकारी दे रहा है, वह सभी जानकारी हमारे प्राचीन ज्योतिष ग्रंथों में उपलब्ध है।

आयुर्वेद, संगीत, मूर्तिकला तथा ज्योतिष एवं शिक्षण आदि व्यवसायों के लिए संस्कृत का ज्ञान होना अत्यावश्यक है। व्यावसायिक दृष्टि से संस्कृत भाषा का अच्छा ज्ञान रखने वाले लोगों की नियुक्ति विद्यालयों, महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में आसानी से हो सकती है।

इस प्रकार संयुक्त भाषा का अध्ययन न केवल व्यक्ति के स्वहित में है वरन् समाज और राष्ट्र के लिए परम उपयोगी है।

संस्कृत तृतीय भाषा के रूप में

भारत विविध भाषाओं वाला देश है। भाषाओं की समस्या को लेकर भारत में कई बार आन्दोलन हुए। राष्ट्र भाषा के प्रसंग में भी अनेक बार राजनीतिक उथल-पुथल हुई। अंत में राजनीतिक संघर्षों के बाद हिन्दी को राष्ट्र भाषा के रूप में स्वीकार किया गया है।

सन् 1956 में केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार मण्डल ने त्रिभाषा सूत्र का सुझाव दिया। इस मण्डल का दावा था कि त्रिभाषा सूत्र भाषा-समस्या का सर्वोत्तम हल है। सन् 1957 में भारत सरकार ने मण्डल द्वारा निर्मित सूत्र को स्वीकार कर लिया एवं तद्नुरूप घोषणा कर दी। सन् 1961 में मुख्यमंत्रियों के सम्मेलन ने भी इस सूत्र पर मुहर लगा दी और राज्यों में इसके अनुसार कदम भी उठाए जाने लगे हैं। स्वीकृत त्रिभाषा सूत्र के अनुसार माध्यमिक शिक्षा के प्रत्येक बालक को निम्नलिखित तीन भाषाएं अनिवार्य रूप से पढ़नी होंगी–

1. मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषा,
2. अंग्रेजी,
3. हिन्दी (अहिन्दी भाषी क्षेत्रों के लिए) अथवा आधुनिक भारतीय भाषा (हिन्दी भाषी क्षेत्रों के लिए)।

संस्कृत का सामान्य ज्ञान उच्च प्राथमिक स्तर पर करा देने से बालक के मन में धार्मिक दृष्टिकोण की भावना बढ़ती है। बालक यह समझता है कि संस्कृत पढ़ने से वह

सांस्कृतिक ग्रंथों को पढ़ने की क्षमता में वृद्धि करेगा। संस्कृत पढ़ने से छात्र में नैतिकता का विकास होता है। इस स्तर पर स्मरण शक्ति तीव्र होने से वह सूक्तियों व श्लोकों को याद करके अपने जीवन में उतारने का प्रयास करता है।

हिन्दी के अध्ययन के विषय में भले ही राजनीतिक मतभेद हों, परन्तु संस्कृत के अध्ययन में किसी भी व्यक्ति को अप्रसन्नता नहीं है। **संस्कृत हमारी संस्कृति की भाषा** है। संस्कृत पढ़ने से बालक के मन में हमारी प्राचीन संस्कृति के प्रति सम्मान की भावना बढ़ती है। संस्कृत का अध्ययन अनिवार्य रूप से ही होना चाहिए।

तृतीय भाषा के शिक्षण का महत्त्व

हमारे देश में बालक को दो भाषाएं ही सीखने का अवसर दिया जाता है-(1) मातृभाषा, (2) कोई भी एक विदेशी भाषा। परन्तु वर्तमान की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर यह निश्चित किया गया है कि प्रत्येक भारतीय इन दो भाषाओं के साथ-साथ मातृभाषा का अध्ययन भी करे। अत: हिन्दी को अनिवार्य रूप से पढ़ने का आग्रह किया गया है। पुन: इस विचार में संशोधन किया गया कि हिन्दी भाषी प्रदेशों में हिन्दी तो मातृभाषा के रूप में ही पढ़ाई जाती है, वहां केवल दो ही भाषाएं होंगी, इस प्रकार देश में भाषा की नीति में विषमता होगी। अत: क्षेत्रीय भाषा (मातृभाषा), विदेशी भाषा (अंग्रेजी) के साथ तृतीय भाषा के रूप में हिन्दी भाषी प्रदेशों में संस्कृत या एक भारतीय भाषा को अनिवार्य रूप से पढ़ाने पर बल दिया गया। अहिन्दी भाषी प्रदेशों में तृतीय भाषा के रूप में हिन्दी को महत्त्व दिया गया। केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, दिल्ली व अन्य बोर्डों ने उच्च प्राथमिक स्तर पर (कक्षा 6, 7 व 8) तक संस्कृत ज्ञान को अनिवार्य विषय के रूप में पढ़ाने का निर्णय लिया। माध्यमिक स्तर पर संस्कृत तृतीय भाषा के रूप में स्वीकार की गई।

हिमाचल शिक्षा विभाग ने संस्कृत की भाषा की आवश्यकता व महत्त्व के सम्बन्ध में निम्न प्रकार उल्लेख किया है-

संस्कृत राष्ट्र भाषा एवं अन्य आर्य भाषाओं की जननी है। यही नहीं अन्य भारतीय भाषाओं में भी संस्कृत शब्दों का बाहुल्य है। अत: भारतीय भाषाओं की अभिवृद्धि तथा राष्ट्र भाषा की समृद्धि हेतु संस्कृत भाषा का अध्ययन-अध्यापन प्रत्येक भारतीय के लिए आवश्यक है। इस तथ्य को दृष्टि में रखकर ही राष्ट्रीय शिक्षा नीति में भी संस्कृत भाषा को महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है।

भारत प्राचीनतम वैदिक वांग्मय से लेकर 13वीं शताब्दी तक की संस्कृति, साहित्य, ज्ञान-विज्ञान का प्रतिपादक सम्पूर्ण साहित्य संस्कृत भाषा में लिखा गया है। भारतीय संस्कृति के संरक्षण, उसकी अभिवृद्धि एवं उसके प्रसार हेतु संस्कृत भाषा का अध्ययन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

संस्कृत भाषा के अध्ययन एवं अनुशीलन से राष्ट्र की भावात्मक एकता, राष्ट्रीय अखण्डता एवं जीवनदर्शन की उच्चतम भाव-भूमि को संबल मिलता है। बालक में देश-प्रेम, वृद्धों के प्रति सम्मान, विकलांगों के प्रति सहानुभूति का भाव, स्त्रियों के प्रति सम्यक् दृष्टिकोण, युवावस्था की आवश्यकताओं में तालमेल बिठाने की क्षमता, अपनी संस्कृति के प्रति आत्मीयता की भावना संस्कृत के माध्यम से सहज विकसित की जा सकती है। अत: वर्तमान परिप्रेक्ष्य में राष्ट्रीय सांस्कृतिक एवं नैतिक मूल्यों के संरक्षण एवं संवर्धन हेतु संस्कृत शिक्षण की नितान्त आवश्यकता है।

हिमाचल में तृतीय भाषा के रूप में लगभग 96.5 प्रतिशत बालक संस्कृत पढ़ते हैं एवं 30 प्रतिशत बालक उच्च माध्यमिक कक्षाओं में संस्कृत को वैकल्पिक विषय के रूप में अपनाते हैं। इस मूलभूत तथ्य को विशेष रूप से ध्यान में रखते हुए आज की परिस्थितियों एवं समस्याओं के संदर्भ में उच्च प्राथमिक कक्षाओं में तृतीय भाषा के रूप में संस्कृत को सीखने-सिखाने के लिए जिन संस्थितियों की आवश्यकता होती है, उनको स्पष्ट करने तथा सीखने के अधिक अवसर उपलब्ध कराने हेतु संस्कृत के इस शिक्षाक्रम को भाषिक एवं वैचारिक पक्षों की दृष्टि से पुनर्गठित किया गया है।

भाषा के अनेक रूप होते हैं-व्यावहारिक दृष्टि से सांस्कृतिक भाषा, मातृभाषा, राजभाषा, राष्ट्र भाषा, अन्तर्राष्ट्रीय भाषा, सम्पर्क भाषा आदि भाषा के रूप प्रचलित हैं। घर परिवार में दैनिक-जीवन में व्यवहृत जिस भाषा को बालक अपने माता-पिता से स्वत: ही सीख लेता है, वह **मातृभाषा** है। भारत में राजस्थान, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, हिमाचल प्रदेश, उत्तरांचल, हरियाणा, बिहार, दिल्ली, छत्तीसगढ़ आदि प्रदेशों की मातृभाषा हिन्दी है। पंजाब में पंजाबी, गुजरात में गुजराती, बंगाल में बंगाली, तमिलनाडु में तमिल, आंध्र में कन्नड़, प्रदेशों की मातृभाषा है।

राजकार्य जिस भाषा में सम्पन्न होते हैं, वह राज भाषा कहलाती है। प्रदेशों की मातृभाषा ही उन प्रदेशों की राजभाषा है। जैसे-हिमाचल की मातृभाषा हिन्दी है तथा वह हिमाचल की राजभाषा भी है। भारत सरकार केन्द्र की राजभाषा हिन्दी संविधान द्वारा स्वीकृत है, परन्तु राजनीति पक्षपात के कारण अंग्रेज़ी को यह राजभाषा मानकर उसका प्रयोग केन्द्र में हो रहा है।

राष्ट्रीय भावनाओं को जाग्रत करने वाली भाषा राष्ट्रभाषा है। भारतीय संविधान ने बहुभाषी भारत के लिए चौदह राष्ट्र भाषाएं स्वीकृत की हैं। उनमें संस्कृत व हिन्दी प्रमुख हैं। विदेशों में पत्र व्यवहार, सम्पर्क हेतु अन्तर्राष्ट्रीय भाषा का प्रयोग किया जाता है। भारत में अंग्रेज़ी अन्तर्राष्ट्रीय भाषा के रूप में है। बहुभाषी देश में एक-दूसरे प्रदेशों में आने-जाने, सम्पर्क स्थापित करने, पत्र-व्यवहार करने के लिए एक सम्पर्क भाषा का होना आवश्यक है। भारत में 'हिन्दी' सम्पर्क भाषा भी है। संस्कृत भाषा का प्रयोग भी सम्पूर्ण

भारत में किया जा रहा है, अत: संस्कृत भी सम्पर्क भाषा के रूप में प्रचलित है। देश की संस्कृति के दर्शन जिस भाषा में हों, सांस्कृतिक रचनाएं जिस भाषा में हों, संस्कृति की रक्षा हेतु जिस भाषा का प्रयोग करना आवश्यक है, वह '**सांस्कृतिक भाषा**' कहलाती है। भारत की सांस्कृतिक भाषा 'संस्कृत' है। हमारे सभी सांस्कृतिक कार्य, धार्मिक कार्य, मांगलिक कार्यों में संस्कृत का प्रयोग किया जाता है। अत: भारत की सांस्कृतिक भाषा 'संस्कृत' है।

भारत सरकार ने विद्यालयों में 'त्रिभाषा' सिद्धान्त को अपनाकर प्रत्येक बालक को तीन भाषाओं का अध्ययन करने की अभिशंसा की है। तीन भाषाओं में मातृभाषा, हिन्दी व अंग्रेज़ी की अभिशंसा है। जिन प्रदेशों की मातृभाषा भी हिन्दी है, उनमें मातृभाषा (हिन्दी), अंग्रेज़ी व प्रादेशिक भाषा पढ़ाई जाती है। 'संस्कृत' भाषा को प्रादेशिक भाषा के स्थान पर तृतीय भाषा के रूप में पढ़ाया जाता है।

संस्कृत की वर्तमान स्थिति
[Present Position of Sanskrit]

संस्कृत हमारे मनन, चिन्तन, गवेषण, अनुभूति और राष्ट्रीय चैतन्य शक्ति का समग्र रूप प्रस्तुत करती है। इसी दृष्टि से संस्कृत भाषा के महत्त्व और आवश्यकता की ओर संकेत करते हुए एक बार स्वामी विवेकानन्द ने कहा था कि यदि हम वास्तव में अपनी प्राचीन गौरवमयी परम्परा को संरक्षित करना चाहते हैं तो सर्वप्रथम हमें संस्कृत भाषा को संरक्षित करना होगा। इसके लिए यह आवश्यक है कि संस्कृत भाषा हमारी मौलिक अभिव्यक्ति का माध्यम बने जिससे यह लोकप्रिय बन सके। भाषा की क्लिष्टता को दूर करके इसे सरलता प्रदान की जाए। इसके साथ-साथ विभिन्न कक्षाओं के पाठ्यक्रमों में भी संस्कृत शिक्षा को उचित स्थान देना परमावश्यक है। इन मूल मुद्दों को ध्यान में रखते हुए भारत सरकार ने समय-समय पर संस्कृत के प्रचार व प्रसार हेतु विभिन्न आयोगों का गठन भी किया है।

पाठ्यक्रम में संस्कृत का स्थान
[Place of Sanskrit in Curriculum]

त्रिभाषा सूत्र के अनुसार हिन्दी भाषी क्षेत्रों में माध्यमिक स्तर तक संस्कृत को तृतीय भाषा के रूप में पढ़ाने की योजना है। पाठ्यक्रम में तृतीय भाषा के रूप में हिमाचल माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, शिमला ने अन्य प्रादेशिक भाषाओं के साथ-साथ संस्कृत को भी स्थान दिया है। पाठ्यक्रम में सन् 1989-90 से अनिवार्य संस्कृत में उत्तीर्णांक अन्य विषयों की तरह 33 प्रतिशत माना। इससे इसका महत्त्व बढ़ गया है, फिर भी पाठ्यक्रम में संस्कृत का जो स्थान होना चाहिए, वह नहीं है। इस सम्बन्ध में यहां तीन मतों को बतलाया जा रहा है-

'प्रथम वर्ग' उन विद्वानों का है जो संस्कृत की शिक्षा को अनावश्यक समझते हैं। उनके विचार में संस्कृत पढ़ाना छात्रों का समय नष्ट करना है। इन व्यक्तियों के विचार ईर्ष्या से प्रेरित मालूम पड़ते हैं। वे स्वयं संस्कृत भाषा एवं साहित्य का रसास्वादन नहीं जानते हैं। अत: उसके विषय में उन्हें कुछ ज्ञात नहीं रहता। वे कभी-कभी यह तर्क देते हैं कि संस्कृत केवल ब्राह्मणों की भाषा है। ऐसे व्यक्ति सम्भवत: विश्वामित्र, जाबालि, सूत्र, जनक आदि के नाम से परिचित नहीं होते। इस वर्ग के विद्वानों के इस प्रकार के विचार पूर्वाग्रह, द्वेष आदि कुप्रभावों से प्रेरित हैं। ऐसे वे ही विद्वान हैं जो पाश्चात्य संस्कृति व अंग्रेज़ी के परमभक्त हैं।

'द्वितीय वर्ग' में संस्कृत के स्थान के विषय में उन विद्वानों का नाम है जो संस्कृत को अनावश्यक तो नहीं समझते, परन्तु वे आधुनिक विषयों को अधिक महत्त्व देते हुए संस्कृत के अध्ययन के प्रति तटस्थ या उदासीन भाव रखते हैं। वे संस्कृत को एक वैकल्पिक विषय के रूप में पाठ्यक्रमों में रखना चाहते हैं, किन्तु उनके प्रचार व प्रसार के लिए कुछ भी न करने का परामर्श देते हैं। वे कहते हैं कि जिनकी रुचि हो वे पढ़ें, जो न पढ़ना चाहें, उन्हें संस्कृत क्यों पढ़ाई जाए।

'तृतीय वर्ग' उन विद्वानों का है जो संस्कृत को अनिवार्य रूप से पढ़ाने का समर्थन करते हैं। संस्कृत केवल प्राचीन भाषा ही नहीं है, यह आधुनिक युग की भाषा भी है। कई शालाओं में तो यह शिक्षा का माध्यम भी है। वाराणसी तथा दरभंगा एवं राजस्थान में संस्कृत विश्वविद्यालय हैं। अन्य राज्यों में भी संस्कृत का उच्च अध्ययन होता है। राज्य सरकारें अपने-अपने राज्य में संस्कृत विश्वविद्यालय का प्रचार कर रही हैं। आज भी इस भाषा में पत्रिकाएं निकलती हैं। इस दृष्टि से यह अतीत की भाषा बताकर टाली नहीं जा सकती।

संस्कृत के अध्ययन के विषय में परामर्श देने के लिए भारत सरकार ने डॉ० सुनीति कुमार चटर्जी की अध्यक्षता में संस्कृत आयोग की स्थापना की है, जिसने अपना प्रतिवेदन सरकार को प्रस्तुत कर दिया है। इस आयोग ने स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि संस्कृत को महत्त्व देते हुए इस भाषा को माध्यमिक विद्यालयों के पाठ्यक्रमों में अनिवार्य स्थान मिलना चाहिए। इस दृष्टि से सरकार को त्रिभाषा सूत्र में परिवर्तन करना पड़ेगा और उसमे संस्कृत के अध्ययन को अनिवार्य करना होगा। माध्यमिक पाठ्यक्रम में संस्कृत आयोग ने मातृभाषा, अंग्रेज़ी व राष्ट्रभाषा हिन्दी या अन्य भारतीय भाषा हिन्दी भाषी क्षेत्रों के लिए भी संस्कृत को अनिवार्य करने की सलाह दी है।

संस्कृत आयोग ने अपनी रिपोर्ट में (जो अक्तूबर 1957 में प्रस्तुत की) संस्कृत सम्बन्धी निम्न तथ्यों की ओर संकेत किया है-

1. विद्यालयों तथा संस्कृत पाठशालाओं में संस्कृत शिक्षा सम्बन्धी उपलब्ध सुविधाओं का सर्वेक्षण करना तथा संस्कृत के अध्ययन एवं शोध को समुन्नत करने का सुझाव देना।
2. परम्परागत संस्कृत पठन-पाठन की छानबीन करना तथा इस बात पर अपने विचार प्रकट करना कि वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में उसके कौन-कौन से अंगों को सम्मिलित करना उपयोगी सिद्ध हो सकेगा।

संस्कृत आयोग की रिपोर्ट का सार (Summarisation of Sanskrit Commission)–इस रिपोर्ट में संस्कृत तथा स्वतन्त्र भारत की आकांक्षाओं से सम्बन्धित निम्नलिखित तथ्यों का विवेचन है–

1. राष्ट्रीय चेतना की जागृति तथा संस्कृत।
2. भारतीय इतिहास तथा संस्कृत के अध्ययन के क्षेत्र में संस्कृत का महत्त्व।
3. मानवीय शास्त्रों के अध्ययन में संस्कृत का बौद्धिक मूल्य।
4. मानसिक तथा चरित्र निर्माण के मार्ग में संस्कृत के विशाल भंडार का महत्त्व।
5. राष्ट्रीय एकता बनाए रखने में संस्कृत का योगदान।
6. पूर्व तथा पश्चिम के राष्ट्रों को एकता के सूत्र में बांधने के लिए संस्कृत की संघ शक्ति।
7. भारत की समस्त भाषाओं के परिपोषण तथा समुन्नयन की दिशा में संस्कृत की भूमिका।
8. भारत की सामान्य शिक्षा व्यवस्था में संस्कृत का उपयुक्त स्थान।
9. संस्कृत के लिए विशेष व्यवहार तथा व्यवस्था की आवश्यकता।

इसके अतिरिक्त संस्कृत आयोग ने अपना सुझाव देते हुए कहा है कि माध्यमिक विद्यालयों के पाठ्यक्रम में संस्कृत को ऐसा सुरक्षित स्थान प्राप्त होना चाहिए जिसके बल पर सभी बालक संस्कृत ले सकें। इसके लिए केन्द्रीय सरकार द्वारा उद्घोषित त्रिभाषा सूत्र में संशोधन किया जाना चाहिए और संस्कृत शिक्षा हेतु पर्याप्त आर्थिक सहायता दी जानी चाहिए।

विभिन्न शिक्षा आयोगों के सुझाव
[Suggestions of Various Education Commissions]

सैकण्डरी शिक्षा आयोग के सुझाव (Suggestion of Secondary Education Commission)–

1. **मिडल** शिक्षा स्तर पर प्रत्येक विद्यार्थी को कम-से-कम दो भाषाएं पढ़ाई जानी चाहिएं। अंग्रेज़ी और हिन्दी जूनियर बेसिक स्तर पर आरम्भ की जानी चाहिएं परन्तु एक ही वर्ष में दो भाषाएं आरम्भ नहीं करनी चाहिए।

2. हाई या हायर सैकण्डरी स्तर पर कम-से-कम दो भाषाओं का शिक्षण होना चाहिए। इनमें एक तो मातृभाषा या प्रादेशिक भाषा होगी और दूसरी भाषा निम्नलिखित भाषाओं में से एक होनी चाहिए–
   (1) हिन्दी (उन क्षेत्रों के लिए यहां हिन्दी मातृभाषा या प्रादेशिक भाषा नहीं है।)
   (2) प्रारम्भिक अंग्रेज़ी (उन विद्यार्थियों के लिए जिन्होंने आरम्भ में अंग्रेज़ी की शिक्षा प्राप्त नहीं की।)
   (3) उच्च स्तरीय अंग्रेज़ी (उन विद्यार्थियों के लिए जिन्होंने आरम्भिक अंग्रेज़ी शिक्षा प्राप्त कर ली है।)
   (4) एक आधुनिक भारतीय भाषा (हिंदी के अतिरिक्त)
   (5) एक आधुनिक विदेशी भाषा (अंग्रेज़ी के अतिरिक्त)
   (6) एक शास्त्रीय भाषा।

केन्द्रीय शिक्षा परामर्श बोर्ड (The Central Advisory Board of Education)–केन्द्रीय शिक्षा परामर्श बोर्ड ने सैकण्डरी आयोग के उपरोक्त सुझावों को स्वीकार नहीं किया क्योंकि इसमें दो भाषाओं की शिक्षा पर ज़ोर दिया गया है। संभवतया उसमें परामर्श बोर्ड ने भारत की भाषा समस्या का समाधान नहीं देखा होगा। इसलिए उसने एक नया त्रि-भाषा-सत्र निर्मित किया जिसमें तीन भाषाओं के शिक्षण की व्यवस्था की गई है। इसे 'त्रि-भाषा सत्र' कहा जाता है। इस सूत्र के अनुसार सैकण्डरी स्कूल के विद्यार्थियों को निम्नलिखित भाषाएं पढ़नी होंगी–

1. मातृभाषा या प्रादेशिक भाषा या मातृभाषा तथा प्रादेशिक भाषा का मिश्रित कोर्स या मातृभाषा या एक शास्त्रीय भाषा का मिश्रित कोर्स।
2. अंग्रेज़ी या आधुनिक यूरोपियन भाषा।
3. हिंदी (उन क्षेत्रों के लिए जिनकी मातृभाषा या प्रादेशिक भाषा हिंदी नहीं है।) या आधुनिक भारतीय भाषा (उन क्षेत्रों के लिए जिनकी मातृभाषा या प्रादेशिक भाषा हिंदी है।)

कोठारी शिक्षा आयोग के सुझाव (Views of Kothari Education Commission)–कोठारी शिक्षा आयोग में त्रि-भाषा सूत्र को ज्यों का त्यों स्वीकार नहीं किया। उसने उसका संशोधन करके निम्नलिखित रूप प्रस्तावित किया है–

1. मातृभाषा या प्रादेशिक भाषा।
2. केन्द्र की सरकारी भाषा या केन्द्र की संयुक्त सरकारी भाषा (अंग्रेज़ी) जब तक उसका प्रचलन है।

3. एक आधुनिक भारतीय भाषा या विदेशी भाषा जो 1 और 2 के अंतर्गत न
हो और जिसका शिक्षा माध्यम के रूप में प्रयोग न किया गया हो।

संस्कृत का अन्य भाषाओं से सम्बन्ध
[Relationship of Sanskrit with other Languages]

भारतवर्ष की अधिकतर भाषाओं की जननी संस्कृत है। हिन्दी, मराठी, पंजा
गुजराती, बंगला, असमी, उड़िया आदि भाषाएं तो संस्कृत से निकली ही हैं, तमिल
संस्कृत से अत्यधिक प्रभावित भाषा है। इस प्रकार आर्य एवं द्रविड़ परिवार की
भाषाएं संस्कृत से प्रभावित हैं। इस सन्दर्भ में संस्कृत आयोग लिखता है–

"आधुनिक आर्य भाषाएं संस्कृत से ही उत्पन्न हुई हैं और जहां तक द्रविड़ भाष
का सम्बन्ध है, वे भी अपने साहित्यिक प्रयोग के आदिकाल से ही संस्कृत के
पालित-पोषित हैं।"

भारत के राष्ट्रपति **डॉ० शंकर दयाल शर्मा** ने दिल्ली संस्कृत अकादमी द्व
आयोजित त्रिदिवसीय अखिल भारतीय सम्मेलन का राष्ट्रपति भवन के अशोक हाल में
10 जून, 1993 को एक भव्य समारोह में उद्घाटन करते हुए कहा कि संस्कृत भारत
भाषाओं की जननी है और दक्षिण भारत की भाषाओं में भी संस्कृत के बहुत से
मिलते हैं। संस्कृत भाषा की वह केन्द्रीय भाषा है जिसके माध्यम से देश की अन्य भाषा
को आसानी से समझा जा सकता है। उन्होंने कहा कि इस भाषा का ज्ञान इसलिए
आवश्यक है क्योंकि इसमें हमारी संस्कृति के तत्त्व सुरक्षित हैं, जो व्यक्ति में संस्
डालते हैं।

डॉ० शर्मा ने कहा कि इस भाषा के पास ऐसी शक्ति है कि इसमें जहां एक ओ
कविताएं और नाटक लिखे गए हैं वहां दूसरी ओर चिकित्सा शास्त्र तथा राजनीति शास्त्र
औषधि विज्ञान, ज्योतिष शास्त्र, आध्यात्मिक चिन्तन, नीति शास्त्र, व्याकरण शास्त्र
विषयों का वर्णन हुआ है। इसलिए **सर विलियम जोंस** ने इस भाषा को यूनानी भाषा
अधिक परिपूर्ण, लैटिन से अधिक समृद्ध तथा इन दोनों से उत्कृष्ट और सुसंस्कृत भ
कहते हुए इसकी संरचना पर आश्चर्य व्यक्त किया है। सर विलियम जोंस की
अभिव्यक्ति संस्कृत भाषा की क्षमता की ओर संकेत करती है। **पश्चिमी विद्वान ब्लूमफील्ड**
संस्कृत भाषा को व्यावहारिक स्वरूप देने वाली पुस्तक पाणिनी की 'अष्टाध्यायी' को
मानव मस्तिष्क की सर्वोत्तम देन कहते हैं तो उनका भी स्पष्ट संकेत इस भाषा की जी
शक्ति और सक्षमता की ओर ही है।

संस्कृत के जितने वाक्यांश, मुहावरे लाक्षणिक प्रयोग और कहावतें अथवा लोकोक्ति
हैं, इन सब का अन्य भाषाओं पर प्रभाव पड़ा है। इसमें विशेषता यह है कि विभिन्न प्रदे
में प्रयुक्त संस्कृत के वाक्यांशों और लाक्षणिक प्रयोगों की अपनी-अपनी विलक्षणता

है। इन विलक्षण प्रयोगों के पीछे तटस्थ जनता की सांस्कृतिक चेतना का मधुर स्पंदन सुनाई
देता है। तेलगू में 'वलीमुखनारिकेलन्यायमु' –कहा जाता है। बात स्पष्ट है कि यह तेलगू
भाषा की निजी कहावत का संस्कृतिकरण है। तेलगू में 'कोतिकि कोब्बरि कार्य दोरकि
नट्लु' कहते हैं। यह मुहावरा तेलगू में बहुत ही प्रचलित है। जब किसी अयोग्य व्यक्ति को
कोई ऊंचा पद मिलता है तो इस मुहावरे का प्रयोग किया जाता है। इसी का सीधा
संस्कृतिकरण वलीमुखना रिकेलन्याय कहने में है और एक उदाहरण लीजिए–तक्रकौंडिन्य
न्यायमुँ। इस तेलगू कहावत का मतलब है कि ब्राह्मणों को दही खाने के लिए दिया जा
सकता है परन्तु कौंडिन्य को छाछ देना पर्याप्त है। शास्त्र में विशेष विधि से सामान्य विधि
बाधित होती है तब इसका उल्लेख करते हैं।

वैसे तो संस्कृत के साहित्यिक तथा धार्मिक साहित्य के द्वारा अनुप्राणित भारतीय
संस्कृति मूलत: एकाकार होने पर भी अन्य भाषाओं की कहावतों और मुहावरों में भारत
का जनमानस ऐसा छिपा हुआ है कि इसकी अवहेलना कदापि नहीं की जा सकती। इन
कहावतों और मुहावरों की अपनी निराली छटा है, अपनी मिठास अलग है। कहने की
आवश्यकता नहीं कि इन कहावतों के पीछे शताब्दियों की परम्पराओं की झलक तथा
मानजीवन की सुखपूर्ण एवं दुखपूर्ण कहानियों की प्रतिध्वनियां साक्षात् होती हैं। कभी
इनके द्वारा ऐतिहासिक घटनाओं पर प्रकाश पड़ता है तो कभी सामाजिक प्रथाओं पर। कभी
इनमें इन प्रथाओं पर व्यंग का ताना बना रहता है तो कभी मर्म भेद अनुपम कहानियों का
संकेत। कभी ये कृषि प्रधान हैं तो कभी विधि प्रधान।

राम-रावण युद्ध की कथाएं, भगवान् कृष्ण के जीवन-चरित, उषा-अनिरुद्ध की
प्रणय-कथाएं मूल रूप में संस्कृत में लिखी गईं, किन्तु ये ही कथाएं भारत की सभी
भाषाओं में लिखी गईं। इन संस्कृत कथाओं ने भारत की समस्त भाषाओं के साहित्य की
श्रीवृद्धि की है। कम्ब रामायण तमिल भाषा का अनूठा ग्रंथ है। अर्जुन-चित्रांगदा प्रेम-
कथा, कृष्ण-गोपी, प्रेम-सम्बन्धी, आख्यान, बंगला साहित्य के अमूल्य रत्न हैं। असमी,
उड़िया, गुजराती सभी भाषाओं में यही कथाएं प्रकारान्तर से मिलती हैं। यदि इन्हें निकाल
दिया जाए तो किसी भी भाषा के साहित्य में कुछ गर्व करने योग्य नहीं रह जाता।

भाषा की दृष्टि से भी भारतवर्ष की सभी भाषाओं में संस्कृत के अधिकांश शब्द
तत्सम या तद्भव रूप में विद्यमान हैं। हिन्दी भाषा तो संस्कृत भाषा की ही शब्दावली मूल
रूप से ग्रहण करती है। जब हिन्दी को संविधान में राजभाषा स्वीकृत किया गया तो वहां
पर स्पष्ट रूप से कहा गया कि आवश्यकतानुसार हिन्दी भाषा की शब्दावली संस्कृत से ही
ली जाएगी। संविधान में यह बात स्पष्ट रूप से लिखी गई है। संस्कृत भाषा में इतनी
सामर्थ्य है कि वह आधुनिकतम ज्ञान-विज्ञान के योग्य शब्द प्रदान कर दे। शब्दों की रचना
की दृष्टि से संस्कृत अक्षय भण्डार है। बापू ने तो संस्कृत को गंगा नदी की तरह माना था

जिससे हमारे देश की अन्य भाषाएं जीवन और शक्ति प्रदान करती है। बापू ने 23 1940 के हरिजन में लिखा था कि प्रत्येक राष्ट्रवादी को संस्कृत भाषा पढ़नी चाहिए इससे प्रान्तीय भाषाओं का अध्ययन सरल हो जाता है। यह वह भाषा है जिसमें पूर्वजों ने सोचा और लिखा।

सर मोनियर विलियम्स ने ठीक ही लिखा है कि यद्यपि भारतवर्ष में 500 से अधि बोलियां हैं, किन्तु इस देश में पवित्र भाषा और पवित्र साहित्य एक ही है जिसे विभि जाति बोली, स्थिति और विश्वास से युक्त सभी हिन्दू स्वीकारते और पूजते हैं। वह भ संस्कृत है और वह साहित्य संस्कृत है–जो वेद या ज्ञान का एकमात्र कोष है, हिन्दू धर्म विज्ञान, दर्शन और विधि, पुराण-विज्ञान का एकमात्र वाहक है, एकमात्र वह दर्पण जिसमें हिन्दुओं के सभी विश्वास, मत, परम्पराएं और व्यवहार सही रूप में प्रतिबिम्बित और (यदि चौथा रूपक देने की अनुमति हो तो) एकमात्र ऐसी खान है जहां से आवश्यक सामग्री लेकर लोकभाषाओं को आवश्यक धार्मिक और वैज्ञानिक आदर्शों को अभिव्यक्त करने के लिए सक्षम बनाया जा सकता है।

भारतीय भाषाएं ही नहीं, संसार की अन्य भाषाओं पर भी संस्कृत का प्रभाव है विश्व की प्राचीनतम भाषा होने के कारण एवं प्राचीन काल में भारत जैसे वैभवशाली ए प्रगतिशील राष्ट्र की भाषा होने के कारण इसने उस समय की अन्य भाषाओं को प्रभावि किया है। लैटिन और ग्रीक पर संस्कृत भाषा के प्रभाव के विषय में विद्वानों ने एकम होकर अपनी सम्मति दे दी है। अतः उसके विषय में अधिक कहना उचित नहीं। संस्कृ का 'पितृ' शब्द ही पश्चिम में 'पेटर' और 'फादर' हो गया। 'भ्रातृ' शब्द ब्रदर के रूप दिखाई पड़ता है। अंग्रेज़ी के नोज, टूथ, स्टेशन, माइण्ड, कप, हैण्ड शब्दों का सम्ब संस्कृत के नस्, दन्त, स्था, मन, कुप्य, हस्त इन शब्दों से कहीं न कहीं अवश्य है। संस्कृ के अनेक शब्दों से ही लैटिन एवं ग्रीक के अनेक मूल शब्द बने हैं। संस्कृत के मत्त, दिव गो, जनन शब्दों को अंग्रेज़ी के मैड, डिवाइन, काउ, जैनेसिस शब्दों के साथ रखक पढ़िये। यही नहीं, रूसी भाषा के भी अनेक शब्द संस्कृत शब्दों के समान हैं। रूसी भा के अगोन्, द्वेर, नेवा, एस्त, कुदा, तुदा, जिनानिये, विवेस्ता, प्लावानिये शब्दों को संस्कृ भाषा के अग्नि द्वार, नभ, अस्ति, कुत्र, तत्र, ज्ञान, नवोढ़ा, प्लावन शब्दों के साथ रखक पढ़िए। समानता स्पष्ट परिलक्षित होती है।

संस्कृत भाषा के पौष, माघ, फाल्गुनी चीनी भाषा में पौहुआ (Pohoua), माकु (Macua) तथा फाल्कुन (Pholkuna) के रूप में व्यवहृत हैं। प्राचीनकाल में चीनी लो का विश्वास था कि यह पृथ्वी कच्छप के ऊपर टिकी हुई है। स्वास्तिक चिन्ह को गौ बुद्ध के हृदय के रूप में स्वीकार किया गया था। महाभारत और मनुस्मृति में भी चीन का उल्लेख मिलता है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में चीनी रेशम के विभिन्न प्रकारों का व

है। चीन में भारत की भांति होली का उत्सव मनाया जाता था। चीनी भाषा में प्राप्त बौद्ध साहित्य में राम-वनवास, सीता-हरण, जटायु कथा, सुग्रीव मैत्री आदि का उल्लेख मिलता है। चीन और भारत के मार्ग में स्थित खोतान में संस्कृत भाषा का विशाल विश्वविद्यालय था। ह्वेनसांग ने यह शर्त रखी थी कि जो भी चीनी विद्वान् भारत की यात्रा पर जाए वह खोतान में कम से कम छः मास रहकर संस्कृत का अध्ययन अवश्य कर ले। चीन में गणेश पूजा भी प्रचलित थी। मंगोल की एक समय में राजधानी अनबलोतर थी, जहां पर गरुड़ को ग्राम देवता के रूप में पूजा जाता था। मंगोल भाषा में दिनों के नाम इस प्रकार हैं– आदिया (आदित्यवार), सोमिया (सोमवार), बुधिया (बुधवार), सुकर (शुक्रवार), संचीव (शनिवार)। इन नामों में संस्कृत का प्रभाव स्पष्ट है।

भारत से बाहर अनेक नगरों व देशों के नाम संस्कृत भाषा से प्रभावित हैं। ईरान और आयरलैंड के मूल में आर्य शब्द हैं। काठमाण्डू काष्ठमंडप का, पेशावर पुरुषपुर का, कन्धार गान्धार का, सिंगापुर सिंहपुर का, सुमात्रा स्वर्णदीप का, जावा यवद्वीप का, साइबेरिया शिविर देश का और लाओस लावदेश का तद्भव रूप है।

एशिया के दक्षिण-पूर्व में संस्कृत भाषा का आज भी प्रभाव बना हुआ है। इण्डोनेशिया में सामान्य जन यद्यपि मुसलमान हैं फिर भी रामायण एवं महाभारत की कथाओं से वे प्रेरणा लेते हैं एवं इसमें वर्णित पात्रों को अपना देव समझते हैं। रामायण एवं महाभारत की कथाएं इण्डोनेशिया में राष्ट्रीय कथाओं के रूप में स्वीकृत हैं। 'इण्डोनेशिया' शब्द का अर्थ है भारत-द्वीप (इण्डस + नेसस) है। वहां के भूतपूर्व राष्ट्रपति सुकर्ण का नाम कर्ण के आधार पर था। इण्डोनेशिया के द्वीपों के नाम भी संस्कृतमय हैं। सुमात्रा नाम तो शुद्ध संस्कृत शब्द ही है। वहां एक स्थान है; जोगजकर्त्ता, जो योग्यकर्त्ता का तद्भव रूप है। जोगजकर्त्ता के सुल्तान की उपाधि है–'भुवनो-सेनापति'। यह शब्द शुद्ध संस्कृत शब्द है। वहां का एक प्रसिद्ध बन्दरगाह है, 'प्रोबोलिंगो', 'पूर्व' और 'कलिंग' शब्दों से बना है। जावा के मुसलमान भी मूर्तियों पर फूल चढ़ाते हैं और मन्दिरों में आरती भी उतारते हैं। बाली द्वीप का नाम भी सम्भवतः बाली के आधार पर बना है। बाली में आज भी हिन्दुओं का बहुमत है और वे शिव की उपासना करते हैं। वे पुजारी को पादण्ड कहते हैं और पादण्ड संस्कृत भाषा का विधिवत् अध्ययन करते हैं। उनके मंत्र, प्रार्थनाएं संस्कृत भाषा में ही हैं। बाली की भाषा में संस्कृत के अनेक शब्द मिले हुए हैं। जावा और बाली में छाया-नाटकों का बड़ा प्रचलन है और इनमें राम-रावण युद्ध, अर्जुन-परिणय, द्रौपदी-विवाह आदि दृश्य दिखाते जाते हैं। जावा में सर्वोच्च पर्वत शिखर का नाम सुमेरु है।

कम्बोडिया शब्द कम्बोज का तद्भव रूप है। यहां पर भी संस्कृत भाषा व साहित्य का प्रभाव है। कम्बोडिया में अधिकांश लोग बौद्ध हैं और वहां पर पौराणिक कथाएं उनकी भाषाओं के साहित्य का गौरव बढ़ाती हैं। इन स्थानों के नाम भी संस्कृत शब्दों के तद्भव

रूप हैं। लाओस की जनता भी संस्कृत भाषा के प्रभाव से बची नहीं है। फारसी और संस्कृत भाषा के घनिष्ठ सम्बन्धों को विद्वानों द्वारा स्थापित किया जा चुका है। पश्तो पर भी संस्कृत का अत्यधिक प्रभाव है। पश्तो अफगानिस्तान की भाषा है। वहां की एवं सरकार ने पश्तो और संस्कृत के सम्बन्ध का अनुभव करके संस्कृत के अध्ययन विशेष बल दिया है। काबुल विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में एक समय संस्कृत महत्वपूर्ण विषय था। संस्कृत के अध्ययन पर बल देने का वहां प्रयोजन यह था कि संस्कृत के व्याकरण के आधार पर पश्तो को वैज्ञानिक भाषा बनाया जाए।

अभ्यास के प्रश्न

1. संस्कृत का विशाल साहित्य भण्डार है। सिद्ध कीजिए।

   अथवा

   संस्कृत भाषा की प्राचीनता स्पष्ट करें।
2. भाषा की दृष्टि से संस्कृत का महत्त्व बताइए।
3. संस्कृत भाषा एवं साहित्य के महत्त्व पर प्रकाश डालें।
4. भारतीय भाषाओं की समृद्धि का श्रेय संस्कृत भाषा को प्राप्त है। इस संबंध में तर्क सहित अपने विचार प्रकट करें।
5. 'संस्कृत भाषा सभी भाषाओं की जननी है।' आप इस तथ्य से कहां तक सहमत हैं।
6. संस्कृत भाषा का क्या महत्त्व है? इसे विद्यालीय पाठ्यक्रम में क्या स्थान दिया जाना चाहिए और क्यों?
7. संस्कृत की समृद्धि के लिए गठित किए गए विभिन्न आयागों की चर्चा करें। आपको इनमें से किस आयोग के तर्क विश्वसनीय जान पड़ते हैं?
8. पाठ्यक्रम में संस्कृत का क्या स्थान है? संस्कृत की वर्तमान स्थिति पर चर्चा करें।

❑❑❑

अध्याय 3

संस्कृत भाषा के लक्ष्य और उद्देश्य एवं सिद्धान्त और सूत्र

भूमिका (Introduction)–किसी भी कार्य को सुव्यवस्थित रूप से करने के लिए आवश्यक है कि पहले उसका कोई उद्देश्य निर्धारित किया जाए। उद्देश्य क्रिया को निश्चित दिशा तथा व्यवस्था प्रदान करता है। क्रिया के लिए रुचि एवं उत्साह भी उसमें निहित उद्देश्यों के कारण होता है। बिना उद्देश्य के क्रिया करना अंधेरे में टटोलने के समान है। ऐसा करने से समय और शक्ति के व्यर्थ नाश के अतिरिक्त कुछ भी हाथ नहीं आता। निरुद्देश्य क्रिया निरर्थक होती है जबकि उद्देश्य क्रिया सार्थक होती है। कोई भी काम करने के पश्चात् मनुष्य जानना चाहता है कि उस काम में वह कहां तक सफल रहा और कहां तक असफल। इस बात का ज्ञान उसे तभी हो सकता है जब उस द्वारा किए गए काम का कोई उद्देश्य निर्धारित हो। उसी उद्देश्य की कसौटी पर ही उसकी सफलता या असफलता को आंका जा सकता है। आधुनिक शिक्षा प्रणाली में शायद ही कोई ऐसा विद्यालय हो जहां संस्कृत की व्यवस्था न हो। प्रत्येक विद्यालय में किसी-न-किसी रूप में संस्कृत शिक्षण दिया जाता है। अब प्रश्न उठता है कि संस्कृत शिक्षण का उद्देश्य क्या है? संस्कृत शिक्षण क्यों दिया जाए? जब तक संस्कृत शिक्षण के उद्देश्य की स्पष्ट व्याख्या नहीं होती और अध्यापकगण इसका निश्चित ज्ञान प्राप्त करके इसे हृदयंगम नहीं कर लेते तब तक संस्कृत शिक्षण को प्रभावशाली नहीं बनाया जा सकता।

संस्कृत शिक्षण के उद्देश्य
[Objectives of Teaching Sanskrit]

उद्देश्य से तात्पर्य (Meaning of Objectives)–किसी कार्य को प्रारम्भ करने का सुनियोजित एवं अन्तिम लक्ष्य उद्देश्य है, जिसकी पूर्ति के लिए व्यक्ति कार्य करने के लिए प्रेरित होता है। बड़े लक्ष्य की पूर्ति के लिए पहले छोटे-छोटे कार्य करने पड़ते हैं। छोटे कार्यों का भी एक निश्चित उद्देश्य होता है, जो बड़े उद्देश्य को पूरा करने में सहयोग देता

है। अभिप्राय यह है कि किसी कार्य विशेष की समाप्ति पर जिन लक्ष्यों की सफलता की आशा करते हैं, वे सब उस कार्य के 'उद्देश्य' होते हैं।

भाषा शिक्षण में उद्देश्यों का महत्त्व (Importance of the objectives of teaching Language)–उद्देश्यहीन कार्य अरोचक, क्रमहीन होता है तथा लक्ष्य की प्राप्ति शीघ्रतम नहीं होती। उद्देश्यों को ध्यान में रखकर शिक्षण करने से भाषा के सभी क्षेत्रों का समान रूप से विकास होगा। उद्देश्यों का ध्यान नहीं हो तो संस्कृत भाषा की कक्षा में हिन्दी, सामाजिक ज्ञान जैसे विषयों में अध्यापक भ्रमित हो जाता है। सफल अध्यापन के लिए उद्देश्यों का जानना आवश्यक है। मूल्यांकन भी उद्देश्य आधारित होता है। अध्यापक जब भी अध्यापन करे, तब ही उसको इसकी जानकारी होनी चाहिए कि आज शिक्षण में किस उद्देश्य की पूर्ति की गई है। उद्देश्यों का ध्यान न रखकर यदि भाषा शिक्षण कराया जाता है, तो बालक ज्ञान, अर्थग्रहण, अभिव्यक्ति में समान रूप से अपेक्षित योग्यता प्राप्त करने में सफल नहीं हो सकते। अत: शिक्षण में उद्देश्यों का बहुत महत्त्व है।

उद्देश्यनिष्ठ शिक्षण पर आधारित शिक्षण ही उत्तम शिक्षण होता है। इससे छात्रों की अधिगम-प्रक्रिया प्रभावित होती है और उनसे उनमें अपेक्षित व्यवहार परिवर्तन भी होता है। उद्देश्यहीन शिक्षण गन्तव्य स्थल को दृष्टिगत न रखकर निरर्थक यात्रा के समान है।

संस्कृत भाषा शिक्षण के सामान्य उद्देश्य (Common objectives of teaching Sanskrit Language)–विचारों के आदान तथा प्रदान का साधन भाषा है। भाषा के माध्यम से हम दूसरों के विचारों को ग्रहण करते हैं और अपने विचारों को दूसरों तक पहुंचाते हैं। भाषा में सम्प्रेषण होता है, आदान भी होता है और प्रदान भी। सम्प्रेषण में आदान-प्रदान में सुगमता, शीघ्रता तथा सुन्दरता तब ही होती है, जबकि भाषा या कौशलों का विकास हो। मनुष्य बोलकर तथा लिखकर अपने विचारों को सम्प्रेषण करता है और सुनकर तथा पढ़कर दूसरों के विचारों को ग्रहण करता है। भाषायी कौशल चार हैं–सुनना, बोलना, पढ़ना तथा लिखना। संस्कृत भाषा शिक्षण का यही उद्देश्य है कि बालक को संस्कृत सुनने, बोलने तथा लिखने में कुशल बना दिया जाए। इन्हीं कौशलों के आधार पर संस्कृत भाषा शिक्षण के उद्देश्यों का निर्धारण किया गया है, वे इस प्रकार हैं–

1. ज्ञानात्मक उद्देश्य–(1) भाषा तत्त्वों का ज्ञान प्राप्त करना, (2) विषय-वस्तु का ज्ञान प्राप्त करना, (3) रचना कार्य के विभिन्न रूपों का ज्ञान प्राप्त करना।

2. अर्थग्रहण उद्देश्य–(1) सुनकर अर्थग्रहण करना, (2) पढ़कर अर्थग्रहण करना।

3. अभिव्यक्ति उद्देश्य–(1) बोलकर अभिव्यक्ति करना, (2) लिखकर अभिव्यक्ति करना।

4. वाचन कौशल उद्देश्य–(1) गति, यति, लयपूर्वक कविता पाठ का कौशल, (2) भावानुसार गतिपूर्वक वाचन करने का कौशल।

5. अनुवाद करने का उद्देश्य–सरल व छोटे वाक्यों में अनुवाद करना।

6. अभिरुचि का उद्देश्य–कविता, सूक्ति, संकलन व कंठस्थ याद करना।

7. अभिवृत्ति का उद्देश्य–संस्कृत भाषा, रचनाकार के प्रति आदरभाव रखना।

संस्कृत भाषा शिक्षण के उद्देश्य

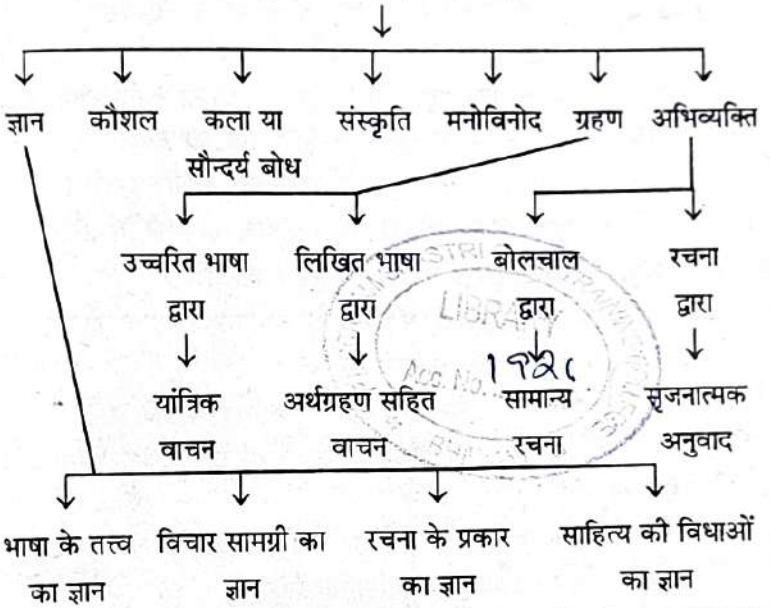

प्राथमिक स्तर पर संस्कृत शिक्षण के उद्देश्य–प्राथमिक स्तर यानि कक्षा-5 तक, यद्यपि संस्कृत का अध्ययन नहीं कराया जाता, परन्तु कहीं-कहीं पर परिचयात्मक रूप में संस्कृत पढ़ाई जाती है। संस्कृत विद्यालयों में तीसरी कक्षा से संस्कृत पढ़ाई जाती है। संस्कृत के अध्ययन के लिए भी मातृभाषा या हिन्दी का सामान्य ज्ञान आवश्यक है, यदि इस स्तर पर संस्कृत का अध्ययन होता है, तो उसके लिए निम्नलिखित उद्देश्य होने चाहिए–

1. बालकों को संस्कृत की लिपि के वर्णों एवं शब्दों का परिचय।
2. साधारण संस्कृत व्याकरण के शब्द रूपों का परिचय व स्मरण करना, जैसे–राम, रमा, हरि, बालक आदि।
3. संस्कृत धातुओं में केवल लट्, लृट् व लङ् लकार के रूप समझाना।
4. सरल सूक्तियां एवं सरल संस्कृत श्लोक समझाना।
5. सरल शब्दावली वाली कहानियां पढ़ाना, नैतिकता से सम्बन्धित कहानियों को मातृभाषा में बताना।

LIBRARY Acc No. 1921

उच्च प्राथमिक स्तर पर संस्कृत शिक्षण के उद्देश्य–उच्च प्राथमिक स्तर पर बालक बाल्यावस्था की अन्तिम सीढ़ी पर होता है तथा किशोरावस्था में पदार्पण की तैयारी करता है। जहां पर मानसिक दृष्टि से उनके मन में बड़ी उथल-पुथल रहती है। इसी अवस्था में उन्हें उपयुक्त आदर्शों के सीखने व सिखाने की आवश्यकता होती है। संस्कृत साहित्य इस प्रकार के आदर्शों से पूर्ण है। संस्कृत के माध्यम से उन्हें उत्तम प्रेरणा दी जा सकती है। इस स्तर पर संस्कृत शिक्षण के उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

1. छात्रों में संस्कृत भाषा पढ़ने की क्षमता का विकास करना ताकि वे सरल संस्कृत भाषा में लिखे गद्य खण्डों को शुद्ध-शुद्ध पढ़ सकें।
2. संस्कृत के श्लोकों का सस्वर शुद्ध उच्चारण कर सकें।
3. छात्रों को महत्त्वपूर्ण सूक्तियां व श्लोक कंठस्थ करने की प्रेरणा देना।
4. संस्कृत के कठिन स्थलों को पढ़कर शुद्ध लिख सकें।
5. कंठस्थ श्लोकों को शुद्ध लिख सकें तथा उनके साधराण अर्थ को समझ सकें।
6. संस्कृत में श्रुतिलेख का अभ्यास कर सकें।
7. मातृभाषा के सरल वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद कर सकें।
8. संस्कृत के सरल गद्य खण्डों को पढ़कर उनमें से ज्ञानात्मक प्रश्नों के उत्तर निकाल सकें।
9. संस्कृत के गद्य व पद्यों का मातृभाषा में अनुवाद कर सकें।
10. वार्तालाप में सरल शब्दों का प्रयोग कर सकें।
11. संस्कृत के कुछ महान् कवियों का परिचय प्राप्त कर अपने ज्ञान में वृद्धि कर सकें।

संस्कृत शिक्षा के उद्देश्यों के आधार पर सामग्री व अपेक्षित व्यवहारगत परिवर्तन

उद्देश्य व उनका स्पष्टीकरण–

स्पष्टीकरण	अपेक्षित व्यवहारगत परिवर्तन
(क) भाषा तत्त्वों का ज्ञान प्राप्त करना–	
1. भाषा के तत्त्व–उच्चारण, वर्तनी, शब्द-भेद, शब्द-रचना (उपसर्ग, प्रत्यय, सन्धि, समास आदि) शब्द-भण्डार (प्रयोग, लोकोक्ति, मुहावरे आदि) वाक्य-रचना, वाक्य भेद आदि का ज्ञान प्राप्त करना।	1. छात्र पहचान कर सकेगा। 2. छात्र प्रत्यास्मरण कर सकेगा। 3. अशुद्ध रूप व त्रुटियों को पकड़ सकेगा। 4. उदाहरण दे सकेगा। 5. अन्तर कर सकेगा।

2. लिखकर अभिव्यक्त करने की योग्यता प्राप्त करना–पत्र, प्रार्थना पत्र, निबन्ध, जीवन-चरित्र, कहानी लेखन, संवाद लेखन, शब्द-प्रयोग, शब्द-युग्म, मुहावरे व सूक्तियों का प्रयोग।	कर सकेगा, 7. शिष्टाचार का पालन करते हुए, हावभाव के साथ क्रमबद्ध बोल सकेगा। 1. सुपाठ्य, प्रसंगानुसार, गतिपूर्वक लिख सकेगा। 2. शुद्ध वर्तनी लिख सकेगा। 3. विराम चिह्नों का उचित प्रयोग कर सकेगा। 4. परिच्छेद बना सकेगा। 5. व्याकरण में शुद्ध भाषा का प्रयोग कर सकेगा। 6. सूक्तियों, मुहावरों, शब्दों का वाक्य प्रयोग कर सकेगा। 7. लिखित अभिव्यक्ति के विभिन्न रचना रूपों का प्रयोग कर सकेगा। 8. छोटे-छोटे संस्कृत वाक्यों में अपने विचार व्यक्त कर सकेगा। 9. किसी व्यक्ति, वस्तु, चित्र, दृश्य पर संस्कृत में छोटे-छोटे वाक्य लिख सकेगा।
3. अनुवाद करने की योग्यता का विकास–मूल-भाषा, अनूदित भाषा, मूल भाषा में अनूदित।	1. हिन्दी के छोटे-छोटे वाक्यों को संस्कृत में लिख सकेगा। 2. संस्कृत के लेख, कहानी को हिन्दी में लिख सकेगा।
(घ) भाषा साहित्य में रुचि (अभिरुचि) का विकास।	1. पाठ्य-पुस्तक के अतिरिक्त अन्य संस्कृत पुस्तकें पढ़ने में रुचि लेगा। 2. कविताएं कंठस्थ करेगा। 3. सूक्ति, संकलन/संस्कृत कहानी संकलन करेगा। 4. प्रार्थना, बालसभा में संस्कृत कार्यक्रम प्रस्तुत करेगा।
(ङ) सत् प्रवृत्तियों का विकास।	1. संस्कृत व सौन्दर्य में आस्था जाग्रत होगी। 2. संवेदनशील, सहृदयी, देशप्रेमी, सहयोगी, दीन-दुखियों के प्रति करुणापूर्ण हो सकेगा।

संस्कृत पढ़ाते समय अध्यापक को संस्कृत बोलने, पढ़ने, समझने, लिखने आदि की कई प्रकार की शिक्षा देनी होती है। विभिन्न शिक्षा स्तरों-प्राइमरी, मिडल हाई/हायर सैकण्डरी आदि पर संस्कृत शिक्षण के उद्देश्यों में भी परिवर्तन हो जाता है। इसी प्रकार साहित्य की विभिन्न विधाएं-कविता, कहानी, नाटक, निबन्ध आदि पढ़ाते समय भी कुछ विशिष्ट उद्देश्यों को सामने रखा जाता है। यहां हम साहित्य की विभिन्न विधाओं के विशिष्ट उद्देश्यों की चर्चा नहीं करेंगे अपितु संस्कृत शिक्षण के उन सामान्य उद्देश्यों की चर्चा करेंगे जो समूचे भाषा-विभाग को उचित दिशा प्रदान करते हैं।

हिमाचल शिक्षा विभाग ने संस्कृत शिक्षण के उद्देश्य के प्रसंग में शिक्षाक्रम में निम्न प्रकार उल्लेख किया है–

उद्देश्य–

1. ज्ञानात्मक–

(1) भाषा तत्त्वों का ज्ञान–(कक्षानुसार, पाठ्यक्रम में निर्दिष्ट भाषिक सामग्री का ज्ञान)।

(2) विषय-वस्तु का ज्ञान–(पठित सामग्री में आई विषय-वस्तु की पहचान एवं उसका प्रत्यास्मरण)।

2. अर्थग्रहण–

(1) सुनकर–सरल गद्य व पद्य सुनकर अर्थ ग्रहण करने की योग्यता प्राप्त करना।

(2) पढ़कर–(अ) संस्कृत ध्वनियों का शुद्ध उच्चारण करने की योग्यता प्राप्त करना।

(ब) अर्थबोध के साथ सरल संस्कृत वाक्यों को पढ़ने की योग्यता प्राप्त करना।

3. अभिव्यक्ति–

(1) मौखिक–(अ) संस्कृत के सरल वाक्य बोलना।

(ब) संस्कृत के सरल लघूत्तर प्रश्नों का उत्तर देना।

(स) संस्कृत के सरल प्रश्नों के उत्तर लिखना।

(द) हिन्दी के सरल वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद करना।

4. कौशल–

(1) वाक्य–(क) संस्कृत ध्वनियों का शुद्ध एवं स्पष्ट उच्चारण करना।

(ख) सरल संस्कृत वाक्यों का शुद्ध उच्चारण के साथ वाचन करना।

(ग) सरल श्लोकों को कंठाग्र करके सस्वर वाचन करना।

(2) शुद्ध वर्तनी कौशल–सरल संस्कृत शब्दों, वाक्यों एवं श्लोकों को शुद्धता और स्पष्टता से लिखना।

5. अभिरुचिपरक उद्देश्य–

(1) संस्कृत साहित्य के रूप में भारतीय सांस्कृतिक धरोहर की महत्ता को समझ कर उसकी श्लाघा करने की योग्यता प्राप्त करना।

(2) राष्ट्रीय, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं नैतिक मूल्यों का विकास करना।

6. सृजनात्मकता–चित्रों एवं प्रश्नों की सहायता से संस्कृत में वाक्य, अनुच्छेद एवं लघु-कथा लिखने की क्षमता का विकास करना।

संस्कृत शिक्षण के सिद्धान्त

शिक्षण से सम्बन्धित एक कहावत बड़ी प्रसिद्ध है, "आप घोड़ो को पानी के पास तो ले जा सकते हो, परन्तु उसको पानी पीने के लिए बाध्य नहीं कर सकते।" यही बात बालक पर भी लागू होती है। आप बालक को कक्षा में प्रवेश करने के लिए तो विवश कर सकते हो, लेकिन उसे पढ़ने के लिए बाध्य नहीं कर सकते। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि बालक को पढ़ने में जब रुचि न हो तो उसको पढ़ने के लिए मजबूर किया जाता है। ऐसा करना उचित नहीं है। इसलिए पहले बालक में पढ़ने की इच्छा को जागृत करना आवश्यक है और फिर शिक्षक के लिए बालक को पढ़ाना सहज और सुगम हो जाता है।

शिक्षण प्रक्रिया में सभी बातों पर अगर ध्यान न भी दिया जाए तो कोई बात नहीं, लेकिन दो पहलु बहुत महत्त्वपूर्ण हैं-शिक्षक और विद्यार्थी। यदि शिक्षक कुशल है तो विद्यार्थी नहीं पढ़ना चाहते, अगर विद्यार्थी पढ़ना चाहते हैं तो शिक्षक कुशल नहीं है। ऐसी दोनों ही स्थितियों में शिक्षण तो होता है, परन्तु सफल शिक्षण नहीं होता। इस बात से स्पष्ट होता है कि सफल शिक्षण के लिए शिक्षक का कुशल होना ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि छात्रों का पढ़ने में रुचि लेना भी आवश्यक है। इसलिए छात्रों का ध्यान पाठ में केन्द्रित करने के लिए और पाठ को सीखने की उत्सुकता जागृत करने के लिए कुछ महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों का अनुसरण करना आवश्यक होता है। ये सभी सिद्धान्त सभी विषयों की शिक्षा देने के लिए कारगर हैं-

1. स्वाभाविक विधि-बालक भाषा अनुकरण के द्वारा सीखता है। भाषा सीखने का एक क्रम है जो पूर्ण रूप से स्वाभाविक है-सुनना, बोलना, पढ़ना और लिखना। पहले बालक सुनता है और फिर सुनी हुई बातों को बोलता है अर्थात् भाषा के सीखने में पहले मौखिक रूप का प्रयोग होता है और बाद में लिखित रूप का प्रयोग होता है। यह एक मनोवैज्ञानिक एवं स्वाभाविक तथ्य है कि बालक को पहले पढ़ना और बाद में लिखना सिखाना चाहिए। बालक को बोलना इकाई रूप में ही होता है क्योंकि भाषा की सबसे छोटी इकाई वाक्य ही होता है। इसलिए सीखने की दृष्टि से पहले वाक्य को बोलना, फिर वाक्यों से शब्दों पर आना और शब्दों से अक्षरों पर आना एक स्वाभाविक क्रम है। इस प्रकार भाषा सिखाने की दृष्टि से बोलना और समझना पहले और पढ़ने और लिखने का अभ्यास बाद में होना चाहिए।

2. **क्रियाशीलता और अभ्यास**-शुद्ध भाषा के ज्ञान के लिए क्रियाशीलता और अभ्यास का होना बहुत आवश्यक है। जैसे कि एक कहावत भी है और वह भाषा के शुद्ध ज्ञान की प्राप्ति के लिए पूरी उतरती है-

"करत-करत अभ्यास के जड़मति हो सुजान।
रसरी आवत जात ते सिल पर परत निसान।"

भाषा एक कला है जो कि निरन्तर अभ्यास करने पर ही सीखी जा सकती है। बालक स्वभाव से क्रियाशील होता है। इसलिए प्रारम्भ में भाषा सीखने के लिए अध्ययन की अपेक्षा क्रियाशीलता और अभ्यास की अधिक आवश्यकता होती है। इस प्रकार भाषा शिक्षण की दृष्टि से बालकों को अधिक-से-अधिक क्रियाशीलता और अभ्यास के लिए अवसर प्रदान करना चाहिए।

3. बोलचाल का सिद्धान्त-शिक्षक को भाषा सिखाने की दृष्टि से बालकों को अधिक-से-अधिक बोलचाल के अवसर प्रदान करने चाहिए। पुराने भाषा शिक्षण के ढंग में बोलचाल के लिए छात्रों को अवसर नहीं दिया जाता था। जब भाषा सम्बन्धी कुछ भी पढ़ना होता था तो शिक्षक स्वयं बोलता चला जाता था और शिक्षार्थी सुनते रहते थे। आजकल के शिक्षा शास्त्री बालकों को भाषा सिखाने की दृष्टि से बालकों को बोलचाल के लिए अधिक-से-अधिक अवसर देने के पक्षधर हैं। उनका मत है कि पढ़ने और लिखने की अपेक्षा बोलने से ही भाषा शीघ्र सीखी जा सकती है। बोलचाल का सिद्धान्त व्यावहारिक वातावरण में बालक को शुद्ध भाषा के प्रयोग की दृष्टि से सक्षम बनाता है। बोलकर अभ्यास द्वारा सीखी हुई भाषा अधिक स्थायी होती है। बोलने से बालकों को सही ढंग से उच्चारण, लय, मात्रा और स्वर आदि का ज्ञान हो जाता है। छात्रों को भाव एवं विचारों का ज्ञान हो जाता है। इससे छात्रों की भावों एवं विचारों को अभिव्यक्त करने की योग्यता और क्षमता का विकास होता है।

4. अनुपात और क्रम का सिद्धान्त-भाषा शिक्षण के अन्तर्गत दूसरों के विचारों को हम दो प्रकार से ग्रहण कर सकते हैं-सुनने से और पढ़ने से। इस प्रकार हम अपने विचारों को दो प्रकार से ही प्रकट कर सकते हैं-बोलकर और पढ़कर। संक्षिप्त में यूं कहा जा सकता है भाषा सीखने में चार बातों का होना आवश्यक है-

(1) दूसरों से सुनकर समझने की क्षमता का होना।
(2) स्वयं विचारों को अभिव्यक्त करने की योग्यता प्राप्त करना।
(3) पुस्तक या पढ़ने की अन्य सामग्री को पढ़कर समझने की योग्यता का होना।
(4) अपने विचारों को लिखकर अभिव्यक्त करने की योग्यता प्राप्त करना।

भाषा सीखने की दृष्टि से यही क्रम होना चाहिए। लेकिन भाषा को ग्रहण करने और उसकी अभिव्यक्ति की दृष्टि से सही अनुपात का होना भी आवश्यक है। बालक के लिए भाषा से सम्बन्धित भावों और विचारों का ग्रहण करना ही पर्याप्त नहीं होता, अपितु ग्रहण किए हुए विचारों एवं भावों की अभिव्यक्ति का होना भी आवश्यक है। ग्रहण किए हुए विचारों एवं भावों की अभिव्यक्ति में सन्तुलन का होना बहुत आवश्यक है। अगर बालक केवल मात्र ग्रहण करने पर ही बल देता है और अभिव्यक्ति की दृष्टि से समर्थ नहीं होता तो हम कहेंगे कि भाषा का विकास अनुपात और सन्तुलन की दृष्टि से सही नहीं है।

5. रुचि उत्पन्न करने का सिद्धान्त–बालक को हम कोई भी बात किसी भी क्षेत्र से सम्बन्धित तब तक नहीं सिखा सकते, जब तक उसकी सीखने में रुचि न हो। यही बात भाषा सिखाने पर भी लागू होती है। भाषा शिक्षक के लिए यह आवश्यक है कि पहले वह बालकों में भाषा सीखने के प्रति रुचि जागृत करे और फिर उनको भाषा सिखाने का प्रयास करे। बालकों में भाषा के प्रति रुचि उत्पन्न करने के लिए उसे बालकों की रुचि से सम्बन्धित प्रश्न पूछने चाहिए। ऐसे प्रश्न उनके पूर्वज्ञान से सम्बन्धित होने चाहिए। प्रश्न उनके वातावरण, घटनाओं और प्रत्यक्ष अनुभवों पर आधारित हों। बालकों में रुचि जागृत करने हेतु शिक्षक अपने वार्तालाप को रुचिकर बनाए। इन सब बातों के अतिरिक्त भाषा के प्रति रुचि उत्पन्न करने हेतु उपयुक्त श्रव्य-दृश्य सामग्री का भी प्रयोग करे। मौखिक कार्य से लिखित कार्य की ओर अग्रसर करना भी रुचि जागृत करने का एक अच्छा सूत्र है।

6. व्यक्तिगत विभिन्नता का सिद्धान्त–सूझ-बूझ एवं समझने की दृष्टि से सभी बालक कक्षा में समान नहीं होते। बालकों की भाषा सीखने की दृष्टि से कुछ अलग-अलग कठिनाइयां हो सकती हैं। किसी बालक के साथ उच्चारण की कठिनाई, किसी के साथ अक्षर ज्ञान की कठिनाई, किसी की बोलने में कठिनाई, किसी की लेखन में, किसी की समझने में और किसी की व्याकरण की दृष्टि से अधिक अशुद्धियां होती हैं। ऐसी स्थिति में शिक्षक का यह कर्त्तव्य बनता है कि वह ऐसे बालकों की ओर व्यक्तिगत रूप से ध्यान दे और उनकी अशुद्धियों को दूर करने का प्रयास करे। शिक्षक को बालकों का अधिक-से-अधिक निपुणता प्राप्त करने हेतु मार्ग दर्शन करना चाहिए। उसे समय-समय बालक की गलतियों की जांच करते रहना चाहिए और उनके व्यक्तिगत भाषा सम्बन्धी दोषों को दूर करना चाहिए।

7. बहुमुखी प्रयास का सिद्धान्त–बहुमुखी प्रयास से अभिप्राय है कि शिक्षक को भाषा का कोई भी अंग या पूर्ण पाठ पढ़ाने हेतु कई प्रकार से प्रयास करने चाहिए। उदाहरणतय: शिक्षक को एक कठिन वाक्य को स्पष्ट करने हेतु निम्न प्रयासों को करने की आवश्यकता होती है–

(1) वाक्य का शुद्ध वाचन करना और कठिन शब्द का शुद्ध उच्चारण करवाने का प्रयास करना।

(2) कठिन शब्दों के अर्थ चाकबोर्ड पर लिखकर उनका वाक्य में प्रयोग करना।

(3) वाक्य के भाव एवं विचार को स्पष्ट करना।

(4) व्याकरण से सम्बन्धित बात को स्पष्ट करना।

8. अनुकरण का सिद्धान्त–बालक परिवार में अपने से बड़ों का अनुकरण करके और विद्यालय में शिक्षक का अनुकरण करके सीखते हैं। भाषा सीखने में विशेष रूप से इसी प्रवृत्ति का सहारा लिया जाता है। इसलिए शिक्षक को सदैव इस बात का ध्यान रखना

चाहिए कि वह जो कुछ भी उच्चारण करता है, संवाद बोलता है और लिखता है; उन सब का उच्चारण छात्रों द्वारा किया जाएगा। इसलिए शिक्षक को भाषा शिक्षण प्रक्रिया के अन्तर्गत भाषा के सभी अंगों का शुद्ध एवं आदर्श रूप बालकों के समक्ष प्रस्तुत करना चाहिए।

○ संस्कृत शिक्षण सूत्र

किसी भी कार्य को पूर्ण करने का सभी व्यक्तियों का अलग-अलग तरीका होता है। किसी व्यक्ति को कार्य करने में पूरी सफलता मिल जाती है और किसी को अधूरी सफलता और किसी को सफलता प्राप्त ही नहीं होती। इसका कोई विशेष कारण नहीं होता, अपितु उनके कार्य करने के तरीके में अन्तर होता है। यही बात शिक्षण प्रक्रिया पर भी लागू होती है क्योंकि बहुत से शिक्षकों को यह ज्ञान नहीं होता कि शिक्षण प्रक्रिया का आरम्भ कहां से किया जाए, मध्य तक कैसे पहुंचा जाए और अंत कैसे किया जाए ताकि बालकों को पाठ अधिक-से-अधिक समझ में आ जाए। उदाहरणतय: पाठ से सम्बन्धित सरल बातें पहले पढ़ाई जाएं। ऐसा करने से शिक्षक के लिए पाठ का पढ़ाना सहज और सरल हो जाएगा। इस प्रकार के ढंगों को अपनाना ही शिक्षण सूत्र कहा जाता है।

शिक्षण सिद्धान्त और शिक्षण सूत्र में भेद–बहुत से शिक्षक सिद्धान्त और सूत्र में भेद न कर पाने के कारण पाठ की जटिलता को और बढ़ा देते हैं क्योंकि वे सूत्र को सिद्धान्त और सिद्धान्त को सूत्र समझने की भूल कर बैठते हैं। सिद्धान्त और सूत्र में अन्तर होता है। सिद्धान्त में परिवर्तन करना सम्भव होता है, लेकिन सूत्र में परिवर्तन करने के लिए कोई स्थान नहीं होता। दूसरा अन्तर यह है कि सिद्धान्त परिस्थितियों से प्रभावित होते हैं। उदाहरण के रूप में सरल से कठिन की ओर का सूत्र बदल नहीं सकता, चाहे परिस्थितियां कैसी भी हों, लेकिन व्यक्तिगत विभिन्नता के सिद्धान्त में परिवर्तन आ जाता है। उदाहरणतय: किसी कक्षा में होनहार अर्थात् मेधावी बालक अधिक हो सकते हैं और किसी कक्षा में कमजोर बालक अधिक हो सकते हैं। शिक्षक दोनों ही कक्षाओं में सरल से कठिन के सूत्र का पालन करेगा।

हरबर्ट स्पैंसर के अनुसार, "हमारे पाठ का आरम्भ मूर्त रूप से होना चाहिए और उसकी समाप्ति अमूर्त से होनी चाहिए।" इसी सन्दर्भ में पेस्टालॉजी का कथन है, "बालकों की शिक्षा सदा स्थूल वस्तुओं तथा तथ्यों से होनी चाहिए, शब्दों, परिभाषाओं तथा नियमों से नहीं।"

शिक्षण करते समय शिक्षक को निम्न सूत्रों का अनुकरण अवश्य करना चाहिए–

1. ज्ञात से अज्ञात की ओर (From known to Unknown)–कक्षा में बैठे हुए बच्चे को पहले से कुछ ज्ञान प्राप्त होता है। उसे नया ज्ञान देते समय उसके पुराने ज्ञान को

आधार बनाना चाहिए। अत: अध्यापक को पहले विद्यार्थियों का पूर्व ज्ञान जान लेना चाहिए और उसी पर अपने नए शिक्षण को आधारित करना चाहिए। उदाहरणस्वरूप यदि विद्यार्थियों को 'तत्सम शब्द' पढ़ाने हैं तो उन्हें पहले ज्ञात शब्दों–'हाथ', 'कान', 'दूध', 'आप' आदि को आधार बनाना चाहिए।

2. सरल से कठिन की ओर (From Simple to Complex)–बच्चे सरल बातों को जल्दी ग्रहण कर लेते हैं। इसलिए उन्हें पहले सरल तथ्यों की जानकारी देनी चाहिए। फिर सरलता से कठिन की ओर बढ़ना चाहिए। सरल शब्दों का ज्ञान पहले देना चाहिए और कठिन शब्दों का ज्ञान बाद में देना चाहिए। पाठ्य-पुस्तक में भी सरल पाठ पहले आने चाहिएं और वे क्रमश: कठिन होते जाने चाहिएं।

3. विशेष से सामान्य की ओर (From Particular to General)–बच्चों को पहले विशिष्ट उदाहरण देने चाहिएं और फिर उनकी सहायता से सामान्य सिद्धान्तों की ओर बढ़ना चाहिए। विशेष पदार्थ, तत्त्व, क्रिया आदि को प्रस्तुत करके विद्यार्थियों को सामान्य निष्कर्ष की ओर ले जाना चाहिए। भाषा शिक्षण में व्याकरण पढ़ाते समय इस सूत्र का सफलतापूर्वक प्रयोग किया जा सकता ह। जैसे–दीर्घ संधि का नियम बताने से पहले विद्यार्थियों के सामने कुछ विशेष उदाहरण रखे जा सकते हैं और उन उदाहरणों की सहायता से इस सामान्य नियम तक पहुंचा जा सकता है कि अ, आ, इ, ई, उ, ऊ तथा ऋ के सामने यदि सवर्ण स्वर हो तो दोनों के स्थान पर दीर्घ स्वर हो जाता हैं।

4. मूर्त से अमूर्त की ओर (From Concrete and Absolute)–बच्चा सीधा अमूर्त विचारों तक नहीं पहुंच सकता। उसके लिए वे तथ्य सहज-ग्राह्य होते हैं जिन्हें वह देख सकता है, स्पर्श कर सकता है अर्थात् इन्द्रियों द्वारा अनुभव कर सकता है। अत: उसे मूर्त से अमूर्त की ओर ले जाना चाहिए अर्थात् अमूर्त विचारों का ज्ञान मूर्त विचारों पर आधारित होना चाहिए। उदाहरणस्वरूप–'संज्ञा किसे कहते हैं?' बच्चों के लिए यह अमूर्त ज्ञान है। परन्तु वह वस्तुओं, व्यक्तियों और स्थानों के नाम को जानता है। यह उसका मूर्त ज्ञान है। इसी मूर्त ज्ञान के आधार पर उसे अमूर्त ज्ञान अर्थात् 'संज्ञा' की परिभाषा से परिचित करवाया जा सकता है।

5. पूर्ण से अंश की ओर (From Complete to Part)–बच्चे का ध्यान पहले पूर्णता की ओर आकृष्ट होता है, बाद में अंशों की ओर। इस शिक्षण सूत्र के अनुसार विद्यार्थियों को पहले सम्पूर्ण वस्तु का ज्ञान कराया जाना चाहिए। उसके बाद अंशों या भागों का ज्ञान कराना चाहिए। प्राय: पहली कक्षा में अध्यापक बच्चों को अक्षर ज्ञान देने का प्रयत्न करते हैं। यह गलत है। बच्चे के लिए सरल वाक्य समझना आसान है क्योंकि वह वाक्य बोलता है और वाक्यों में सोचता है। अत: इस शिक्षण सूत्र के अनुसार उसे बच्चे को वाक्य से अक्षर की ओर ले जाना चाहिए। उसे पहले बच्चों का वाक्य को, फिर शब्दों को और उसके पश्चात् अक्षरों का बोध कराना चाहिए।

6. आगमन से निगमन की ओर (From Inductive to Deductive)–आगमन विधि में उदाहरणों के माध्यम से नियमों या सिद्धान्तों तक पहुंचा जाता है। निगमन विधि में विषय पहले प्रस्तुत किए जाते हैं और उदाहरणों के द्वारा उन विषयों को सिद्ध किया जाता है। बच्चों के लिए उदाहरणों को समझना आसान होता है। इसलिए उनके सामने पहले उदाहरण रखने चाहिए और उन उदाहरणों के माध्यम से उसके द्वारा सामान्य नियमों तक पहुंचना चाहिए। उदाहरण स्वरूप यदि विद्यार्थियों को 'संज्ञा' पढ़ानी है तो 'संज्ञा' के कुछ उदाहरणों को श्यामपट्ट पर लिख देना चाहिए। वे अच्छी तरह जानते हैं कि प्रत्येक पदार्थ, व्यक्ति, स्थान, भाव का कोई-न-कोई नाम होता है। इन उदाहरणों की सहायता से वे 'संज्ञा' की परिभाषा निकाल सकते हैं। यह 'आगमन विधि' है। इसके पश्चात् 'निगमन विधि' द्वारा संज्ञा की परिभाषा को कुछ उदाहरणों से सिद्ध करना चाहिए। इस प्रकार व्याकरण पढ़ाते समय 'आगमन' से 'निगमन' की ओर बढ़ना अधिक स्वाभाविक एवं उपयोगी है।

मनोवैज्ञानिक भाषायी तथा शिक्षण सम्बन्धी सिद्धान्त

1. अभ्यास और क्रियात्मकता का सिद्धान्त–भाषा एक कला है, जिसको सीखने के लिए निरन्तर अभ्यास की आवश्यकता है। शब्द का उच्चारण बार-बार करने पर बालक उसका शुद्ध उचारण सीख लेता है। इसी प्रकार किसी शब्द का वर्तनी दोष दूर करने के लिए उसे बार-बार लिखना पड़ता है तब ही बालक शुद्ध लिखना सीखता है। ज्ञान के साथ-साथ उसके प्रयोग की भी आवश्यकता है। बिना प्रयोग के भाषा में कुशलता नहीं आ सकती है। अच्छे ग्रंथों को पढ़ने से और बार-बार लिखने से भाषा का ज्ञान होता है। अत: संस्कृत शिक्षण में अभ्यास व क्रियात्मकता के सिद्धान्त का प्रयोग करना चाहिए। भाषा सीखने के लिए अनुकरण और बार-बार पुनरावृत्ति का एकमात्र उपाय है। संस्कृत शिक्षक को निम्न प्रकार अभ्यास कराना चाहिए–

(1) मातृभाषा से इतर वे ध्वनियां जो संस्कृत में प्राय: प्रयुक्त होती हैं, उनका शुद्ध उच्चारण बार-बार कराया जाए। जैसे–विसर्ग, हलन्त, अनुस्वार, व्यंजन, गुच्छ आदि। छात्रों को इन ध्वनियों को सुनने व बोलने का पर्याप्त अवसर दिया जाए।

(2) संस्कृत गद्यांश का गति, प्रवाह, शुद्धता व स्पष्टतापूर्वक सस्वर वाचन व मौन पाठ का अभ्यास कराना चाहिए।

(3) संस्कृत श्लोकों, सूक्तियों को कंठस्थ कराया जाए।

(4) संस्कृत पदों, मुहावरों का वाक्य प्रयोग और लिखित व मौखिक अभिव्यक्ति का पर्याप्त अवसर दिया जाए।

2. सक्रियता का सिद्धान्त–संस्कृत भाषा शिक्षण के लिए शिक्षण सिद्धान्तों का हुत महत्त्व है। उनमें एक सिद्धान्त है–सक्रियता का सिद्धान्त। सक्रियता अर्थात् कक्षा में

शिक्षण के समय शिक्षक व छात्र दोनों ही सक्रिय रहें। सक्रियता से शिक्षण में रोचकता बनी रहती है और अधिगम स्थायी होता है। केवल सैद्धान्तिक ज्ञान देने से कक्षा शिक्षण नीरस हो जाता है। कक्षा में व्याख्यान देकर शिक्षण कराना, केवल अध्यापक सक्रिय रहे तथा छात्र निष्क्रिय श्रोता मात्र रहे तो वह शिक्षण अमनोवैज्ञानिक है। इससे छात्रों में शीघ्र ही सीखने में बाधा आ जाती है। क्रियाशीलता के सिद्धान्त पर ही अनेक शिक्षण विधियां प्रचलित हैं। प्रयोजन विधि, खेल विधि, मांटेसरी, किंडर गार्टन आदि विधियां क्रियाशीलता के सिद्धान्त पर आधारित हैं।

कक्षा 6 में संस्कृत शिक्षक इस सिद्धान्त का प्रयोग निम्न प्रकार कर सकता है–

(1) कक्षा में आदर्शवाचन, अनुकरण वाचन, मौन-पठन, प्रश्नोत्तर, शब्दार्थ लेखन आदि के समय शिक्षक व छात्र क्रियाशील रहते हैं। अत: कक्षा में अध्यापक को चाहिए कि इनका निरन्तर प्रयोग करता रहे।

(2) संस्कृत श्लोकों को गतिपूर्वक वाचन का अवसर दिया जाए।

(3) व्याकरण शिक्षण में आगमन-निगमन प्रविधि का प्रयोग करे और रचना में संग्रन्थन विधि का। तालिका देकर अनेक वाक्य रचना करने को कहा जाए। व्याकरण का नियम बतलाकर उसकी पुष्टि हेतु पाठ्य-पुस्तक में से उदाहरणों का चयन कराया जाए।

(4) पाठ का हिन्दी में अनुवाद करते समय छात्र वाचन करें तथा हिन्दी में अर्थ करने का प्रयास करें।

(5) बालगीत का आदर्श वाचन तथा छात्रों द्वारा समवेत वाचन तथा अनुकरण वाचन आरोह-अवरोह पूर्वक कराया जाए।

(6) बाल सभा, साहित्यिक प्रतियोगिताएं, उत्सव आदि में भाषण, वाद-विवाद, कविता-पाठ, निबन्ध लेखन, एकांकी अभिनय, सूक्तियों का विशदीकरण आदि कार्यक्रम रखने में क्रियाशीलता बनी रहती है।

(7) कक्षा में उद्योतन सामग्री का अधिकाधिक प्रयोग किया जाए।

अध्यापक इनका अनुसरण करके स्वयं व छात्रों को सक्रिय रख सकता है।

3. संस्कृत शिक्षण में रुचि का सिद्धान्त–भाषा एक कौशल का विषय है। इसका शिक्षण बहुत से मनोवैज्ञानिक और व्यावहारिक सिद्धान्तों पर आधारित है। मातृभाषा का ज्ञान तो बालक अपने घर, परिवार, पड़ोस तथा मित्र मण्डली में स्वत: ही प्राप्त कर लेता है। भाषा सम्पर्क से, बार-बार सुनते रहने से स्वत: सीखी जा सकती है। परन्तु दैनिक जीवन में उपयुक्त दैनिक व्यवहार में प्रयुक्त न होने वाली भाषा का अध्ययन तो प्रयास से प्रेरणा से किया जाता है। जिनमें तृतीय भाषा के अध्ययन में विशेष प्रयत्न करना पड़ता है

क्योंकि तृतीय भाषा के अध्ययन की उपेक्षित मनोवृत्ति बनी हुई है। बालक प्रथम (मातृभाषा), द्वितीय भाषा को विशेष महत्त्व देता है। संस्कृत के साथ यही दुर्भाग्य है। इसे–

(1) तृतीय भाषा के रूप में पढ़ाया जाता है।

(2) यह दैनिक जीवन में, दैनिक व्यवहार के प्रयोग में नहीं आती है।

(3) यह व्याकरण प्रधान भाषा है–इसके अध्ययन में व्याख्या नियमों का ज्ञान परमावश्यक है।

(4) संस्कृत शिक्षण में अध्यापक अभी तक भी परम्परागत विधि अपनाते हैं–इससे संस्कृत शिक्षण में बालक की रुचि नहीं होती।

उपर्युक्त कारणों को ध्यान में रखते हुए यह आवश्यक है कि संस्कृत शिक्षण में सर्वप्रथम बालक की रुचि जागृत की जाए।

संस्कृत शिक्षण में यदि बालक की रुचि होगी तो वह संस्कृत सीख सकेगा अन्यथा कितना ही प्रयास किया जाए संस्कृत भाषा का ज्ञान बालक नहीं कर सकेगा। अत: यह आवश्यक है कि संस्कृत पाठ को यथासम्भव रोचक और आकर्षक बनाया जाए।

छात्रों में रुचि जागृत करने के लिए निम्न प्रकार उपाय किए जा सकते हैं–

(1) प्रारम्भिक पाठों में मौखिक वार्तालाप व चित्र प्रदर्शन से संस्कृत में रुचि पैदा हो सकती है।

(2) अध्यापक अभिनय प्रधान बाल गीत प्रस्तुत करे और हावभाव के साथ बाल गीत कंठस्थ करावे।

(3) कक्षा में संस्कृत के छोटे-छोटे सरल वाक्यों का प्रयोग वार्तालाप में, आदेश-निर्देश में किया जाए।

(4) संस्कृत पाठों को बच्चे के जीवन व उनके भौतिक सामाजिक वायुमण्डल के साथ समवाय करना चाहिए।

(5) पूर्व ज्ञान से सम्बन्ध स्थापित कर प्रस्तावना के बाद विषय-वस्तु प्रस्तुति।

(6) शिक्षण विधि में नवीनता तथा भिन्नता होनी चाहिए। अध्यापक कक्षा शिक्षण में अनेक युक्तियों, उपागमों का प्रयोग करे। व्याकरण का ज्ञान पाठ-शिक्षण के समय साथ-साथ कराया जाए। उसमें रटने की प्रक्रिया को छोड़कर प्रयोग विश्लेषण पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

(7) ज्ञानेन्द्रियों को प्रभावित करने वाली रोचक सहायक सामग्री का उपयोग पाठ-शिक्षण के समय करता रहे।

(8) सुभाषित, समवेत-पाठ, वाद-विवाद, उच्चारण प्रतियोगिता, कविता पाठ प्रतियोगिता आदि में सह-शैक्षणित क्रियाओं में उपयोग भी करना चाहिए।

(9) अध्यापक का बालक के प्रति मृदु प्रोत्साहन, प्रशंसा आदि से संस्कृत भाषा शिक्षण में बालक की रुचि पैदा हो सकती है।

4. उत्प्रेरण का सिद्धान्त–कार्य की सिद्धि के लिए केवल मात्र रुचि ही सब कुछ नहीं है। जब तक सक्रियता नहीं हो तब तक केवल रुचि से कार्य सम्पन्न नहीं हो सकता। कार्य सम्पन्न करने का प्रयास उत्प्रेरणा है। बालक की संस्कृत में रुचि तो है परन्तु वह सीखने का प्रयास नहीं करता है तो वह संस्कृत भाषा का अधिगम नहीं कर सकता। अतः अध्यापक को चाहिए कि वह रुचि के साथ-साथ कार्य करने के लिए उत्प्रेरित भी करे। रुचि के बाद की क्रिया उत्प्रेरणा है। हैरिस के अनुसार उत्प्रेरणा की समस्या शिक्षा मनोविज्ञान तथा कक्षा शिक्षा दोनों के केन्द्रीय महत्त्व की है। जो छात्र अपने शब्दों का जो व्यवहारों से यह प्रकट करते हैं कि वह उद्देश्य प्राप्ति के लिए प्रयास कर रहे हैं वे उत्प्रेरित हैं। जो प्रयास नहीं कर रहे हैं, उन्हें उत्प्रेरित करने की आवश्यकता है।

संस्कृत शिक्षक को चाहिए कि विद्यार्थी को उत्प्रेरित करने के लिए उसके स्वाभिमान को महत्त्व दे, उसके व्यक्तित्व का आदर करे तथा छात्र द्वारा किए गए थोड़े से प्रयास की प्रशंसा करते हुए उसका उत्साहवर्द्धन करे। छात्र द्वारा की गई त्रुटियों को सहानुभूति एवं स्नेह के साथ संशोधित करे। छात्रों में संस्कृत पढ़ने की प्रेरणा देने के लिए नये पाठ को पूर्व ज्ञान से सम्बद्ध करे, विषय-वस्तु के प्रस्तुतिकरण में नवीनता लाए। अध्यापक मार्गदर्शन का कार्य करे, छात्र स्वयं प्रयत्न करते हुए ज्ञानार्जन करे, ऐसा प्रयास करना चाहिए।

उत्प्रेरणा के लिए अनेक युक्तियों को काम में लेना चाहिए–

(1) उद्योतन सामग्री के द्वारा अध्यापक कक्षा में रंगीन चित्र, चार्ट प्रस्तुत करे, देखने को कहे, प्रश्न करे, छात्र चित्र के आधार पर उत्तर दे। प्रश्नोत्तर सरल संस्कृत वाक्यों में हो।

(2) तालिका द्वारा वाक्यों की रचना कराना शब्दों को जोड़कर शुद्ध वाक्य रचना, अर्थ कराना।

(3) एक वाक्य प्रस्तुत करके क्रिया पद, कर्त्ता पद आदि को बदल-बदल कर अनेक वाक्यों की रचना कराना, प्रस्तुत संस्कृत को शेष चारों लकारों में परिवर्तित करने को कहना।

(4) दृश्य-श्रव्य सामग्री का प्रयोग।

(5) अपूर्ण वाक्य पूर्ण कराना, अपूर्ण कहानी को पूरी कराना, किसी घटना या चित्र पर वाक्य रचना कराना।

सारांश यह है कि प्रायोगिक संस्कृत तथा व्यावहारिक संस्कृत शिक्षण पर विशेष बल देना चाहिए।

संस्कृत शिक्षण में अधिगम को प्रभावित करने वाले मनोवैज्ञानिक घटक

संस्कृत अधिगम में अभिवृत्ति–संस्कृत शिक्षण के उद्देश्यों में बालक में अभिवृत्ति की भावना का विकास करना–यह उद्देश्य भी निर्धारित है। बालक में अभिवृत्ति का विकास हो जाने पर वह स्वतः ही संस्कृत भाषा का अधिगम अपनी अन्तःप्रेरणा से करने लगेगा। संस्कृत भाषा के प्रति सद्विचार तथा सदाचरण करना उसकी अभिवृत्ति है। संस्कृत भाषा का अध्ययन करने में अपने को गौरवान्वित समझना, संस्कृत भाषा को श्रेष्ठ भाषा मानना, संस्कृत साहित्य व उसके साहित्यकारों का सम्मान करना, संस्कृत कार्यक्रमों में सक्रिय संभागी बनना, जीवन में संस्कृत भाषा का प्रयोग करते हुए आनन्दानुभूति करना उसकी संस्कृत में अभिवृत्ति की परिचायक है। संस्कृत साहित्य में से सद्वृत्तियों का पता लगाकर अपने जीवन को तदनुकूल बनाना सद्वृत्ति है। अध्यापक का कर्त्तव्य है कि बालक में इस प्रकार की अभिवृत्ति का विकास करे। इससे बिना प्रयास के ही बालक संस्कृत अधिगम करने में अग्रणी रहेगा।

इसके लिए अध्यापक को निम्न प्रकार कार्य करना चाहिए–

1. अध्यापक का स्वयं का आचरण, वार्तालाप, रहन-सहन, ऐसा हो कि उसमें संस्कृत के प्रति अभिवृत्ति झलकती हो।
2. अध्यापक संस्कृत भाषा की श्रेष्ठता, विशेषता का यथा अवसर बार-बार कथन करता रहे।
3. अध्यापक संस्कृत सूक्तियों, सुभाषितों का संकलन कर छात्रों को लिखा दे तथा वार्तालाप में उत्सत्रों, पर्वों में उनका प्रयोग अधिकाधिक करे तथा छात्रों को भी प्रयोग के अवसर प्रदान करे।
4. कक्षा में, विद्यालय परिसर में संस्कृत श्लोकों, सूक्तियों को लिखवा दे।
5. विशेष दिवसों, महापुरुषों की जयन्तियां, राष्ट्रीय पर्वों आदि के समय संस्कृत के कार्यक्रम अवश्य रखें। विद्यालय में संस्कृत की विभिन्न प्रतियोगिताएं आयोजित करे।
6. हितोपदेश, पंचतंत्र, सिंहासन बत्तीसी, शुकसप्रति जैसी शिक्षाप्रद कहानियों को पढ़ने के लिए प्रेरित करे।
7. विद्यालय में संस्कृत, एकांकी, संवाद पाठ, कविता पाठ संस्कृत साहित्यकारों की जयन्ती आदि के कार्यक्रम संचालित किए जाएं।
8. पुस्तकालय में संस्कृत के श्रेष्ठ ग्रंथों का क्रय किया जाए।

इस प्रकार हम अनेक कार्यक्रमों द्वारा छात्रों में अभिवृत्ति का विकास कर सकते हैं।

चिन्ता और भय–चिन्ता तथा भय मानव की स्वाभाविक मनोवृत्ति है। ये दोनों (चिंता व भय) ही मानव ही जन्म-जात मूल प्रवृत्तियां हैं। बालक चिन्ता और भय को

सद्मार्ग की ओर प्रवृत्त कर अपना कल्याण कर सकता है और यदि ये मूल प्रवृत्तियां असद् मार्ग की ओर प्रवृत्ति हो जाएं तो उससे बालक का अहित भी हो जाता है।

अत: अध्यापक का यह भी दायित्व है कि वह इन जन्म-जात मूल प्रवृत्तियों का सदुपयोग बालक के हित में करे।

लक्ष्य की ओर आगे बढ़ने से पूर्व सभी दृष्टि से चिन्तन करना और उनका समाधान करते हुए बढ़ना चिंता का सद्मार्गीकरण है। चिंता को छोड़ चिंतन तथा उसके बाद मनन करने की बालक में आदत डालनी चाहिए।

सूत्र का विश्लेषण, नवीन परिभाषा की उदाहरणों द्वारा सत्यता सिद्ध करना संस्कृत शिक्षण की प्रथम सीढ़ी है। किसी भी उदाहरण पर अध्यापक बालक से प्रश्न करे–ऐसा क्यों हुआ? ऐसा क्यों नहीं हुआ? इस श्लोक का क्या आशय है? इस कथन का तात्पर्य क्या है? इस पद का कौन-सा प्रत्यय है, कौन-सा लकार है, इस पद का यही अर्थ क्यों निकला है आदि प्रश्नों द्वारा बालक में चिन्तन शक्ति का विकास करे। बाद में बालक स्वयं इस प्रकार के चिन्तन का अभ्यस्त हो जाएगा। अध्यापक का यह लक्ष्य होना चाहिए। चिन्तन से तर्क शक्ति का विकास हो जाता है और तर्क के बाद अधिगम स्थायी हो जाता है। बालक अधिगम में चिन्तन व तर्क का उपयोग नहीं करे तो वह अधिगम स्थायी ही रहता है।

अशुद्धि संशोधन, रिक्त स्थानों की पूर्ति, वाक्यांशों को मिलाकर सही वाक्य बनाना, बहुचयनात्मक प्रश्नों के द्वारा भी बालक को चिन्तन का अवसर मिलता है।

अध्यापक इस प्रकार अनेक युक्तियों से बालक की चिन्तन शक्ति का विकास कर सकता है।

अधिगम में भय–पुरस्कार का विलोम दण्ड है, और दण्ड से दुखी होना भय है। प्राचीन काल में अधिगम का एक मुख्य घटक 'भय' को भी मानते थे। अध्यापक दण्ड का भय दिखाकर बालक को अधिगम करने की ओर प्रेरित करते थे। आजकल भी बहुत से अध्यापक बालक को दण्ड देने का भय दिखाकर ज्ञानार्जन करने को कहते हैं। परन्तु वस्तुत: यह तरीका अमनोवैज्ञानिक है।

वर्तमान काल में शारीरिक दण्ड देना तो पूर्ण वर्जित है, फिर भी अनेक तरीके से भय का सहारा लेकर बालक को अधिगम की ओर प्रवृत्त करने की पद्धति आज भी चल रही है।

जब बालक को हम पुरस्कार, प्रशंसा, आदर आदि के आकर्षण से अधिगम के लिए प्रवृत्त करते हैं जब इसका विपरीत रूप भर्त्सना, बुराई, अपमानित करना, दण्ड स्वरूप विशेष अभ्यास कार्य देना, सुविधा समाप्त करना, स्कूल में रोकना आदि भी स्वाभाविक है। परन्तु इस प्रकार की प्रक्रिया तब ही अपनानी चाहिए जबकि अन्य सकारात्मक कार्यों से

सफलता नहीं मिले। इससे यह बात तो स्पष्ट हो गई कि अधिगम के लिए 'भय' भी एक घटक अवश्य है। यहां तुलसी की पंक्ति याद आती है–

'भय बिन प्रीति न होत गुँसाई'

शिक्षण में इसका आशय है कि बिना भय के अधिगम की ओर बालक की प्रीति नहीं होगी।

संस्कृत अध्यापक को अधिगम के लिए इस मूल प्रवृत्ति का सदुपयोग निम्न प्रकार करना चाहिए–

1. प्रशंसा करते हुए भर्त्सना करना, निंदा करना, उच्च कुल का बताते हुए बालक को यह अभ्यास कराना कि अपने कुल की प्रतिष्ठा के लिए श्रेष्ठ बालक बनना चाहिए।
2. सहानुभूति दिखाते हुए सुधारात्मक उपाय बताना।
3. कक्षा में बालक की त्रुटियां बताना, कमजोरी प्रदर्शित करना, उपेक्षित व्यवहार करना, अपनी अप्रसन्नता व्यक्त करना।
4. बालक की त्रुटियों को सुधार कर उसे बार-बार लिखने का विशेष अभ्यास कार्य देना।
5. कक्षा में खड़ा कर देना, खेल घंटी में बैठाकर अधिगम करने को कहना या छुट्टी होने पर एक-आध घंटा रोकना।
6. विशेष/अधिक अभ्यास कार्य देना।
7. माता-पिता को/प्रधानाचार्य जी को शिकायत करने का भय दिखाना या अंत में बात काट देना। स्कूल से निकाल देने का भय दिखाना।

इस प्रकार भय की मूल प्रवृत्ति का अधिगम में प्रयोग किया जा सकता है।

शिक्षण पद्धतियों एवं सूत्रों में अन्तर

सामान्य रूप से सिद्धान्तों में ही सूत्रों का होना निहित मानते हैं लेकिन अगर विचार किया जाए तो सिद्धान्त पूरे संस्कृत भाषा शिक्षण को ध्यान में रखकर निर्धारित किए गए हैं जबकि सूत्र विभिन्न पाठ्य-वस्तु को ध्यान में रखकर निर्धारित किए गए हैं। इसके अतिरिक्त सिद्धान्त विस्तृत होते हैं और सूत्र अपेक्षाकृत सीमित। किसी सिद्धान्त के सूत्र आधार होते हैं।

उदाहरण के लिए जैसे अभ्यास का सिद्धान्त है तो बालक किसी भी विषय-वस्तु का अभ्यास तभी करेंगे जब वह 'ज्ञात से अज्ञात की ओर' शिक्षण सूत्र पर आधारित हो तथा 'सरल से कठिन की ओर' सूत्र पर आधारित हो।

क्रियात्मकता का सिद्धान्त तभी कारगर सिद्ध हो सकता है जब हम 'संश्लेषण से विश्लेषण की ओर' तथा 'विश्लेषण से संश्लेषण' की ओर का अनुसरण करेंगे या आगमन से निगमन की ओर का अनुसरण करेंगे।

क्रम का सिद्धान्त तभी लागू हो सकता है जबकि चयन के सूत्र का उपयोग किया जाए और संस्कृत में विभिन्न धातुओं का अध्ययन कराने के लिए सरल से कठिन की ओर का चयन किया जाए; तभी क्रम के सिद्धान्त का निर्वाह हो सकता है।

अभ्यास के प्रश्न

1. उद्देश्य से क्या अभिप्राय है? उच्च प्राथमिक स्तर पर संस्कृत शिक्षण के उद्देश्य बताइए।
2. संस्कृत शिक्षण के सामान्य उद्देश्यों का वर्णन कीजिए। अध्यापक को इनका ज्ञान होना क्यों आवश्यक है?
3. वर्तमान संदर्भ में संस्कृत शिक्षण के महत्त्व को स्पष्ट करते हुए इसके प्राथमिक एवं उच्च स्तर पर शिक्षण उद्देश्यों का वर्णन करें।
4. लक्ष्य एवं उद्देश्य में अन्तर स्पष्ट करते हुए संस्कृत भाषा शिक्षण के उद्देश्यों पर प्रकाश डालिए।
5. संस्कृत शिक्षण सिद्धान्तों व सूत्रों की व्याख्या कीजिए।
6. शिक्षण सिद्धान्तों के क्रम में मनोवैज्ञानिक, भाषायी व शिक्षण सम्बन्धी सिद्धान्तों का परिचय दीजिए।
7. शिक्षण अधिगम को प्रभावित करने वाले मनोवैज्ञानिक घटकों को निर्देशित कीजिए।
8. शिक्षण सूत्रों तथा पद्धतियों में क्या अन्तर है?
9. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी करें–
   (क) 'अधिगम का भय'
   (ख) 'ज्ञात से अज्ञात' शिक्षण
   (ग) मनोवैज्ञानिक भाषायी शिक्षण सूत्र
   (घ) क्रियात्मकता का सिद्धान्त।

❑❑❑

अध्याय **4**

संस्कृत भाषा शिक्षण में श्रवण तथा पठन का अभ्यास

भाषा शिक्षण का स्वाभाविक क्रम है और भाषा सीखने में भी क्रमबद्धता है। भाषा सीखने की क्रमबद्धता में सर्वप्रथम सुनना फिर बोलना और पढ़ना एवं लिखना है। मातृ भाषा सीखने के लिए भी इसी क्रम का अनुसरण किया जाता है क्योंकि यह क्रम सहज, सुगम और स्वाभाविक है। भाषा सीखने के लिए प्रथम स्थान सुनने का अर्थात् श्रवण का है। श्रवण अन्य कौशलों के सीखने के लिए आधारशिला का कार्य करता है। यदि हम किसी बालक की मातृ भाषा विकास पर दृष्टिपात करें तो उसका भाषा सीखने का स्वाभाविक क्रम इस प्रकार से होगा। बालक अपनी प्रारम्भिक अवस्था में भाषा सुनता है और मौखिक भाषा से परिचित होता है और फिर धीरे-धीरे सुनी हुई बातों को समझने लगता है। इसके पश्चात् वह बालक बोलने का भी प्रयास करता है। सुनने और बोलने के कौशलों को प्राथमिक कौशल कहा जाता है क्योंकि इन दोनों कौशलों का प्रयोग तो अशिक्षित लोग भी करते हैं, यह बात अलग है कि शिक्षित व्यक्तियों की तुलना में वे इतने सक्षम नहीं होते। पढ़ने और लिखने के कौशलों का विकास सुनने और बोलने के कौशलों के बाद होता है। जब बालक नियमित रूप से विद्यालय में पढ़ना आरम्भ कर देता है तो पढ़ने और लिखने के कौशलों को गौण कौशल कहा जाता है।

शिक्षण सूत्र की दृष्टि से भी अगर देखा जाए तो सरल से जटिल की ओर के नियम का पालन होता है। बालक के लिए इन्द्रिय प्रयोग में भी सुनना और बोलना सहज है और पढ़ना और लिखना कठिन है। सुनना और बोलना, पढ़ने और लिखने की क्षमताओं का विकास करने में पूर्ण रूप से सहायक है। वास्तव में ये चारों कौशल बालक की भाषा के विकास में सहकारी अंग बनकर क्रियाशील होते हैं। भाषा कौशलों का सम्बन्ध केवल बालक की सीमित क्षमताओं के साथ न होकर उन सभी क्षमताओं के साथ है जिससे बालक भाषा ग्रहण करने और अभिव्यक्त करने में निपुण होता है।

साधारणतय: विद्यालय में बालक सुनकर, बोलकर, पढ़कर और लिखकर अ
विचारों का आदान-प्रदान करते हैं। इसलिए इन सभी योग्यताओं का विकास करना भ
शिक्षण का सबसे बड़ा मूलमन्त्र है। भाषा शिक्षण के इन कौशलों को हम भाषायी कौ
का नाम देते हैं। उपर्युक्त चर्चा के आधार पर मुख्य रूप से भाषायी कौशल के निम्नलिखि
चार प्रकार हैं-

1. **श्रवण कौशल**-सुनकर दूसरों के भाव और विचारों को ग्रहण करना।

2. **पठन कौशल**-पढ़कर दूसरों के विचार और भावों को ग्रहण करना।

3. **अभिव्यक्ति कौशल**-मौखिक रूप से अपने भावों और विचारों को दूसरों
समक्ष प्रकट करना।

4. **लेखन कौशल**-लिखित रूप में अपने भावों और विचारों को दूसरों तक पहुंचा

उपर्युक्त सभी कौशलों में पहले दो का सम्बन्ध ग्रहण करने से है और बाद के
का सम्बन्ध अभिव्यक्ति से है। निम्न तालिका इस बात का स्पष्टीकरण करती है-

भाषा कौशल

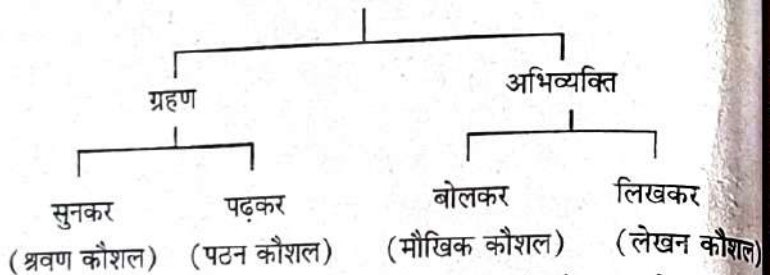

1. **श्रवण कौशल**-श्रवण कौशल के अन्तर्गत बालकों को ध्यान से सुनने, शु
उच्चारण और सुनी हुई बातों को समझने पर बल दिया जाता है। इसके लिए य
आवश्यकता सहायक सामग्री का भी प्रयोग किया जाता है जिसकी चर्चा विस्तार रूप
हम आगे चलकर करेंगे।

2. **मौखिक कौशल (अभिव्यक्ति कौशल)**-अभिव्यक्ति का सर्वप्रथम साध
हमारी मौखिक भाषा है। बालक जन्म से ही धीरे-धीरे आवाज़ निकालता है जो प्रारम्भ
सार्थक नहीं होती फिर बाद में धीरे-धीरे उसका बोलना अर्थ सहित अर्थात् सार्थक हो
लगता है। प्रारम्भ में (प्राथमिक स्तर) पर उसे शुद्ध उच्चारण के साथ शुद्ध भाषा बोलने
अभिव्यक्त करने की ओर प्रेरित करना चाहिए। इसके लिए शिक्षक कई उपकरणों
सामग्री का प्रयोग कर सकता है जिसकी चर्चा हम विस्तार से आगे चलकर करेंगे।

3. **वाचन कौशल (पठन कौशल)**-पठन (वाचन) कौशल केवल पुस्तक
पढ़ने तक सीमित नहीं बल्कि विषय-वस्तु को पढ़कर उसे समझना, उसका अर्थ

करना भी आवश्यक है। वास्तव में वाचन एक कला है। इसकी शिक्षा अन्य विषयों की भान्ति नहीं दी जा सकती। वाचन की परिभाषा सही रूप में इस प्रकार दी जा सकती है, "पूर्वश्रुत ध्वनियों के प्रतीक लिपिबद्ध शब्दों को पढ़कर अर्थ ग्रहण करने की प्रक्रिया को वाचन कहते हैं।" इस प्रकार वाचन ज्ञानार्जन का सार्थक एवं सशक्त साधन है। भाषा शिक्षण में वाचन का बहुत महत्त्व है। पठन (वाचन) ज्ञान प्राप्ति के साथ-साथ आनन्द प्राप्ति का भी सर्वोत्तम साधन है। वाचन का भाषा शिक्षण में महत्त्वपूर्ण स्थान होने के कारण मौखिक कार्य करवाने के बाद बालकों को वाचन की समुचित शिक्षा देना अत्यन्त आवश्यक है। अच्छे वाचन की शिक्षा बालकों के भविष्य में लाभप्रद सिद्ध होती है। प्राईमरी स्तर पर बालकों को पहले लिपि चिन्हों की पहचान करने के लिए प्रेरित किया जाता है और फिर बाद में धीरे-धीरे पुस्तक वाचन के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। भाषा का शिक्षक बालकों को भाषा शिक्षण की दृष्टि से वाचन कौशल का अभ्यास कराने हेतु कहानी, उपन्यास, एकांकी, निबन्ध, कविता आदि को वाचन सामग्री के अंग के रूप में प्रयोग में लाएगा।

4. **लेखन कौशल**-इस कौशल का विकास करने का तात्पर्य यह होता है कि बालक इस योग्य हो सकें कि वे लिखित रूप से अपने भावों एवं विचारों की अभिव्यक्ति कर सकें। इस कौशल का शिक्षण भी प्राईमरी स्तर से किया जाता है और फिर बाद में उसका उत्तरोत्तर विकास होता रहता है। प्रारम्भ में बालक चाकबोर्ड पर लिखित अक्षरों को अपनी कापी पर लिखता है। अक्षरों की बनावट का जब पर्याप्त रूप से अभ्यास हो जाता है तो बाद में क्रमश: अक्षरों, मात्राओं, शब्दों और वाक्यों को लिखना सीख लेता है।

उपर्युक्त भाषा शिक्षण के चारों कौशल की व्याख्या विस्तार से प्रस्तुत है-

1. श्रवण कौशल से अभिप्राय

श्रवण कौशल से अभिप्राय यह है कि किसी अन्य व्यक्ति के द्वारा उच्चारण की हुई ध्वनियों, शब्दों, भावों और विचारों को कानों से सुनकर अर्थ ग्रहण करने की क्रिया को श्रवण कहा जाता है। यह कौशल भाषा सीखने का प्रथम सोपान है और अन्य कौशलों को सीखने के लिए आधार बनता है। कोई भी वक्ता जिस अभिप्राय या अर्थ को लेकर अपने विचारों और भावों की मौखिक रूप से अभिव्यक्ति करता है, उसको उसी रूप में सुनकर अर्थ समझने की योग्यता को श्रवण कौशल कहा जाता है।

श्रवण कौशल का महत्त्व

बालक के व्यक्तित्व के विकास और भाषा शिक्षण की दृष्टि से श्रवण कौशल का महत्त्व है। प्रत्येक बालक जन्म के उपरान्त विभिन्न ध्वनियों को सुनना प्रारम्भ कर

देता है। इन ध्वनियों से उसका मस्तिष्क प्रभावित होने लगता है। ये ध्वनियां बालक के भाषा ज्ञान के लिए आधारशिला का कार्य करती हैं। ध्यान से सुनने पर ही बालक इन ध्वनियों के अन्तर को समझने लगता है। श्रवण कौशल अन्य भाषायी कौशलों के विकास के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है। बालक परिवार में रहते हुए अपने से बड़े सदस्यों को बोलते हुए देखकर उनका अनुसरण करता है और इस प्रकार से वह मौखिक अभिव्यक्ति भी करने लग जाता है।

हमें यह नहीं समझना चाहिए कि श्रवण कौशल केवल मौखिक अभिव्यक्ति के लिए आवश्यक है, बल्कि इससे पठन कौशल और लेखन कौशल का भी विकास होता है। उदाहरण के रूप में शिक्षक द्वारा आदर्श वाचन सुनकर बालक उसका अनुसरण करते हुए वाचन करने लग जाता है। श्रवण कौशल के विकास से लेखन कौशल का विकास भी सम्भव है क्योंकि बालक शिक्षक द्वारा बोले गये शब्दों को सुनकर ही लिखता है। यह देखा गया है कि जो बालक ध्यान से नहीं सुनते वे लिखने में भी पीछे रह जाते हैं। इस प्रकार श्रवण कौशल अन्य भाषायी कौशलों का विकास करने की दृष्टि से और भाषा शिक्षण के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए भी आवश्यक है। इन सब बातों के अतिरिक्त श्रवण कौशल के द्वारा ही विभिन्न साहित्यिक क्रिया-कलापों का आनन्द प्राप्त किया जा सकता है।

श्रवण कौशल के उद्देश्य

1. विद्यार्थियों में सुनकर समझने की योग्यता का विकास करना।
2. श्रुत सामग्री में से अच्छी बातों के चयन करने की योग्यता का विकास करना।
3. सुनी हुई सामग्री की विशेष बातों को समझें।
4. वे समाज में दूसरों की बातों को सुनकर उनके अर्थ ग्रहण करें।
5. ध्वनियों और शब्दों के शुद्ध उच्चारण को ध्यानपूर्वक सुनकर उनका सही अनुसरण करना सीखें।
6. स्वराघात, बलाघात और स्वर के आरोह-अवरोह को समझें और उनको सही ढंग से अनुकरण करना सीखें।
7. सुनी हुई सामग्री के मर्मस्पर्शी स्थलों के पहचानने तथा अनुभव करने की क्षमता को विकसित करना।
8. मौखिक अभिव्यक्ति की विभिन्न शैलियों को समझने और उनका प्रयोग करने की क्षमता का विकास करना।
9. इस कौशल के द्वारा साहित्यिक रुचियों का विकास करना।
10. मानसिक और बौद्धिक विकास के लिए प्रेरित करना।

11. वक्ता के भावों, विचारों में निहित गूढ़ रहस्यों को समझने की योग्यता का विकास करना।

श्रवण कौशल की शिक्षा की विधियां

1. सस्वर वाचन–शिक्षक के द्वारा किये गये आदर्श वाचन और कक्षा के किसी छात्र द्वारा किये जाने वाले अनुकरण को ध्यानपूर्वक सुनकर शुद्ध उच्चारण, बलाघात, गति आदि का ज्ञान प्राप्त करते हैं। इससे शिक्षक को यह पता चलता रहेगा कि छात्र-छात्राओं का श्रवण कौशल किस दिशा में कितना विकसित कर रहा है।

2. श्रुत लेखन–श्रुत-लेखन शुद्ध लेखन के अभ्यास हेतु सशक्त और सार्थक विधि है। इस विधि का प्रयोग श्रवण कौशल के विकास के लिए भी करना उपयुक्त रहता है। श्रुत-लेखन में विद्यार्थी को सुनकर लिखना पड़ता है। परन्तु जो विद्यार्थी ध्यानपूर्वक सुनेगा वही समस्त सामग्री को शुद्ध लिख सकेगा। जो विद्यार्थी ध्यान से नहीं सुनेगा तो वह समस्त सामग्री को लिखने में सफल नहीं हो सकेगा। ध्यान से न सुनने के कारण लिखने में कुछ-न-कुछ अवश्य ही छूट जाएगा।

3. भाषण–भाषण बालकों में मौखिक अभिव्यक्ति का विकास करने के लिए सर्वश्रेष्ठ साधन है। भाषण श्रवण कौशल का विकास करने के लिए भी उत्तम साधन है। बालकों को पहले ही यह बता देना चाहिए कि वे भाषण को ध्यानपूर्वक सुनें क्योंकि बाद में उनसे प्रश्न पूछे जाएंगे और उन्हें इन प्रश्नों का सही-सही उत्तर देना होगा। ऐसी स्थिति में प्रश्नों का उत्तर देने हेतु सभी छात्र भाषण को ध्यान से सुनते हैं।

4. वाद-विवाद–श्रवण कौशल का विकास करने की दृष्टि से वाद-विवाद लाभप्रद एवं सार्थक क्रिया है, क्योंकि जो विद्यार्थी इस क्रिया में भाग लेते हैं उनको प्रत्येक बात को ध्यान से सुनना पड़ता है। अगर वह ऐसा नहीं करता है तो वह प्रतिपक्षी वक्ता की बातों का उत्तर देने में सक्षम नहीं होगा। वाद-विवाद के समापन के बाद समस्त कक्षा में प्रश्न पूछने चाहिए जिससे श्रवण-कौशल के विकास का परीक्षण हो जाएगा।

5. प्रश्नोत्तर विधि–यह विधि बहुत पुरानी है लेकिन बहुत सार्थक एवं कारगर है। शिक्षक को पाठ के विकास के साथ-साथ बालकों से प्रश्न पूछने चाहिए या यूं कहिए कि पाठ का विकास प्रश्नोत्तर विधि से किया जाए। ऐसा करने से कक्षा के सभी छात्र शिक्षक को ध्यान से सुनते हैं और कक्षा में सावधान रहते हैं।

6. कहानी कहना और सुनना–इससे श्रवण कौशल के साथ-साथ मौखिक कौशल का भी शिक्षण होता है। शिक्षक बालकों में बैठकर उनको सर्वप्रथम कहानी सुनाता है और बालक शिक्षक को ध्यानपूर्वक सुनते हैं। शिक्षक स्वयं कहानी सुनाने के बाद बालकों से कहता है कि उनमें से कोई बालक कहानी सुनाए। ऐसा करने से पता चल जाता है कि

बालकों ने कहानी ध्यान से सुनी है या नहीं। कहानी कहना श्रवण कौशल-शिक्षण का सशक्त एवं प्रभावपूर्ण साधन है, क्योंकि छोटे बालक कहानी सुनने में बहुत आनन्द करते हैं।

7. **श्रव्य-दृश्य सामग्री का उचित प्रयोग**- श्रव्य-दृश्य सामग्री के यथा आवश्यक प्रयोग करने से श्रवण-कौशल शिक्षण एवं विकास में पूर्ण सहायता मिलती है। जैसे-

(1) **ग्रामोफोन**-ग्रामोफोन श्रवण-कौशल का विकास करने में बहुत लाभप्रद है। इसके द्वारा बालक कहानी, कविता, नाटक आदि सुनकर साहित्य की ओर आकर्षित होते हैं। शुद्ध उच्चारण की दृष्टि से भी ग्रामोफोन बहुत लाभदायक श्रव्य सामग्री है।

(2) **टेप रिकार्डर**-इसके द्वारा साहित्यिक गतिविधियों से सम्बन्धित कार्यक्रम को रिकार्ड करके कभी भी सुना जा सकता है। इस प्रकार के कार्यक्रमों को सुनने के बाद छात्र-छात्राओं से विषय से सम्बन्धित वार्तालाप किया जा सकता है और इस प्रकार विद्यार्थियों के श्रवण-कौशल की जांच भी की जा सकती है।

(3) **चलचित्र**-चलचित्र मनोरंजन के साधनों के साथ श्रवण कौशल विकास में भी सहायक सिद्ध होते हैं। इनका सम्बन्ध केवल सुनने मात्र से नहीं बल्कि जो कुछ सुना है उसको दृश्य रूप में देखा भी जा सकता है। शिक्षक के उचित मार्ग-दर्शन से इसे शिक्षण के प्रयोग में लाया जा सकता है। बालक चलचित्र देखने के साथ-साथ ध्यान से सुनते भी हैं। इसलिए श्रवण कौशल के विकास हेतु चलचित्र एक अच्छा, सशक्त एवं सार्थक साधन है जिसे बालक बहुत पसन्द करते हैं।

(4) **दूरदर्शन**-दूरदर्शन आज के विज्ञान की अनोखी देन है जो अनेक दृष्टिकोण से उपयोगी है। यह श्रवण-कौशल का विकास करने हेतु दिलचस्प साधन भी है।

(5) **वीडियो**-जिस प्रकार टेप रिकार्डर का प्रयोग किया जाता है उसी प्रकार किसी कार्यक्रम विशेष या प्रोग्राम विशेष को वीडियो के द्वारा रिकार्ड करके उसको टी०वी० पर दिखा सकते हैं। इसके माध्यम से विद्वानों के भाषणों और विभिन्न शैक्षिक कार्यक्रमों की कैसेट तैयार की जा सकती है। जब बालक इनको बाद में सुनते हैं और देखते हैं तो केवल श्रवण कौशल शिक्षण की दृष्टि से ही लाभ नहीं होता बल्कि अभिव्यक्ति की दृष्टि से भी बालक बहुत कुछ सीखते हैं।

2. वाचन कौशल (पठन कौशल)

वाचन एक कला है। इस कला का पठन के अभ्यास से विकास किया जाता है। सफल अभिव्यक्ति और मनुष्य के व्यक्तिगत विकास के लिए इस कला को समझना आवश्यक है। अर्थ ग्रहण भाषा शिक्षण के प्रमुख उद्देश्यों में से एक है। सफल अभिव्यक्ति

ग्रहण पर आधारित है और अर्थ ग्रहण वाचन की शुद्धता एवं समझने की क्षमता पर र करता है। अत: भाषा शिक्षण के लिए वाचन कौशल की शिक्षा अत्यन्त आवश्यक

वाचन का अर्थ-वाचन के संकुचित अर्थ के अन्तर्गत लिखित सामग्री या छपी सामग्री को पढ़ाने ही वाचन कहलाता है। लेकिन वाचन का जब विकसित अर्थ या जाता है तो वाचन से तात्पर्य लिखी हुई या छपी हुई सामग्री को अर्थ सहित ग्रहण ना होता है।

चन की आवश्यकता

मौखिक अभिव्यक्ति या वार्तालाप करने के लिए व्यक्ति या व्यक्तियों का शारीरिक से आमने-सामने उपस्थित होना आवश्यक होता है। परन्तु यह हमेशा सम्भव नहीं ता। हम कभी ऐसे व्यक्तियों के विचारों को भी जानना चाहते हैं जो मृत्यु का ग्रास बन हैं। कभी हमें इस बात की भी आवश्यकता पड़ती है कि उन व्यक्तियों के बारे में नकारी प्राप्त की जाए जो इस संसार में तो हैं लेकिन उनसे मिलना सम्भव नहीं हो पाता। प्रकार की परिस्थिति में यदि उस व्यक्ति के विचार हमें लिखित रूप में प्राप्त हो जाते तो उन्हें पढ़कर हम उस व्यक्ति के विचारों से अवगत हो सकते हैं। किन्तु यह बात तभी भव हो सकती है जब हम पढ़ना जानते हों। इसलिए ज्ञान प्राप्ति के लिए किसी भी ार की लिखित सामग्री को पढ़ने के लिए वाचन की शिक्षा ग्रहण करना आवश्यक है।

मनुष्य जब कभी अवकाश के क्षणों में एकाकीपन का अनुभव करता है तो उसे एक ी की आवश्यकता होती है जो उसका एकाकीपन दूर कर सके और उसे निरर्थक ारों से बचाये। ऐसी स्थिति में अच्छी पुस्तक, पत्रिका, समाचार आदि एक अच्छे साथी भूमिका निभा सकते हैं। लेकिन यह लिखित सामग्री हमारे लिए तभी लाभप्रद हो ती है जब हम कुशल पाठक हों।

वन के प्रकार

वाचन के मुख्य रूप से दो प्रकार हैं-1. सस्वर वाचन, 2. मौन वाचन

लिखित भाषा को ध्वनि उच्चारण सहित पढ़ना सस्वर वाचन कहलाता है। ध्वनि त होकर पढ़ना मौन वाचन है। सस्वर वाचन भी दो प्रकार का होता है। शिक्षक द्वारा ा गया वाचन आदर्श वाचन और शिक्षक का अनुकरण करते हुए वाचन करना सस्वर न है। छात्र-छात्राओं द्वारा सामूहिक रूप से भी वाचन किया जा सकता है लेकिन यह न गद्य के लिए सम्भव नहीं है, यह पद्य के लिए सम्भव है। कविता पाठ के लिए वाचन

व्यक्तिगत रूप से भी हो सकता है और यह सामूहिक रूप से भी हो सकता है। वाच
इन प्रकारों को तालिका के द्वारा दर्शाया गया है।

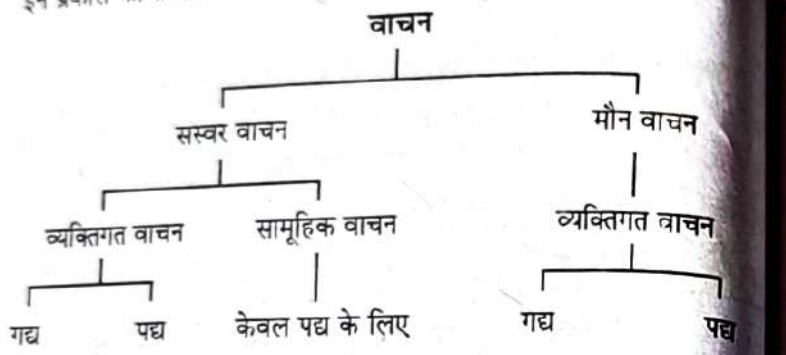

वाचन का महत्त्व

छात्र-छात्राओं के भाषा विकास की दृष्टि से सस्वर वाचन का बहुत अधिक महत्
है–

1. छात्र-छात्राओं के अशुद्ध उच्चारण को दूर करने में सहायता मिलती है।
2. इनकी झिझक और संकोच को दूर किया जा सकता है।
3. लेखकों की अनुपस्थिति में उनके विचारों से अवगत करने में सस्वर वाच
पूर्ण रूप से सहायक सिद्ध होता है।
4. इसके माध्यम से हम विद्यार्थियों को सफल वक्ता बना सकते हैं।
5. सस्वर वाचन के द्वारा कोई भी बात एक से अधिक व्यक्तियों को सावधानीपूर्व
पढ़कर सुनाई जा सकती है।
6. वाचन की सामाजिक उपयोगिता के अतिरिक्त शैक्षणिक उपयोगिता भी है
इससे ज्ञान विज्ञान की पुस्तकों का सहज ढंग से अध्ययन किया जा सकता
और मस्तिष्क की जिज्ञासा को शान्त किया जा सकता है।
7. वाचन मनोरंजन का भी सर्वोत्तम साधन है। अवकाश के समय, घर में, बस
रेलगाड़ी में या फिर किसी उद्यान में कहानी, समाचार पत्र, एकांकी, व्या
लेख, पत्रिका आदि का वाचन करके मानसिक आनन्द की प्राप्ति की
सकती है।

वाचन के उद्देश्य

भाषा की शिक्षा के लिए छात्र-छात्राओं को वाचन कौशल में निपुण करना अत
आवश्यक है। वाचन की शिक्षा निम्न उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए देना श्रेयस्कर है–

1. छात्र-छात्राएं शब्दों का शुद्ध उच्चारण कर सकें तथा लय, स्वर, आरोह-अवरोह, गति और प्रवाह के साथ वाचन कर सकें।
2. ध्यानपूर्वक वाचन करते हुए विषय सामग्री के अर्थ को भी ग्रहण कर सकें।
3. शीघ्र पढ़ने की कला में निपुण हो सकें।
4. अधिक से अधिक ज्ञानार्जन कर सकें।
5. ज्ञानोपार्जन के अतिरिक्त रोचक पुस्तकों को पढ़कर मनोरंजन प्राप्त कर सकें।
6. पत्र-पत्रिकाएं, समाचार-पत्र, पुस्तकालय की पठन सामग्री से पूर्ण रूप से लाभान्वित हो सकें।
7. वाचन के माध्य से स्वाध्याय में इतने अभ्यस्त हो जाएं कि वे ज्ञानोपार्जन के अतिरिक्त स्वयं रचनात्मक कार्य करने के लिए प्रेरित हों अर्थात् अच्छी प्रकार रचनाएं पढ़ने के बाद उनके मन में भी कहानी, लेख, कविता आदि लिखने की इच्छा जागृत हो।

स्वर वाचन के गुण

सस्वर वाचन के लिए निम्न गुणों का होना आवश्यक है–

1. **शुद्ध शब्दोच्चारण**–शब्दोच्चारण शुद्ध होना चाहिए। वर्णों का उच्चारण मुख के चित स्थान से होना चाहिए। उच्चारण अशुद्ध होने से अर्थ का अनर्थ हो सकता है जैसे कि क्ल-सकल, गृह-ग्रह, समान-सामान।

2. **उचित ध्वनि-निर्गम**–मुख से जो भी अवयव ध्वनि-निर्गम से सक्रिय होते हैं नका उचित ढंग से प्रयोग होना चाहिए। कंठ, तालु, मूर्धा, दन्त, ओष्ठ, नासिका आदि च्चारण स्थानों से ध्वनि सही-सही उच्चरित होनी चाहिए।

3. **उचित विराम चिन्हों का प्रयोग**–पाठ्य-सामग्री में जिस प्रकार के भाव विचार हों, उसी प्रकार के बल का प्रयोग करना चाहिए। कहां कम रुकना चाहिए, कहां अधिक, कहां प्रश्न सूचक ध्वनि का प्रयोग करना है, कहां विस्मयजनक, इन सभी बातों का उचित ग से पालन करना चाहिए। अर्ध विराम या पूर्ण विराम का अशुद्ध प्रयोग अर्थ को बदल ते हैं।

उपर्युक्त गुणों के अतिरिक्त कुछ अन्य गुण इस प्रकार हैं–

1. भावों के अनुसार वाचन में आरोह-अवरोह का होना।
2. वाणी में सरसता और मधुरता को संजो कर धैर्य के साथ वाचन करना।
3. वाचन करते हुए विषय-वस्तु का अर्थ ग्रहण करना अर्थात् वाचन सामग्री की सार्थकता को जानना।

4. वाचन का ढंग मनोरंजक होना चाहिए। यह तभी सम्भव हो सकता है वाचन में विविधता लाई जाए। वीर रस की कविता का वाचन वीरतापूर्ण में, करुण रस की कविता को करुण स्वर में वाचन कर इस अन्तर को जा सकता है।
5. वाचन शिक्षा देने और ज्ञानोपार्जन के साथ-साथ विद्यार्थियों में साहित्य के प्रति रुचि का विकास करना।
6. वाचन मुद्रा का सही होना भी आवश्यक है। वाचन की सामग्री के हाथ, आंख और सिर आदि का प्रभावशाली ढंग से संचालन करना।
7. सुनने वालों के स्तर के अनुरूप पढ़ना भी आवश्यक है। सुनने वाले लोग हैं और अशिक्षित भी हैं तो पढ़ने वाले को धैर्य के साथ धीरे-धीरे चाहिए ताकि वे समझ सकें।
8. वाचन करते समय पुस्तक को बाएं हाथ में आंखों से 12 इंच की दूरी पर का कोण बनाते हुए वाचन करना चाहिए। वाचन करने वाले का मुख श्रोता को अवश्य दिखाई देना चाहिए। कक्षा में शिक्षक को बैठकर वाचन नहीं चाहिए अपितु खड़े होकर वाचन करना उचित होता है।

मौन वाचन

मौन वाचन भी सस्वर वाचन की तरह भाषा शिक्षण का महत्त्वपूर्ण अंग है। सस्व वाचन में निपुणता प्राप्त कर लेने के पश्चात् मौन वाचन की शिक्षा देनी चाहिए। मौन वाच से पाठ शीघ्रता से पढ़ा जा सकता है और पढ़ते-पढ़ते पाठ शीघ्रता से समझ में भी आ जा है। मौन वाचन से विद्यार्थी स्वावलम्बी बनते हैं। उनमें पढ़ने की आदत पड़ती है। इस छात्र-छात्राओं में स्वाध्याय की आदत का विकास होता है।

मौन वाचन का तात्पर्य-लिखित सामग्री को बिना कोई ध्वनि किए हुए मन ही म में शान्तिपूर्वक पढ़कर अर्थ ग्रहण करने की क्रिया को मौन वाचन कहते हैं। वास्तव में मौ वाचन पठन की ऐसी प्रक्रिया है जिसमें दृष्टि विराम के माध्यम से वाचन मन ही मन किया जाता है। इसमें नेत्रों के द्वारा वाचन सामग्री तीव्रता से पढ़ी जाती है। इसमें वाच मानसिक धरातल पर होता है और मस्तिष्क तेजी से अर्थ ग्रहण करता है। इसमें वाच करने वाले के होंठ तक भी नहीं हिलते। मौन वाचन के बारे में **रायबर्न** लिखते ''आरम्भ में ही बालकों को प्रशिक्षित करना चाहिए कि वे अपने आप पाठ करते हुए अप होंठों को न हिलाएं; अन्यथा मौन वाचन 'सस्वर वाचन' का ही रूप बनकर रह जाएगा अ बालक कभी भी अपनी आंखों से पढ़ना नहीं सीखेगा।''

मौन वाचन की उपयोगिता

वाचन (पठन) के व्यापक एवं विस्तृत क्षेत्र में प्रवेश करने के लिए पहला सोपान सस्वर वाचन के रूप में होता है। परन्तु वास्तविक जीवन में विद्यालय की शिक्षा के बाद सस्वर वाचन की बहुत कम आवश्यकता होती है। अधिकांश रूप से हमें मौन वाचन पर ही निर्भर रहना पड़ता है। हम किसी भी सार्वजनिक क्षेत्र (स्थान) में सस्वर वाचन नहीं कर सकते, क्योंकि ऐसा करना न तो स्वयं को अच्छा लगता है और न ही दूसरों को अच्छा लगता है। मौन वाचन की वास्तविक जीवन में बहुत उपयोगिताएं है जो निम्न हैं-

1. मौन वाचन तीव्र गति से होता है, इसलिए समय की बचत होती है।
2. मौन वाचन से थकावट कम होती है।
3. मौन वाचन से कम थकावट होने के कारण छात्र अधिक देर तक वाचन कर सकता है।
4. छात्र में एकाग्रता का विकास होता है।
5. अर्थ ग्रहण तीव्रता से किया जाता है।
6. गहन एवं विस्तृत अध्ययन साथ-साथ होता है।
7. संक्षेपीकरण में सहायक है।
8. स्वाध्याय की आदत का विकास करने में पूर्ण रूप से सहायक है।
9. समय के सदुपयोग के लिए बहुत सार्थक एवं सशक्त प्रक्रिया है।
10. गहन (सूक्ष्म) अध्ययन में बहुत सहायक है।
11. कम समय में अधिक ज्ञान की प्राप्ति होती है।
    ब्राईन के अनुसार, ''निःसन्देह मौन-वाचन अपेक्षाकृत अल्पव्ययी साधन है। इसके साथ-साथ यह पद्धति जीवन की साधारण क्रियाओं के अत्यधिक अनुकूल है क्योंकि हमारा अधिकांश वाचन मौन रूप से होता है।''
12. मौन वाचन सार्वजनिक स्थानों पर दूसरों की उपस्थित में भी सम्भव है।

द्रुत वाचन (शीघ्रता से वाचन करना)

सस्वर वाचन और मौन वाचन के दोनों प्रकार स्कूल में स्वीकृत की गई पुस्तकों से सम्बन्धित हैं। कक्षा में आदर्श और अनुकरण वाचन का विविधत् पालन करने के बाद बालक उतना नहीं पढ़ पाते, जितना कि उन्हें अपनी क्षमता के अनुसार पढ़ना चाहिए। इस कमी को पूरा करने हेतु कुछ ऐसी पुस्तकों को पढ़ने का सुझाव देना चाहिए, जिन्हें वे शीघ्रता से पढ़कर उनका सार अंश पढ़ सकें। ऐसी पुस्तकों को द्रुत वाचन की पुस्तकें कहा जाता है। द्रुत वाचन पढ़ने के अभ्यास की आदत का विकास करने हेतु सर्वोत्तम प्रक्रिया है।

द्रुत वाचन के उद्देश्य

इसके मुख्य रूप से निम्न दो मुख्य उद्देश्य हैं–

1. बालकों में तीव्र गति (शीघ्रता) से पढ़ने की आदत डालना।
2. उनमें स्वतन्त्र रूप से स्वाध्याय और साहित्यिक अध्ययन की प्रवृत्ति को जाग्रत करना।

द्रुत वाचन हेतु शिक्षक की भूमिका

1. द्रुत वाचन मौन और सस्वर वाचन दोनों प्रकार का हो सकता है। अतः मौन द्रुत वाचन में शिक्षक को समय का ध्यान रखना चाहिए, ताकि विद्यार्थी शिक्षक को धोखा न दे सकें।
2. बीच-बीच में या अन्त में समय की निश्चित अवधि के बाद विद्यार्थियों से प्रश्न करने चाहिए ताकि वे सतर्क रहें।
3. द्रुत वाचन में यदि विद्यार्थियों के सामने अर्थ से सम्बन्धित या अन्य किसी प्रकार कठिनाई आये तो शिक्षक को उसे दूर करने का हर प्रकार से प्रयास करना चाहिए।
4. द्रुत वाचन के द्वारा उन्हीं विषयों और पाठों को पढ़ाया जाना चाहिए जो यथा आवश्यकता सरल हों और उनमें किसी प्रकार के सूक्ष्म अध्ययन की आवश्यकता न हो।

द्रुत वाचन की पुस्तकों के प्रकार

द्रुत वाचन की पुस्तकें कुछ इस प्रकार की हों–

1. द्रुत वाचन की पुस्तकें भाषा की दृष्टि से सरल हों।
2. पुस्तकों की पाठन सामग्री रोचक और आकर्षक हो जिससे छात्र उनके पढ़ने में रुचि लें।
3. पाठ्य-सामग्री कक्षा तथा विद्यार्थियों के मानसिक स्तर के अनुकूल हो। प्राथमिक स्तर पर कहानियां, पूर्व माध्यमिक स्तर पर महापुरुषों की जीवनियां और उच्चतर माध्यमिक स्तर पर शिक्षाप्रद साहित्यिक एकाकी एवं लेख अधिक उपयुक्त रहते हैं।
4. द्रुत वाचन की पुस्तकें विषयों की दृष्टि से निम्न प्रकार की हो सकती हैं–
   (क) रोचक और शिक्षाप्रद कहानियों की पुस्तक।
   (ख) महापुरुषों के जीवन चरित्र की पुस्तक।
   (ग) एकांकी और उपन्यास आदि।

(घ) वर्णनात्मक लेख सम्बन्धी पुस्तक।
(ङ) नवीन ज्ञान, विज्ञान के आविष्कारों से सम्बन्धित पुस्तक।

वाचन की शैक्षणिक उपयोगिता–वाचन की शिक्षा की दृष्टि से चाहे आदर्श वाचन हो या अनुकरण वाचन इस सम्बन्ध में न तो कोई नियम बनाया जा सकता है और ही कभी बनाने का प्रयास करना चाहिए। इस दृष्टि से जहां जिसकी जितनी आवश्यकता वहां उसका उतना ही प्रयोग करना उचित रहता है। छोटी कक्षाओं में वाचन की जितनी आवश्यकता होती है उतनी बड़ी कक्षाओं में नहीं होती, क्योंकि उच्च कक्षाओं में छात्र-त्राओं को यथा आवश्यकता अभ्यास हो चुका होता है। अगर शिक्षकों का स्वयं का वाचन शुद्ध नहीं है तो उनको आदर्श वाचन करने से परहेज करना चाहिए। अनुकरण वाचन लिए भी यह नियम नहीं बनाना चाहिए कि कितने छात्रों से कितने अंश तक का नुकरण वाचन करवाना है। यदि कक्षा में कोई ऐसा छात्र है जो सदैव शुद्ध पढ़ सकता है उससे चार या पांच पंक्तियों का अनुकरण वाचन करवाना पर्याप्त रहता है। जो छात्र वाचन में कमज़ोर हैं उनसे कुछ अंश तक का अनुकरण वाचन करवाना उचित रहता है र जो छात्र वाचन में अधिक अशुद्धियां करते हैं उनसे अनुकरण वाचन अधिक मात्रा में रवाया जाना चाहिए। ऐसा करने में ही वाचन की शैक्षणिक उपयोगिता सम्भव हो सकती ।

वाचन शिक्षण की विधियां–आधुनिक युग में बालक को वाचन सिखाने के लिए च और सरलता पर ध्यान दिया जाता है। इसलिए पढ़ना सिखाने के क्रम में परिवर्तन या है।

प्राचीन प्रणाली को अक्षर बोध प्रणाली कहा जाता है, परन्तु नवीन प्रणली में अक्षर न पर विश्वास न करके पूर्ण वाक्य या शब्दों को सिखाने में विश्वास करते हैं। अतः इसे क्य प्रणाली भी कहते हैं। आधुनिक स्कूलों में इसी प्रणाली को अपनाया जा रहा है। यह त सही भी है कि वस्तु के टुकड़े-टुकड़े कर डालने में कोई वस्तु अच्छी नहीं लगती, न्दर्य पूर्णता में है–इसलिए पूर्ण से ही आरम्भ करना चाहिए। वाचन प्रणाली की सभी ालियां वाक्य प्रणाली की पुष्टि करती हैं केवल अक्षर बोध प्रणाली को छोड़कर।

1. अक्षर बोध प्रणाली–यह प्रणाली प्राचीन है। इसमें बालक सबसे पहले स्वर अ, इ, ई, उ, ऊ आदि और क, ख, ग आदि व्यंजनों का ज्ञान प्राप्त करते हैं। स्वर शिक्षा बालक के उच्चारण अंगों में लोच आ जाती है। स्वर शिक्षा से बालक का उच्चारण शुद्ध जाता है, फिर बालक व्यंजन और स्वर को मिलाना सीखता है जैसे अ, आ स्वरों का ारण सीखने के बाद बालक क + आ = का जैसे स्वर और व्यंजन का मिलान सीखता फिर एक शब्द के साथ दूसरे शब्द का मिलान सीखता है। इस प्रकार वाक्य बनाना ख जाता है–काम + करना + ही + जीवन + है = काम करना ही जीवन है।

अक्षर बोध प्रणाली से बालकों का उच्चारण शुद्ध होता है। इसमें बालक अक्षर, शब्द एवं वाक्य का क्रमबद्ध ज्ञान पाते हैं।

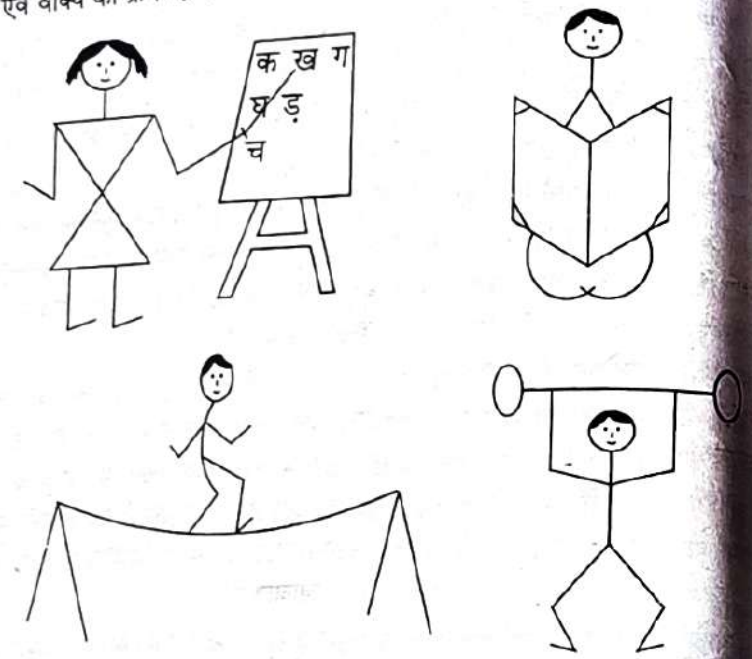

इस प्रणाली को अमनोवैज्ञानिक कहा जाता है। अक्षर निरर्थक है। जब स्वर अप रूप बदल कर व्यंजन के साथ मिलता है। जैसे क + इ = 'कि' तो बालक की समझ यह मिलान नहीं आता। इस रीति से पढ़ने में बहुत समय लगता है। इससे बालक में सं जागृत नहीं होती। बालक जब किसी शब्द के एक-एक अक्षर को अटक-अटक क पढ़ता है तो उसके पढ़ने की गति में बाधा आती है। जैसे-क + ल + म = कलम।

2. देखो और कहो विधि-इस विधि में बालक को शब्दों से परिचित कराया जा है। इस विधि में चित्र द्वारा शब्द ज्ञान दिया जाता है। बालक चित्र देखकर उस शब्द उच्चारण करता है। इसलिए इसे 'देखो और कहो विधि' कहा जाता है। बालक को जो दिखाया जाए। वह उसके ज्ञान क्षेत्र में अन्तर्गत होना चाहिए। जैसे उसके खाने, पीने, वाली चीज़ें उस चित्र में हों। अध्यापक श्यामपट्ट पर भी चित्र बना सकता है उसे देख बालक शब्द का उच्चारण करता है जैसे कमल का फूल, गिलास बना दें, उसे देख बालक कमल व गिलास बोलेगा।

यह विधि रुचिकर है। लगातार चित्र देखते जाने से बालक के मानस पटल पर अंकित हो जाता है। चित्र के साथ शब्द चित्र भी मानस पटल पर छप जाता है। इन चित्रों के द्वारा वर्ण ज्ञान दिया जाता है। यह विधि अक्षर बोध प्रणाली के विपरीत है

यह प्रणाली सीमित और संकुचित है। सभी शब्दों का ज्ञान इस विधि द्वारा नहीं दिया जा सकता। भावार्थक शब्दों के चित्र बनाना कठिन है।

3. अनुकरण विधि-इस विधि में बालक अध्यापक का अनुसरण करता है। इस विधि की उपयोगिता अंग्रेज़ी में अधिक है। हिन्दी में नहीं। हिन्दी में सभी वर्णों की ध्वनि निश्चित है। शिक्षक के आदर्श का अनुकरण छात्र करते हैं और शुद्ध पाठ पढ़ना सीख जाते हैं परन्तु शिक्षक का पाठ आदर्श होना आवश्यक है।

4. सामूहिक पाठन विधि-अध्यापक कक्षा में सभी छात्रों से सामूहिक पाठ करवाता है। यह विधि छोटी-छोटी कविताओं और गीत को सिखाने के लिए उपयोगी है। संस्कृत पढ़ाने में भी इसका प्रयोग होता है। नाटक की शिक्षा में भी यह विधि लाभदायक है। इससे उच्चारण और हाव-भाव की शिक्षा भी दी जाती है।

5. साहचर्य विधि-यह आधुनिक विधि है। इस विधि में एक कार्ड पर शब्द लिखे जाते हैं, दूसरे में चित्र बने होते हैं या वास्तविक वस्तु बालक के सामने होती है। वस्तु से सम्बन्धित कार्ड बालक को उसके सामने रखने के लिए कहा जाता है। इसलिए इसे 'साहचर्य विधि' कहते हैं। जब छात्र उन शब्दों का ज्ञान प्राप्त कर लेता है तब उसकी क्रिया आदि का बोध कराकर वाक्य पूर्ण करना सिखाया जाता है। सभी कार्डों को मिला दिया जाता है, अपनी बुद्धि से बालक उसमें से कार्ड खोजता है।

यह विधि भी सीमित है। इसमें केवल कुछ संज्ञाओं का ही ज्ञान करवाया जा सकता है।

6. ध्वनि साम्य विधि-ध्वनि में समानता रखने वाले शब्द साथ-साथ सिखाये जाते हैं। जैसे-कल, चल, नल, केला, मेला आदि। एक-सी ध्वनि होने के कारण बालक जल्दी सीख लेते हैं।

7. यन्त्र विधि-ग्रामोफोन, टेप रिकार्डर, रेडियो आदि के द्वारा बालक भाषा सीख सकता है। रेडियो द्वारा विशेष लोगों के भाषण सुना सकते हैं। पर रेडियो का कार्यक्रम निश्चित समय पर ही सुना जा सकता है। टेप रिकार्डर पर जो कुछ भी रिकार्ड करके सुनाना चाहें कभी भी सुना सकते हैं।

8. वाक्य शिक्षण प्रणाली-इसमें शिक्षण वाक्य से प्रारम्भ किया जाता है। वाक्य ही बालक के विचार की इकाई है। वाचन का मनोवैज्ञानिक क्रम होगा-वाक्य → शब्द → वर्ण। बच्चा लिखने पढ़ने से पहले वाक्य बोलता है, सुनता है। आरम्भ में बच्चा वाक्य दो-तीन शब्द के ही बोलता है, जैसे 'दूध दो', 'खाना खा लिया' आदि।

वाक्य शिक्षण विधि के समर्थकों का कहना है कि बालक पहले अपनी दृष्टि पूरे वाक्य पर डालता है, फिर शब्द और बाद में वर्ण पर। इसलिए पहले वाक्य शिक्षण करना चाहिए।

अभ्यास के प्रश्न

1. भाषा शिक्षण के सन्दर्भ में भाषाई कौशलों के महत्त्व की चर्चा कीजिए।
2. भाषा शिक्षण से सम्बन्धित कौन-कौन से कौशल हैं? इन कौशलों के विकास का संस्कृत भाषा शिक्षण में क्या महत्त्व है?
3. भाषायी कौशल (श्रवण, पठन) का सामान्य परिचय देते हुए उनकी अध्यापन प्रक्रिया समझाइए।
4. श्रवण कौशल का अर्थ स्पष्ट करते हुए, श्रवण कौशल के उद्देश्यों पर विस्तार से प्रकाश डालिए।
5. वाचन का महत्त्व बताते हुए इसके उद्देश्यों को स्पष्ट कीजिए।
7. 'सस्वर वाचन' और 'मौन वाचन' की उपयोगिता तथा गुणों का उल्लेख करते हुए इनकी शिक्षण विधियों को स्पष्ट कीजिए।

❑❑❑

TEACHING OF SANSKRIT

B.Ed.

इकाई–II

5. संस्कृत पाठ्य-पुस्तक निर्माण एवं समीक्षा
6. संस्कृत भाषा शिक्षण की विधियां
   - पाठशाला विधि
   - पाठ्य-पुस्तक विधि
   - प्रत्यक्ष विधि
   - व्याकरण अनुवाद विधि
7. संस्कृत अध्यापक तथा दृश्य-श्रव्य साधन प्रयोग

VIJAYA PUBLICATIONS
Ludhiana

अध्याय 5

संस्कृत पाठ्य-पुस्तक निर्माण एवं समीक्षा

वर्तमान शिक्षा-पद्धति में पाठ्य-पुस्तक का महत्त्वपूर्ण स्थान है। शिक्षा का कोई भी ऐसा स्तर नहीं जहां पाठ्य-पुस्तक का प्रचलन न हो। कोई भी विषय ऐसा नहीं जिसमें पाठ्य-पुस्तक की आवश्यकता अनुभव न की जाती हो। अध्यापक के मुख से दिया गया ज्ञान कितना ही महत्त्वपूर्ण क्यों न हो, परन्तु उसकी पूर्णता के लिए पाठ्य-पुस्तक का सहारा अवश्य लिया जाता है।

पाठ्य-पुस्तक की बढ़ती हुई लोकप्रियता पर कई शिक्षा-शास्त्री नाक व भौं भी चढ़ाते हैं। उनका विचार है कि पाठ्य-पुस्तकों के कारण शिक्षा पुस्तक केन्द्रित होती जा रही है। विद्यार्थी और अध्यापक कूप-मंडूक बनते जा रहे हैं। विद्यार्थियों में रटन्त प्रवृत्ति का विकास होता जा रहा है; मूल्यांकन प्रतिभा के आधार पर नहीं बल्कि पाठ्य-पुस्तक के सीमित ज्ञान के आधार पर हो रहा है जिससे प्रतिभा विकसित नहीं हो रही; पाठ्य-पुस्तकों ने शिक्षा के उद्देश्यों को संकुचित बनाकर रख दिया है–आदि।

इस कटु आलोचना के बावजूद पाठ्य-पुस्तकों का महत्त्व निरन्तर बढ़ता जा रहा है। वस्तुत: पाठ्य-पुस्तकें शिक्षा के विकास एवं प्रसार की कुछ आवश्यकताओं को पूरा करती हैं, जिसके परिणामस्वरूप उसका महत्त्व बढ़ रहा है। ये आवश्यकताएं मुख्यत: इस प्रकार हैं–

1. शिक्षा को सुबोध बनाने में सहायक–पाठ्य-पुस्तक की सहायता से शिक्षा को सुबोध बनाने में सहायता मिलती है। बच्चे अध्यापक द्वारा दिये गये मौखिक ज्ञान को समझ तो लेते हैं परन्तु उसे हृदयगम करने के लिए उन्हें बार-बार दोहराई और अभ्यास की आवश्यकता पड़ती है। पाठ्य-पुस्तक इस आवश्यकता को पूरा करने का सशक्त साधन है। भाषा का ज्ञान देते समय विद्यार्थियों को बार-बार लिखने का अभ्यास करना पड़ता है। इस अभ्यास-कार्य में उन्हें पाठ्य-पुस्तक अत्यधिक सहायता प्रदान करती है। इसके अतिरिक्त स्कूल-स्तर के विद्यार्थी अध्यापक द्वारा बताई गई बातों को उसी समय नोट नहीं कर पाते, इसलिए उन्हें पाठ्य-पुस्तक पर निर्भर रहना पड़ता है। इस प्रकार पाठ्य-पुस्तक विद्यार्थियों के लिए किसी वरदान से कम नहीं।

2. शिक्षा प्रसार में सहायक–मौखिक-शिक्षण तभी प्रभावशाली हो सकता है [illegible] एक अध्यापक के पास चार-पांच विद्यार्थी हों परन्तु आज जिस तेज़ी से शिक्षा का प्र[illegible] हो रहा है, इस प्रकार की आदर्श स्थिति सम्भव नहीं हो सकती। आज तो एक कक्षा [illegible] चालीस से पचास तक विद्यार्थी होते हैं। कहीं-कहीं तो इससे अधिक संख्या होती है। ऐ[illegible] स्थिति में तो अध्यापक के लिए अनुशासन रखना कठिन हो जाता है। वह पढ़ायेगा क[illegible] ऐसी स्थिति में अध्यापक और विद्यार्थियों-दोनों को पाठ्य-पुस्तक का ही सहारा ले[illegible] पड़ता है।

पाठ्य-पुस्तक की सहायता से विद्यार्थियों का ध्यान केन्द्रित रखने में सहाय[illegible] मिलती है। इसकी सहायता से अध्यापक 40-50 विद्यार्थियों को एक साथ पढ़ाने में सफ[illegible] हो सकता है। इसके अतिरिक्त मुद्रण-कला के विकास के कारण पाठ्य-पुस्तकें लाखों की संख्या में छप जाती हैं। सभी विद्यार्थियों की उन तक पहुंच होती है। इस प्रकार पाठ्य-पुस्तकें शिक्षा प्रसार में सहायक सिद्ध हो रही हैं।

3. मार्गदर्शक–पाठ्य-पुस्तक एक सुयोग्य मार्गदर्शक का काम करती है। भाषा शिक्षण का मुख्य उद्देश्यों बच्चों की भाषा योग्यता को बढ़ाना है। परन्तु किस स्तर पर कितनी भाषा योग्यता बढ़नी चाहिए, इसका मार्गदर्शन पाठ्य-पुस्तक द्वारा किया जाता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि भाषा योग्यता तथा ज्ञान-वृद्धि में अन्य पुस्तकों की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है परन्तु वास्तविक मार्ग-दर्शन का काम पाठ्य-पुस्तक द्वारा ही किया जाता है। एक निश्चित समय में निश्चित भाषा-योग्यता प्राप्त करने में पाठ्य-पुस्तक आवश्यक मार्ग-दर्शन का काम करती है। एक निश्चित वय-वर्ग (Age group) का सामान्य बालक अपनी मानसिक शक्तियों के अनुसार किस शिक्षा स्तर पर कितनी भाषा-योग्यता प्राप्त कर सकता है–इसका ज्ञान पाठ्य-पुस्तक की सहायता से मिलता है।

4. कुशल शिक्षण में सहायक–पाठ्य-पुस्तक की सहायता से अध्यापक अपने शिक्षण को कुशलतापूर्वक आयोजित कर सकता है। पाठ्य-पुस्तक उसे पहले से बता देती है कि उसे क्या पढ़ाना है। उसी के अनुसार वह उपयोगी शिक्षण-विधियों का चुनाव करता हुआ अपने शिक्षण को प्रभावशाली एवं सफल बना सकता है।

5. शिक्षण का सशक्त साधन–पाठ्य-पुस्तक शिक्षण का सशक्त साधन है। एक नये अध्यापक के लिए तो यह उपकरणात्मक वरदान है। इसमें शिक्षण के लिए जैसे क्रमबद्ध एवं विधिवत आयोजन होता है वैसा आयोजन करना एक नये अध्यापक के लि[illegible] कठिन होता है। इस तथ्य की ओर संकेत करते हुए **रस्क** (Rusk) ने कहा है, "आधुनि[illegible] पाठ्य-पुस्तक एक उपकरणात्मक सम्पदा है जिसका वर्तमान स्कूल-कक्षा में महत्त्व[illegible] स्थान है। यदि इसका ठीक प्रयोग किया जाए.....यह सामहिक रूप से एक अनुभव[illegible] अध्यापक की अपेक्षा अधिक आयोजन प्रस्तुत कर सकती है।"

6. ज्ञान के स्थायीकरण में सहायक–भाषा का ज्ञान तथा भाषा के माध्यम से अन्य [illegible]षयों का ज्ञान अर्जित किया जाता है। यह ज्ञान जीवन में सहायक तभी होता है जब इसे [illegible]न-मस्तिष्क में स्थायित्व प्राप्त हो। ज्ञान के स्थायीकरण के लिए उसे स्मरण रखने की [illegible]आवश्यकता होती है और पाठ्य-पुस्तक स्मरण रखने में सहायता प्रदान करती है। अत: वे [illegible]न के स्थायीकरण में सहायक सिद्ध होती है।

7. स्वाध्याय के विकास में सहायक–भाषा-शिक्षा का एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य [illegible]द्यार्थियों में स्वाध्याय की प्रवृत्ति को विकसित करना है। पाठ्य-पुस्तक का अध्ययन [illegible]स्वाध्याय के विकास की ओर पहला महत्त्वपूर्ण कदम है। इससे विद्यार्थियों को अन्य [illegible]स्तकें पढ़ने की प्रेरणा मिलती है।

8. मौलिक चिन्तन के लिए प्रेरक–पाठ्य-पुस्तक मौलिक चिन्तन के लिए प्रेरित [illegible]रती है। अच्छी पाठ्य-पुस्तक के प्रत्येक पाठ के अंत में अभ्यासार्थ प्रश्न होते हैं। इन [illegible]श्नों में मौलिक चिन्तन की प्रक्रिया निहित होती है। इन प्रश्नों के द्वारा बच्चों में मौलिक [illegible]न्तन का धीरे-धीरे विकास होता है। इस प्रकार पाठ्य-पुस्तक मौलिक चिन्तन के लिए [illegible]शक्त पृष्ठभूमि प्रदान करती है।

9. ज्ञान के साथ-साथ मनोरंजन का भी साधन–पाठ्य-पुस्तक शिक्षण प्रक्रिया [illegible]था शिक्षा के उद्देश्यों को सम्मुख रखकर तैयार की जाती है। शिक्षण में मनोरंजन का भी [illegible]हत्त्वपूर्ण स्थान है। इसलिए पाठ्य-पुस्तक की रचना में उसके मनोरंजनात्मक तत्त्व की [illegible]ओर भी पूरा ध्यान दिया जाता है। परिणामस्वरूप विद्यार्थियों को पाठ्य-पुस्तक से केवल [illegible]न ही प्राप्त नहीं होता बल्कि मनोरंजन भी प्राप्त होता है। भाषा की पाठ्य-पुस्तक से तो [illegible]द्यार्थियों को पर्याप्त मनोरंजन प्राप्त होता है। भाषा की पाठ्य-पुस्तक में संकलित [illegible]हानियां, एकांकी, सरल एवं सरस कविताएं, हास्य एवं व्यंग्यात्मक लेख आदि विद्यार्थियों [illegible] पर्याप्त मनोरंजन करते हैं।

10. शिक्षा के विभिन्न तत्त्वों में सन्तुलन स्थापित रखने में सहायक–भाषा [illegible]क्षा के विभिन्न तत्त्व हैं; जैसे उच्चारण, अक्षर-विन्यास, व्याकरण, रचना कार्य आदि। [illegible]ी प्रकार भाषा में शिक्षा कविता, कहानी, निबन्ध, संवाद, एकांकी आदि विभिन्न विद्याओं [illegible] भी सम्मिलित करना होता है। भाषा का समुचित ज्ञान प्रदान करने के लिए इन विभिन्न [illegible]त्वों तथा विद्याओं में सन्तुलत स्थापित करने की आवश्यकता होती है। पाठ्य-पुस्तक के [illegible]र्माण में उस सन्तुलन का भी ध्यान रखा जाता है। इस प्रकार पाठ्य-पुस्तक भाषा-शिक्षा [illegible]विभिन्न तत्त्वों में सन्तुलन स्थापित करने में सहायक सिद्ध होती है।

11. मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक–भाषा शिक्षा में विद्यार्थियों [illegible] मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की ओर भी ध्यान देना होता है। विभिन्न वय-वर्ग के [illegible]ार्थियों की अपनी कुछ मानसिक आवश्यकताएं होती हैं। इन मानसिक आवश्यकताओं

की ओर ध्यान दिये बिना शिक्षण को रोचक एवं प्रभावपूर्ण नहीं बनाया जा सकता। भ
की पाठ्य-पुस्तक तैयार करते समय सम्बन्धित वय-वर्ग की मनोवैज्ञानिक आवश्यकता
को भी आधार बनाया जाता है जिसके कारण पाठ्य-पुस्तक द्वारा शिक्षण रोचक बन जा
है। क्योंकि पाठ्य-पुस्तक बच्चे की मानसिक रुचियों के अनुकूल होती है, इसलिए व
उसमें रुचि भी लेने लगता है। इस प्रकार शिक्षा को बाल-केन्द्रित बनाने में भी सहाय
मिलती है।

12. सुलभ एवं मितव्ययी साधन–सामान्यत: विद्यार्थियों के लिए विभिन्न साध
जुटाना कठिन होता है। परन्तु पाठ्य-पुस्तक एक ऐसा साधन है कि सभी विद्यार्थियों क
थोड़ा खर्च करने पर आसानी से मिल जाती है। पाठ्य-पुस्तकों के राष्ट्रीयकरण के कार
सस्ते दामों पर पाठ्य-पुस्तकें मिल जाती हैं। अत: पाठ्य-पुस्तक शिक्षा का सुलभ औ
मितव्ययी साधन है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि पाठ्य-पुस्तक शिक्षा प्राप्त करने का आवश्यक ए
महत्त्वपूर्ण साधन है। भाषा-शिक्षा में भाषा तथा शब्दावली का स्तर निश्चित करने, ज्ञान क
स्तर निर्धारित करने, विद्यार्थियों को वाचन-अभ्यास के ज्यादा से ज्यादा अवसर प्रदा
करने तथा उन्हें स्वाध्याय तथा मौलिक चिन्तन की प्रेरणा देने के लिए पाठ्य-पुस्तक
अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। पाठ्य-पुस्तक के प्रयोग पर जो आलोचना होती है
उसका कारण वस्तुत: पाठ्य-पुस्तक का घटिया चुनाव तथा उसका दुरुपयोग है।

आवश्यकता इस बात की है कि पाठ्य-पुस्तक का चुनाव सावधानी से किया जा
और यदि शिक्षा बोर्डों या विश्वविद्यालयों द्वारा पाठ्य-पुस्तकों की रचना होनी है तो इसके
लिए उन्हें विभिन्न क्षेत्रों के विशेषज्ञों तथा शिक्षकों का सक्रिय सहयोग प्राप्त करन
चाहिए। इसके अतिरिक्त अध्यापकों को भी पूर्णतय: पाठ्य-पुस्तकों पर निर्भर नहीं रहन
चाहिए। शिक्षण एक गतिशील क्रिया है। लकीर का फकीर बनने से इस गतिशीलता क
हत्या होगी। पाठ्य- पुस्तक लक्ष्य नहीं, साधन है। इसकी लोकप्रियता एवं आवश्यकता क
तो कम नहीं किया जा सकता परन्तु यदि अध्यापक विवेक के साथ इसका प्रयोग करें त
इसकी उपयोगिता को बढ़ाया अवश्य जा सकता है।

संस्कृत पाठ्य-पुस्तकों के प्रकार
[Kinds of Sanskrit Text Books]

संस्कृत पाठ्य-पुस्तकों को मुख्यत: निम्नलिखित दो भागों में बांटा जा सकता है-

1. **सूक्ष्म अध्ययन के लिए पाठ्य-पुस्तक**–इसमें पद्य और गद्य का समावेश होत
है। यह मुख्यत: विद्यार्थियों के वाचन के लिए होता है। इसके माध्यम से विद्यार्थी भाषा के
विभिन्न तत्त्वों–उच्चारण, अक्षर-विन्यास, शब्दावली, सूक्तियों, व्यावहारिक व्याकरण

रचना कार्य–आदि का ज्ञान प्राप्त करते हैं। इस पाठ्य-पुस्तक के माध्यम से विद्यार्थियों के शब्द-भण्डार तथा सूक्ति-भण्डार में सक्रिय वृद्धि होती है। विद्यार्थियों से आशा की जाती है कि इस पाठ्य-पुस्तक में जिन शब्दों, सूक्तियों, मुहावरों एवं लोकोक्तियों का समावेश किया गया है, उनका वे शुद्ध प्रयोग कर सकें। प्राय: आठवीं कक्षा तक ऐसी पाठ्य-पुस्तक निर्धारित की जाती है।

2. **सहायक पुस्तक**–इसका प्रयोग द्रुत-पाठ के लिए किया जाता है। विद्यार्थी इस पुस्तक में प्रयुक्त शब्दों तथा उनके अर्थों को याद करने का चेतन प्रयत्न नहीं करते। उन्हें तीव्र गति से वाचन का अभ्यास कराने के लिए ही कोई सहायक पुस्तक निर्धारित की जाती है। ऐसी पुस्तक के माध्यम से विद्यार्थियों को इस योग्य बनाया जाता है कि वे जल्दी-जल्दी पढ़ कर भाव ग्रहण कर सकें।

इसके अतिरिक्त कुछ अन्य पुस्तकों को भी पाठ्य-पुस्तकों के रूप में निर्धारित किया जाता है, जैसे–

1. व्याकरण की पुस्तक।

2. कहानी, नाटक, एकांकी, काव्य की पाठ्य-पुस्तक (नोट–इन पाठ्य-पुस्तकों को हाई एवं हायर सैकण्डरी कक्षाओं के लिए निर्धारित किया जाता है।)

3. रचना एवं व्याहारिक व्याकरण कार्य की पुस्तिका जिसे प्राय: 'वर्क बुक' कहा जाता है। प्राइमरी कक्षाओं के बच्चों को रचना एवं व्याकरण का अभ्यास-कार्य करवाने के लिए इसे पाठ्य-पुस्तक के रूप में निर्धारित किया जाता है।

संस्कृत पाठ्य-पुस्तक की आवश्यक विशेषताएं
[Salient Features of Sanskrit Text Book]

उपर्युक्त पाठ्य-पुस्तकों में वाचन की पाठ्य-पुस्तकों का मत्त्वपूर्ण स्थान है। शेष पाठ्य-पुस्तकें व्याकरण, सहायक पुस्तक आदि न होने से भी काम चल जाता है, परन्तु वाचन के लिए पाठ्य-पुस्तक का होना अनिवार्य है। अत: यहां वाचन की पाठ्य-पुस्तक की विशेषताओं का ही उल्लेख किया जाएगा। अध्ययन की सुविधा के लिए पाठ्य-पुस्तक की विशेषताओं को दो भागों में बांटा जा सकता है–(1) आन्तरिक विशेषताएं और (2) बाह्य विशेषताएं।

1. आन्तरिक विशेषताएं–

(1) **विषय-सामग्री**–पाठ्य-पुस्तक में पढ़ने-पढ़ाने की सामग्री विषय-सामग्री कहलाती है। मूलत: इसी पर समूचा शिक्षण कार्य आलम्बित होता है। इसी के माध्यम से शिक्षा के उद्देश्य पूरे किये जाते हैं और विद्यार्थियों को आवश्यक विकास की ओर अग्रसर किया जाता है। पाठ्य-पुस्तक की विषय-सामग्री से वांछित लाभ प्राप्त करने के लिए इसमें निम्न विशेषताएं होनी चाहिएं–

(*i*) **उद्देश्य के अनुकूल**–प्रत्येक कक्षा की संस्कृत पाठ्य-पुस्तक की विषय सामग्री शिक्षा के व्यापक उद्देश्यों तथा उस कक्षा के विशिष्ट उद्देश्यों को सम्मुख रख तैयार की जानी चाहिए। जहां तक व्यापक उद्देश्यों का सम्बन्ध है–राष्ट्रीय शिक्षा उद्देश्यों, सम्पूर्ण शिक्षा क्रम की आवश्यकताओं तथा विद्यार्थियों के व्यक्तित्व विकास आवश्यकताओं की ओर ध्यान देना चाहिए। इसके अतिरिक्त भाषा शिक्षण की दृष्टि प्रत्येक कक्षा के अपने विशिष्ट उद्देश्य होते हैं। पाठ्य-पुस्तक की विषय सामग्री विशिष्ट उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक होनी चाहिए।

संस्कृत शिक्षण का एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य बच्चों के संस्कृत ज्ञान में वृद्धि करना है भाषा-ज्ञान की यह वृद्धि प्रत्येक कक्षा के स्तरानुकूल होनी चाहिए। अतः इस तथ्य को सम्मुख रख कर संस्कृत की पाठ्य-पुस्तक तैयार की जानी चाहिए। पाठ्य-पुस्तक की विषय-सामग्री जितनी अधिक उद्देश्यानुकूल होगी, उतनी अधिक वह उपयोगी होगी।

(*ii*) **मनोवैज्ञानिक आवश्यकता के अनुकूल**–पाठ्य-पुस्तक लेखकों तथा सम्पादकों के पांडित्य प्रदर्शन के लिए नहीं होती। यह विद्यार्थियों के प्रयोग के लिए होती है। इसलिए इसकी रचना में विद्यार्थियों की भावात्मक एवं मानसिक आवश्यकताओं को अवश्य ध्यान में रखना चाहिए। इसमें ऐसे विषयों का समावेश नहीं होना चाहिए जो विद्यार्थियों के मानसिक अनुभव में न आ सकते हों।

(*iii*) **विद्यार्थियों के पूर्व ज्ञान से सम्बन्धित**–संस्कृत की पाठ्य-पुस्तक में दी गई विषय-सामग्री विद्यार्थियों के पूर्व ज्ञान से सम्बन्धित होनी चाहिए। वस्तुतः पूर्व ज्ञान नये ज्ञान का आधार है। यदि विषय-सामग्री के चयन में इस आधार की उपेक्षा कर दी गई तो यह अमनोवैज्ञानिक होगा। स्कूल में दाखिल होने वाला बच्चा बिल्कुल कोरा नहीं होता, उसने अपने घर तथा सामाजिक परिवेश से बहुत कुछ सीखा होता है। इसी प्रकार एक कक्षा से दूसरी कक्षा में जाने वाला बच्चा भी अपनी मानसिक एवं बौद्धिक योग्यता के अनुसार कुछ ज्ञान प्राप्त कर लेता है। बच्चों के पूर्व ज्ञान की इस पृष्ठभूमि को नये ज्ञान का आधार बनाना चाहिए। किसी कक्षा की पाठ्य-पुस्तक में इतिहास, भूगोल, नागरिक शास्त्र, विज्ञान आदि की ऐसी बातों का समावेश नहीं होना चाहिए जिसके सम्बन्ध में पहले वे कुछ न जानते हों। ऐसी बातों को वह अच्छी तरह समझ नहीं पायेंगे।

(*iv*) **जीवन के साथ सम्बन्धित**–यथासम्भव पाठ्य-पुस्तक की विषय-सामग्री विद्यार्थियों के जीवन से चुनी जानी चाहिएं। उसमें दिये गये विषय विद्यार्थियों के जीवन के साथ सम्बन्धित होने चाहिए। परिचित वस्तुओं से आरम्भ कर के धीरे-धीरे दूर ले जाना वैज्ञानिक पद्धति है। पाठ्य-पुस्तक के विषयों के चयन के इस पद्धति का अनुसरण किया जाना चाहिए। जीवन केन्द्रित पाठ्य-पुस्तक पाठकों के लिए अधिक उपयोगी होती है क्योंकि इससे उनकी शिक्षा में रुचि बढ़ती है तथा अपने और आस-पास के जीवन को समझने की योग्यता का विकास होता है।

(*v*) **रोचक एवं मनोरंजक**–विद्यार्थी शुद्ध नीरस विषयों में बिल्कुल रुचि नहीं लेते हैं, भले ही वे विषय उनके कितने ही परिचित क्यों न हों। रोचक एवं मनोरंजक सामग्री उन्हें हमेशा आकर्षित करती रहती है और उसे बार-बार पढ़ने के लिए उनका मन लालायित रहता है। कई बार विषय रोचक नहीं होता और कई बार उसका वर्णन रोचक नहीं होता। रोचकता की रक्षा का भरसक प्रयत्न किया जाना चाहिए। योग्य लेखक शुष्क विषयों को भी अपनी वर्णन शैली से रोचक बना देते हैं। पाठ्य-पुस्तक में रोचकता एवं मनोरंजनात्मकता के समावेश करने के लिए हास्य-व्यंग्यात्मक सामग्री का भी चयन किया जा सकता है, पर यह सामग्री लचर, अश्लील तथा सस्ते किस्म की नहीं होनी चाहिए। यह सामग्री ऐसी होनी चाहिए जिससे विद्यार्थियों में स्वस्थ विनोदात्मक प्रवृत्ति का विकास हो सके।

(*vi*) **काल्पनिक विषयों का परिहार**–रोचकता एवं मनोरंजकता के नाम पर पाठ्य-पुस्तक में जादू-टोना, भूत-प्रेत तथा परियों की काल्पनिक कहानियों का समावेश नहीं होना चाहिए। इन काल्पनिक विषयों का बच्चों के मन पर गहरा प्रभाव है जिसके परिणामस्वरूप वे आगे चल कर भूत-प्रेतों तथा जादू-टोने में विश्वास करने लगते हैं। ऐसे विषयों का समावेश स्वस्थ एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण में बाधक सिद्ध होता है। अतः पाठ्य-पुस्तक में ऐसे काल्पनिक एवं अवैज्ञानिक विषयों का परिहार होना चाहिए।

(*vii*) **उपदेशात्मकता**–पाठ्य-पुस्तक में उपदेशात्मकता का समावेश नहीं होना चाहिए। यह एक भ्रमात्मक दृष्टिकोण है कि भाषा की पुस्तक द्वारा विद्यार्थियों को विभिन्न प्रकार के उपदेश दिये जाएं। भाषा-शिक्षक उपदेशक नहीं होता। उसे विद्यार्थियों को भाषा-ज्ञान प्रदान करके उनकी चिन्तन-योग्यता को विकसित करना होता है, परन्तु यदि गम्भीरता से देखा जाए तो उपदेशात्मकता चिन्तन-योग्यता के विकास में सहायक सिद्ध नहीं होती।

किसी कहानी या कविता के अंत में कोई उपदेशात्मक वाक्य लिख देना बिल्कुल व्यर्थ है। उपदेश को पढ़ कर प्रायः विद्यार्थियों को प्रतीत होता है कि 'कहानी या कविता से प्राप्त होने वाली शिक्षा तो लिखी हुई है। अब इसके आगे उन्हें क्या सोचना है?' ऐसी धारणा निश्चित रूप से चिन्तिन के ह्रास की सूचक है। कुछ प्रतिभा सम्पन्न विद्यार्थी जब दी गई शिक्षा पर चिन्तन करने लगते हैं तो उन्हें प्रतीत होता है कि यह शिक्षा गलत है या इस उपदेश की व्यावहारिक जीवन में कोई सार्थकता नहीं। ऐसी धारणा उस शिक्षा या उपदेश के प्रति अनास्था उत्पन्न करेगी। इसके अतिरिक्त आज की 'दोगली नीति' के युग में विद्यार्थी किसी भी उपदेश को मानने के लिए प्रेरित नहीं किये जा सकते। फिर यह उपदेशात्मकता क्यों?

आवश्यकता इस बात की है कि विद्यार्थियों को स्वस्थ एवं रचनात्मक चिन्तन के योग्य बनाया जाए ताकि वह किसी पाठ को पढ़ कर स्वयं उसके निष्कर्ष तक पहुंच सकें। किसी पाठ के अंत में यह लिख देना कि 'इस पाठ से हमें यह शिक्षा मिलती है' उपयोगी

नहीं। पाठ के अंत में ऐसा कुछ नहीं लिखना चाहिए। हां, विद्यार्थियों की चिन्तन-
को विकसित करने के लिए अभ्यासार्थ दिये गये प्रश्नों में यह प्रश्न दिया जा सकता
"इस पाठ में लेखक क्या कहना चाहता है?" कहने का तात्पर्य यह कि प्रत्यक्ष उपदेशात्म
का कोई लाभ नहीं। यदि बच्चों को कोई उपदेश देना है तो अप्रत्यक्ष रूप से देना चाहि
यह उपदेश उनके अपने चिन्तन का परिणाम होना चाहिए। उपदेश तो छोटे बच्चों के
सुग्राह्य नहीं होते। अतः पाठ्य-पुस्तक की विषय-सामग्री में उपदेशात्मकता का पुट
होना चाहिए।

***(viii)* विविधता**–विविधता रोचकता की पोषक है। भाषा की पाठ्य-पुस्तक
रोचक बनाने के लिए उसकी विषय-सामग्री में विविधता का समावेश होना चाहिए।
विविधता विभिन्न प्रकार की हो सकती है, जैसे–

(क) विषयों की विविधता–पाठ्य-पुस्तक में सामाजिक, प्राकृतिक एवं पारिवा
वातावरण के विविध विषयों का समावेश होना चाहिए।

(ख) विधाओं की विविधता–पाठ्य-पुस्तक (मिडल कक्षाओं तक) में केव
कहानियां, एकांकी, कविताएं या निबन्ध नहीं होने चाहिए। पाठ्य-पुस्तक में इन सब
सम्मिश्रण होना चाहिए। विधाओं की विविधता से बच्चों को साहित्य एवं अभिव्यक्ति
विभिन्न विधाओं का परिचय प्राप्त होता है।

(ग) रुचियों की विविधता–किसी कक्षा की पाठ्य-पुस्तक को लड़के भी पढ़
हैं और लड़कियां भी पढ़ती हैं। शहरों में रहने वाले विद्यार्थी भी इसका प्रयोग करते हैं औ
गांवों में रहने वाले विद्यार्थी भी इसका प्रयोग करते हैं। अतः पाठ्य-पुस्तक की विष
सामग्री में विविध रुचियों का समावेश होना चाहिए अर्थात् उसमें लड़कों तथा लड़कि
दोनों के लिए उपयोगी सामग्री होनी चाहिए। उसमें शहरी तथा ग्रामीण दोनों प्रकार के
वातावरण से सम्बन्धित तथ्यों का उल्लेख होना चाहिए। इस प्रकार की विविधता से
विद्यार्थियों को जीवन और समाज के विभिन्न तत्त्वों का परिचय प्राप्त होता है।

(घ) राष्ट्रीय दृष्टिकोण से विविधता–आरम्भिक कक्षाओं से ही विद्यार्थियों
राष्ट्रीय दृष्टिकोण के बीज आरोपित किये जाने चाहिएं। इस दिशा में भाषा की पाठ्य-
पुस्तक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। इसकी विषय-सामग्री में विभिन्न राज्यों की
विशिष्टताओं का क्रमशः समावेश होना चाहिए। इससे विद्यार्थियों में 'अनेकता में एकता'
की भावना का विकास होगा। हाई स्कूल की पाठ्य-पुस्तकों में अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण से
विविधता का समावेश किया जाना चाहिए।

***(ix)* समवाय**–भाषा की पाठ्य-पुस्तक में विभिन्न विषयों का परस्पर समवाय
स्थापित होना चाहिए। यदि कोई पाठ किसी ऐतिहासिक घटना के साथ सम्बन्धित है तो
उसका भूगोल तथा समाज शास्त्र के साथ समवाय स्थापित किया जा सकता है। इसी प्रकार
इतिहास, भूगोल, नागरिकता, सामान्य विज्ञान, साहित्य आदि विभिन्न विषयों में समवाय

पित करके विद्यार्थियों को मानव जीवन के समग्र-ज्ञान का बोध कराया जा सकता है।
यह बात अनुभव कराई जा सकती है कि सभी विषय अलग-अलग होते हुए भी एक-
के साथ सम्बन्धित हैं, परन्तु यह समवाय स्वाभाविक एवं प्राकृतिक होना चाहिए।

***(x)* साहित्यकारों की उचित रचनाओं का समावेश**–भाषा की पाठ्य-पुस्तक में
भिन्न कविताओं, निबन्धों, कहानियों आदि का समावेश किया जाता है। ऐसा करते
य प्रतिष्ठित साहित्यकारों की रचना का चयन किया जाता है, परन्तु साहित्यकारों की
ना का चुनाव करते समय विद्यार्थियों के स्तर को अवश्य सम्मुख रखना चाहिए। कठिन,
टिल, रहस्यात्मक एवं दार्शनिक रचनाओं में स्कूल स्तर के विद्यार्थियों की कोई रुचि नहीं
ती। इसलिए विद्यार्थियों को संस्कृत के महान् साहित्यकारों का परिचय उनकी दार्शनिक
तियों द्वारा नहीं दिया जाना चाहिए, अपितु ऐसी रचनाएं चुनी जानी चाहिएं जो विद्यार्थियों
मानसिक स्तर के अनुकूल हों।

***(xi)* मौलिकता**–भाषा-शिक्षा की पाठ्य-पुस्तक में विभिन्न साहित्यकारों की रचनाओं
संकलन किया जाता है। अन्य भाषाओं के साहित्यकारों का परिचय कराने के लिए
की कृतियों के अनुवाद पाठ्य-पुस्तक में संकलित किये जाते हैं। ऐसा करते समय
खक की मौलिकता का अवश्य संरक्षण होना चाहिए। कई बार सम्पादक मूल कृति का
क्षिप्त रूप तैयार करने में लेखक के मूल विचारों को परिवर्तित कर जाता है और किसी
त का अनुवाद करने में उसकी मूल भावना को अच्छी प्रकार से व्यक्त नहीं करता या
हीं कर पाता। ऐसा करना मूल लेखक के साथ अन्याय है। किसी भी रचना को संक्षिप्त
अनुवादित करते समय मूल लेखक के मौलिक विचारों को विकृत नहीं किया जाना
हिए। ऐसा करने से विद्यार्थियों को उस लेख की ठीक जानकारी प्राप्त नहीं होती।

***(xii)* नैतिक एवं प्रेरणादायक**–भाषा शिक्षा की पाठ्य-पुस्तक की विषय-सामग्री
लक एवं चारित्रिक विकास में सहायक होनी चाहिए। बच्चे के व्यक्तित्व का सर्वतोन्मुख
कास करते हुए उसे सामाजिक एवं राष्ट्रीय विकास की ओर अग्रसर करना–शिक्षा का
क महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए भाषा की पाठ्य-पुस्तक में नैतिक
चारित्रिक विकास से सम्बन्धित प्रेरणादायक सामग्री का समावेश होना चाहिए। पाठ्य-
तक के द्वारा विद्यार्थियों में सच्चाई, ईमानदारी, कर्मठता, कर्त्तव्य परायणता, सहयोगात्मकता,
, आज्ञाकारिता, सहिष्णुता, साहस, धैर्य, वीरता, देश-प्रेम, साहस, दया, विनम्रता,
त्म-विश्वास, सहानुभूति, करुणा, दया, परिश्रम आदि गुणों का विकास होना चाहिए।
न्तु ये सब गुण उपदेशात्मक शैली से नहीं सिखाये जाने चाहिएं बल्कि परोक्ष रूप से
खाये जाने चाहिएं। प्रत्येक पाठ में निहित आदर्श सीधे विद्यार्थियों के मन को प्रभावित
ें, तभी वे उसे सहज रूप से आत्मसात कर पायेंगे–इसी में उस पाठ के शिक्षण की
योगिता है।

(2) **क्रम एवं परिमाण**–भाषा की पाठ्य-पुस्तक की विषय-सामग्री के चयन गठन में क्रमबद्धता तथा परिमाण का ध्यान भी रखना चाहिए–

(A) क्रमबद्धता की दृष्टि से निम्न बातें उल्लेखनीय हैं–

(क) विषय-सामग्री के गठन में 'ज्ञात से अज्ञात' के क्रम का पालन होना चाहिए। प्रारम्भिक कक्षाओं की पाठ्य-सामग्री जानी-पहचानी वस्तुओं एवं क्रियाओं से सम्बन्धित होनी चाहिए। इसी प्रकार प्रारम्भिक कक्षाओं में मूर्त विषय पढ़ाये जाने चाहिएं और उच्च कक्षाओं में अमूर्त विषयों का समावेश होना चाहिए।

(ख) प्रत्येक कक्षा की विषय-सामग्री पहली तथा अगली कक्षा की विषय-वस्तु के क्रमिक रूप से सम्बन्धित होनी चाहिए। प्रत्येक कक्षा की पाठ्य-सामग्री विद्यार्थियों के क्रमिक विकास की सूचक होनी चाहिए।

(ग) विषय-वस्तु के क्रमिक विकास में विद्यार्थियों की अवस्थानुकूल रुचियों की ओर ध्यान देना आवश्यक है, जैसे–

(*a*) प्रारम्भिक कक्षाओं के लिए घर, स्कूल, पड़ोस, गांव आदि निकटतम वातावरण से सम्बन्धित विषय : पशु-पक्षियों की कहानियों : सूर्य, चांद, वर्षा, बसन्त आदि प्राकृतिक विषयों : लोक-कथाओं, महापुरुषों की जीवनियों, खेलों, परिचित मेलों एवं त्यौहारों, राजाओं एवं रानियों की बालापयोगी कहानियों : चुटकलों : गीतों आदि का समावेश किया जा सकता है–क्योंकि ऐसे सब विषय उस अवस्था के बच्चों की रुचियों के अनुकूल होते हैं।

(*b*) मिडल-कक्षाओं के विद्यार्थियों की रुचियों में क्रमिक विकास के कारण परिवर्तन हो जाता है। इसलिए उनकी पाठ्य-सामग्री में भी परिवर्तन होना चाहिए। इन्हें पाठ्य-पुस्तक में वीरतापूर्ण, साहसिक कहानियां, युद्धपूर्ण गाथाओं, सामाजिक एवं पौराणिक कहानियों, देश-भक्तों तथा महापुरुषों तथा महापुरुषों की जीवनियों, शिकार विवरण, देश-विदेश के लोगों के रहन-सहन के वर्णनों आदि का समावेश होना चाहिए।

(*c*) हाई स्कूलों की कक्षाओं की पाठ्य-सामग्री में जासूसी एवं साहसपूर्ण कहानियां, ऐतिहासिक एवं पराक्रमपूर्ण गाथाओं, वैज्ञानिक अन्वेषणों, खोज-सम्बन्धी विवरणों, विभिन्न प्राकृतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, व्यावसायिक एवं राजनैतिक विषयों, हास्य-व्यंग्य, महापुरुषों की जीवनियों आदि का समावेश होना चाहिए।

इस प्रकार विभिन्न अवस्था के विद्यार्थियों की रुचियों के अनुकूल विषय-वस्तु का क्रम निर्धारित होना चाहिए।

(*d*) पाठ्य-पुस्तक में पाठों को ऋतु तथा समय के अनुकूल क्रमबद्ध करना चाहिए। प्राय: शिक्षण-सत्र अप्रैल में आरम्भ होता है। इसलिए पाठ्य-पुस्तक के आरम्भिक पाठ यदि अप्रैल के मौसम और त्यौहारों से सम्बन्धित हों तो इनकी उपयोगिता बढ़ जाती

पाठ-शिक्षण को प्राकृतिक एवं सामाजिक वातावरण के साथ सम्बन्धित करना सरल एवं स्वाभाविक होगा। उदाहरण स्वरूप यदि हरियाणा की चौथी कक्षा की संस्कृत पुस्तक में दूसरा या तीसरा पाठ 'वैसाखी' से सम्बन्धित हो तो अध्यापक उसे अधिक प्रभावशाली ढंग से पढ़ा सकेगा और विद्यार्थी उसका रुचिपूर्वक अध्ययन कर सकेंगे। इसी प्रकार वर्षा-ऋतु से सम्बन्धित पाठ उस क्रम पर रखें जाएं जहां उन्हें वर्षा-ऋतु के आस-पास पढ़ाया जा सके। अत: पाठ्य-सामग्री को ऋतु एवं समय के अनुरूप संकलित करने से शिक्षा जीवन की वास्तविकता के समीप लाई जा सकती है।

(*e*) पाठ्य-पुस्तक के विभिन्न पाठों में निश्चित क्रम होना चाहिए। एक साथ सभी कहानियों या सभी निबन्धों या सभी संवादों को रखना उचित नहीं। इससे एकरसता उत्पन्न होती है जिससे रुचि में ह्रास होता है। कहानी, कविता, निबन्ध, संवाद, जीवनी पाठों का यह क्रम होना चाहिए।

(*f*) विधाओं के क्रम के समान विषयों को भी क्रम से रखना चाहिए अर्थात् एक ही विषय से सम्बन्धित सभी पाठ एक साथ नहीं होने चाहिए। विषयों की विविधता तभी सार्थक हो सकती है, जब उन्हें एक क्रम में रखा जाए। सभी प्राकृतिक विषय या सामाजिक विषय या युद्ध सम्बन्धी विषय या कृषि सम्बन्धी विषय या पारिवारिक विषय आदि एक-दूसरे के साथ नहीं आने चाहिएं बल्कि उन्हें सुरुचिपूर्ण क्रमबद्ध करना चाहिए। यदि पहले प्राकृतिक विषय रखा गया है तो उसके बाद कोई पारिवारिक विषय रखा जा सकता है। उसके पश्चात् कोई राष्ट्रीय विषय रखा जा सकता है। इस प्रकार विभिन्न विषयों के सम्पादन में अनुकूल एवं सुरुचिपूर्ण क्रम होना चाहिए।

(B) परिमाण की दृष्टि से विषय-सामग्री के गठन में निम्न बातों की ओर ध्यान देना चाहिए–

(*i*) विषय-सामग्री की मात्रा इतनी होनी चाहिए जो निर्धारित समय में समाप्त हो सके। विषय-सामग्री की मात्रा इतनी अधिक नहीं होनी चाहिए जिसे निर्धारित समय में समाप्त करना कठिन हो और इतनी कम भी नहीं होनी चाहिए जो निर्धारित समय से बहुत पहले समाप्त हो जाए।

(*ii*) विषय-सामग्री की मात्रा निश्चित करते समय भाषा-शिक्षण के लिए रखे गये पीरियड भी सम्मुख रखने चाहिएं।

(*iii*) विषय-सामग्री की कठिनाई तथा सरलता की मात्रा में सन्तुलन होना चाहिए।

(*iv*) पाठ अधिक लम्बे नहीं होने चाहिएं। एक पीरियड में निर्धारित समय के अनुसार पाठ की लम्बाई एवं कठिनाई निश्चित की जानी चाहिए। एक पाठ इतना लम्बा होना चाहिए जिसे एक पीरियड में आसानी से पढ़ाया जा सके। प्रारम्भिक कक्षाओं के लिए प्रत्येक पाठ तीन-चार पृष्ठों से अधिक लम्बा नहीं होना चाहिए। मिडल की कक्षाओं के

लिए प्रत्येक पाठ की लम्बाई चार-छः पृष्ठ से अधिक नहीं होनी चाहिए। इसी प्रकार हाई स्कूल की कक्षाओं के लिए प्रत्येक पाठ की लम्बाई 6 से 8-9 पृष्ठों तक होनी चाहिए। लम्बे पाठ विद्यार्थियों के लिए सुबोध नहीं होते, इसलिए वे इनमें रुचि नहीं लेते। अतः यथासम्भव लम्बे पाठों का परिहार करना चाहिए।

(3) भाषा–भाषा की पाठ्य-पुस्तक में भाषा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रभावपूर्ण एवं उचित भाषा के प्रयोग से शुष्क विषय को भी रोचक बनाया जा सकता है, जबकि दोषपूर्ण भाषा के कारण रोचक विषय भी नीरस बन कर रह जाता है। भाषा की पाठ्य-पुस्तक के द्वारा विद्यार्थियों के शुद्ध भाषा-ज्ञान में वृद्धि करनी होती है। यदि पाठ्य-पुस्तक की भाषा ही दोषपूर्ण है तो विद्यार्थियों को शुद्ध भाषा का प्रयोग कैसे सिखाया जा सकता है। अतः भाषा की पाठ्य-पुस्तक तैयार करते समय उसके भाषा तत्त्व की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। इसके लिए निम्नलिखित बातों की ओर ध्यान देना उपयोगी सिद्ध हो सकता है–

***(i)* सरलता**–भाषा की पाठ्य-पुस्तक की भाषा सरल एवं धारा प्रवाह होनी चाहिए। सरलता से यह तात्पर्य नहीं कि समूची पुस्तक में अत्यन्त सरल एवं सामान्य शब्दों का ही प्रयोग किया जाए। पाठ्य-पुस्तक के माध्यम से विद्यार्थियों का शब्द-ज्ञान भी बढ़ाना होता है। इसलिए उसमें ऐसे शब्दों का प्रयोग अवश्य होगा जो उनके लिए कठिन हों। आवश्यकता इस बात की है कि भाषा सरलता से जटिलता की ओर बढ़े। पाठ्य-पुस्तक के आरम्भिक पाठों में सरल शब्दों का प्रयोग होना चाहिए। यह सरलता क्रमानुसार कठिनता की ओर बढ़नी चाहिए।

***(ii)* स्पष्टता**–भाषा की पाठ्य-पुस्तक की भाषा स्पष्ट एवं सुबोध होनी चाहिए। पाठ्य-पुस्तक के रचनाकार को जिन पाठों की स्वयं रचना करनी होती है, उनमें उसे स्पष्ट भाषा का प्रयोग करना चाहिए और जिन पाठों का संकलन करना होता है उनका चयन करते समय भाषा की स्पष्टता को अवश्य ध्यान में रखना चाहिए। पाण्डित्यपूर्ण शब्दों से मंडित लम्बे-लम्बे मिश्रित वाक्य विद्यार्थियों के लिए दुर्बोध होते हैं। इनका यथासम्भव प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए।

***(iii)* स्तरानुकूल**–पाठ्य-पुस्तक में प्रयुक्त भाषा विद्यार्थियों की कक्षा, आयु तथा रुचि के स्तरानुकूल होनी चाहिए। स्तरानुकूल भाषा के प्रयोग से विद्यार्थियों की भाषा के प्रति रुचि बढ़ती है और पाठ्य-सामग्री उनके लिए रोचक एवं सुबोध बन जाती है।

***(iv)* क्रमिक शब्दावली**–भाषा शिक्षण द्वारा विद्यार्थियों के शब्द-ज्ञान में वृद्धि की जाती है। इसके लिए आवश्यक है कि शब्दावली का क्रमिक विकास आयोजित किया जाए। इसकी योजना आरम्भ में ही बना लेनी चाहिए। शब्दावली के क्रमिक विकास के लिए अग्रलिखित कुछ बातों की ओर ध्यान देना ज़रूरी है–

(क) विभिन्न शिक्षा-स्तरों के लिए शब्दावली निश्चित की जानी चाहिए और उसे उस स्तर की कक्षाओं में सरल से जटिल के आधार पर विभाजित करना चाहिए, जैसे प्राइमरी कक्षाओं के लिए आधारभूत शब्दावली निश्चित करके उसे उत्तरोतर कठिनाई की दृष्टि से क्रमशः विभिन्न कक्षाओं में बांट देना चाहिए। इसी प्रकार मिडल और हाई कक्षाओं के स्तर के लिए भी शब्दावली निश्चित की जानी चाहिए। केन्द्रीय शिक्षा मन्त्रालय के संस्कृत विभाग ने इस दिशा में सराहनीय कार्य किया है। उसने 2000 शब्दों की बुनियादी शब्दावली निश्चित की है। इसके अतिरिक्त उसने 500 शब्दों की संक्षिप्त आधारभूत प्रणाली का भी निर्माण किया है। विभिन्न राज्यों में प्रारम्भिक कक्षाओं की पाठ्य-पुस्तकों में इसी शब्दावली को कुछ परिवर्तन के अनुसार प्रयुक्त किया जाता है। स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार यह परिवर्तन ज़रूरी है।

(ख) शब्दावली की चुनाव करते समय विद्यार्थियों के मानसिक स्तर, स्थानीय शब्दों, उपयोगिता तथा उच्चारण एवं लिपि की कठिनाई का अवश्य ध्यान रखना चाहिए।

(ग) ऐसे विचारों से सम्बन्धित शब्दों का चयन नहीं करना चाहिए जिन्हें विद्यार्थी समझ नहीं सकते। डॉ० बागर्ससे के कथनानुसार ऐसे शब्दों का बहिष्कार करना चाहिए जो उन विचारों या वस्तुओं से सम्बन्धित हों जिनसे विद्यार्थी परिचित नहीं हैं।

(घ) जिस कक्षा में नयी शब्दावली का ज्ञान कराना है उसे भी उत्तरोतर कठिनाई के अनुसार बांट कर विभिन्न पाठों में प्रयुक्त करना चाहिए।

(ङ) नयी शब्दावली के मोह में पुराने शब्दों को भूल नहीं जाना चाहिए। पुराने शब्दों का बार-बार प्रयोग करते हुए नये शब्दों का परिचय कराना चाहिए। एक पाठ में नये शब्दों की संख्या दस से अधिक नहीं होनी चाहिए। पाठ में जितने नये शब्दों का परिचय कराना हो उनका उस पाठ में तथा अगामी पाठ में बार-बार प्रयोग होना चाहिए।

(च) कई पाठ्य-पुस्तकों में प्रत्येक पाठ के आरम्भ होने से पहले उसमें प्रयुक्त नये शब्द दे दिये जाते हैं। नये शब्दों से परिचित करवाने की यह विधि अमनोवैज्ञानिक है। नये शब्दों को पाठ में उचित स्थान पर प्रयुक्त किया जाना चाहिए। पाठ के अंत में नये शब्द तथा उनके अर्थ लिखने चाहिए।

(छ) पाठ्य-पुस्तक की शब्दावली तद्भव से तत्सम की ओर अग्रसर होनी चाहिए। प्रारम्भिक कक्षाओं में 'अभिवादन', 'अभिनन्दन', 'विह्वलता', 'सदृश्य' जैसे तत्सम शब्दों को समझना और याद करना बच्चों के लिए अत्यन्त कठिन होता है। ऐसे शब्दों को हाई-स्कूल की कक्षाओं में पढ़ाया जाना चाहिए। तद्भव से तत्सम शब्दावली की ओर अग्रसर होते हुए भी विद्यार्थियों की मानसिक अवस्था तथा उनके बौद्धिक स्तर को अवश्य ध्यान में रखना चाहिए।

(ज) अश्लील एवं भद्दी शब्दावली का प्रयोग नहीं होना चाहिए। हास्य एवं स्वाभाविकता की आड़ में ऐसे शब्दों का प्रयोग करना शिक्षा के प्रति अन्याय करना है।

(4) शैली–पाठ्य-पुस्तक के विभिन्न पाठों में सरल, सुबोध तथा प्रभावोत्पादक शैली का प्रयोग होना चाहिए। शैली में विविधता तथा स्तरानुकूलता का भी ध्यान रखा जाना चाहिए। छोटे बच्चे कथाओं तथा संवादों में अधिक रुचि लेते हैं। इसलिए प्रारम्भिक कक्षाओं में कथात्मक एवं संवाद शैलियों का प्रयोग किया जाना चाहिए।

यदि तीसरी कक्षा के विद्यार्थियों को 'सफाई' की महत्ता बतानी है तो इसे निबन्धात्मक शैली में लिखने की अपेक्षा संवादात्मक शैली में प्रयुक्त करना अधिक उपयोगी होगा। मित्रों के 'संवाद' द्वारा यह विषय रोचकतापूर्वक विद्यार्थियों को हृदयंगम कराया जा सकता है। यदि दो विद्यार्थियों से यह संवाद बुलवाया जाए तो इस से शिक्षण में नाटकीय शैली का भी समावेश हो जाएगा जो अपेक्षाकृत अधिक प्रभावोत्पादक सिद्ध होगा। वर्णनात्मक शैली का प्रारम्भिक कक्षाओं में कम प्रयोग होना चाहिए।

विविध शैलियों का प्रयोग करते समय उनमें सन्तुलन एवं औचित्य का भी ध्यान रखना चाहिए। एक ही शैली में लिखे कई पाठों को एक दूसरे के पश्चात् रख देने से रोचकता का ह्रास होगा। विविध शैलियों का प्रयोग भी किसी क्रम के अनुसार होना चाहिए। अत: शैली के चयन में विद्यार्थियों के स्तर, विषय एवं क्रम के औचित्य का ध्यान देना आवश्यक है। प्रारम्भिक कक्षाओं में कथात्मक, संवादात्मक तथा विवरणात्मक शैलियों का प्रयोग अच्छा रहता है। मिडल तथा हाई कक्षाओं में इनके अतिरिक्त भावात्मक एवं तर्क प्रधान शैलियों का भी प्रयोग किया जाना चाहिए।

भाषा शैली के साथ व्याकरण का भी गहरा सम्बन्ध है। यदि बच्चों को व्याकरण सम्मत शुद्ध भाषा का प्रयोग सिखाना है तो पाठ्य-पुस्तक की भाषा भी ऐसी होनी चाहिए। भाषा में विराम-चिन्हों, शब्द-विन्यासों तथा व्याकरण की अन्य अशुद्धियां नहीं होनी चाहिएं। याद रहे कि बच्चे छपी हुई प्रत्येक बात को ठीक मान लेते हैं। वे छपी हुई अशुद्धियों को शुद्ध मान कर अपनाने लगेंगे। अत: व्याकरण की अशुद्धियों के प्रति विशेष सावधान रहने की आवश्यकता है।

इसके अतिरिक्त प्रत्येक पाठ छोटे-छोटे गद्यांशों (पैराग्राफ) में बंटा होना चाहिए और प्रत्येक गद्यांश में नये विचार का वर्णन होना चाहिए जो पिछले गद्यांश के विचार की स्वाभाविक कड़ी हो। इस प्रकार पाठ को विद्यार्थियों के लिए अपेक्षाकृत अधिक सुबोध बनाने में सहायता मिलेगी।

(5) व्याख्या, टिप्पणी एवं अभ्यास–पाठ्य-पुस्तक के प्रत्येक पाठ में कुछ नये शब्दों तथा प्रसंगों का समावेश अवश्य होता है। उनका विद्यार्थियों को सम्यक् ज्ञान करवाने के लिए उनकी व्याख्या एवं टिप्पणी की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार विद्यार्थियों के बोध-परीक्षण तथा उनकी चिंतन शक्ति को विकसित करने के लिए 'अभ्यास' अत्यन्त आवश्यक है। अत: पाठ्य-पुस्तक में व्याख्या, टिप्पणी तथा अभ्यास का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

इस विषय में निम्नलिखित बातें विशेष उल्लेखनीय हैं–

(*i*) प्रत्येक पाठ के आरम्भ में लेखक या कवि का संक्षिप्त परिचय होना चाहिए।

(*ii*) प्रत्येक पाठ को आरम्भ करने से पहले अध्यापक के निर्देशार्थ पाठ का संक्षिप्त विषय बनाना चाहिए। इसके अतिरिक्त उन शिक्षण-साधनों का उल्लेख भी होनी चाहिए जो उस पाठ के शिक्षण में अध्यापक के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं।

(*iii*) प्रत्येक पाठ के अंत में कठिन शब्दों तथा मुहावरों का अर्थ देना चाहिए। उस पाठ में आये हुए विभिन्न ऐतिहासिक एवं पौराणिक प्रसंगों का उल्लेख भी होना चाहिए।

(*iv*) अपरिचित वस्तुओं, तथ्यों तथा नामों पर संक्षिप्त टिप्पणियां दी जानी चाहिए।

(*v*) प्रत्येक पाठ के अंत में विद्यार्थियों के अभ्यासार्थ प्रश्न दिये जाने चाहिएं। ये प्रश्न विभिन्न प्रकार के होने चाहिएं। इन प्रश्नों के माध्यम से पाठ की पुनरावृत्ति होती है। पाठ की विषय-वस्तु, व्याकरण के व्यावहारिक प्रयोग, नये शब्दों एवं मुहावरों के प्रयोग तथा रचना कार्य से सम्बन्धित विभिन्न प्रश्नों का निर्माण करना चाहिए।

(*vi*) पाठ्य-पुस्तक के आरम्भ में विषय-सूची भी दी जानी चाहिए।

(*vii*) पाठ्य-पुस्तक में विभिन्न पाठों की आवश्यकतानुसार चित्र भी दिये जा सकते हैं। प्रारम्भिक कक्षाओं की पाठ्य-पुस्तक में चित्र अवश्य होने चाहिएं क्योंकि बच्चों का चित्रों के प्रति स्वाभाविक आकर्षण होता है। चित्रों में सुरुचिपूर्ण रंगों का प्रयोग होना चाहिए। वे सुन्दर और स्पष्ट होने चाहिए तथा सम्बन्धित पाठ के साथ लगे होने चाहिएं। मिडल तथा हाई स्कूल की कक्षाओं की पाठ्य-पुस्तक में रंगीन चित्रों की आवश्यकता नहीं होती। फिर भी यदि कवियों तथा लेखकों, प्राकृतिक दृश्यों, विदेशी स्थलों आदि के चित्र दे दिये जाएं तो पाठ्य-पुस्तक की उपयोगिता कुछ बढ़ जाएगी।

2. बाह्य विशेषताएं–

पाठ्य-पुस्तक का बाह्य रूप-रंग भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं होता। उसके प्रति पहला आकर्षण उसकी बाहरी छटा से होता है। उसके आवरण एवं आकार को देखकर बच्चा उसके प्रति आकर्षित होता है। उसमें उसे अपने पास रखने की रुचि जागती है और यही रुचि उसे उस पुस्तक को पढ़ने की ओर प्रवृत्त करती है। पाठ्य-पुस्तक के बाह्य पहलू में दो बातें सम्मिलित हैं–

(1) सम्पादन एवं प्रकाशन तथा

(2) फार्मेट अर्थात् आवरण, छपाई, टाईप, आकार आदि।

(1) सम्पादक एवं प्रकाशन–कई पाठ्य-पुस्तकों में सभी विषय, सामग्री संग्रहीत होती है। उसमें विभिन्न कवियों, कहानीकारों, एकांकीकारों तथा निबन्धकारों की रचनाओं का संकलन होता है। सम्पादक उनका उचित सम्पादन करता है। कई पाठ्य-पुस्तकें किसी एक व्यक्ति द्वारा रचित होती हैं। वही व्यक्ति उसका लेखक भी होता है और सम्पादक भी।

कई पाठ्य-पुस्तकों की कुछ रचनाएं स्वयं सम्पादक द्वारा लिखी होती हैं और अन्य रच
प्रतिष्ठित लेखकों की लिखी होती हैं।

इससे सिद्ध होता है कि सम्पादक का कार्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। उसे स्वयं रच
कार्य करना हो या अन्य लेखकों की रचनाओं का चयन करना-दोनों स्थितियों में उ
सावधानी से काम करना होता है। इसके अतिरिक्त उसे विभिन्न लेखकों के परिचय, पा
के संक्षेप, उद्देश्य, व्याख्याएं, संदर्भ, टिप्पणियां आदि भी लिखनी होती हैं। ये सभी का
साधारण योग्यता से नहीं हो सकते। इसके लिए विशेष गुणों की आवश्यकता होती है,
जैसे-

(*i*) संस्कृत साहित्य का विस्तृत अध्ययन।

(*ii*) संस्कृत भाषा की प्रकृति एवं विकास का ज्ञान।

(*iii*) भाषा शिक्षा के विशिष्ट उद्देश्यों का ज्ञान।

(*iv*) शिक्षा के व्यापक उद्देश्यों का ज्ञान।

(*v*) भाषा-शिक्षण की नवीनतम विधियों की जानकारी।

(*vi*) भाषा-शिक्षा का अनुभव।

(*vii*) जिस शिक्षा-स्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक लिखी जा रही है उसके विद्यार्थियों की मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं का अध्ययन।

(*viii*) यदि अहिन्दी भाषी विद्यार्थियों के लिए पाठ्य-पुस्तक का निर्माण करना है तो उनकी मातृभाषा तथा उनके सामाजिक वातावरण का ज्ञान।

(*ix*) राष्ट्रीय आवश्यकताओं का अध्ययन आदि।

इन सभी गुणों से सम्पन्न व्यक्ति लग्न और परिश्रम से अच्छी पाठ्य-पुस्तक के निर्माण में समर्थ हो सकता है। सम्पादन का कार्य यदि स्कूल में काम कर रहे अध्यापकों को सौंपा जाए तो अच्छा है। क्योंकि उन्हें स्कूल स्तर पर शिक्षण का व्यापक अनुभव होता है, इसलिए वे अच्छी तरह समझ सकते हैं कि किस स्तर के लिए कैसी पाठ्य-पुस्तक उपयोगी रहेगी।

पाठ्य-पुस्तकों का प्रकाशन यथासम्भव शिक्षा बोर्डों या सरकार के हाथ में होना चाहिए। इस प्रकार सभी विद्यार्थियों को सस्ते मूल्यों पर पुस्तकें प्राप्त हो सकेंगी और प्रांत के सभी स्कूलों में एक ही प्रकार की पाठ्य-पुस्तकें लगाना सम्भव हो सकेगा। प्रायः सभी प्रांतों में पाठ्य-पुस्तकें तैयार करने तथा प्रकाशित करने का काम सरकार के हाथों में ही है। यह बहुत अच्छी बात है। शिक्षा बोर्डों या शिक्षा विभागों की पाठ्य-पुस्तकें तैयार कराने के लिए ऐसे अध्यापकों को नियुक्त करना चाहिए जिनमें उपर्युक्त योग्यताएं विद्यमान हों और उन्हें इस काम के लिए अच्छा पारिश्रमिक देना चाहिए।

यदि किसी कारण अन्य प्रकाशकों द्वारा छापी गई पाठ्य-पुस्तकें लगानी पड़ें तो उनका सावधानी में चयन करना चाहिए। गुणों के आधार पर ही पाठ्य-पुस्तकों का चयन होना चाहिए। रिशवत के आधार पर नहीं। याद रहे कि पाठ्य-पुस्तक शिक्षा का सशक्त साधन है। इसलिए उसके निर्माण एवं चयन में किसी प्रकार का स्वार्थ या भ्रष्टाचरण समूची शिक्षा के लिए हानिकारक सिद्ध हो सकता है।

(2) फार्मेट अर्थात् आवरण, छपाई, टाईप एवं आकार-

(*i*) पाठ्य-पुस्तक का आवरण (कवर) रंगीन एवं आकर्षक होना चाहिए। रंगीन आवरण से केवल बच्चे ही नहीं बल्कि बड़े भी आकर्षित होते हैं। इसके अतिरिक्त आवरण मजबूत होना चाहिए।

(*ii*) पाठ्य-पुस्तक की छपाई मोटे कागज़ पर होनी चाहिए। विद्यार्थियों को एक हाई स्कूल की कक्षाओं में दो साल पुस्तक अपने पास रखनी होती है। उसे कई बार खोलना और पढ़ना होता है। इसके लिए आवश्यक है कि पाठ्य-पुस्तक का कागज अच्छा और मजबूत हो। अक्षरों का साईज़ विद्यार्थियों की अवस्था के अनुकूल होना चाहिए।

पहली श्रेणी के लिए बच्चों के अक्षरों का साईज़ 60 प्वाइंट होना चाहिए, दूसरी श्रेणी के लिए अक्षरों का साईज़ 36 से 24 प्वाइंट तक रखा जा सकता है। तीसरी से पांचवीं तक की कक्षाओं के विद्यार्थियों के लिए अक्षरों का साईज़ 16 प्वाइंट और अन्य कक्षाओं के 12 प्वाइंट होना चाहिए। दो पंक्तियों के बीच का फ़ासला अक्षरों के साईज़ के अनुसार रखना चाहिए। यह फासला कम से कम चौथाई इंच तो होना ही चाहिए। पहली कक्षा के लिए यह फासला दुगना हो तो अच्छा रहेगा।

(*iii*) पुस्तक का आकार साधारणतया 6″ × 4″ होता है। पहली श्रेणी की पुस्तक के अक्षर मोटे होते हैं, इसलिए उसका आकार भी बड़ा होना चाहिए।

अतः भाषा की पाठ्य-पुस्तक में यथासम्भव उपर्युक्त आन्तरिक एवं बाह्य विशेषताओं का समावेश अवश्य होना चाहिए। तभी उसके द्वारा शिक्षा एवं शिक्षण की विभिन्न आवश्यकताएं पूरी की जा सकती हैं। पाठ्य-पुस्तक के सम्बन्ध में यह बात भी उल्लेखनीय हैं कि दो-तीन वर्षों के पश्चात् पाठ्य-पुस्तक की दोहराई अवश्य होनी चाहिए। इसके लिए पाठ्य-पुस्तक पर अध्यापकों तथा विद्यार्थियों की प्रतिक्रिया जानना भी बहुत ज़रूरी है। उसी प्रतिक्रिया के आधार पर पाठ्य-पुस्तक में आवश्यक परिवर्तन किये जाने चाहिएं।

पाठ्य-पुस्तक की रचना एवं दोहराई में विभिन्न शिक्षा बोर्डों की पाठ्य-पुस्तक समितियों को परस्पर सहयोग प्रदान करना चाहिए तथा स्कूल के अध्यापकों तथा विषय-विशेषज्ञों का भी सहयोग प्राप्त करना चाहिए। इसी प्रकार जीवन और समाज की नई आवश्यकताओं के अनुसार पाठ्य-पुस्तक में वांछित परिवर्तन करते समय उसे विद्यार्थियों

के विकास के लिए अधिक से अधिक उपयोगी बनाते रहने के सतत प्रयत्न करते रहने चाहिए।

पाठ्यक्रम से सम्बन्धित पाठ्य-पुस्तक की समीक्षा

वर्तमान में पाठ्य-पुस्तकों की दशा और दिशा अत्यन्त शोचनीय है क्योंकि अभी पाठ्य-पुस्तक शिक्षक के अधीन न होकर, शिक्षक पाठ्य-पुस्तक के अधीन है। पाठ्य-पुस्तक में विषय-सामग्री आवश्यकता से अधिक होने के कारण शिक्षक उस सामग्री को पूरे साल में नहीं पढ़ा पाता। पाठ्य-पुस्तकों में अनेक दोष हैं जिनको दूर करना अत्यन्त आवश्यक है। वर्तमान पाठ्य-पुस्तकों में निम्न दोष पाए जाते हैं–

1. पाठ्य-पुस्तकों का बाह्य रूप आकर्षक नहीं होता। इसके साथ-साथ छपाई और सम्पादन में भी कमी दिखाई देती है।
2. पाठ्य-पुस्तकों की विषय-वस्तु भी बालकों के स्तरानुकूल नहीं होती। पाठ्य-पुस्तकों में ऐसे पाठों का संकलन कर लिया जाता है जिनकी भाषा शैली या तो बहुत सरल होती है या फिर बहुत कठिन होती है।
3. प्राय: पाठ्य-पुस्तकों में शिक्षण के सिद्धान्त सूत्रों का पालन नहीं किया जाता जैसे कि सरल से कठिन की ओर, ज्ञात से अज्ञात की ओर।
4. पाठ्य-पुस्तकों में कठिन शब्दों, वाक्यों और कठिन सूक्तियों का प्रयोग किया जाता है, जिसको समझना बालकों की बुद्धि से बाहर की बात होती है।
5. छोटी कक्षाओं में आवश्यकता से अधिक उपदेश से सम्बन्धित पाठ होते हैं। पाठों के संकलन में रूढ़िवादिता पर बल दिया जाता है, जिसके कारण छात्रों की विचारधारा प्रगतिशील नहीं हो पाती।
6. पाठ्य-पुस्तकों में कविताओं का संकलन परम्परागत ढंग से किया हुआ होता है, जिसकी आज की परिस्थितियों में कोई आवश्यकता नहीं है।
7. अकसर यह भी देखा जाता है पाठ्य-पुस्तकों में व्याकरण और लिपि संबंधी भी अनेक प्रकार के दोष होते हैं। जिनका अध्ययन करने वालों पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

पाठ्य-पुस्तकों में उपर्युक्त दोष पाए जाने के कुछ कारण हैं, जो निम्न हैं–

1. सबसे बड़ी कमी तो यह होती है कि संकलनकर्ता को व्यावहारिक ज्ञान नहीं होता क्योंकि उसका सम्बन्ध प्रत्यक्ष रूप से छात्रों से नहीं होता जिनके लिए पाठ्य-पुस्तक का निर्माण किया जाता है।
2. इसके अतिरिक्त प्रकाशकों की नीयत साफ न होने के कारण वे चाहते हैं कि कम खर्च में अधिक से अधिक धन बटोरें।

पाठ्य-पुस्तकों के इन दोषों को दूर करने हेतु सैकेण्डरी ऐजूकेशन कमीशन 1952- ने कुछ सुझाव दिए हैं, जो निम्नलिखित हैं–

(1) पाठ्य-पुस्तकों का प्रकाशन बाहरी प्रकाशकों के द्वारा न कराके राज्यों की देख-रेख में होना चाहिए।

(2) प्रत्येक विषय तथा श्रेणी के लिए पर्याप्त पुस्तकें अनुमोदित की जाएं और संस्थाएं उपयुक्त पुस्तकों का चयन स्वयं करें।

(3) पाठ्य-पुस्तकों द्वारा किसी विशेष धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक भावना एवं सिद्धान्त का प्रचार न किया जाए।

(4) पाठ्य-पुस्तकें बालकों में सामाजिक और राष्ट्रीय चेतना जागृत करें।

(5) पुस्तकों में प्रयुक्त चित्रों और पुस्तकों के आकार आदि का एक निर्दिष्ट और स्पष्ट मापदंड हो तथा केन्द्रीय और राज्य स्तर पर पुस्तकों में चित्र बनाने के लिए कलाकारों को प्रशिक्षण दिया जाए और चित्र संग्रहालय खोले जाएं।

(6) प्रत्येक राज्य में एक उच्च समिति का गठन किया जाए जिसमें एक उच्च न्यायालय का न्यायाधीश, लोक सेवा आयोग का एक सदस्य, किसी एक विश्वविद्यालय का उपकुलपति, एक मुख्याध्यापक, शिक्षा संचालक। इन पांच सदस्यों द्वारा मनोनीत दो सदस्यों सहित कुल सात सदस्य हों। समिति का कार्यकाल पांच वर्ष का हो।

(7) छात्रों के सर्वांगीण विकास तथा शिक्षकों की ज्ञान वृद्धि हेतु भिन्न-भिन्न प्रादेशिक भाषाओं में निर्देश पुस्तकें प्रकाशित की जाएं।

(8) पाठ्य-पुस्तकों को बार-बार शीघ्रता से न बदला जाए।

भारतीय शिक्षा आयोग 1964-66

(कोठारी कमीशन आयोग 1964-66 के सुझाव)

1. राष्ट्रीय स्तर पर पाठ्य-पुस्तकों के निर्माण के लिए एक व्यापक योजना बनाई जाए जिसमें देश के प्रतिभाशाली व्यक्तियों की क्षमताओं का उपयोग किया जाए।
2. शिक्षा मन्त्रालय राष्ट्रीय स्तर पर पुस्तकों के उत्पादन के लिए एक स्वायत संगठन स्थापित करने का प्रयत्न करे। यह संगठन पाठ्य-पुस्तकों का विशेष कर विज्ञान और तकनीकी क्षेत्रों में, राष्ट्रीय स्तर पर राष्ट्र भाषा हिन्दी माध्यम से उत्पादन करे।
3. राष्ट्रीय स्तर पर पाठ्य-पुस्तकों के उत्पादन हेतु किए गए प्रयासों को सफल बनाने के लिए राज्य सरकारें उनकी सहायता करें।

4. पुस्तकों के निर्माण, प्रयोग और मूल्यांकन का कार्य राजकीय शिक्षा
को समर्पित कर दिया जाए।
5. पुस्तकों के विक्रय और वितरण का कार्य छात्रों द्वारा संचालित
समितियों को समर्पित कर दिया जाए।
6. पाठ्य-पुस्तकों का संशोधन और परिवर्तन नियमित रूप से किया जाए।
7. पाठ्य-पुस्तकों और सहायक सामग्री का उत्पादन कार्य राजकीय
द्वारा स्वायत्त संस्थाओं को समर्पित कर दिया जाए। यह संगठन शिक्षा
के साथ मिलकर कार्य करे।
8. प्रत्येक विषय पर कम-से-कम तीन या चार पुस्तकें अवश्य हों और
का चयन विद्यालयों पर छोड़ दिया जाए।
9. लेखकों को प्रोत्साहित करने के लिए पारिश्रमिक वृत्ति उदारता से
10. राजकीय स्तर पर पाठ्य-पुस्तकों का निर्माण और विक्रय बिना किसी
हानि के किया जाए।
11. शिक्षकों तथा अन्य विभिन्न स्रोतों द्वारा अधिकाधिक पाण्डुलिपियों को
किया जाए। पाण्डुलिपियों का चयन शिक्षा के क्षेत्र में कार्य करने
अनुभवी और योग्य व्यक्तियों द्वारा कराया जाए।
12. प्रत्येक विद्यालय के स्तर और आवश्यकतानुसार अधिकाधिक सहायक
शीघ्रातिशीघ्र प्रदान करने की योजना बनाई जाए और उसे कार्यान्वित
जाए।

पाठ्य-पुस्तकों का पाठ्यक्रम में स्थान

किसी भी अच्छे पाठ्यक्रम का निर्माण बिना पुस्तकों के सम्भव नहीं हो
लेकिन यह बात सदा याद रहे कि शिक्षक का तात्पर्य केवल पुस्तक पढ़ा देना ही नहीं
बल्कि शिक्षक का कर्त्तव्य है कि वह बालकों को निश्चित सामग्री प्रदान करे जो
स्तर और उनकी समझ के उपयुक्त हो और बालक उस सामग्री को ग्रहण करने के
अपने व्यावहारिक जीवन में प्रयोग में ले सकें। वास्तविकता यह है कि संस्कृत
लिए पाठ्य-पुस्तक प्रथम सीढ़ी है और कक्षा की अन्य सहगामी गतिविधियों का
अधिक है। शिक्षक को हमेशा यह मानकर चलना चाहिए कि पाठ्यक्रम उद्देश्यों की
के लिए साध्य नहीं बल्कि साधन मात्र है। इस प्रकार पाठ्य-पुस्तक भी पाठ्यक्रम का
अंग मात्र है न कि अपने में सम्पूर्ण पाठ्यक्रम है। शिक्षक को चाहिए कि अपने द्वारा
गई सामग्री को सही ढंग से समझाने के लिए और उसे पुष्ट करने के लिए छात्रों को
के पुस्तकालय का लाभ उठाना भी सिखाए। इसके अतिरिक्त शिक्षक छात्रों को

पाठ्यक्रम

कक्षावार विषय-वस्तु

क्र०	अधिगम क्षेत्र	कक्षा-6	कक्षा-7	कक्षा-8
1.	भाषिक सामग्री 1.1 शब्द	1. संज्ञा शब्द अकारान्त पु० शब्द आकारान्त स्त्री शब्द अकारान्त नपुं० शब्द 2. सर्वनाम शब्द–इदम्, तत्, अस्मद्, युष्मद् और किम् (प्रथमा, द्वितीया, षष्ठी)। 3. विशेषण शब्द संख्यावाची शब्द–दशन् तक, क्रमवाची–दश तक 1.2 धातु चल्, चर्, पद्, भू, लिख्, हस्, खेल्, क्रीड्, पच्, वद्, वस्, भ्रम्, रक्ष्, धाव्, अस्, गम्	1. संज्ञा शब्द कक्षा-6 में पठित के अतिरिक्त इकारान्त व उकारान्त पु० शब्द इकारान्त व ईकारान्त स्त्री शब्द 2. सर्वनाम शब्द–इदम्, तत्, यत्, किम्, अस्मद्, युष्मद् और सर्व (तृतीया एवं सप्तमी)। 3. विशेषण शब्द संख्यावाची शब्द एकादश से पञ्चाशत्, क्रमवाची एकादश से विंशः तक चल्, चर्, पद्, भू, लिख्, हस्, खाद्, खेल्, क्रीड्, पच्, वद्, वस्, भ्रम्, रक्ष्, धाव्, अस्, गम् (गच्छ) दृश्, (पश्य),	1. संज्ञा शब्द कक्षा-6 व कक्षा-7 में पठित के अतिरिक्त ऋकारान्त पु० शब्द उकारान्त व ऋकारान्त स्त्रीलिंग शब्द हलन्त शब्द 2. सर्वनाम शब्द–इदम्, तत्, यत्, एतत्, किम्, अस्मद्, युष्मद् और सर्व का पूर्ण अभ्यास। 3. विशेषण शब्द संख्यावाची शब्द–शतम् तक, क्रमवाची–पंचाशत् तक कक्षा-6 एवं 7 में पठित परस्मैपद धातुओं के लट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ् लकार के रूप में एवं निम्नलिखित धातुओं के

		(गच्छ) दृश्, (पश्य), पा (पिब्), नि (नय्), घ्रा (जिघ्र), क्षल्, कथ्, त्यज्, दा (यच्छ), स्था (तिष्ठ), सिञ्च और कृज, परस्मैपदी धातुओं के लट् और लोट् लकार के रूप। भूतकाल के अर्थ में स्म का प्रयोग।	पा (पिब्), नि (नय्), घ्रा (जिघ्र), क्षल्, कथ्, त्यज्, दा (यच्छ), स्था (तिष्ठ), सिञ्च और कृज, कृ, इष (इच्छ), कस् पा (विकस), कृष, गै (गायति), जि (जय), दिश्, नश्, नृत (नृत्य) रूह् (आ + कर्णय), चिन्त, तुल् (तोलय), पाल् (पालय), लोक (अवलोकय) और पीड् धातुओं के परस्मैपद में लट्, लोट्, लृट् एवं लङ् लकार के रूप।	आत्मनेपद में लट् और लृट् लकार के रूपों का ज्ञान-भाष, मुद्, सेव, लभ्, रूच, वृत, सह, यत् और याच्।	छ
	1.3 कारक	कारकों का सामान्य ज्ञान सह ज्ञान बिना का प्रयोग	प्रति, नमः दाण (यच्छ) रूच्	विशिष्ट कारकों का प्रयोग क्रुद्ध, भय, अंगविकार एवं हेतु में कारक सम्बन्धी विशिष्ट प्रयोगों का ज्ञान।	
	1.4 उपसर्ग	अनु, अव, आ, उत्, उप	कक्षा 6 में पठित उपसर्गों के अतिरिक्त प्र, सम्, निर्, दुर्, सु	कक्षा 6 एवं 7 में पठित उपसर्गों के अतिरिक्त अप्, अभि, परि, प्रति, परा, वि एवं नि।	
	1.5 अपव्यय	च, वा, अथवा, कदा, यदा, तदा, यत्र, तत्र, कुत्र, सर्वत्र, अपि, श्वः, अधुना, किन्तु, कथं, प्रायः, सायं, सर्वदा, तथा, विना, सह एवं अध।	कक्षा-6 में पठित अपव्ययों के अतिरिक्त-यथा यतः), ततः, इतः इदानीम्, सत्वरं, शीघ्रम्, शनैः शनैः, मा, वृथा, उपरि, अलम, पुनः एवं इतस्ततः।	कक्षा 6 एवं 7 में पठित अव्ययों के अतिरिक्त-यावत्, तावत्, तथापि, बहुधा, क्रमशः, सम्प्रति, सर्वथा, बहिः, तूष्णीम्, कदापि, धिक्, इव एवं अन्यत्र।	
	1.6 प्रत्यय	क्त्वा, ल्यप्	क्त, तव्यत्, अनीयर, यत्	तुमुन्, क्तवतु, क्त्वा, ल्यप्	
	1.7 सन्धि	दीर्घ, गुण	कक्षा-6 में पठित सन्धियों के अतिरिक्त यण्, वृद्धि, अनुस्वार।	कक्षा 6 एवं 7 में पठित सन्धियों के अतिरिक्त विसर्ग, व्यंजन, श्चुत्व और जश्त्व।	
	1.8 समास	-	तत्पुरुष, कर्मधारय, द्विगु	द्वन्द्व, बहुब्रीहि, अव्ययी भाव।	
2.	अनुवाद	लट् लकार व लोट् लकार से संबंधित कर्ता व कर्म वाले वाक्य	कक्षा 6 में पठित अतिरिक्त- 1. लृट् और लङ् लकार के वाक्य 2. विशेषण विशेष्य वाले वाक्य 3. सामान्य कारकों का प्रयोग करते हुए अनुवाद कार्य।	कक्षा 6 एवं 7 में पठित के अतिरिक्त- 1. विधिलिङ्लकार के प्रयोग 2. आत्मनेपद में लट् और लृट के प्रयोग। 3. विशिष्ट कारकों का प्रयोग करते हुए अनुवाद।	
3.	रचना	चित्रों की सहायता से कक्षा-कथन	दिए गए शब्दों द्वारा रिक्त स्थानों की पूर्ति करते हुए कथा-लेखन।	दिए गए शब्दों का प्रयोग करते हुए पत्र, अनुच्छेद एवं कथा लेखन।	
4.	शब्द भण्डार	मातृभाषा के अतिरिक्त नवीन 100 शब्दों का ज्ञान	पूर्व कक्षा के अतिरिक्त 200 नवीन शब्दों का ज्ञान	कक्षा 6 एवं 7 के शब्दों के अतिरिक्त नवीन 300 शब्दों का ज्ञान।	
5.	पठन सामग्री 1. अशाब्दिक	पहचान हेतु परिवेशगत चित्र सामग्री	विषय-वस्तु के चित्र, घटना के दृश्य चित्र	विषय-वस्तु के चित्र और रचना कार्य हेतु चित्र।	
	2. शाब्दिक	संग्रन्थन वाक्य, लघु निबन्ध, नीति सम्बन्धी लघु कथाएं, वार्तालाप, प्रार्थना, गीत, श्लोक एवं सूक्तियां।	संग्रन्थन वाक्य, निबन्ध, नीति सम्बन्धी लघु कथाएं, संवाद, एकांकी प्रार्थना, श्लोक एवं सूक्तियां।	संग्रन्थन वाक्य, निबन्ध, नीति सम्बन्धी लघु कथा, जीवन मूल्य आधारित एकांकी, नाट्यांश, प्रार्थना, गीत, श्लोक एवं सूक्तियां।	

ज्ञान प्राप्त करने के लिए पुस्तकालय में बैठकर सहायक पुस्तकों को पढ़ने के लिए प्रेरित करे।

संस्कृत शिक्षण में पाठ्य-पुस्तक के महत्त्व को देखते हुए हिमाचल शिक्षा विभाग ने सामान्य शिक्षा के विद्यालयों के लिए कक्षा 6, 7 तथा 8 का संस्कृत विषय का पाठ्यक्रम अपने शिक्षाक्रम में प्रकाशित किया है। उसमें कक्षानुसार संस्कृत में जो अधिगम कराना है, उसका विवरण है। संस्कृत अध्यापक से यह अपेक्षा है कि वह पाठ्य क्रमानुसार संस्कृत भाषिक क्षमता का छात्रों में विकास करें।

शिक्षण के पश्चात् छात्र में अपेक्षित दक्षताओं के विवेचन का उल्लेख शिक्षाक्रम में किया गया है। बालक में कक्षानुसार संस्कृत विषय में कौन-कौन सी योग्यताओं का विकास हो जाना चाहिए इसकी जानकारी भी शिक्षक को होनी चाहिए। क्योंकि इन अपेक्षाओं का ही मूल्यांकन होता है।

कक्षावार अपेक्षित दक्षताएं-

तृतीय भाषा संस्कृत शिक्षण की अपेक्षित दक्षताओं के सम्बन्ध में ध्यातव्य बिन्दु दिए गए हैं-

1. संस्कृत भाषा शिक्षण के मूल उद्देश्यों की सम्प्राप्ति का आधार कक्षावार भाषायी दक्षताएं होंगी।
2. इन दक्षताओं का उल्लेख अधिगम क्षेत्र एवं कक्षानुसार किया गया है जो बालक-बालिकाओं के ध्यानपूर्वक सुनने, समझने, पढ़ने,पढ़कर समझने से सम्बन्धित है।
3. दक्षताओं को दो प्रकार से लिखा गया है-
   (1) ऊर्ध्वाधर, (ऊपर से नीचे)
   (2) क्षैतिजाकार (बाएं से दाएं)।
4. ऊर्ध्वाधर दक्षता कथन में बालक-बालिकाओं द्वारा एक ही कक्षा में अधिकाधिक ज्ञान प्राप्ति की अपेक्षा की गई है, जबकि क्षैतिजाकार दक्षता को बालक उत्तरोत्तर आगे वाली कक्षा में प्राप्त करता चलेगा।
5. संस्कृत भाषा की दक्षताएं यद्यपि अलग-अलग अधिगम क्षेत्रों में बांटी गई हैं, किन्तु शिक्षण के समय इन सबका संग्रहित होना स्वाभाविक है। ध्यान यह दिया जाना है कि जिस अधिगम क्षेत्र की दक्षता का विकास किया जा रहा है, उस पर अधिक बल दिया जाए।
6. भाषा की प्रवृत्ति ऐसी है कि इसमें दक्षताओं को अलग-अलग करके नहीं देखा जा सकता। कभी-कभी कुछ दक्षताएं समानान्तर रूप से भी विकसित की जा

क्र०	अधिगम क्षेत्र	कक्षा-6	कक्षा-7	कक्षा-8
1.	सुनना	1.6.1 संस्कृत के सरल वाक्यों को सुनकर समझना।	1.7.1. संस्कृत के सरल श्लोकों एवं कथाओं को सुनकर समझना।	1.8.1 संस्कृत के सरलतम सुभाषित एवं कथाओं को सुनकर सारांश ग्रहण करना।
		1.6.2 परिचित परिस्थितियों में दिए गए सरल आदेश-निर्देशों को समझना।	1.7.2 संस्कृत में दिए गए आदेश-निर्देशों को समझना।	1.8.2 संस्कृत में दिए गए आदेश-निर्देशों को समझना एवं तदनुसार व्यवहार करना।
2.	बोलना	2.6.1 संस्कृत की सरल ध्वनियों को शुद्ध उच्चारण के साथ बोलना। यथा- 1. पदान्त अकार (राम) 2. विसर्ग ध्वनि (रामः हरिः आदि)। 3. ऋ तथा र से बनने वाली ध्वनियां (कृषि, कर्म, क्रय आदि)। 4. अनुनासिक एवं अनुस्वार ध्वनियों का भेद (संगति, संस्कार आदि)। 5. संयुक्ताक्षर (क्ष, त्र, ज्ञ, स्त्र आदि)।	2.7.1 क्लिष्ट शब्दों का शुद्ध उच्चारण करना।	2.8.1 क्लिष्ट शब्दों का शुद्ध उच्चारण करना।

		6. संयुक्त वर्ण से पूर्व के वर्ण पर बलाघात–प्रतिष्ठा, शिक्षण) 7. उष्म ध्वनियां (श, सु, ज, ह) 8. पदमध्यगत अकार (अवसर, कमला)।		
		2.6.2 संस्कृत के सरल प्रश्नों के उत्तर एक–दो शब्दों में देना।	2.7.2 सरल प्रश्नों का संस्कृत के सरल वाक्य में उत्तर देना।	2.8.2 सहपाठियों से संस्कृत में सरल प्रश्न वार्तालाप करना।
		2.6.3. सुभाषितों को कण्ठस्थ कर बोलना।	2.7.3 संस्कृत के श्लोकों एवं सूक्तियों को बोलना।	2.8.3 संस्कृत के श्लोक, सूक्तियां तथा गीत बोलना।
3.	वाचन	3.6.1 सरल संस्कृत गद्यांशों का सस्वर वाचन करना।	3.7.1 संस्कृत गद्यांश का शुद्धता एवं स्पष्टता से वाचन करना।	3.8.1 संस्कृत गद्य का विराम चिह्नों का ध्यान रखते हुए शुद्धता से वाचन करना।
		3.6.2 संस्कृत श्लोकों का सस्वर वाचन करना।	3.7.2 श्लोकों की गति–यति एवं लय सहित सस्वर वाचन करना।	3.8.2 श्लोकों एवं गीतों का आरोह–अवरोह पूर्वक सस्वर पाठ करना।
4.	पठन	4.6.1 सरल संस्कृत गद्यांश एवं पद्यांश को पढ़कर अर्थ समझना	4.7.1 संस्कृत गद्य एवं पद्य के भावों को ग्रहण करते हुए पढ़ना।	4.8.1 संस्कृत के गद्यांश एवं पद्यांश को पढ़कर भाव एवं सारांश ग्रहण
5.	लिखना	5.6.1 श्यामपट्ट, फ्लेश कार्ड एवं पाठ्य–पुस्तक में लिखे हुए शब्दों को देखकर शुद्ध रूप से अनुलेख करना।	5.7.1 पाठ्य–पुस्तक एवं श्यामपट्ट पर लिखे हुए संस्कृत वाक्यों का शुद्ध रूप	शुद्धता एवं स्पष्टता से लिखना। से अनुलेख करना।
		5.6.2 सरल संस्कृत पदों का श्रुतलेख लिखना।	5.7.2 सरल संस्कृत वाक्यों का श्रुतलेख लिखना।	5.8.2 सरल संस्कृत गद्यांश का श्रुतलेख विराम चिह्नों सहित लिखना।
		5.6.3 सरल संस्कृत प्रश्नों के उत्तर हिन्दी में लिखना।	5.7.3 लघूत्तर प्रश्नों के उत्तर संस्कृत में लिखना।	5.8.3 प्रश्नों के उत्तर संस्कृत में लिखना।
		5.6.4 पशु–पक्षियों एवं परिवेश जन्य वस्तुओं के नाम संस्कृत में लिखना।	विषय पर पांच वाक्य सरल संस्कृत में लिखना।	5.7.4 अपने परिवेश से संबंधित किसी 5.8.4 चित्र एवं दिए गए शब्दों की सहायता से लघु कथा लेखन करना।
		5.6.5 सरल संस्कृत वाक्यों का हिन्दी में अनुवाद लिखना।	5.7.5 सरल संस्कृत गद्यांश एवं पद्यांश का हिन्दी में अनुवाद लिखना।	5.8.5 सरल संस्कत गद्यांश–पद्यांश का हिन्दी में अनुवाद करना।
		5.6.6 हिन्दी के सरल वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद करना।	5.7.6 हिन्दी के सरल वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद करना।	5.8.6 हिन्दी के सरल वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद करना।
6.	व्यावहारिक व्याकरण	6.6.1 नाम पद, (संज्ञा), सर्वनाम तथा क्रियापदों का प्रयोग करके सरल वाक्य बनाना।	6.7.1 नाम पद (संज्ञा)। सर्वनाम, क्रियापद, उपसर्ग एवं प्रत्यय का प्रयोग करके सरल वाक्य बनाना।	6.8.1 नाम पद (संज्ञा) सर्वनाम, क्रियापद, उपसर्ग, प्रत्यय, विशेषण एवं अव्यय का प्रयोग करके वाक्य बनाना।

		6.6.2 लिंग, पुरुष वचन का उपयुक्त प्रयोग करना।	6.7.2 लिंग, पुरुष वचन, कारक, विभक्तियों एवं लकारों का प्रयोग करना।	6.8.2 विशिष्ट कारकों का प्रयोग करना।
		6.6.3 कर्ता (पुरुष एवं वचन का ध्यान रखकर) के अनुसार क्रिया का प्रयोग करना (लट् एवं लोट् लकार में)।	6.7.3 लट् एवं लङ् लकार का प्रयोग	6.8.3 लट्, लोट्, लङ् एवं विधिलिङ् करते हुए वाक्य रचना करना। लकारों में वाक्य रचना करना।
		6.6.4 दीर्घ एवं गुण संधि युक्त पदों को पहचानना एवं संधि-विच्छेद करना।	6.7.4 दीर्घ, गुण, यण, वृद्धि और अनुस्वार संधि युक्त पदों को पहचानना एवं संधि विच्छेद करना।	6.8.4 गुण, यण, वृद्धि अनुस्वार, विसर्ग, जश्त्व और श्चुत्व संधि युक्त पदों की संधि-विच्छेद करना।
		6.6.5 संस्कृत के सरल वाक्यों का हिन्दी में अनुवाद	6.7.5 सरल संस्कृत गद्यांश पद्यांश का हिन्दी में अनुवाद करना।	6.8.5 संस्कृत में पठित गद्यांश-पद्यांश का हिन्दी में अनुवाद करना एवं संस्कृत, गीत एवं कथाओं का सारांश लिखना।
		6.6.6 मातृभाषा के सरल एवं छोटे वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद।	6.7.6 मातृभाषा के सरल एवं छोटे वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद करना।	6.8.6 मातृभाषा में दिए गए सरल वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद करना।
		6.6.7 संस्कृत में एक से दस तक की संख्याओं का प्रयोग करना।	6.7.7 तत्पुरुष कर्मधारय तथा द्विगु समास वाले पदों का हिंदी में विग्रह करना।	6.8.7 सभी प्राकर के समास युक्त पदों का हिन्दी में विग्रह करना।
7.	पठनाभिरुचि एवं अभिरुचि	7.6.1 संस्कृत सूक्तियों एवं लोकोक्तियों का संकलन तैयार करना।	की संख्या का प्रयोग करना। 7.7.1 संस्कृत सुभाषितों का संकलन तैयार करना।	संख्या का प्रयोग करना। 7.8.1 संस्कृत सूक्तियों और सुभाषितों का 'मेरा संग्रह' तैयार करना।
		7.6.2 संस्कृत के बाल साहित्य को पढ़ने में रुचि लेना।	7.7.2 संस्कृत के बाल साहित्य 'हितोपदेश' को पढ़ने में रुचि लेना।	7.8.2 संस्कृत के 'पंचतंत्र' एवं अन्य कथा साहित्य के अध्ययन में रुचि लेना।
		7.6.3 संस्कृत सूक्तियों एवं कथाओं में निहित जीवन-मूल्यों के अनुरूप व्यवहार करना।	7.7.3 देश प्रेम और अपनी संस्कृति के प्रति आत्मीयता की भावना का विकास करना।	राष्ट्रीय सामाजिक सांस्कृतिक एवं नैतिक मूल्यों को आत्मसात कर तदनुकूल व्यवहार करना।

सकती हैं। अत: यह न माना जाए कि एक दक्षता से पूर्ण होने पर ही
दक्षता का विकास किया जाए।

7. सभी दक्षताएं एक-दूसरे से सम्बन्धित होने पर भी प्रत्येक अधिगम क्षे
दक्षता का अपना अलग से भी उतना ही महत्त्व है जितना सबसे जुड़कर।
8. मूल्यांकन में भी यह दृष्टि रहेगी कि कुछ दक्षताओं का अलग से मूल्यांक
होकर उन्हें संग्रहित रूप से ही परखा जा सकेगा। कभी यह भी सम्भव है
एक दक्षता की जांच करते समय दूसरी दक्षता अप्रत्यक्ष रूप से स्वत: मूल्यां
हो जाए। अत: इन सभी बातों का सतत् व सावधिक मूल्यांकन नियोजन
ध्यान रखना अपेक्षित है।

अभ्यास के प्रश्न

1. क्या संस्कृत पाठ्य-पुस्तक भाषा शिक्षण का साधन है? इस कथन की व्याख
कीजिए और संस्कृत पाठ्य-पुस्तकों का भाषा-शिक्षा में स्थान निर्धारित कीजि
2. संस्कृत पाठ्य-पुस्तक में अपेक्षित विशेषताओं का उल्लेख करते हुए स्प
कीजिए कि प्रचलित पाठ्य-पुस्तकें छात्रों की आयु एवं शैक्षिक स्तर की दृष्टि
से क्यों अनुपयुक्त हैं?
3. संस्कृत भाषा पाठ्यक्रम के सामान्य सिद्धान्तों को दृष्टिगत रखते हुए हिमाचल
शिक्षा बोर्ड, शिमला द्वारा छठी और आठवीं कक्षाओं की संस्कृत पाठ्य-
पुस्तकों की समालोचना कीजिए।
4. एक अच्छी पाठ्य-पुस्तक की रचना के लिए किन-किन बातों पर ध्यान देना
आवश्यक है?
5. संस्कृत की पाठ्य-पुस्तक का निर्माण किन सिद्धान्तों पर किया जाता है?
6. संस्कृत की पाठ्य-पुस्तक का निर्माण करते समय उसकी भाषा तथा पाठ्य
वस्तु से सम्बन्धित किन-किन बातों का ध्यान रखना आवश्यक है?
7. संस्कृत शिक्षण के लिए पाठ्य-पुस्तक की विशेषताएं लिखिए।
8. संस्कृत पाठ्य-पुस्तक की पाठ्य-वस्तु सम्बन्धी विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
9. विभिन्न कक्षाओं की पाठ्य-पुस्तकों में किस प्रकार की भाषा शैली का प्रयोग
करना चाहिए।

❑❑❑

अध्याय **6**

संस्कृत शिक्षण की विधियां

विधि का सरल अर्थ है किसी भी कार्य को करने का सुव्यवस्थित ढंग। शिक्षा के
त्र में 'विधि' शब्द का अर्थ शिक्षक की उन प्रक्रियाओं से लिया जाता है जिसके
रिणामस्वरूप छात्र-छात्राएं सीखते हैं। इसलिए यह कहना उचित होगा कि पद्धति सीखने
ा साधन है और शिक्षक की शिक्षण सम्बन्धी अनेक प्रक्रियाओं का समूह है। शिक्षण
द्धति को अनुभव और परीक्षण के द्वारा निखारा जाता है।

शिक्षण विधियों की आवश्यकता एवं महत्त्व
[Need and Importance of Teaching Devices]

शिक्षण विधि के महत्त्व के सम्बन्ध में मुदालियर कमीशन (1952-53) ने अपनी
पोर्ट में लिखा है, "यहां तक कि सर्वोत्तम पाठ्य-पुस्तक एवं पाठ्यक्रम भी मृत तुल्य है,
ब तक उसके लिए उचित शिक्षण पद्धति तथा उचित शिक्षकों की व्यवस्था न हो।"

शिक्षा विधि की आवश्यकता और महत्त्व निम्न कारणों से है-

1. समय और शक्ति की बचत (Saves time and Energy)-किसी विधि के
ना शिक्षा देने से अध्यापकों एवं छात्रों के समय तथा शक्ति का बहुत अपव्यय होता है।
शिक्षण पद्धति अध्यापक और छात्रों के समय तथा शक्ति की बचत करती है।

2. सरलता और रोचकता (Easy and Interesting)-विषय को सरल और
ोचक बनाने के लिए विधि की आवश्यकता होती है। उचित विधि के अभाव में संस्कृत
क कठिन और अरोचक विषय बन जाता है।

3. सफल शिक्षण (Successful Teaching)-संस्कृत के सफल शिक्षण हेतु
उपयुक्त विधियों का प्रयोग करना।

4. उद्देश्यों की पूर्ति (Achievement of Aims)-उचित शिक्षण विधि के बिना
संस्कृत पढ़ाने के उद्देश्यों की पूर्ति नहीं हो सकती। यदि हम संस्कृत पढ़ाने के उद्देश्यों को
सही अर्थों में पूर्ति करना चाहते हैं तो इन उद्देश्यों को सामने रखकर हमें ऐसी पद्धतियों का
चयन करना होगा जिनके द्वारा संस्कृत पढ़ाने के उद्देश्यों की पूर्ति की जा सके।

शिक्षण विधियों का चयन करते समय ध्यान रखने योग्य बातें [Points to be considered while selecting Teaching Methods]

1. बचत करने वाली (Saves time and Energy)–विधि समय और श्रम की बचत करने वाली होनी चाहिए।

2. सरल और रोचक (Easy and Interesting)–विधि विषय को रोचक बनाने वाली हो।

3. प्रभावशाली शिक्षण (Effective Teaching)–विधि शिक्षण को प्रभावशाली बनाने वाली हो।

4. उद्देश्य पूर्ति करने वाली (For achievement of Aims)–शिक्षण विधि ऐसी हो जिससे संस्कृत पढ़ाने के उद्देश्यों की पूर्ति हो सके।

5. व्यक्तिगत भिन्नताओं के अनुसार (According to individual Differences)–शिक्षण विधि छात्रों की आयु, योग्यता, स्तर तथा रुचियों के अनुसार हो।

6. सहायक सामग्री की उपलब्धता (Availability of teaching Aids)–शिक्षण विधि का चयन करते समय यह भी देख लेना चाहिए कि क्या उपयुक्त सहायक सामग्री उपलब्ध है।

7. उपयुक्त प्रयोग (Proper Use)–शिक्षण विधि का चयन करते समय यह भी देख लेना चाहिए कि अध्यापक उस विधि का सही प्रयोग कर सके।

8. परिवर्तनशीलता (Flexibility)–शिक्षण विधि में लचक एवं परिवर्तनशीलता का होना आवश्यक है। शिक्षण विधि ऐसी होनी चाहिए जिसमें आवश्यकतानुसार परिवर्तन किया जा सके। शिक्षण पद्धति कठोर अथवा अपरिवर्तित नहीं होनी चाहिए।

9. प्रेरणादायक (Encouraging)–शिक्षण विधि ऐसी हो जो छात्रों को विषय वस्तु के लिए प्रेरित करे।

10. क्रियाशीलता (Workability)–संस्कृत की शिक्षण विधि का चयन करते समय इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि इसमें छात्र अधिक क्रियाशील रहें।

आजकल छात्रों के मन मस्तिष्क में संस्कृत की दुरुह एवं भयावह प्रतिमूर्ति बनती होती जा रही है। फलस्वरूप छात्र संस्कृत के निकट आने की अपेक्षा दूर होते जा रहे हैं। इसका एक प्रमुख कारण संस्कृत की दोषपूर्ण शिक्षण विधि है, जिससे संस्कृत भाषा की मौलिकता, सरलता, सरसता, सहजता एवं समुचित बोधगम्यता का ह्रास हो जाता है। संस्कृत भाषा में ये गुण तभी विद्यमान रह सकते हैं जब भाषा के चारों अंगों को ध्यान में रखकर शिक्षण विधि विकसित की जाए। संस्कृत की परम्परागत प्रचलित शिक्षण विधि के माध्यम से भाषा के दो अंगों का विकास (संस्कृत भाषा में लेखन तथा लिखित का अवबोध) कुछ सीमा तक हो जाता है किन्तु भाषा के अन्य दो अंगों (बोलना तथा बात

बात को समझना) का विकास कदाचित ही होता है। इस दृष्टि से संस्कृत पाठ्यवस्तु सरल, सरस, सहज एवं बोधगम्य बनाना तथा सामान्य व्यवहार में आने वाले शब्दों का पाठ्य-वस्तु में समावेश करना नितान्त आवश्यक है। इस प्रकार छात्र संस्कृत विषय के निकट आएंगे और संस्कृत के प्रति उनकी रुचि का विकास होगा।

संस्कृत साहित्य की विभिन्न विधाओं को किस प्रकार पढ़ाया जाए, यह एक अत्यन्त चारशील विषय है। इस अध्याय में संस्कृत की विभिन्न शिक्षा विधियों की चर्चा की गई यहां हम विधियों की अलग रूप से चर्चा न करके सम्पूर्ण संस्कृत भाषा की दृष्टि से योगी पद्धतियों पर विचार करेंगे।

पाठशाला विधि

यह संस्कृत शिक्षण की प्राचीनतम विधि है। इसे पंडित प्रणाली अथवा परम्परागत धि के नाम से भी जाना जाता है। सत्रहवीं शताब्दी तक पाठशालाओं, आश्रमों, गुरुकुलों, ठों तथा विद्यापीठों में यह शिक्षा विधि नियमित रूप से चलती रही। धीरे-धीरे लॉर्ड काले की शिक्षा पद्धति के जाल के विस्तार के साथ ये उपेक्षित होती चली गई।

इस विधि से शिक्षारम्भ उपनयन संस्कार के साथ होता था। गुरू छात्र को गायत्री न्त्र का उपदेश देता था। इस मन्त्र की दीक्षा के बाद से ही शिक्षा आरम्भ हो जाती थी। तिदिन शिष्य नित्य कर्म से निवृत्त हो गुरू के पास आकर गुरू की आज्ञा से वेद पढ़ता था। ात्र उत्तर दिशा की ओर मुख कर, आचमन कर, ब्रह्मांजलि बांध कर गुरू के समीप विद्या ढ़ता था। अध्ययन के आरम्भ तथा अंत में वह गुरू को साष्टांग प्रणाम कर दाहिने हाथ से ायें पैर के अंगूठे को और बाएं हाथ से बाएं पैर के अंगूठे को स्पर्श करता था। पठनारम्भ की इस प्रक्रिया के पश्चात् गुरू उसे 'पढ़ो' यह आदेश देता था। कुश से अपने शरीर का मार्जन करके, तीन बार प्राणायामक के द्वारा स्वयं को शुद्ध करके 'ओंकार' शब्द का उच्चारण करता था। उस समय यह मान्यता प्रचलित थी कि यदि वेदारम्भ व उसके अंत में ओंकार शब्द का उच्चारण नहीं किया गया हो उसकी विद्या शनैः शनैः नष्ट हो जाएगी।

धर्म, काम, अर्थ तथा मोक्ष ही शिक्षा के प्रमुख उद्देश्य थे। यह शिक्षण विधि ब्रह्मचर्य पर आधारित थी जो शिक्षण की अपेक्षा व्यक्ति की जीवन शैली को अधिक महत्त्व देती थी। इसमें गुरू और शिष्य के सम्बन्ध पिता पुत्रवत् होते थे। अध्यापक के पास रहने के कारण शिष्य 'अन्तेवासिन्' कहलाते थे। उस समय शिक्षा के लिए छात्र शब्द का प्रयोग भी किया जाता था, क्योंकि सदैव अपने आचार्य की सेवा करना तथा छात्र की भांति उनकी रक्षा करना छात्र का परम कर्त्तव्य था।

पाठ्यक्रम में 12 वर्ष तक वेदों का अध्ययन करवाना निर्धारित था। उसके बाद षड् वेदांग, षड् दर्शन आदि भी सम्मिलित किए गए। कालान्तर में धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्र के साथ अन्य व्यावहारिक कलाओं को भी जोड़ दिया गया।

उस समय छात्र जीवन बड़ा कठोर था। छात्र को नियमित दिनचर्या
होती थी। गुरू के सोने के बाद सोने तथा जागने के पहले जग जाने का
की आज्ञा का पालन करना छात्र का सबसे बड़ा दायित्व था। उन्हें यम-
सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, लोभ, मोह, त्याग आदि नियमों का पालन करना

पाठशाला विधि में निम्नलिखित शिक्षण विधियों को प्रयुक्त किया

1. मौखिक एवं व्यक्तिगत शिक्षण विधि–वैदिक शिक्षा मौखिक
स्वयं वेद मन्त्रों का उच्चारण सम्बन्धी प्रत्येक दोष को गुरू व्यक्तिगत रूप
बताते थे। प्रतिदिन नवीन पाठ परारम्भ करने से पूर्व गत पाठ का मूल्यांकन
और अब तक पढ़े गए पाठों के मुख्य बिन्दुओं की आवृत्ति के बाद ही उन्हें
जाता था। कंठस्थीकरण पर अधिक बल था।

लाभ–

1. इससे छात्रों का उच्चारण शुद्ध होता था।
2. विषय पर स्थायी तौर पर अधिकार होता था।
3. मौखिक अभिव्यक्ति सशक्त होती थी।

2. पारायण विधि–कंठस्थीकरण पर बल देते हुए वैदिक मन्त्रों की
आवृत्ति करके उन्हें कंठस्थ करवाया जाता था। इन पर इनका पूर्ण अधिकार हो जाता
वे श्रोजिय कहलाते थे। बिना अर्थ समझे हुए वैदिक मन्त्रों के सस्वर पाठ को
कहते थे। ऐसा करने वाले को 'पारायणिक' कहा जाता था।

लाभ–इस विधि का सबसे बड़ा लाभ यह था कि इसमें प्राप्त ज्ञान को स्मृति
संचित करने पर बल दिया जाता था।

3. वाद-विवाद विधि–पाठशाला विधि में वाद-विवाद विधि को भी प्रयोग
लाया जाता था। प्राक्कथन अर्थात् तटस्थलीय, बिना पूर्व तैयारी के कुछ कहना,
अर्थात् व्याख्या करना, सम्यक् अवबोध अर्थात् ज्ञान प्रदर्शन, विमत्ति अथवा विप्रलाप-
विभिन्न मतों की अभिव्यक्ति आदि शब्दों का भी पाणिनि ने उस समय प्रयोग किया है।
सभी शब्दों से विभिन्न शैक्षिक विधियों का आभास मिलता है। ये सभी शब्द वाद-विवा
के प्रतीक हैं। शास्त्रार्थ व संवाद इसी के उदाहरण हैं, जैसे गार्गी द्वारा किए गए प्रश्न है

लाभ–इससे छात्रों में भाव प्रकाशन की शक्ति बढ़ती है।

4. प्रश्नोत्तर विधि–प्राचीनकाल में 'ओंकार' शब्द के उच्चारण के बादपाठ पढ़ा
आरम्भ किया जाता था। वे पाठ को प्रश्नोत्तर विधि से पढ़ाया करते थे। प्रत्येक प्रश्न के
पश्चात् छात्र उनकी आवृत्ति करते थे। इस प्रकार सम्पूर्ण व्याख्यान समाप्त होता था। कभी-
कभी कुछ प्रश्नों का विस्तृत उत्तर न देकर केवल संकेत कर दिया करते थे। छात्र उनके
आधार पर सही उत्तर ढूंढने का प्रयत्न करता था।

लाभ–

1. जिज्ञासु छात्र सक्रिय होते थे।
2. स्वचिन्तन, तर्क व निरीक्षण शक्ति के विकास पर बल दिया जाता था।

5. सूत्र विधि–व्याकरण तथा दर्शन के गहन विषय सूत्र विधि से पढ़ाये जाते थे।
...ों का मुख्य उद्देश्य 'गागर में सागर' भरना था। इससे शिष्य को याद रखने में सुविधा
...ती थी। इन सूत्रों की व्याख्या के लिए भाष्यविधि तथा टीका विधि का अनुसरण किया
...या था।

लाभ–जटिल विषयों को समझने व याद रखने में सुविधा होती थी।

6. कथोकथन विधि–विषयको रुचिकर बनाने के लिए तथा अधिक स्पष्ट करने
...के लिए उस समय उपनिषदों, हितोपदेश तथा पंचतंत्र की कथाएं बीच-बीच में सुनाई
...जाती थी।

लाभ–अध्ययन को सरस बनाने में सहायक थी।

7. कक्षानायक विधि–प्राचीन काल में मेधावी छात्र अपने गुरू को अध्यापन कार्य
...में सहायता देते थे। गुरू के अस्वस्थ होने अथवा बाहर जाने की स्थिति में ऐसे छात्र
...गुरूकुल के अन्य छात्रों को पढ़ाते थे। गुरू गुरूकुल में रहते हुए भी शिक्षण को सुविधापूर्वक
...चलाने में ऐसे छात्रों की सहायता लेते थे, किन्तु ये मेधावी छात्र शिष्य के रूप में रहते थे,
...गुरू के समान इन्हें अन्य छात्रों से सेवासुश्रूषा करवाने का अधिकार नहीं था।

लाभ–

1. इससे मेधावी छात्रों का ज्ञान और परिपुष्ट होता था।
2. उन्हें शिक्षक प्रशिक्षण भी मिल जाता था।
3. गुरू का कार्य भार हल्का होता था।
4. मेधावी छात्रों/सहायक अध्यापकों में आत्म-विश्वास आता था।

8. भाषण विधि–विषय को स्पष्ट करने के लिए गुरू उदाहरणों व कथाओं आदि
...का सहारा लेते थे तथा लम्बे-लम्बे व्याख्यान व भाषण देते थे। अष्टाध्यायी में प्रयुक्त
...भाषण विधि का आभास होता था।

लाभ–इससे छात्रों को किसी विषय पर विस्तृत जानकारी प्राप्त हो जाती थी।

9. व्याख्या विधि–छात्रों की शंकाओं का समाधान करने के लिए गुरू व्याख्या
...विधि तथा अर्थवाद का अनुसरण करते थे।

माधवाचार्य ने व्याख्या हेतु पांच बिंदुओं को आवश्यक बताया है–विषय, संशय,
...पूर्वपक्ष, उत्तर पक्ष तथा संगति ये पांच बिंदु व्याख्या के लिए आवश्यक है।

धीरे-धीरे जटिल पदों का अर्थ स्पष्ट करने के लिए संस्कृत भाषण के साथ-साथ
...प्रकृति तथा अन्य देवीय भाषाओं का प्रयोग भी किया जाने लगा था।

लाभ-

1. विषय की विस्तृत जानकारी होती थी।
2. शब्दों की संरचना से परिचय होता था।
3. भाषा पर अधिकार होता था।

10. व्याकरण विधि-भाषा का प्राण तत्त्व है 'व्याकरण'। इसलिए किसी भाषा पढ़ाने केलिए उसके व्याकरण का ज्ञान दिया जाना आवश्यक है। संस्कृत पाठशालाओं इस विधि को अपनाया जाता था। वेदों के अध्ययन के लिए पुराने समय में व्याकरण विशेष पठन-पठन होता था अर्थात् वेदों की रक्षा के लिए व्याकरण पढ़ना चाहिए।

लाभ-

1. इससे छात्र संस्कृत भाषा की सूक्ष्मताओं को जान पाते हैं।
2. भाषा का शुद्ध, परिष्कृत व परिमार्जित ज्ञान हो जाता है।

पाठशाला विधि के गुण-

1. यह विधि भारतीय संस्कृति का संरक्षण करने में तथा संस्कृत साहित्य के अनुसंधान के लिए उपयोगी है।
2. इसमें अभ्यास व स्मरण शक्ति का सर्वाधिक उपयोग किया जाता था।
3. यह नैतिक मूल्यों के विकास में सहायक है।
4. छात्रों में अनुशासन की भावना उत्पन्न करने में उपयोगी है।
5. भाषा पर पूर्ण अधिकार प्राप्त करवाने में सहायक है।
6. इससे छात्रों में आत्म-संयम, मौलिक चिन्तन, तर्कशक्ति, निरीक्षण शक्ति का भी विकास होता है।
7. स्वाध्याय की आदत का विकास होता है।
8. छात्रों में आध्यात्मिक भावना के विकास में सहायक है।

पाठशाला विधि के दोष-

1. यह विधि छात्रों की रटंत स्मृति पर अधिक बल देती है। अत: उनकी सहज प्रतिभा अवरुद्ध हो जाती है।
2. छात्रों में सृजनात्मक शक्ति का विकास नहीं हो पाता।
3. वर्तमान काल में जब छात्रों को संस्कृत के साथ-साथ अनेक अन्य विषय भी पढ़ने होते हैं। तब पाठशाला विधि से संस्कृत सम्बन्धी व्यापक कार्यक्रम को चला पाना विद्यालयों में कठिन है। वर्तमान में तो स्थिति यहां तक आ पहुंची है कि संस्कृत के कालांश सप्ताह में अन्य विषयों की तुलना में कम है।

4. यह विधि सामान्य तथा मंद बुद्धि छात्रों के लिए उपयोगी नहीं है।
5. यह विधि नीरस है क्योंकि इसमें व्याकरण का शुष्क ज्ञान प्राप्त करने के लिए बाध्य किया जाता है।
6. इस विधि में भाषा की अन्य विधाएं उपेक्षित हो जाती है।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि वर्तमान काल में भी यह विधि यदि सन्तुलित रूप प्रयोग की जाए तो छात्रों को स्वाध्याय के लिए प्रेरित कर सकती है तथा उनका व्याकरण का ज्ञान पुष्ट होने से भाषा पर अच्छा अधिकार प्राप्त हो सकता है।

प्रत्यक्ष विधि

प्रत्यक्ष विधि का उदय अंग्रेज़ी भाषा को विदेशी भाषा के रूप में सिखाने के लि हुआ था। इस विधि के प्रवर्त्तक **वाइल्टर पैनफील्ड** हैं। इस विधि के समर्थकों ने मौलिव कार्य पर अधिक बल देते हुए मातृभाषा का पूरी तरह से बहिष्कार कर दिया। इस विधि क प्रयोग विभिन्न विदेशी भाषाएं सिखाने के लिए किया गया। **डॉ० राऊज़** ने इस पद्धति क प्रयोग करते हुए अपनी पुस्तक *'Latin on Direct Method'* में यह स्वीकार किया कि उसका यह प्रयास पूर्णतया सफल रहा है। उसके अपने शब्दों में, "इस समिति के सदस्य जिन्होंने इस विधि को क्रियात्मक रूप में देखा है, उनका यह मत है कि कुशल औ अनुभवी व्यक्तियों द्वारा इस पद्धति की सहायता से छात्रों को अधिक दत्तचित किया ज सकता है जबकि परम्परागत विधियों द्वारा छात्रों को इतना आकर्षित नहीं किया जा सकता इस विधि के प्रयोग द्वारा छात्र अपना पाठ तैयार करते समय पर्याप्त ज्ञान अर्जित कर ले हैं। इससे उनका मानसिक और भावात्मक विकास होता है।"

आटो जैस्परसन के अनुसार, "भाषाओं का पारस्परिक संबंध गणित के पर्यायवाचव जैसा नहीं हो सकता।" उसका विचार है कि केवल वार्तालाप द्वारा ही अचेतन रूप पर्याप्त व्याकरण सीखी जा सकती है। इस सम्बन्धी वह ज़ोरदार शब्दों में कहता है "वास्तव में जब हम कोई विदेशी भाषा बोलते या लिखते हैं तो हम ऐसे अनेक नियमों व पालन करते हैं जिन्हें हमने कभी बनता हुआ नहीं देखा तथा ऐसे नियम जिनकी कभी किसी व्याकरण ने चेतन रूप में रचना नहीं की।" यदि विदेशी भाषा को सीखने में य तथ्य ठीक हो सकता है तो संस्कृत जैसी देसी श्रव्य भाषा को सीखने में यह तथ्य अधिक सत्य होगा। अत: वार्तालाप विधि को अवश्य एक लाभदायक विधि समझना चाहिए।

प्रत्यक्ष विधि को निर्बाध पद्धति भी कहा जाता है। इस पद्धति में पाठ्य सामग्री व मातृभाषा में अनुवाद नहीं किया जाता। किसी भी भाषा को सीखने के लिए उस भाषा लिखने, बोलने, पढ़ने तथा सुनने का अभ्यास करना आवश्यक है। कक्षा का वातावरण ऐसा हो कि छात्र संस्कृत भाषा को लिखने-पढ़ने में रुचि लें। आदेश संस्कृत भाषा में दिए जाएं। आपसी वार्तालाप भी जहां तक हो सके संस्कृत में ही हो। अध्यापन की समू

क्रिया भी संस्कृत में ही हो। कहने का अभिप्राय यह है कि संस्कृत में ही प्रश्न किए और यथासम्भव संस्कृत में ही उत्तरों की मांग की जाए। इससे यह लाभ होगा कि छात्र संस्कृत लिखने-पढ़ने का केवल अभ्यास ही नहीं होगा, अपितु उनमें संस्कृत को भांति समझने और बोलने की सहज प्रवृत्ति भी उत्पन्न होगी।

प्रत्यक्ष विधि के पक्ष में तर्क
[Arguments in favour of Direct Method]

प्रत्यक्ष विधि के पक्ष में प्राय: निम्नलिखित बातें कही गई हैं–

1. यह विधि भाषा-शिक्षा के मूल सिद्धान्तों के अनुकूल है। किसी भी भाषा उसी के माध्यम के द्वारा सीखा जा सकता है, न कि अन्य भाषा के माध्यम
2. इस विधि में संस्कृत भाषा को सुनने तथा बोलने का पर्याप्त अवसर प्रदा किया गया है।
3. प्रत्येक भाषा की अपनी प्रकृति है। अनुवाद में भाषा की प्रकृति प्राय: उपेक्षि रह जाती है।
4. प्रत्यक्ष विधि में जिस प्रकार का भाषा का व्यावहारिक रूप समाज में होता है उसी प्रकार से यह कक्षा में भी प्रयुक्त होती है।
5. प्रत्यक्ष विधि से छात्रों की रुचि एवं योग्यता का ध्यान रखा जाता है।

प्रत्यक्ष विधि के विपक्ष में तर्क
[Arguments against Direct Method]

इस विधि के विरोध में निम्नलिखित बातें कही जा सकती हैं–

1. यह विधि तब सफल हो सकती है जब छात्रों को किसी विशेष भाषा का कुछ प्रारम्भिक ज्ञान हो। छात्र प्रारम्भ में संस्कृत भाषा में परस्पर विचारों की अभिव्यक्ति नहीं कर पाएंगे।
2. जहां तक संस्कृत भाषा का सम्बन्ध है, इसे बोलना तथा लिखना तभी सम्भव है, जबकि व्याकरण का प्रारम्भिक ज्ञान हो जाए।
3. कक्षा में कृत्रिम वातावरण बनाकर प्रत्यक्ष विधि के अनुकूल वातावरण रचा जा सकता है, परन्तु परिवार व समुदाय में छात्र मातृभाषा का ही सर्वाधिक प्रयोग करते हैं। अत: यह कृत्रिमता अधिक आकर्षक नहीं है।
4. अनुवाद प्रणाली से छात्र सरलता से संस्कृत सीख जाएंगे और संस्कृत की प्रकृति से भी परिचित होने में बाधा नहीं पड़ेगी।
5. प्रत्यक्ष विधि द्वारा केवल बुद्धिमान छात्र ही लाभान्वित होते हैं, सामान्य छात्र नहीं।

6. प्रत्यक्ष विधि में अधिक समय की आवश्यकता पड़ती है, जबकि उसी तथ्य को अनुवाद पद्धति द्वारा कम समय में समझाया जा सकता है।
7. प्रत्यक्ष विधि से पढ़ने के लिए वर्तमान अध्यापकों को अलग हटाकर नए अध्यापक नियुक्त करने पड़ेंगे जो असंभव तो नहीं पर कठिन अवश्य है।
8. वाक्य रचना के अभ्यास द्वारा केवल कुछ ही वाक्य-रचना-सांचों का ज्ञान कराया जा सकता है। संस्कृत भाषा में सामान्य एवं अपवाद नियम इतने अधिक हैं कि सभी में प्रत्यक्ष विधि को अपनाया जाना अत्यन्त कठिन ही नहीं अपितु असम्भव भी है। प्रत्यक्ष विधि के समर्थक तो प्राय: वाक्य-रचना प्रणाली का समर्थन करते हैं।

निष्कर्ष (Conclusion)–कुछ शिक्षा संस्थानों द्वारा पाश्चात्य देशों में प्रत्यक्ष विधि का प्रयोग अंग्रेज़ी पढ़ाने के उद्देश्य से किया गया, परन्तु यह पूर्णतया असफल सिद्ध हुआ। अत: यह कहना गलत न होगा कि यदि पाश्चात्य देशों द्वारा तैयार की गई प्रत्यक्ष विधि उनकी अपनी भाषा के लिए ठीक नहीं बैठती तो संस्कृत को पढ़ाने के लिए इस विधि का आश्रय लेना ठीक नहीं है। हां, प्रत्यक्ष विधि का व्याकरण एवं अनुवाद विधियों का मिला-जुला रूप ग्रहण करने में कोई हानि नहीं है।

व्याकरण अनुवाद विधि

व्याकरण विधि

मातृभाषा के अतिरिक्त किसी भी भाषा को सीखने की एक विधि यह है कि हम उस भाषा के व्याकरण को अच्छी तरह जानें और व्याकरण सीखकर उस भाषा पर अधिकार प्राप्त करें। संस्कृत भाषा का भी इसी दृष्टि से अध्ययन किया जाता है। संस्कृत पाठशाला में यह विधि सर्वप्रचलित विधि के रूप में पढ़ाई जाती है। संस्कृत भाषा का व्याकरण बड़ा जटिल किन्तु सुनिश्चित है। वेदों के अध्ययन के लिए प्राचीन समय में व्याकरण पर बल दिया जाता था। शिक्षा, छन्द, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष और कल्प नामक छ: वेदांगों के अध्ययन पर विशेष बल दिया जाता था।

आज भी पाठशालाओं में व्याकरण को महत्त्व दिया जाता है और व्याकरणाचार्य को अत्यधिक सम्मान दिया जाता है। शताब्दियों से यह प्रथा चली आ रही है कि संस्कृत का अध्ययन करने का अर्थ है, संस्कृत के व्याकरण का कुछ ज्ञान प्राप्त करके आगे बढ़ना। छात्र आज भी जब पाठशाला में जाता है तो उसे सर्वप्रथम 'लघु सिद्धान्त कौमुदी' का अध्ययन कराया जाता है। पाठशाला विधि की त्रुटियों में सुधार लाने के लिए **गोपाल कृष्ण भण्डारकर** ने 'भण्डारकर विधि' को प्रस्तुत किया। यह एक तरह से व्याकरण

विधि का ही दूसरा नाम है। इस विधि की सर्वप्रथम विशेषता यह थी कि संस्कृत व्याकरण तथा अनुवाद के माध्यम से पढ़ाया जाए। इस पद्धति में व्याकरण के दुरूह नियम का बहिष्कार किया गया तथा रटने की प्रणाली का भी बहिष्कार किया गया। इस शब्दावली को वर्गीकृत करके सरल संस्कृत भाषा का एक रूप प्रस्तुत किया गया। संस्कृत भाषा के पारखी भण्डारकर महोदय ने व्याकरण तथा अनुवाद के अभ्यास द्वारा संस्कृत भाषा का ज्ञान देने का प्रयास किया। भण्डारकर महोदय का यह दावा है कि व्याकरण और अनुवाद के अभ्यास द्वारा संस्कृत साहित्य में छात्रों को प्रविष्ट कराया जा सकता है।

आलोचना (Criticism)–व्याकरण पद्धति के अध्ययन करने की आजकल पर्याप्त आलोचना की जाती है। इस पद्धति में प्राय: निम्नलिखित दोष बताए जाते हैं–

1. यह विधि नीरस है।
2. यह विधि मनोविज्ञान के सिद्धान्तों के अनुकूल नहीं है। छात्र की मानसिक क्षमता एवं रुचि का व्याकरण पद्धति में ध्यान नहीं रखा जाता।
3. यह विधि भाषा शिक्षण के सिद्धान्तों के प्रतिकूल है। इसमें वर्णों को इकाई मानकर चला जाता है और वाक्य रचना का अभ्यास नहीं हो पाता।
4. यह विधि छात्रों को संस्कृत के प्रयोग का व्यावहारिक ज्ञान नहीं देती। शास्त्रीय व्याकरण में पटु होते हुए भी वैयाकरण संस्कृत के व्यावहारिक प्रयोगों पर अधिक ध्यान नहीं देते।
5. इस विधि में भाषा के अन्य पक्ष उपेक्षित रहते हैं।

व्याकरण विधि के गुण (Merits)–व्याकरण विधि के उपरोक्त दोषों की ओर आजकल के मनोविज्ञानवेता हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं परन्तु व्याकरण विधि के गुणों की ओर से भी हम आंखें नहीं मूंद सकते। इस विधि के गुणों का विवरण निम्नानुसार है–

1. संस्कृत व्याकरण इतना जटिल है कि उसका ज्ञान बिना व्याकरण-विधि के भली प्रकार हो ही नहीं सकता।
2. व्याकरण विधि से छात्र संस्कृत भाषा की बारीकियों को समझ जाता है।
3. व्याकरण विधि को अव्यावहारिक कहना भूल है। इस विधि से छात्र व्याकरण के नियमों को जानकर उनका उपयोग करते हैं।
4. इस विधि से संस्कृत का ज्ञान प्राप्त करने वाले पंडितों का उदाहरण इस बात को सिद्ध करता है कि यह विधि निरर्थक नहीं है। यदि मनोविज्ञान के सिद्धान्तों में यह विधि नहीं आती है तो मनोविज्ञान को अपने सिद्धान्तों को पुन: देखना चाहिए और उनमें संशोधन करना चाहिए, न कि पंडितों की इस विधि को ही

निरर्थक बताना चाहिएं। इस विधि ने जीवन के सभी क्षेत्रों में उच्चकोटि के विद्वान उत्पन्न किए हैं।

5. इस विधि से अध्ययन करने वाले छात्र भाषागत अशुद्धियां कम करते हैं। वे चाहे कम लिखें और कम बोलें, किन्तु जो भी लिखते या पढ़ते हैं, वह प्राय: शुद्ध होता है।
6. वर्तमान समय में संस्कृत एक अल्प प्रचलित भाषा है। ऐसी भाषा के उच्च व विशिष्ट ज्ञान के लिए व्याकरण पद्धति सर्वथा उपयुक्त है।

निष्कर्ष (Conclusion)–उपर्युक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि व्याकरण विधि का अपना महत्व है। यद्यपि सभी छात्रों के लिए इस विधि का समर्थन नहीं किया जा सकता, किन्तु जो इस विधि से अध्ययन करना चाहें, उनके मार्ग में बाधा भी नहीं आनी चाहिए। इसके विपरीत पाठशालाओं को उचित रूप से प्रोत्साहन देना चाहिए ताकि वहां पर छात्र अपने गहन अध्ययन द्वारा संस्कृत भाषा के गौरव को बनाए रखें और हमारी प्राचीन सांस्कृतिक परम्परा सुरक्षित रहे। केवल माध्यमिक स्तर में संस्कृत को एक वैकल्पिक विषय के रूप में आधुनिक मनोविज्ञान सिद्धान्तों के अनुसार संस्कृत का अध्ययन करा कर जो लोग भारत की सांस्कृतिक परम्परा की सुरक्षा की बात करते हैं, सम्भवत: वे आधुनिक अच्छे या बुरे सिद्धान्तों के प्रति अत्यधिक दीवाने समझ पड़ते हैं। इस विधि का अपना महत्त्व है और यदि इस विधि में आधुनिक मनोविज्ञान के सिद्धान्तों के अनुसार कुछ आवश्यक परिवर्तन कर दिए जाएं तो यह विधि बहुत से छात्रों के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

अनुवाद विधि

अनुवाद विधि के विषय में बड़ा मतभेद है। कुछ लोगों के अनुसार मातृभाषा के अतिरिक्त जब किसी भी भाषा को सीखा जाए तो उसे अनुवाद विधि के द्वारा ही सीखा जा सकता है जबकि कुछ अन्य व्यक्तियों के अनुसार अनुवाद विधि का प्रयोग किसी भी भाषा के अध्ययन में नहीं करना चाहिए।

यह बात निर्विवाद सत्य है कि बालक मातृभाषा में अपने विचारों को सरलता, सुगमता एवं स्पष्टता से व्यक्त कर सकता है। मातृभाषा के माध्यम से विषय को ग्रहण करना भी सरल होता है। इसी आधार पर कुछ लोगों का कहना है कि बालक के मन में जो कुछ भी आए, वह मातृभाषा के माध्यम के रूप में ही आए तो अच्छा है। संस्कृत का अध्यापन द्वितीय या तृतीय भाषा के रूप में होता है। अत: संस्कृत को यदि मातृभाषा के माध्यम से पढ़ाया जाए तो अत्यधिक अच्छा है। मातृभाषा के वाक्यों, अनुच्छेदों आदि का संस्कृत में अनुवाद करना अलग बात है। यहां पर अनुवाद विधि का तात्पर्य यह है कि संस्कृत भाषा को अनुदित करके पढ़ाया जाए।

अनुवाद विधि के पक्ष में तर्क–इस विधि के पक्ष में निम्नलिखित बातें कही जाती हैं–

1. इस विधि द्वारा छात्रों को विषय का सरलता एवं सुगमता से ज्ञान हो जाता है क्योंकि मातृभाषा के माध्यम से बोध सरल होता है।
2. इस विधि द्वारा मातृभाषा तथा संस्कृत भाषा के शब्दों, मुहावरों, लोकोक्तियों एवं विभिन्न शैलियों का ज्ञान प्राप्त हो जाता है। इससे छात्र के शब्द-भण्डार में वृद्धि होती है।
3. इस विधि से 'ज्ञात से अज्ञात', 'सरल से कठिन' आदि सिद्धान्तों का अनुसरण किया जाता है।
4. अनुवाद द्वारा वाक्य रचना ठीक से समझी जा सकती है।
5. इस पद्धति द्वारा अनुमान, तुलना तथा निरीक्षण का अभ्यास डाला जाता है।

अनुवाद विधि के विरोध में तर्क–इस पद्धति के विपक्ष में निम्नलिखित बातें कही गई हैं–

1. भाषा अभ्यासजन्य है। यदि सदा अनुवाद होता रहेगा तो संस्कृत भाषा को लिखने-पढ़ने की योग्यता का विकास करना ही असम्भव हो जाएगा।
2. अनुवाद में प्राय 'मक्षिका स्थाने मक्षिका' की प्रवृत्ति रहती है, जिससे भाषागत सौन्दर्य नष्ट हो जाता है।
3. किसी भी भाषा के मूलभाव की पूर्ण रक्षा करना इस पद्धति द्वारा कठिन है।
4. प्रत्येक भाषा का अपना अलग संदेश होता है जिसे वही भाषा वहन कर सकती है।
5. मूल प्रकृति के रूप में है तो अनुवाद प्रतिकृति के रूप में। प्रतिकृति से प्रकृति सदा श्रेष्ठ होती है।

किसी भी भाषा को सिखाने के लिए यह आवश्यक है कि उसी प्रकार का वातावरण हो और छात्र उस भाषा को लिखने, पढ़ने, बोलने तथा सुनने का अभ्यास करे। यदि कहीं पर अत्यधिक आवश्यक हो तो मातृभाषा का प्रयोग कर लिया जाए, नहीं तो संस्कृत भाषा का ही प्रयोग किया जाए।

पाठ्य-पुस्तक विधि

संस्कृत शिक्षण में पाठशाला प्रणाली तथा व्याकरण अनुवाद विधि अपने उद्देश्य प्राप्त करने में जब असफल सिद्ध हुई तो इनकी त्रुटियों को दूर करने के लिए पाठ्य-पुस्तक विधि का आगमन हुआ। इस शिक्षण पद्धति में विषय सामग्री को बोध सहित पढ़ने

पर बल दिया जाता है। वर्तमान की नवीन प्रचलित विधि इसी को ही माना जाता है। डॉ० वैस्ट को पाठ्य-पुस्तक विधि का मुख्य समर्थक माना जाता है। उनके अनुसार, "विषय के ग्राह्य मूल्य से हमारा तात्पर्य उस सानुपात लाभ से है जिसे कोई विद्यार्थी अपने कोर्स को अपूर्ण छोड़ने पर प्राप्त करता है।" चाहे विद्यार्थी स्कूल को किसी समय भी छोड़ दे, उसे अपने भाषा अध्ययन का अवश्यमेव कुछ-न-कुछ स्थायी लाभ होता ही है। क्योंकि लिखने और बोलने की अपेक्षा पढ़ने की क्षमता प्राप्त करना अधिक सुगम है तथा पढ़ना अधिक लाभदायक है। अत: इसका ग्राह्य मूल्य अधिकतम है।

यह एक सर्वमान्य तथ्य है कि किसी भी भाषा को बोलने और लिखने के लिए उस भाषा का सक्रिय ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है। परन्तु इसमें कुशलता प्राप्त कर पाना सभी छात्रों के लिए, विशेष रूप से छोटी कक्षाओं के छात्रों के लिए, एक कठिन समस्या होती है। शिक्षा एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। यह प्राथमिक स्तर के छात्रों के लिए अधिक उपयोगी है। अनेक संस्कृतज्ञों का मत है कि पढ़ना एक निष्क्रिय और सुगमतर प्रक्रिया है। अत: संस्कृत शिक्षण में हमारा ध्येय सरल और सुगम ही होना चाहिए। व्याकरण और मौखिक कार्य पर अधिक बल देना समय और शक्ति को नष्ट करने के समान ही होगा। प्रत्येक स्कूल जाने वाले छात्र को कम-से-कम इतना ज्ञान अवश्य होना चाहिए कि वह संस्कृत के सरल श्लोकों तथा अनुच्छेदों को समझ कर उनको जीवन में व्यावहारिक रूप दे सके। मूल सार यही है कि हमारा प्रयोजन बोध सहित पाठ पर ही आधारित होना चाहिए।

पाठ्य-पुस्तक विधि की विशेषताएं–

1. इस विधि की सर्वप्रथम विशेषता यह है कि इसमें संस्कृत भाषा में वाचन पर अधिक बल दिया गया है। विषय-सामग्री बालकों के भौतिक एवं सामाजिक वातावरण से ली गई है।
2. प्रारम्भिक अवस्था में वर्गीकृत शब्दावली में से वही शब्द सिखाये गए जो उनकी मातृभाषा तथा संस्कृत भाषा दोनों में समान रूप में थे। उन शब्दों को साधारण क्रिया के रूप में सिखाया गया; जैसे–पठामि, लिखामि आदि। इसके उपरान्त सरल वाक्यों द्वारा वाचन पर बल दिया गया।
3. इस विधि द्वारा मौखिक अथवा सस्वर वाचन में छात्र निपुण हो जाते थे, जो कि लिखित भाषा का आधार है।
4. छात्रों की उच्चारण सम्बन्धी त्रुटियों को शुद्ध किया जाता था। इसके फलस्वरूप छात्र अक्षर विन्यास में अशुद्धियां कम करते थे।
5. वाचन क्रिया द्वारा छात्र कक्षा में सक्रिय रहते थे।

6. कठिन शब्दावली की व्याख्या उनकी मातृभाषा में की जाती थी, जिससे छात्रों के लिए संस्कृत का ज्ञान प्राप्त करना सरल हो गया।
7. स्कूल छोड़ने के बाद भी छात्र इस विधि का लाभ उठा सकते थे। वे सहायक पुस्तकों एवं टीकाओं द्वारा संस्कृत भाषा को समझकर अर्थ ग्रहण करने में समर्थ हो जाते थे।

अभ्यास के प्रश्न

1. संस्कृत शिक्षण विधि से आपका क्या अभिप्राय है? संस्कृत शिक्षण में प्रत्यक्ष विधि की विस्तृत विवेचना कीजिए।
2. संस्कृत में शिक्षण विधियों का चयन करते समय आप किन तथ्यों पर अधिक बल देंगे और क्यों?
3. शिक्षण विधियों की आवश्यकता एवं महत्त्व का वर्णन कीजिए।
4. संस्कृत शिक्षण की व्याकरण अनुवाद विधि का अर्थ बताते हुए उसके गुण-दोषों की चर्चा करें।
5. प्राचीन एवं नवीन संस्कृत शिक्षण विधियों का परस्पर सम्बन्ध स्थापित करें।
6. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए–
   (क) पाठ्य-पुस्तक विधि
   (ख) पाठशाला विधि
   (ग) व्याकरण अनुवाद विधि।

❑❑❑

अध्याय **7**

संस्कृत अध्यापक तथा दृश्य-श्रव्य साधन प्रयोग

मातृ देवो भव, पितृ देवो भव, आर्य देवोभव। (सत्यार्थ प्रकाश)

संस्कृत विश्व की आदि भाषा है। भारत में संस्कृत का अध्ययन एवं अध्यापन प्राचीन काल से होता जा रहा है। प्राचीन काल में संस्कृत का अध्ययन एवं अध्यापन अपने चरमोत्कर्ष पर था और संस्कृत शिक्षक को आदर्श की प्रतिमूर्ति माना जाता था। इसलिए उसे 'द्विज' अर्थात् 'मानस पिता' कहा गया है। इसके अतिरिक्त संस्कृत शिक्षक ब्रह्म, विष्णु, महेश सदृश्य पूज्य भी रहा है। सुभाषित में कहा गया है।

"गुरूब्रह्मा गुरूर्विष्णुः गुरूर्देवो महेश्वरः।
गुरू साक्षात् परं ब्रह्म तस्मैं श्री गुरवे नमः॥"

परन्तु आज के भौतिकवादी युग में संस्कृत शिक्षक की वह प्रतिष्ठा नहीं रही है। फिर भी वर्तमान समय में संस्कृत शिक्षक को अपने अतीत से प्रेरणा लेते हुए कार्य करना है। वर्तमान शैक्षिक प्रक्रिया के मुख्यतः तीन अंग माने जाते हैं–शिक्षक, शिक्षार्थी और पाठ्यक्रम। इनमें शिक्षक का स्थान सर्वोपरि है, जो अन्य दोनों को प्रभावित करता है। शिक्षक पाठ्यक्रम स्वरूप पथ पर शिक्षार्थी को आगे बढ़ाने के लिए पथ-प्रदर्शक का कार्य करता है। **रॉस महोदय** लिखते हैं, "शिक्षक अपने प्रयासों से छात्र को जो अपनी प्रकृति के नियमों के अनुसार विकसित होता है, उस उच्चता पर पहुंचने में सहायता देता है जिस पर वह अपने आप नहीं पहुंच सकता है।"

संस्कृत शिक्षण के गुण

संस्कृत शिक्षक में निम्नलिखित गुण होने चाहिए–

1. संस्कृत विषय का पूर्ण ज्ञान (Sound Knowledge of Subject)–संस्कृत शिक्षक को अपने विषय का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए। उसकी संस्कृत साहित्य के अध्ययन में विशेष रुचि होनी चाहिए। संस्कृत साहित्य ज्ञान का भण्डार है। अतः संस्कृत शिक्षक को निरन्तर स्वाध्याय के द्वारा संस्कृत साहित्य में निहित ज्ञान को प्राप्त करते रहना चाहिए। विषय का पूर्ण ज्ञान न होने पर शिक्षक न तो छात्रों से सम्मान पाता है और न छात्रों का मानसिक विकास ही कर पाता है।

2. संस्कृत शिक्षण के सिद्धान्तों एवं विधियों का ज्ञान (Knowledge of Principles and Methods of Sanskrit-Teaching)–संस्कृत शिक्षण को रोचक एवं प्रभावपूर्ण बनाने के लिए संस्कृत शिक्षक को शिक्षण सिद्धान्त एवं नवीन शिक्षण विधियों का ज्ञान होना आवश्यक है। अत: शिक्षक को छात्रों की आयु, रुचि एवं मानसिक स्तर को दृष्टिगत रखते हुए विभिन्न शिक्षण सिद्धान्तों एवं नवीन शिक्षण विधियों की सहायता से शिक्षण कार्य करना चाहिए। इससे छात्रों को अधिक लाभ होता है और शिक्षक को कम परिश्रम करना पड़ता है। **रायबर्न** ने लिखा है, "अच्छा शिक्षक विधियों और अपने विषय में अपने ज्ञान की वृद्धि के लिए सदैव सचेष्ट रहता है। वह अपने ज्ञान को नवीन और आधुनिक रखने की चेष्टा करता है।"

3. मनोविज्ञान का ज्ञान (Knowledge of Psychology)–शिक्षण की सफलता के लिए संस्कृत शिक्षक को मनोविज्ञान का ज्ञान अवश्य ही होना चाहिए। संस्कृत शिक्षक मनोविज्ञान का ज्ञाता तो नहीं हो सकता परन्तु उसे शिक्षा मनोविज्ञान, बाल मनोविज्ञान, व्यावहारिक मनोविज्ञान और प्रयोगात्मक मनोविज्ञान का सामान्य ज्ञान अवश्य होना चाहिए।

4. बाल प्रकृति का ज्ञान (Knowledge of Child Nature)–वर्तमान शिक्षण प्रक्रिया में बालक केन्द्र बिन्दु है। अत: बालकों की प्रकृति का ज्ञान होना शिक्षक के लिए आवश्यक है। बालक भिन्न-भिन्न रुचियों, मनोवृत्तियों एवं अभिरुचियों वाले होते हैं। शिक्षक इनका ज्ञान प्राप्त करके ही बालक का शारीरिक एवं मानसिक विकास करने में सफल हो सकता है और बालकों का समुचित पथ प्रदर्शन कर सकता है।

5. विनोद प्रिय (Humorous)–संस्कृत शिक्षक को विनोद प्रिय होना चाहिए। संस्कृत भाषा एवं उसका व्याकरण अत्यन्त दुरूह है, जिससे कक्षा शिक्षण में नीरसता आ जाती है। एक विनोद-प्रिय शिक्षक कक्षा के नीरस वातावरण को किसी भी परिस्थिति में शिक्षण के अनुकाल एवं रोचक बना सकता है तथा छात्रों को विषय-वस्तु के प्रति आकृष्ट कर सकता है। **रायबर्न** ने लिखा है, "हंसी के बिना कक्षा कक्ष बहुत नीरस स्थान होता है। सीमित हंसी शिक्षण में सहायक होती है।"

6. कुशल कक्षा नियन्त्रण (Successful Class-Controller)–सफल शिक्षण के लिए कक्षा को नियन्त्रित एवं अनुशासित रखना परमावश्यक होता है। इसके अभाव में शिक्षण प्रक्रिया का एक पग भी आगे बढ़ना असम्भव है। **बालकृष्ण जोशी** ने लिखा है, "तरूण छात्रों को स्वस्थ नियन्त्रण में रखना शिक्षकों पर आधारित एक नैतिक कर्त्तव्य है।"

7. कुशल वक्ता–**लेविस** के अनुसार, "संस्कृत शिक्षक को एक कुशल वक्ता होना चाहिए, जिससे वह बालकों के शुद्ध उच्चारण, गति, यति और लय आदि का मार्गदर्शन कर सके।" इससे स्पष्ट है कि दात्रों में शुद्ध वाचन एवं शुद्ध उच्चारण की क्षमता संस्कृत शिक्षण के कुशल वक्त होने पर निर्भर करती है और छात्रों में भी कुशल वक्ता

बनने की भावना जागृत करती है। कुशल वक्ता अपनी ओजस्वी वाणी से दूसरों को प्रभावित करता है तथा गम्भीर विषयों को भी सरस एवं बोधगम्य बना सकता है।

8. साहित्यिक कथा वाचन में सक्षम–संस्कृत साहित्य कहानियों एवं दृष्टांतों से परिपूर्ण है। अत: संस्कृत शिक्षक को कहानी कहने में कुशल होना चाहिए, जिससे वह छात्रों को कहानियों के माध्यम से संस्कृत साहित्य में सन्निहित भारतीय संस्कृति के विषय में ज्ञान करा सके। छात्रों की कहानियां सुनने में विशेष रुचि होती है। इससे बालकों का मनोरंजन होता है और उनके साहित्यिक ज्ञान में वृद्धि भी होती है।

9. प्रभावपूर्ण व्यक्तित्व–संस्कृत शिक्षक का व्यक्तित्व प्रभावपूर्ण होना चाहिए। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से व्यक्तित्व के अन्तर्गत व्यक्ति के बाह्य एवं आन्तरिक दोनों ही पहलू आ जाते हैं। संस्कृत शिक्षक का शारीरिक गठन, स्वास्थ्य एवं वेशभूषा सुन्दर होनी चाहिए। इसके साथ ही मधुर एवं ओजस्वी वाणी तथा दयालु हृदय भी होना चाहिए। इसका छात्रों पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है।

10. न्यायप्रिय एवं निष्पक्ष–संस्कृत शिक्षक का व्यक्तित्व एवं निष्पक्ष होना चाहिए। किसी वर्ग या जाति विशेष के छात्रों के साथ भेदभाव नहीं करना चाहिए। न्यायप्रियता एवं निष्पक्षता शिक्षक को महत्त्वपूर्ण भूमिका प्रदान करती है। **रायबर्न** लिखते हैं, "न्यायपूर्ण होने का प्रयास करने की आदत शिक्षक को अनुशासन में और उसके कार्य में सहायता करेगी।"

11. सहानुभूतिपूर्ण (Sympathatic)–संस्कृत शिक्षक को सहानुभूतिपूर्ण होना चाहिए। सहानुभूति प्रदर्शित करते हुए शिक्षक अपने छात्रों में आत्मीयता स्थापित कर सकता है। **रॉस** ने लिखा है, "एक व्यक्ति, जिसे सहानुभूति का उपहार नहीं मिला है, उसे शिक्षक नहीं बनना चाहिए।"

12. वेशभूषा–शिक्षण में शिक्षक की वेशभूषा अपना विशेष स्थान रखती है क्योंकि वेशभूषा व्यक्ति के व्यक्तित्व को प्रभावित करती है। इसके अतिरिक्त संस्कृत शिक्षक भारतीय संस्कृति का पोषक होता है। अत: समाज एवं विद्यालय में आदर्शको प्रस्तुत करने के लिए संस्कृत शिक्षक को भारतीय संस्कृति के अनुरूप ही वेशभूषा धारण करनी चाहिए।

13. प्रशिक्षण प्राप्त तथा अनुभवी–शिक्षण एक कला है, जिसमें दक्षता प्राप्त करना सभी शिक्षकों के लिए आवश्यक है। अत: व्यावसायिक प्रशिक्षण द्वारा शिक्षण कला में दक्षता प्राप्त की जा सकती है। **शिक्षा आयोग** ने लिखा है, अन्य प्रभावों की अनुपस्थिति में शिक्षक उसी प्रकार पढ़ाने का प्रयास करता है, जिस प्रकार उसे उसके प्रिय शिक्षकों द्वारा पढ़ाया गया था। इस प्रकार वह शिक्षण की परम्परागत विधियों को जारी रखता है। आधुनिक परिस्थिति में जबकि शिक्षा की नवीन एवं प्रगतिशील विधियों की आवश्यकता है, शिक्षक का ऐसा दृष्टिकोण शिक्षा की प्रगति में बाधा उपस्थित करता है। इसमें केवल

व्यावसायिक शिक्षा द्वारा ही सुधार किया जा सकता है। अतः इस दृष्टि से संस्कृत शिक्षण के लिए भी व्यावसायिक प्रशिक्षण आवश्यक है।

उपर्युक्त पंक्तियों में संस्कृत के अच्छे शिक्षक के कतिपय गुणों का विवेचन किया गया है, वैसे तो संस्कृत शिक्षक को सर्वगुण सम्पन्न होना चाहिए परन्तु उपर्युक्त गुणों से सम्पन्न संस्कृत शिक्षक को आदर्श कहा जा सकता है। महाकवि कालीदास ने आदर्श शिक्षक के विषय में लिखा है, "कोई शिक्षक व्यापक ज्ञान रखता है। दूसरा ज्ञान का प्रकाश या प्रकाश करने में बहुत चतुर है परन्तु इन दोनों में जो सिद्धहस्त है, वही सब का शिरोमणि माना जाता है।"

श्रव्य-दृश्य साधन का अभिप्राय

इस श्रव्य-साधन मुद्रित अथवा लिखित शब्द के अतिरिक्त वे साधन है जो वस्तु विशेष की स्पष्ट धारणा बनाने में सहायक होते हैं। वास्तव में किसी वस्तु की स्पष्ट धारणा बनाने का सबसे अच्छा तरीका है, उसकी प्रत्यक्ष अनुभूति। इस विशाल और जटिल विश्व की प्रत्येक वस्तु का ज्ञान प्रत्यक्ष अनुभव द्वारा प्राप्त नहीं हो सकता है। हमें प्रतिरूपों की सहायता लेनी पड़ती है। दृश्य-श्रव्य साधन हमें प्रतिरूप प्रदान करते हैं और वे दृश्य-श्रव्य इसलिए कहलाते हैं, क्योंकि वे श्रवण व दर्शन की दो इन्द्रियों द्वारा ही प्रभावी होते हैं। इस प्रकार दृश्य-श्रव्य साधन वे उद्दीपक हैं जो एक से अधिक ज्ञानेन्द्रियों को आकर्षित करते हैं। फलस्वरूप होने वाला ज्ञान अधिक चिरस्थायी होता है।

ओ०एस० फाउलर के अनुसार, "विषय को कठिन स्तर से सरल स्तर की ओर ले जाने के लिए जिस सहायक सामग्री का प्रयोग किया जाता है, उसे श्रव्य-दृश्य उपकरण कहा जाता है।"

सुर्जीत चक्रवर्ती के अनुसार, "श्रवण व दर्शन की दो इन्द्रियों द्वारा प्रभावी होने वाले साधनों को श्रव्य-दृश्य साधन कहा जाता है।"

डैंट के अनुसार, "श्रव्य दृश्य सामग्री वह है जो कक्षा में या अन्य शिक्षण परिस्थिति में लिखित या बोली गई पाठ्य सामग्री को समझने में सहायता प्रदान करे।"

श्रव्य-दृश्य साधनों का शैक्षिक महत्त्व तथा उपयोगिता–

1. शिक्षण के समय विद्यार्थियों को पढ़ने के लिए प्रेरित करने के लिए दृश्य-श्रव्य साधनों का महत्त्व है।
2. विषय-वस्तु को रोचक एवं प्रभावपूर्ण बनाने के लिए श्रव्य-दृश्य उपकरण लाभदायक हैं।
3. पठित एवं अनुभूत ज्ञान को सुदृढ़ बनाने में उपयोगी है।
4. संस्कृत छात्रों की मातृभाषा अथवा सम्पर्क भाषा नहीं है। अतः संस्कृत पढ़ने के लिए रूचि विकसित करने में भी इनका विशेष महत्त्व है।

5. केवल व्याख्यान में बालक निष्क्रिय ही रहता है जबकि उद्योतन सामग्री द्वारा पढ़ें पाठ में उसे प्रत्यक्ष खुद देखने, विचार करने तथा अभिव्यक्ति का अवसर मिलता है।
6. उद्योतन सामग्री द्वारा शिक्षण करने पर शिक्षक को कम मेहनत कर पाठ को आकर्षक बनाने और अनुशासनात्मक ढंग से पढ़ाने में सहायता मिलती है।
7. छोटी और सूक्ष्म वस्तुओं को बड़े आकार में प्रकट कर उसका तथ्यात्मक ज्ञान बालक को स्पष्ट रूप से दिया जाता है।
8. विषय-वस्तु के कठिन स्थलों का स्पष्टीकरण उचित श्रव्य-दृश्य सामग्री द्वारा प्रस्तुत करने पर विद्यार्थी सरलता से समझ जाता है।
9. मनोविज्ञान के विकास द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि एक से अधिक इन्द्रियों द्वारा प्राप्त ज्ञान अधिक स्पष्ट, पूर्ण, सहज, रुचिकर तथा स्थायी होता है।

श्रव्य-दृश्य उपकरणों के उपयोग के उद्देश्य–

1. छात्रों की श्रव्य एवं दृश्य इन्द्रियां प्रशिक्षित करना।
2. शिक्षण को आकर्षक, रोचक एवं प्रभावपूर्ण करना।
3. कक्षा शिक्षण के नीरस वातावरण को दूर करने का प्रयास करना।
4. छात्रों के लिए विषय-वस्तु को सार्थक एवं सुग्राह्य बनाना।
5. छात्रों का ध्यान विषय-वस्तु में केन्द्रित रखने का प्रयास करना।
6. छात्रों को भाषागत दोषों एवं भ्रमों के निवारणार्थ सहयोग प्रदान करना।
7. छात्रों को ज्ञानार्जन में सहयोग देना।
8. छात्रों के अर्जित ज्ञान को स्थायी बनाने का प्रयास करना।
9. छात्रों की संस्कृत भाषा के प्रति रुचि उत्पन्न करना।

श्रव्य-दृश्य सामग्री के उपयोग में बरती जाने वाली सावधानियां–

1. सामग्री का प्रदर्शन ऐसे स्थान पर किया जाना चाहिए, जहां से सभी बालक उसे आसानी से देख सकें।
2. सामग्री आकर्षक होनी चाहिए।
3. सामग्री बालकों के स्तरानुकूल होनी चाहिए।
4. सामग्री बालक के समक्ष उसी समय तक रखी जाए जब तक वह पाठ के विकास में सहायक हो।
5. शिक्षक सहायक सामग्री का स्पष्टीकरण इस तरीके से करें कि छात्र उसका अधिक से अधिक लाभ प्राप्त कर सके।
6. एक से अधिक चित्र आदि सामग्रियों को प्रदर्शित करने के लिए उनको अवसरानुकूल तथा उचित क्रम से प्रदर्शित किया जाए।

7. सामग्री बालकों के सामने प्रदर्शित करते ही शिक्षक व्याख्यान देना प्रा
कर दे। उसी से सम्बन्धित कुछ प्रश्न बालकों से पूछे जाएं ताकि उनकी
का अवसर मिले। इससे उनका ध्यान भी पाठ में केन्द्रित हो जाएगा।
8. सामग्री का प्रयोग उच्च कक्षाओं में कम और छोटे स्तर की कक्षाओं में
किया जाए।
9. सामग्री का उपयोग आवश्यकतानुसार ही किया जाए।
10. दृश्य-श्रव्य उपकरण का प्रयोग पाठ को समझाने के लिए किया जाए,
सामग्री प्रदर्शन के लिए।
11. दृश्य-श्रव्य साधन अच्छी हालत में होने चाहिए।

संस्कृत शिक्षण में उपयोगी श्रव्य-दृश्य साधन

दृश्य साधन		श्रव्य साधन	दृश्य-श्रव्य साधन
1. श्यामपट्ट	1. चित्र विस्तारक यंत्र	1. आकाशवाणी	1. दूरदर्शन
2. फलालैन पट्ट	2. प्रक्षेपण यंत्र	2. ग्रामोफोन	2. दृश्य-श्रव्य अभिलेख (ऑडि वीडियो कैसेट्स
3. लपेट फलक	(क) ओवरहैड	3. ध्वनि अभिलेख (टेप रिकॉर्डर)	3. अभिनय (टेप रिकॉर्डर)
4. चित्र	(ख) फिल्म स्ट्रिप प्रोजैक्ट	4. सीतावाद्य (लिंग्वाफोन)	4. चलचित्र
5. मानचित्र	(ग) स्टिरियोस्कोप	5. भाषा प्रयोगशाला	5. संगणक
6. रेखाचित्र	(घ) एपीडियास्कोप	6. टेलीटीचिंग एवं टैलीकॉन्फ्रैंसिग	6. इंटरनैट
7. चार्ट			
8. पाठ्यपुस्तक			
9. संग्रहालय			
10. प्रतिकूल			
11. भित्ति पत्रिका			
12. पत्र-पत्रिकाएं			

दृश्य साधन–ये वे साधन हैं जिन्हें देखकर विषय-वस्तु को समझने में सहायता मिलती है। ये दो प्रकार के होते हैं–1. सामान्य दृश्य साधन, 2. यांत्रिक दृश्य साधन।

सामान्य दृश्य साधन–ये वे दृश्य साधन हैं जिनके लिए किसी भी विद्युत अथवा मशीन की आवश्यकता नहीं होती है। शिक्षक स्वयं ही इन्हें कक्षा में प्रयोग कर सकता है।

1. श्यामपट्ट–कक्षाकक्ष में श्यामपट्ट का होना आवश्यक है। इसके कई रूप आज प्रचलित हैं। जैसे चल श्यामपट्ट तथा अचल श्यामपट्ट। रंग की दृष्टि से श्याम, हरित, पीत व श्वेत आदि।

संस्कृत भाषा शिक्षण में श्यामपट्ट के प्रयोग का बहुत महत्त्व है। प्राथमिक स्तर पर अक्षर ज्ञान से लेकर उच्च स्तर पर सार लेखन तक में इसका प्रयोग होता है। कक्षा में प्रवेश करते ही औपचारिक बिंदु श्यामपट्ट पर ही लिखे जाते हैं। शुद्ध वर्तनी का ज्ञान तथा शुद्ध उच्चारण का अभ्यास करवाने में यह सहायक हैं। काठिन्य निवारण में भी यह उपयोग में आता है।

श्यामपट्ट का उपयोग करते समय ध्यातव्य बिंदु–

(1) स्थिति–बोर्ड ऐसे स्थान में स्थित होना चाहिए, जिस पर सभी छात्रों की दृष्टि पड़ सके। कक्षा में बैठक व्यवस्था के अनुसार होना चाहिए। अध्यापक को बोर्ड पर लिखते समय एक तरफ खड़े होकर लिखना चाहिए, जिससे सभी छात्र लिखे हुए वाक्यांशों को ठीक प्रकार से पढ़ सके। अध्यापक की पीठ छात्रों की तरफ भी नहीं होनी चाहिए। जिससे अनुशासन बना रहे।

(2) लेख–बोर्ड पर लिखे अक्षर एक समान व एक-सी दूरी पर हो। लेख में शब्दों व वाक्यों का अत्यालेख न हो। लेख सुन्दर व आकर्षक होना चाहिए।

(3) रोशनी–बोर्ड पर रोशनी का उचित प्रबंध होना चाहिए ताकि छात्र ठीक प्रकार से देख सकें।

(4) बोर्ड की उपयुक्तता–बोर्ड पर लिखी सामग्री स्पष्ट, संक्षिप्त, प्रासंगिक व आकर्षक होनी चाहिए।

(5) लिखते समय उच्चारण–बोर्ड पर लिखते समय उच्चारण भी करना चाहिए। इससे छात्रों को शुद्ध उच्चारण का भी ज्ञान हो जाता है।

(6) समय सीमा–बोर्ड पर लिखी गई विषय-वस्तु अधिक देर तक बोर्ड पर नहीं रहनी चाहिए। जब तक उसकी आवश्यकता हो, उतने समय ही लिखा रहना चाहिए। जैसे ही उपयोगिता समाप्त हो, साफ कर देना चाहिए।

2. फलालैन पट्ट–यह फलालैन वस्त्र से बना बोर्ड होता है। जिस पर चित्रों, शब्दों आदि को कागज पर बनाकर नीचे रेगमाल का कागज लगाकर फलालैन पर चिपकाया जाता है। प्रारम्भिक कक्षाओं में लघु कथाएं, शब्द एवं धातु रूपों को सिखाने में इसके विषय को रोचक बना देता है।

3. लपेट फलक–छोटे-छोटे प्रश्नों को लपेट फलक पर पहले से लिखका किया जा सकता है। पद्य शिक्षण के अन्तर्गत इस पर शब्दों के अर्थ पहले से लिखका में छात्रों को लिखवाये जा सकते हैं।

4. चित्र–संस्कृत शिक्षण में चित्रों का प्रयोग पाठ का प्रारम्भ करते समय तथा को प्रस्तुत करते समय किया जा सकता है। चित्र महापुरुषों, नेताओं, पशु-प वस्तुओं, प्राकृतिक दृश्यों तथा ऐतिहासिक भवनों के हो सकते हैं।

5. मानचित्र–यद्यपि मानचित्र का प्रयोग भाषा शिक्षण में विशेष महत्त्व नहीं र किन्तु यदि कहीं भौगोलिक या ऐतिहासिक पाठ्यवस्तु हो तो वहां मानचित्र स्थिति स्पष्ट करने में सहायक हो सकते हैं।

6. रेखाचित्र–रेखाओं द्वारा आकृति प्रदान करके भी विषय-वस्तु को स्पष्ट कि जा सकता है। चित्र, प्रतिकृति आदि के अभाव में अध्यापक इनका प्रयोग कर सकता किसी बिंदु का वर्गीकरण दर्शाने में भी रेखाचित्र सहायक होते हैं–व्याकरण शिक्षण क समय सन्धि, समास, प्रत्यय, उपसर्ग आदि का भेद दर्शाने के लिए रेखाचित्र सहायक हैं।

7. चार्ट–किसी पद्य की प्रस्तावना एवं व्याकरणिक नियमों को स्पष्ट करने स्वनिर्मित चार्ट बहुत उपयोगी एवं प्रभावकारी है। सन्धि विच्छेद का स्वरूप, समास प्रकार, उपसर्ग एवं प्रत्ययों को समझने हेतु इनकी बड़ी महत्ता है। चार्ट द्वारा पढ़ी पाठ्य वस्तु छात्र शीघ्र हृदयंगम कर लेते हैं।

8. पाठ्य-पुस्तक–पाठ्य-पुस्तकें शिक्षक के शिक्षण का आधार होती हैं। इन लेकर ही अध्यापक अध्यापन कार्य करता है, किन्तु पाठ्यक्रम में निर्धारित पुस्तकों से अतिरिक्त पढ़ने हेतु शिक्षक छात्रों को प्रेरित कर सकता है। यह भी दृश्य साधनों में से महत्त्वपूर्ण साधन है। जितनी अधिक व विविध पुस्तकें छात्र स्वयं पढ़ेंगे, उतना ही ज्ञानवर्द्धन होगा।

9. संग्रहालय–संग्रहालय ऐसा स्थान है जहां प्राचीन और दुर्लभ वस्तुएं एकत्रित रखी जाती हैं। छात्रों को भी इस प्रकार की वस्तुएं एकत्रित करने के लिए प्रेरित किया सकता है।

10. प्रतिकृति–किसी वैज्ञानिक महत्त्व के विषय में स्पष्टीकरण में प्रतिकृति महत्त्वपूर्ण स्थान है, यथा–उद्योग-धंधों, विभिन्न बाध्य परियोजनाओं, प्रसिद्ध इमा आदि के विषय में छात्रों की स्पष्ट धारणा निर्मित करने करने में यह लाभदायक है। इ निर्माण में छात्रों का सहयोग लिया जाए तो शिक्षण और भी रोचक हो जाता है।

11. भित्ति-पत्रिका–छात्रों में सृजनात्मक व मौलिक चिन्तन का विकास करने भित्ति पत्रिका का आयोजन किया जा सकता है। छात्रों की रचनाओं को कक्षा की दीव

पर तथा कक्षा के बाहर बरामदे अथवा गैलरी में दीवारों पर प्रदर्शित किया जाता है तो वह भित्ति पत्रिका कहलाती है। भित्ति पत्रिका में प्रत्येक कक्षा के विद्यार्थियों द्वारा शिक्षाप्रद श्लोक, अर्थ सहित सूक्तियां, संस्कृत में लघु कहानी, प्रहेलिका, लघु वर्णन, संस्कृत कवि का जीवन, उसका चित्र, कवियों के नाम, उनकी रचनाएं आदि संकलित की चयनित रचनाएं प्रदर्शित की जाती हैं।

12. पत्र-पत्रिकाएं–वर्तमान में ज्ञान के अत्यधिक विस्फोट के कारण छात्र केवल निर्धारित पाठ्यक्रम के पाठ पढ़कर ही सन्तुष्ट नहीं होते। अत: उन्हें विषय के अतिरिक्त जानकारी देने हेतु पत्र-पत्रिकाओं का ज्ञान देना भी आवश्यक है। संस्कृत की कौन-कौन सी पत्रिकाएं प्रकाशित हो रही हैं? उनके प्रकाशक कौन हैं? वे कहां उपलब्ध हो सकती हैं? इससे सम्बन्धित जानकारी छात्रों को दी जानी चाहिए ताकि वे इनकी सहायता से ज्ञानवर्द्धन कर सके।

यान्त्रिक दृश्य साधन–ये वे दृश्य साधन है जिनके लिए विद्युत तथा यंत्रों की आवश्यकता पड़ती है। कुछ प्रमुख यांत्रिक दृश्य साधन निम्नानुसार हैं–

1. चित्र विस्तारक यंत्र–चित्र विस्तारक यंत्र की सहायता से छोटे चित्रों को बड़ा आकार प्रदान किया जा सकता है। ये ध्वनि रहित होते हैं। अध्यापक पाठ्य-पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं आदि में से चित्र लेकर इस यंत्र की सहायता से विषय को स्पष्ट कर सकता है। इससे चित्र बनाने में लगने वाले समय की बचत हो सकती है।

2. प्रक्षेपण यंत्र–

(क) ओवरहैड प्रोजैक्टर–पारदर्शिताएं तैयार कर ओवरहैड प्रोजैक्टर की सहायता से प्रस्तुत की जा सकती है। ये पारदर्शिकाएं सभी विधाओं के लिए उपयोगी है।

(ख) फिल्म स्ट्रिप प्रोजैक्टर–इस यंत्र की सहायता से किसी विषय से संबंधित कई चित्रों का प्रदर्शन करके उसका पूरा बिम्ब छात्रों के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है।

(ग) स्टिरियोस्कोप–किसी प्राकृतिक हृदय तथा ऐतिहासिक साल को मूर्त रूप देने में यह यंत्र उपयोगी होता है। रचना शिक्षण में यह विशेष उपयोगी है।

(घ) एपिडियास्कोप–छपी हुई पुस्तकों को इस स्कोप के नीचे रखा जाता है तथा उसका बिम्ब पर्दे पर आ जाता है जिसे सभी छात्र देख व पढ़ सकते हैं। संस्कृत के दुर्लभ ग्रन्थों के उपयोग में यह अत्यन्त आवश्यक है।

श्रव्य साधन–श्रव्य साधन वे साधन हैं जिन्हें सुनने से विषय-वस्तु को समझने में सहायता मिलती है। ये निम्नलिखित है–

1. आकाशवाणी–आकाशवाणी से संस्कृत भाषा में प्रसारित कविता पाठ, नाटक, प्रतियोगिता, समाचार, देश-विदेश के विद्वानों के भाषण, सार गर्भित वार्ताएं संस्कृत विद्यार्थियों के लिए उपयोगी, ज्ञानवर्धक और संस्कृत शिक्षक के प्रति उनकी रुचि विकसित

करने में सहायक सिद्ध हो सकते हैं। आज दूरस्थ शिक्षा में इसकी उपादेयता को
रखते हुए कार्यक्रमों की संख्यात्मक व गुणात्मक वृद्धि दिन-प्रतिदिन की जा रही है

2. ग्रामोफोन–यह उपकरण प्रत्येक अवस्था के बालक के लिए लाभदायक
संस्कृत/अध्यापक विद्यार्थियों के उच्चारण की शुद्धता के लिए इन ग्रामोफोन रिकॉर्डस
आश्रय ले सकता है। उच्चारण के साथ स्वराघात, बल, लय इन सब बातों का ज्ञान विद्
इनकी सहायता से ठीक-ठीक प्राप्त कर पाता है। कविता पाठ, नाटकीय संवाद एवं
भी इन रिकॉर्डस की सहायता से सिखाये जा सकते हैं।

3. ध्वनि अभिलेख (टेप-रिकार्डर)–वाचन और उच्चारण की शुद्धता का
कराने के लिए संस्कृत शिक्षण में टेप-रिकार्डर एक आवश्यक श्रव्य साधन है। गल
उच्चारण करने वाले बालकों को उनका उच्चारण टेप करके सुनाया जाए तथा पुनः
उच्चारण को टेप करके सुनाया जाए। इससे पाठ रोचक भी बनता है।

4. सीतावाद्य (लिंग्वाफोन)–लिंग्वाफोन के अभिलेख आदर्श वक्ता द्वारा तै
करवाये जाते हैं। जिससे विभिन्न ध्वनियों के उच्चारण, काव्य शिक्षण तथा व्याक
शिक्षण को प्रभावशाली ढंग से किया जा सके।

5. भाषा प्रयोगशाला–भाषा प्रयोगशाला विद्युत की सहायता से नियन्त्रित एक क
है। जिसमें छात्र एक साथ बैठकर भाषा सीखते हैं और व्यक्तिगत निर्देशन प्राप्त करते
प्रत्येक छात्र के बैठने के लिए अलग मेज, कुर्सी होते हैं। उसमें अवरोध लगे होने
कारण छात्र इधर-उधर नहीं देख सकते। प्रत्येक सीट पर इयर फोन और टेप-रिकॉ
आदि लगे होते हैं। अध्यापक की सीट ऐसे स्थान पर होती है जहां से वह प्रयोगशाला
सीखने वाले सभी छात्रों पर नियन्त्रण रख सकता है क्योंकि प्रत्येक सीट पर लगे इयरफ
और टेप-रिकार्डर का बोर्ड उसके सामने होता है। इससे अध्यापक प्रयोगशाला के स
अथवा किसी एक छात्र को निर्देश दे सकता है।

6. टेलीटीचिंग एवं टैलीकांफ्रैंसिंग–इस तकनीकी का प्रयोग क्षेत्रीय सीमाओं
पार विद्यार्थी शिक्षक तथा शैक्षिक संस्थाओं को आपस में जोड़ने के लिए होता है।
तकनीकी का प्रयोग यदि संस्कृत शिक्षण में भी किया जो तब हम विभिन्न प्रदेशों
विद्वानों व शैक्षिक संस्थाओं से जुड़कर छात्रों का ज्ञानवर्द्धन कर सकते है। इंदिरा गां
राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय में दूरस्थ शिक्षा के क्षेत्र में इस तकनीकी का प्रयोग किया
रहा है।

दृश्य-श्रव्य साधन–दृश्य-सामग्री से तात्पर्य उन साधनों से है जिनमें श्रव्य त
दृश्य दोनों इंद्रियों का प्रयोग होता है अर्थात् जिनसे ज्ञान श्रव्य तथा दृश्य दोनों इंद्रियों
द्वारा प्राप्त होता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी इन साधनों का प्रयोग अधिक शक्तिशा
होता है, क्योंकि किसी भी पाठ का जो अंश देखने से समझ में नहीं आता, वह सुनने
तथा जो सुनने से समझ में नहीं आता, वह देखने से शीघ्रता से समझ में आ जाता है।

1. दूरदर्शन–दूरदर्शन से उच्च कक्षाओं के लिए संस्कृत में शैक्षिक कार्यक्रम,
संस्कृत में वार्ता, संस्कृत में समाचार, एकांकी भाषण आदि का प्रसारण किया जाता है। कई
बार धारवाहिकों में प्रार्थना, संस्कृत साहित्यकारों का वर्णन आदि भी प्रसारित होते हैं।
संस्कृत अध्यापक को चाहिए कि संस्कृत शिक्षण का कार्यक्रम जब दूरदर्शन पर प्रसारित
हो तो उससे छात्रों को लाभान्वित कराएं।

2. दृश्य-श्रव्य अभिलेख (ऑडियो-वीडियो कैसेट्स)–विद्यालयों में कई बार
संस्कृत कार्यक्रम आयोजित होते हैं, जैसे संस्कृत में नाटक, एकांकी, कवि सम्मेलन,
संस्कृत विद्वानों का भाषण, ऑडियो-वीडियो कैसेट्स में रिकार्ड कराकर, वीडियो फिल्म
तैयार कराकर, सुविधानुसार उसका छात्रों के सम्मुख पुनः प्रदर्शन किया जा सकता है।

3. अभिनय–संस्कृत शिक्षण में अभिनय का विशेष महत्व है। 'अभिज्ञान शाकुन्तलम
नैषध चरितम्' आदि के एक-एक अंक या परिच्छेद को नाटक के रूप में प्रस्तुत करके
दिखाया जाए तो विषय सरल एवं रोचक हो सकेगा। साथ ही छात्रों में मौखिक अभिव्यक्ति
की क्षमता का विकास भी हो सकेगा। रंगमंच आदि के अभाव में नाटकों का अभिनय
सम्भव न हो तो कक्षा अभिनय विधि को अपनाया जा सकता है। विद्यार्थी कक्षा में ही बिना
रंगमंच के और बिना वेशभूषा के पठित सामग्री अथवा नाटक का अभिनय करें। अध्यापक
विभिन्न छात्रों को उनके भाग वितरित करें।

4. चलचित्र–संस्कृत को वर्तामन लोकप्रिय बनाने के लिए संस्कृत साहित्य के
प्राचीन ग्रंथों, सामयिक समस्याओं, ऐतिहासिक कथानकों के आधार पर छोटी फिल्म
बनाई जानी चाहिए। इस प्रकार की फिल्मों को यदि विद्यालयों में समय-समयपर दिखाया
जाए तो संस्कृत भारतीय संस्कृति एवं वर्तमान ज्ञान-विज्ञान को सीखने में सहायता हो
सकती। कार्यक्रम बालकों को चलचित्र द्वारा दिखाया जा सकता है।

5. संगणक–शिक्षण में कम्प्यूटर का प्रयोग दो प्रकार से किया जा सकता है,
जिसके कारण इसके माध्यम से प्रदत्त शिक्षा के दो रूप हैं–(1) कम्प्यूटर सहायक शिक्षण,
(2) कम्प्यूटर प्रशासित शिक्षण।

(1) कम्प्यूटर सहायक शिक्षण–यह शिक्षण की गति सरल एवं स्वाभाविक
विधि है इसमें छात्रों को एक टैली टाइपराइटर के सम्मुख बैठा दिया जाता है। कम्प्यूटर द्वारा
तथ्य/सूचना टाइप की जाती है, जिसके प्रत्युत्तर में छात्र अपने की-बोर्ड पर टाइप करता है।
इस प्रकार कम्प्यूटर छात्रों की बड़ी संख्या के शिक्षण हेतु प्रयोग किया जाता है। इसे
कम्प्यूटर बेस्ड लर्निंग भी कहा जाता है।

(2) कम्प्यूटर प्रशासित शिक्षण–इसमें शिक्षक की शैक्षिक प्रक्रिया को प्रशासित
करने में सहायतार्थ कम्प्यूटर का प्रयोग किया जाता है, जो छात्रों की योग्यता का मापन
करने और शिक्षण सम्बन्धी प्रस्तावित कोर्स को पूर्ण कराने में शिक्षक की सहायता करता
है।

6. इंटरनैट-इंटरनैट एक अन्तर्राष्ट्रीय नैटवर्क प्रणाली है, जो अनेक नैटवर्क आपस में जोड़ती है। शिक्षा के क्षेत्र में इंटरनैट एक सफलतम साधन माना जाने लगा देश-विदेश की शिक्षा सम्बन्धी सूचनाएं इंटरनैट के द्वारा संगणक के पर्दे पर आ जाती ये सूचनाएं किसी भी विषय पर हो सकती है। इस प्रणाली में कई संस्थाओं ने अपनी वैबसाइट बना रखी है।

अभ्यास के प्रश्न

1. संस्कृत शिक्षण के गुणों का विवेचन कीजिए।
2. "संस्कृत शिक्षक को एक कुशल वक्ता होना चाहिए।" इस कथन की समीक्षा कीजिए।
3. "एक व्यक्ति जिसे सहानुभूति का उपहार हीं मिला है, उसे शिक्षक नहीं बनना चाहिए।" क्या आप इस कथन से सहमत हैं?
4. 'संस्कृत शिक्षक को भारतीय संस्कृति का पोषक होना चाहिए।' वर्तमान परिस्थिति में क्या यह सम्भव है?
5. संस्कृत के एक सफल शिक्षक में कौन-कौन विशिष्ट गुण होने चाहिए? सकारण स्पष्ट कीजिए।
6. निम्नलिखित पर संक्षिप्त लेख लिखिए। प्रत्येक उत्तर का विस्तार 15 पंक्तियों या 100 शब्दों से अधिक हो-
   (1) अच्छे संस्कृत-शिक्षक के गुण।
   (2) संस्कृत-शिक्षक की योग्यताएं।
   (3) संस्कृत-शिक्षक का महत्त्व।
   (4) संस्कृत-शिक्षक।
7. श्रव्य-दृश्य साधन का आशय बताइए तथा इसके प्रकार भी लिखिए।
8. "श्यामपट्ट शिक्षक का सच्चा मित्र है।" इस कथन के आधार पर गद्य एवं रचना शिक्षण में श्यामपट्ट का उपयोग बताइए।
9. संस्कृत शिक्षण को प्रभावी बनाने के लिए श्रव्य-दृश्य उपकरणों का महत्त्व व शिक्षण में स्थान बताइए।
10. दृश्य-श्रव्य उपकरणों का महत्त्व एवं प्रयोग की स्थिति सविस्तार सोदाहरण बताइए।

□□□

TEACHING OF SANSKRIT

B.Ed.

इकाई-III

8. संस्कृत में व्याकरण शिक्षण, महत्त्व एवं प्रक्रिया, पाठ योजना
9. संस्कृत गद्य शिक्षण-प्रक्रिया, उद्देश्य एवं सोपान, पाठ योजना
10. संस्कृत पद्य शिक्षण-प्रक्रिया, उद्देश्य एवं सोपान, पाठ योजना
11. संस्कृत रचना शिक्षण-प्रक्रिया, उद्देश्य एवं सोपान, पाठ योजना
12. संस्कृत नाटय शिक्षण-प्रक्रिया, उद्देश्य एवं सोपान, पाठ योजना
13. संस्कृत में अनुवाद शिक्षण-प्रक्रिया, उद्देश्य एवं सोपान, पाठ योजना
14. संस्कृत शिक्षम में मूल्यांकन, अर्थ, स्वरूप एवं परीक्षाओं के प्रकार
15. गृह कार्य एवं संशोधन प्रक्रिया
16. संस्कृत भाषा की सहपाठ्य क्रियाएं

VIJAYA PUBLICATIONS

Ludhiana

अध्याय 8

संस्कृत व्याकरण शिक्षण महत्त्व प्रक्रिया एवं पाठ योजना

भूमिका (Introduction)–व्याकरण की शिक्षा के बिना भाषा की शिक्षा कभी पूर्ण नहीं होती। व्याकरण ही वास्तव में भाषा का शासक होता है। व्याकरण के नियमों का पालन न करने से भाषा उच्छृंखल हो जाती है। **पंडित सीता राम चतुर्वेदी** के अनुसार, "यदि भाषा को रथ और भाव को रथी मान लें तो व्याकरण को सारथी मान सकते हैं क्योंकि व्याकरण ही भाषा रूपी रथ को ठीक लीक पर इस प्रकार चलाता है कि इच्छित भाव सरलता से अपने गन्तव्य स्थान पर पहुंच जाते हैं।" कहने का तात्पर्य यह है कि व्याकरण की शिक्षा, भाषा शिक्षा का एक आवश्यक अंग है। भाषा को शुद्ध बनाए रखने का काम व्याकरण का ही है। व्याकरण की विभिन्न शिक्षण प्रणालियों का अध्ययन करने से पहले व्याकरण की परिभाषा, महत्त्व तथा उद्देश्यों आदि का विवरण जान लेना उपयुक्त होगा।

व्याकरण क्या है अथवा व्याकरण की परिभाषा [What is Grammar? Or Grammar Defined]

व्याकरण शब्द वि + आ + कृ धातु + ल्युट प्रत्यय के योग से बना है जिसका अर्थ है '**व्याक्रियन्ते शब्दा येन**' अर्थात् जिसके द्वारा अर्थ स्वरूप से शब्दों की सिद्धि होती है। व्याकरण शब्दों के प्रयोग का अनुशासक है, इसलिए–

(*i*) **महर्षि पाणिनि** ने इसे 'शब्दानुशासन' कहा है। व्याकरण का अध्ययन भाषा के शुद्ध प्रयोग के लिए किया जाता है।

(*ii*) **महर्षि पतंजलि** ने भी अपने महाभाष्य में इसे 'शब्दानुशासन' ही कहा है।

(*iii*) **आचार्य हेमचन्द्र** ने भी इसी मत का समर्थन किया है।

(*iv*) **स्वीट महोदय** (Dr. Sweet) का विचार, डॉ० स्वीट ने "व्याकरण को भाषा का व्यावहारिक विश्लेषण कहा है।" (Grammar is the practical analysis of a language.)

(*v*) **प्रो० सोनेनशेन** अथवा सानशिन (Sonnechein) के मतानुसार, "व्याकरण केवल वाक्य में शब्दों के अन्तर को स्पष्ट करता है।"

उन्हीं के शब्दों में, "Grammar deals merely with differences in grouping of words in a sentence."

(vi) इंग्लैंड के बोर्ड आफ एजुकेशन (Board of Education, England) "व्याकरण को रचना की व्याख्या से अधिक नहीं माना है।" (Grammar is a description of structure nothing more.)

(vii) जैगर (Jaggar) ने 'प्रचलित भाषा सम्बन्धी नियमों की व्याख्या' को व्याकरण माना है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि व्याकरण का उद्देश्य भाषा सिखाना नहीं अपितु भाषा के सम्बन्ध में निम्नलिखित बातों का ज्ञान कराना है–

(i) भाषा रचना का ज्ञान कराना।

(ii) वाक्यों में आए शब्द-समूहों के अन्तर को स्पष्ट करना।

(iii) भाषा-सम्बन्धी कुछ विशेष प्रयोगों का अध्ययन करना।

(iv) भाषा से सम्बन्धित नियमों का कथन करना।

संस्कृत भाषा में व्याकरण का विशेष महत्त्व है। पाणिनि की अष्टाध्यायी उच्चकोटि का व्याकरण ग्रंथ है। **पतंजलि** का **'महाभाष्य'**, **भट्टोजि दीक्षित** की **'सिद्धान्त कौमुदी'** इस दिशा में उल्लेखनीय ग्रंथ हैं। पतंजलि ने 'महाभाष्य' में व्याकरण को 'शब्दानुशासन' कहा है। यह बात ध्यान देने योग्य है। व्याकरण कोई काल्पनिक नियम नहीं बनाता। वह भाषा के आगे-आगे नहीं चलता! व्याकरण शब्दों का शासन नहीं करता, वरन् उनका अनुशासन करता है। भाषा का जो प्रवाह जनसाधारण द्वारा व्यवहृत होता है, व्याकरण उस प्रवाह को व्यवस्थित करता है। वह प्रचलित भाषा के नियमों को खोज निकालता है। वह रहे, वह नियमों को खोजता है, नये नियम नहीं बनाता। इसीलिए व्याकरण को शब्दानुशासन कहा गया है, किन्तु इसका तात्पर्य यही है कि व्याकरण की शिक्षा गौण है। आजकल इसी प्रकार की मनोवृत्ति दिखाई पड़ती है। लोग व्याकरण को झंझट समझते हैं। कुछ लोग के अनुसार भाषा-ज्ञान के लिए व्याकरण की शिक्षा आवश्यक नहीं। यह मत किसी अंश भाषा के लिए चाहे उपयोगी हो, किन्तु संस्कृत भाषा के लिए बड़ा घातक है। संस्कृत भाषा में व्याकरण का स्थान निर्विवाद है। बिना व्याकरण के सही ज्ञान के संस्कृत भाषा का ज्ञान अपूर्ण रहेगा। अतः शुद्ध एवं परिष्कृत संस्कृत सीखने के लिए व्याकरण सीखना अनिवार्य है।

शिक्षण विधि

व्याकरण की शिक्षण-विधि पर अत्यधिक विवाद खड़ा कर दिया गया है। वर्तमान तथाकथित मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों ने व्याकरण-शिक्षण में बड़ी शिथिलता ला दी है। छात्राध्यापकों से प्रायः उनके प्रशिक्षक कहा करते हैं कि व्याकरण का पाठ रुचिकर बनाए

जाए। संस्कृत के व्याकरण की शिक्षा को रुचिकर बनाना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। इस स्थल पर एक बात पुनः दोहरा देना उचित है कि संस्कृत में व्याकरण की शिक्षा आनुषंगिक या प्रासंगिक न होकर मुख्य है और इसे विशेष रूप से विशेष समय पर पढ़ना उचित है।

व्याकरण शिक्षण की दो रीतियां मुख्य रूप से प्रचलित हैं–(1) निगमन रीति तथा (2) आगमन रीति। निगमन रीति में पहले नियम बता दिया जाता है, बाद में उसे उदाहरणों द्वारा पुष्ट किया जाता है। सिद्धान्त या परिभाषा को पहले बता दिया जाता है, बाद में उस सिद्धान्त का प्रयोग बताया जाता है। दूसरे शब्दों में, निगमन रीति में, 'सामान्य' से 'विशेष' की ओर चलते हैं। उदाहरणार्थ, पहले एक नियम बता दिया गया "सह-साकम्, साधर्म, समम् के योग में तृतीया विभक्ति होती है" और बाद में "रामेण सह सीता अगच्छत् वनम् मया साकम् सः फलं खादति" आदि उदाहरण सामने रखे जाते हैं।

आगमनात्मक रीति में पहले पर्याप्त उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं। इन उदाहरणों का अध्ययन किया जाता है और तत्पश्चात् उन दृष्टान्तों के आधार पर व्यापक नियम का अनुसन्धान होता है। यहां पर यह ध्यान देने की बात है कि उदाहरणों की सरलता एवं उनके औचित्य पर ही व्यापक नियम निर्भर करेगा। अतः उदाहरणों का चयन बड़ी सावधानी से होना चाहिए। आजकल अंग्रेजी एवं हिन्दी का अध्ययन करने वाले छात्राध्यापक व्याकरण प्रायः इसी विधि से पढ़ाते हैं। इस विधि में छात्र रुचि लेते हैं एवं उनकी तर्क-शक्ति तथा अनुसंधानात्मक वृत्ति का विकास होता है।

आचार्य पाणिनि के समय में सम्भवतः 'परायण' पद्धति प्रचलित थी। पाणिनि की अष्टाध्यायी में 'पारायणिक' का उल्लेख है। पारायणिक परायण करने वाले को कहा जाता है। 'परायण' में छात्र नियमों को रटता था, कई बार आवृत्ति करता था। पांच बार पढ़ने को पंचक अध्ययन', पांच बार बोलने का 'पंच बार', पांच प्रकार से पढ़ने को 'पंच रूप' कहा जाता था। इसी प्रकार सप्तक, अष्टक आदि परायण भी होते थे। उस समय व्याकरण में परीक्षा भी ली जाती थी। यह परीक्षा बहुत कुछ अशुद्धियों की गणना से सम्बन्धित थी। एक अशुद्धिकर्त्ता छात्र को 'ऐकानयिक', दो अशुद्धिकर्त्ता को 'दैनयिक' तथा तीन अशुद्धिकर्त्ता को 'त्रैनयिक' कहते थे। परायण कई प्रकार के होते थे। कभी कोई संहिता-परायण करता था, कोई पद-परायण तो कोई कर्म-परायण। परायण करने वाले छात्र को कुछ नियमों का पालन करना पड़ता था। आजकल की भांति गद्दीदार कुर्सी पर बैठकर परायण नहीं होता था। कुशासन पर बैठकर सूर्याभिमुख हो ब्रह्मचारी कठोर परिश्रम से परायण करता था। कभी-कभी वह मौन-व्रत करता था, कभी वह केवल फल या दूध ग्रहण कर और कभी केवल पानी पीकर ही परायण करता था, किन्तु इससे यह नहीं समझ लेना चाहिए कि उस समय व्याकरण-शिक्षण की विधि यान्त्रिक थी। परायण की नीरसता को अन्य प्रविधियों द्वारा रोचक बनाया जाता था। व्याकरण के नियमों को समझाने की अन्य विधियों का भी

कुछ उल्लेख मिलता है। पाणिनि के व्याकरण में प्राक्कथन, भाषण, सम्यक् बोध प्रति
व्याख्यान आदि का उल्लेख मिलता है। बिना पूर्व तैयारी के तत्काल कुछ कहना प्राक्क
कहा जाता है। भली प्रकार स्पष्टीकरण करना भाषण था, सच्चे ज्ञान का विश्लेषण क
एवं उसका मनन करना सम्यक् बोध था, ज्ञान चर्चा को सुनाना-सुनना प्रतिश्रव
अन्तर्गत था। व्याख्यान बड़ी ही प्रचलित प्रणाली थी। व्याख्यान के चार अंग थे-(
चर्चा, (2) उदाहरण, (3) प्रत्युदाहरण तथा (4) वाक्याध्याहार। चर्चा में पद-विग्रह
था और सूत्र को तोड़ दिया जाता था। उदाहरण और प्रत्युदाहरण में दृष्टान्त दिये जा
तथा वाक्याध्याहार में वाक्य के अर्थ का विश्लेषण किया जाता था। पतंजलि ने अपने ग्रं
लेखन में भी इसी व्याख्यान पद्धति का अनुसरण किया है। महाभाष्य के प्रथम अध्याय
वे लिखते हैं-

"न केवलानि चर्चापदानि-वृद्धः आत् ऐच, इति। किं तर्हि? उदाहरण प्रत्युदाहर
वाक्याध्याहार इत्येतत्समुदितं भवति।"

पतंजलि के उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि वे व्याकरण-शिक्षण में निगमन रीति
समर्थन करते हैं तथा भाषा का प्रयोग पक्ष उपेक्षित नहीं है। उदाहरण, प्रत्युदाहरणों द्वारा
भाषा के व्यवहृत रूप को सामने रख देते हैं।

व्याकरण चाहे केवल क्रियात्मक रूप से पढ़ाया जाए, चाहे वह औपचारिक रूप
पढ़ाया जाए, चाहे हम निगमन रीति अपनाएं या आगमन रीति को व्यवहृत करें, किन्तु ए
बात यहां मैं स्पष्ट रूप से कह देना चाहता हूं कि संस्कृत भाषा के व्याकरण-शिक्षण
स्मरण का विशेष महत्त्व है। संस्कृत भाषा को अच्छी तरह से समझने एवं प्रयोग करने
दृष्टि से व्याकरण के नियमों को याद करना, शब्द-रूपों एवं धातु-रूपों को याद क
बहुत आवश्यक है। प्रारम्भ से ही संस्कृत के विद्वानों ने 'पुस्तकस्था विद्या' को 'परहस्त
धनम्' की भांति कार्यकाल में अनुपयोगी बताया है। सहस्रों वर्षों में संस्कृत के पंडि
व्याकरण एवं अन्य विद्याओं की महत्त्वपूर्ण बातों को याद करते रहे हैं। स्मृति से ही वे
जाने कितने ग्रन्थों को सुरक्षित रखे रहे हैं। कभी-कभी तो संस्कृत के पंडितों की स्मर
शक्ति पर आश्चर्य होता है। कुछ पंडित तो सम्पूर्ण ग्रंथ कंठस्थ किये रहते हैं। संस्कृत
पाठशाला पद्धति में आज भी महत्त्वपूर्ण सूत्रों एवं सुभाषितों को कण्ठाग्र करना पाठ्य
का आवश्यक अंग है।

कण्ठाग्र करने की विधि में आज के मनोवैज्ञानिक चाहे जो भी दोष बताएं, कि
इतना तो निश्चित ही है कि स्मृति मेधा का अनिवार्य लक्षण है और आज के मनोवैज्ञानि
भी इस बात को स्वीकार करते हैं कि यदि किसी बात को समझ-बूझकर याद किया
तो उससे कोई हानि नहीं। विषय पर अधिकार स्मृति द्वारा ही आता है, चाहे विषय
समझने के पश्चात् याद किया जाए या विषय को याद करके समझा जाए। दोनों में
केवल इतना ही है कि एक विधि रुचिकर है तो दूसरी नीरस। इससे परिणामों पर

अंतर नहीं पड़ता। इसीलिए संस्कृत के विद्वान इन सुकुमार मनोवैज्ञानिक नियमों को ज्ञानार्जन जैसी तपश्चर्या के लिए अधिक उपयुक्त नहीं समझते।

उपर्युक्त विवेचन से हम इस परिणाम पर पहुंच सकते हैं कि व्याकरण को यथासम्भव आगमन रीति से पढ़ाया जाए, पर्याप्त उदाहरण दिये जाएं, तब नियम निर्धारित किया जाए और जहां तक सम्भव हो सके, उदाहरण संस्कृत साहित्य में पहले से ही आए हुए दृष्टान्तों से लिए जाएं। किन्तु जहां आवश्यकता पड़े वहां पर निगमन रीति का भी आश्रय लेने में कोई हिचक नहीं होनी चाहिए। छात्रों को इस बात के लिए भी प्रोत्साहित करना चाहिए कि वे महत्त्वपूर्ण नियमों को कंठाग्र करें।

संस्कृत व्याकरण की विशेषता

जब वैदिक संस्कृत का अंत होने लगा था और लौकिक संस्कृत का उदय हो रहा था, उस समय संस्कृत भाषा के क्षेत्र में बड़ी अव्यवस्था फैली हुई थी। उस समय विद्वान् लोग एक नवीन व्याकरण की आवश्यकता का अनुभव करने लगे थे। पाणिनि का प्रादुर्भाव ऐसे ही काल में हुआ था। पाणिनि ने अष्टाध्यायी की रचना करके एक बहुत बड़े अभाव की पूर्ति की थी। पाणिनि की अष्टाध्यायी अपने ढंग का अनूठा ग्रंथ है। इसमें भाषा का इतना बारीकी से विश्लेषण किया गया है और सूक्ष्म से सूक्ष्म नियमों का प्रतिपादन इतनी मौलिकता से किया गया है कि भारत ही नहीं, वरन् संसार के विद्वानों को पाणिनि की प्रतिभा पर आश्चर्य होता है। अष्टाध्यायी की रचना सूत्र प्रणाली से हुई है। पाणिनि द्वारा एक भी पद व्यर्थ नहीं प्रयुक्त किया गया है। आज भी पंडित लोग सूत्र-प्रणाली का बड़ा आदर करते हैं और आधी मात्रा को भी यदि वे बचा लेते हैं तो पुत्र-जन्म का-सा उत्सव मनाते हैं ('अर्धमात्रालाघवेन पुत्रोत्सवं मन्यन्ते वैयाकरणाः')।

गण व धातुएं-पाणिनि ने 'गणों' की रचना करके संस्कृत भाषा को सुरक्षित बना दिया है। अनेक शब्दों को एक नियम-विशेष के अनुसार एक समूह में एकत्र कर लिया गया और उनका संचालन एक ही नियम द्वारा होने लगा। 'गण-पाठ' करके पाणिनि ने भौगोलिक, सामाजिक, राजनीतिक आदि शब्दों को एक 'सूत्र' में रख दिया। गण-पाठों का क्षेत्र विस्तृत है और इनमें नियमों के अनुसार अन्य नवीन शब्दों का रूप भी चलाया जा सकता है। काशिका में गणों की संख्या एवं प्रत्येक के अन्तर्गत आये हुए शब्दों की सूची सुरक्षित है। पतंजलि एवं कात्यायन ने भी इन गणों की रक्षा करने में योगदान दिया है। गणों की रचना का आधार ध्वनि है। धातुओं का भी वर्गीकरण गणों के रूप में है। इनका भी आधार ध्वनि है। ध्वनि एवं उससे निकलने वाले अर्थ का बार-बार अवलोकन करके पाणिनि ने गणों की रचना की है। पाणिनि ने समस्त धातुओं को दस गणों में बांट दिया है। अष्टाध्यायी के अनुसार संस्कृत में कुल 1944 धातुएं हैं, जो भ्वादि, अदादि, जुहोत्यादि, दिवादि, स्वादि, तुदादि, रुधादि, तनादि, क्रयादि और चुरादि गणों में विभक्त हैं। धातुओं

का एक अन्य वर्गीकरण आत्मनेपदी, परस्मैपदी तथा उभयपदी के रूप में भी है। आत्मने
धातुएं कर्त्ता अपने लिए प्रयुक्त करता है, परस्मैपदी दूसरों के लिए तथा उभयपदी दोनों
लिए। संस्कृत में 1010 धातुएं भ्वादि हैं। यदि केवल भ्वादि धातुओं का ही ज्ञान संस्कृ
छात्र को करा दिया जाए तो वह संस्कृत के वाक्य सरलता से लिख सकता है।

संस्कृत भाषा का अपना ध्वनि विचार (Phonology), शब्द विचार (Morpholog
अर्थ-विचार (Semantics) तथा वाक्य-विचार (Syntax) है। इन सभी का विचार सं
में सर्वप्रथम संस्कृत भाषा में ही है।

सन्धि-संस्कृत भाषा में सन्धि तथा समास बड़े महत्त्वपूर्ण हैं। जो छात्र सन्धि
विच्छेद एवं समास-विग्रह करने में असमर्थ रहता है, वह संस्कृत भाषा के अमृत का पा
नहीं कर पाता। आजकल हाई-स्कूल कक्षाओं के छात्र सन्धि एवं समास को प्राय: बहु
कठिन समझते हैं और उन्हें टालने का प्रयत्न करते हैं। कुछ व्यक्तियों ने यह प्रचार भ
करना आरम्भ कर दिया है कि संस्कृत लिखने में सन्धि न की जाए तो ठीक रहेगा। संस्कृ
को सरल बनाने के नाम पर कुछ लोगों ने सन्धि विहीनशब्द लिखना प्रारम्भ कर दिया
किन्तु संस्कृत की परम्परा रही है कि लिखित संस्कृत में सन्धि अनिवार्य रूप से होनी
चाहिए। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित श्लोक ध्यान देने योग्य है-

संहितैपदे नित्या नित्या धातूपसर्गयो:
नित्या समाके, वाक्ये तु सा विपक्षामपेक्षते॥

अर्थात् सुबन्त या तिङन्त पद में, उपसर्ग युक्त धातुओं में तथा समास में सन्धि
अनिवार्य है। वाक्य में ऐसी अनिवार्यता नहीं है।

सन्धि कोई कृत्रिम प्रक्रिया नहीं है। छात्रों को यह भली-भांति समझा देना चाहिए
कि सन्धि एक प्राकृतिक प्रक्रिया है और हम बोलने में सदा सन्धि करते ही रहते हैं। संसार
की सभी भाषाओं में ध्वनियों का मेल हो जाता है। बिना सन्धि किए ध्वनियों का
प्रवाहयुक्त उच्चारण सम्भव ही नहीं। अंग्रेज़ी में जब हम 'दिस इज ए ब्वाय' बोलते हैं तो
'दिसिज' ही कहते हैं। संस्कृत में ध्वनियों का मेल केवल बोलने तक ही सीमित नहीं
रहता। हम सन्धि को लेख में भी व्यक्त करते हैं। अन्य भाषाओं में भी कुछ शब्दों का
लिखित रूप सन्धि प्रदर्शित करता है। उदाहरणार्थ Description शब्द Describe + tion
को ही मिलाकर बना है। हिन्दी में 'लाना' शब्द 'ले + आना' से ही बना है, किन्तु अन्य
भाषाओं में लिखित रूप में सन्धि को आवश्यक नहीं माना जाता। हमें यह समझ लेना
चाहिए कि रमा + ईश को अलग-अलग करने में विलम्ब होगा। प्रवाह में रमा + ईश, रमेश
के रूप में ही उच्चारित होगा। यदि हम उच्चारित रूप में रमेश बोलते हैं तो लिखित रूप में
रमा ईश क्यों रहें? इसीलिए संस्कृत में सन्धि अनिवार्य कर दी गई है। अत: संस्कृत में छात्र
को सन्धि का ज्ञान अवश्य प्राप्त करना चाहिए। उसे यह भी विदित होना चाहिए कि कुछ

शब्दों में सन्धि-विच्छेद करते समय सावधानी बरतनी होती है। यथा-विश्वामित्र, मित्रावरुणा,
सूर्याचन्द्रमसौ, सत्यानाश, अष्टावसु, विश्वावसु, अष्टापद, वैश्वानर, सर्वाबाधा, सनातन,
अष्टागव, चन्द्रापीड़, मूसलाधार, दीनानाथ, अष्टावक्र आदि शब्द कुछ विशिष्ट वैदिक
शब्द हैं। संस्कृत में सन्धि पर बड़े विस्तार से विचार किया गया है।

समास-सन्धि के अतिरिक्त समास भी संस्कृत की अपनी विशेषता है। अन्य
भाषाओं में भी समास के लक्षण दिखाई पड़ते हैं। अंग्रेज़ी में जब हम unable अथवा in
+ ability अथवा co + operation को मिलाकर एक समस्त पद बना लेते हैं तो वहां पर
समास स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। हिन्दी में भी जब हम पनघट, पनचक्की, पनडुब्बी
आदि शब्द कहते हैं तो वहां पर समास की करामात साफ दिखाई पड़ जाती है। संस्कृत में
समास मुख्य रूप से चार प्रकार के हैं-द्वन्द्व, तत्पुरुष, बहुब्रीहि, अव्ययीभाव। द्वन्द्व के तीन
भेद हैं और तत्पुरुष छ: प्रकार का होता है। कर्मधारय तथा द्विगु समास एक प्रकार के
तत्पुरुष के ही भेद हैं। समासों की संख्या निश्चित है। अत: उनकी शिक्षा में कोई विशेष
कठिनाई नहीं आनी चाहिए।

लिंग-संस्कृत में संज्ञा शब्दों का लिंग-निर्धारण प्रत्यय के आधार पर होता है।
अंग्रेज़ी में लिंग-भेद पुरुषत्व तथा स्त्रीत्व के आधार पर है। यदि कोई शब्द पुरुष का अर्थ
देता है तो अंग्रेज़ी में वह मैसकुलिन जेण्डर (पुल्लिंग), स्त्री का अर्थ देता है तो फेमिनिन
जेण्डर (स्त्रीलिंग), निर्जीव पदार्थ का अर्थ देता है तो न्यूटर जेण्डर (नपुंसक लिंग) और
स्त्री और पुरुष दोनों का अर्थ देता है तो कॉमन जेण्डर (उभयलिंग) हो जाता है। हिन्दी में
लिंग निर्धारण अंग्रेज़ी की तरह न होकर संस्कृत की तरह होता है। अंग्रेज़ी का व्याकरण
पढ़ने के कारण छात्रों को हिन्दी व संस्कृत के लिंग-निर्धारण में कठिनाई होती है और वे
इसे एक समस्या समझ लेते हैं। संस्कृत में लिंग का आधार प्रत्यय है और अभ्यास से ही
इसका ज्ञान हो सकता है।

वचन-संस्कृत में वचन के सम्बन्ध में भी एक बात ध्यान देने योग्य है। अंग्रेज़ी तथा
हिन्दी में एकवचन तथा बहुवचन ही होते हैं किन्तु संस्कृत में द्विवचन भी होता है।
सामान्यत: छात्र की समझ में यह नहीं आता कि एक और अनेक के बीच में दो को क्यों
रखा गया है। ध्यान से देखने पर पता चलता है कि संस्कृत के विद्वानों ने जगत का अत्यन्त
बारीकी से अध्ययन किया है। जगत में एक और अनेक के समान 'दो' भी प्रबल है।
पदार्थों की 'जोड़ी' की आवृत्ति एक और अनेक से कम नहीं है। यह 'युगल' बड़ा ही
महत्त्वपूर्ण प्रत्यय है। बिना 'युगल' के सृष्टि ही सम्भव नहीं। स्त्री-पुरुष, मां-बाप, भाई-
बहन, पाप-पुण्य, दिन-रात, संयोग-वियोग, उपकार-अपकार, रथ के दो चक्र, दो नेत्र, दो
कान, दो हाथ, दो पैर आदि के 'युगल' ने व्यक्ति को दो का बोध कराया और संस्कृत के
आचार्यों ने उस दो को भाषा में भी अभिव्यक्त किया तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है?

कारक–जहां तक कारकों का प्रश्न है, इनका ज्ञान बड़ी सावधानी से करना चाहिए। संस्कृत में निम्नलिखित छः कारक कहे गए हैं–

कर्त्ता कर्म च करणं सम्प्रदान तथैव च।
अपादानाधिकरणामित्याहु कारकाणि षट्॥

अर्थात् कर्त्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण ये छः कारक हैं। सम्बन्ध और सम्बोधन को कारक नहीं कहा जाता, क्योंकि उनका क्रिया से सीधा सम्बन्ध नहीं होता। संज्ञा शब्दों के आठ रूप होते हैं और छात्रों को रूप के बनने की प्रक्रिया के झंझट में न डालना ही उचित है। किसी रूप की सिद्धि व्याकरण का विषय है। छात्रों को बने-बनाए रूप समझा देना ही उचित है। संज्ञा शब्दों के स्थान पर प्रयुक्त होने वाले शब्दों को सर्वनाम कहा जाता है। सर्वनाम शब्दों के रूपों का भी अध्ययन आवश्यक है, क्योंकि इनका प्रयोग बहुत करना पड़ता है। सर्वनाम शब्दों के अंत में त, त्र तथा दा आदि लगाने पर अव्यय बनाया जाता है; जैसे–सर्वतः, कुतः, यतः, सर्वत्र, कुत्र, सर्वदा आदि।

विभक्ति–भाषा वाक्यात्मक होती है। वाक्य मुख्यतः शब्दों से मिलकर बनते हैं। वाक्य से स्थित शब्दों के बीच सम्बन्धों की स्थापना तीन प्रकार से होती है–(1) शब्द क्रम द्वारा, (2) शब्द रूपों द्वारा, (3) सम्बन्ध द्योतक शब्दों द्वारा। संस्कृत भाषा में शब्द क्रम का विशेष महत्त्व नहीं है। उसमें 'रामः पुस्तकं पठति' इस वाक्य को 'पुस्तकं राम पठति' अथवा 'पठति राम पुस्तकम्' इस रूप में भी रखा जा सकता है। क्रम परिवर्तन से वाक्य की शुद्धता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। हिन्दी तथा अंग्रेज़ी भाषाओं में शब्द-क्रम का महत्त्व है क्योंकि उसका उल्लंघन करने से उनमें वाक्य अशुद्ध हो सकता है। संस्कृत भाषा में सम्बन्ध-द्योतन के लिए शब्दों के साथ सुप् तथा तिङ् प्रत्यय लगाकर तथा कतिपय अव्यय शब्दों का प्रयोग करके काम चलाया जाता है। जब इन अव्यय शब्दों का प्रयोग होता है तब इन्हें भी अभीष्ट शब्द के साथ उसके रूप में परिवर्तन करके ही जोड़ा जाता है।

संस्कृत भाषा में नाम शब्दों के साथ जो प्रत्यय जुड़ते हैं उनके सात विभाग हैं। प्रत्येक विभाग को 'विभक्ति' कहते हैं। किसी शब्द का वाक्य के अन्य शब्दों के साथ सम्बन्ध प्रकट करने के लिए उस शब्द के साथ किसी-न-किसी विभक्ति प्रत्यय का प्रयोग होता है। किस परिस्थिति में किस विभक्ति-प्रत्यय का प्रयोग होता है, यह जानना वाक्यार्थ-ज्ञान के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

निम्नलिखित उदाहरणों के आधार पर विभक्तियों के प्रयोग की चर्चा की जा सकती है–

1. रामः धावति (कर्त्ता होने के कारण 'राम' के साथ प्रथम विभक्ति)
2. रामः फलं खादति (कर्म होने के कारण 'फल' के साथ द्वितीया विभक्ति)

3. रामः धनिकं धनं याचते (जिससे किसी वस्तु की याचना की जाए, उसके साथ भी द्वितीया विभक्ति)
4. रामः गोविन्द मार्ग पृच्छति (जिससे कोई बात पूछी जाए, उसके साथ भी द्वितीया विभक्ति)
5. रामः अजां ग्रामं नयति (किसी वस्तु को जहां ले जाया जाए, उसके साथ भी द्वितीया विभक्ति)
6. रामः आसनम् आधिशेते, अध्यास्ते, अधितिष्ठति वा (अधि उपसर्ग पूर्वक शी, आस् तथा स्था (तिष्ठ) धातुओं का प्रयोग होने पर आधार से द्वितीया विभक्ति)
7. रामः दश वर्षाणि पठति। रामः क्रोशं गच्छति (जितने समय तक कार्य चलता है अथवा जितनी दूर तक जाता है, उसके साथ द्वितीया)
8. रामः कन्दुकेन क्रीड़ति (साधन में तृतीया)
9. रामेण फलं खाद्यते (कर्म वाच्य तथा भाव वाच्य प्रयोगों में कर्त्ता के साथ तृतीया विभक्ति)
10. रामः जनकेन सह, साकं, सार्धं, समं गृहं गच्छति (जिसके साथ सह या उसके किसी समानार्थवाची शब्द का प्रयोग उसके साथ तृतीया विभक्ति)
11. जटाभिः तपस्वी। वेषेण संन्यासी (जिस चिन्ह से व्यक्ति पहचाना जाए, उसके साथ तृतीया विभक्ति)
12. नेत्रेण काणः। पादेन खंजः (जिस अंग में विकार हो, उसके साथ तृतीया विभक्ति)
13. मूर्खेण पुत्रेण किं कार्यम्, कः अर्थः, किं प्रयोनम् अथवा किम् (कार्यम्, अर्थः, प्रयोजनम् तथा किम् के योग में तृतीया विभक्ति)
14. अलं हसितेन, अलं विवादेन (अलं (बस या मत) के योग में तृतीया विभक्ति)
15. रामेण रामात् रामं वा विना (बिना तथा अन्तरा के योग में तृतीया, पंचमी तथा द्वितीया विभक्तियां)
16. रामः गोविन्दाय पुस्तकं ददाति (जिसको कोई वस्तु दी जाए, उसके साथ चतुर्थी विभक्ति)
17. गुरवे: नमः शिष्याय स्वरित। हरिः दैत्येभ्यः अलम (काफी) नमः, स्वस्ति तथा अलम् के योग में चतुर्थी विभक्ति)
18. रामाय मोदकं रोचते (जिसको कोई वस्तु अच्छी लगे, उसके साथ चतुर्थी विभक्ति)
19. रामः मूर्खाय क्रुध्यति। रामः गोविन्दाय ईर्ष्यति (जिसके ऊपर क्रोध अथवा जिसके साथ ईर्ष्या उसके साथ चतुर्थी विभक्ति)

20. गोविन्द मोक्षाय प्रभुं भजति। दुग्धाय क्रन्दति (जिस प्रयोजन से कोई उसमें चतुर्थी विभक्ति)
21. वृक्षात् पत्रं पतति (जिस वस्तु से कोई वस्तु अलग हो, उसके साथ विभक्ति)
22. मनोहर चोरान् विभेति। रामः मनोहरं चोरात त्रायते (जिससे डर लगे या रक्षा की जाए, उसमें पंचमी विभक्ति)
23. रामः गुरोः विद्यां पठति (जिससे विद्या पढ़ी जाए, उसमें पंचमी विभक्ति)
24. पिता पुत्रं पापाद वारयति (जिससे रोका जाए, उसमें पंचम विभक्ति)
25. हिमालयाद् गंगा प्रभवति (जिससे कोई वस्तु निकले, उसमें पंचमी विभक्ति)
26. मनोहरः रामस्य जनकः (सम्बन्ध दिखाने में षष्ठी विभक्ति)
27. वृक्षस्य अधः (नीचे), उपरि (ऊपर), पुरः (सामने), पश्चात् (पीछे) दक्षिणे (दाहिने), उतरतः (उत्तर की ओर) (इनके योग में षष्ठी विभक्ति)
28. भोजनस्य कृते (लिए), गुरोः समक्षम् (सामने), छात्राणं मध्य, गृहस्य (भीतर), ग्रामस्य समीपं, पार्श्वे अथवा सकाशम् (पास) (ऐसे अवसरों षष्ठी विभक्ति)
29. रामस्य भद्रं कुशलं वा भूयात् (आशीर्वाद सूचक शब्दों के साथ षष्ठी विभ
30. रामः विद्यालये पठति (आधार में सप्तमी विभक्ति)
31. राम दिने, दिवसे, प्रातःकाले, मध्यान्हे सायंकाले वा पठति (समय शब्दों के साथ सप्तमी विभक्ति)
32. रामे वनं गते दशरथः प्राणान् अत्यजत् (एक क्रिया के बाद दूसरी क्रिया पर पहली क्रिया में सप्तमी विभक्ति)
33. कार्ये लग्नः अथवा कुशलः (लग्न, आसक्त, तत्पर, कुशल, निपुण, प्रवीण, चतुर आदि शब्दों के योग में सप्तमी)
34. प्रभौ श्रद्धा (श्रद्धा, विश्वास, निष्ठा, आस्था के साथ सप्तमी)
35. मृगे वाणं क्षिपति, अश्विस्ते न विश्वसेत (विश्वास करना तथा फेंकना वाली धातुओं के साथ सप्तमी विभक्ति)

गोष्ठी में इन उदाहरणों के साथ-साथ अन्य प्रसंगोपात्र उदाहरणों तथा नियमों भी चर्चा हुई। इस चर्चा में तृतीया दिवस समाप्त हो गया।

विशेषण–विशेषण शब्दों के प्रयोग की ओर भी छात्रों का ध्यान आकृष्ट चाहिए। अंग्रेज़ी में विशेषण शब्द सभी लिंगों में समान रूप में ही रहते हैं। हि विकल्प है अर्थात् कुछ विशेषण शब्द एक-से ही रहते हैं और कुछ के रूपों में लिं

वचन के अनुसार भेद हो जाता है। संस्कृत में अनिवार्य रूप से विशेष्य के अनुसार ही विशेषण का लिंग व वचन निर्धारित होता है।

काल–विभिन्न क्रियाओं का ज्ञान कराते समय 'काल' का ज्ञान भली प्रकार देना चाहिए। संस्कृत में 'ल' काल का सूचक है। संस्कृत में क्रियाओं को दस लकारों-लट्, लिट्, लृट्, लेट्, लोट्, लङ्, लुङ् तथा लृङ् में विभक्त किया गया है। हिन्दी में केवल पांच ही लकार प्रयुक्त होते हैं, शेष लकारों का प्रचलन अब नहीं रह गया है। छात्रों को केवल पांच लकारों का ज्ञान करा देना ही ठीक है। कुछ क्रियाओं के रूप में पांच लकारों को याद करा देना ही ठीक रहेगा। क्रियाओं के रूपों की सिद्धि यहां अभीष्ट नहीं है। थोड़ी बहुत जानकारी कृदन्तों की भी करा दी जाए तो ठीक है।

उपसर्ग–संस्कृत में उपसर्ग अमूल्य निधि है। ये उपसर्ग निम्न हैं–

प्र, परा, अप, सम, अनु, अव, निस, निर, दुस, दुर, वि, आङ, नि, अभि, अपि, अति, सु, उत्, प्रति, परि, उप।

उपसर्गों के योग से धातुओं के अर्थ बदल जाते हैं, यथा–हरति, विहरति, प्रहरति, अपहरति आदि। इसी बात को निम्नलिखित श्लोक में भी व्यक्त किया गया है–

उपसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यत्र नीयते।
प्रहाराहार-संहार-विहार परिहारवत्॥

पाठ्य-पुस्तक में व्याकरण का अंश

व्याकरण की अलग से पाठ्य-पुस्तक हो सकती है किन्तु इससे भी अधिक आवश्यकता इस बात की है कि छात्रों की पाठ्य-पुस्तक में ही व्याकरण का कुछ अंश हो। यह अंश इस प्रकार हो सकता है–

1. छात्रों से व्याकरण की जटिलता, कठिनता और दुर्बोधता का भय दूर करते हुए विषय को अधिक-से-अधिक रोचक बनाने की चेष्टा की जाए।
2. सामान्यतः प्रारम्भिक कक्षाओं में लट्, लोट, लङ् और विधिलिङ लकारों का ही प्रयोग होना चाहिए।
3. कृदन्त में क्त, त्य और अनीयर् जैसे प्रत्ययों का विशेष प्रयोग हो।
4. विशेषण और विशेष्य का स्वरूप दिखाने के लिए कुछ विशेष पाठों का समायोजन होना चाहिए।
5. उपसर्ग, वचन, कारक, समास, सन्धि आदि से सम्बन्धित प्रश्न व अभ्यास कार्य पुस्तक में प्रत्येक पाठ के अंत में आवश्यकतानुसार होने चाहिए।
6. प्रारम्भिक पाठों में भाषा का क्रमिक विकास परिलक्षित हो, तदनन्तर शनैः-शनैः शब्दावली तथा व्याकरण के नियमों में प्रवेश हो।

7. प्रारम्भिक कक्षाओं में सन्धियों का प्रयोग न्यूनतम हो और कक्षा 7 तक
का प्रयोग तो होना ही नहीं चाहिए।

8. चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग षष्ठी, सप्तमी की अपेक्षा कम होता है अत: इ
प्रयोग षष्ठी या सप्तमी के पूर्व सिखाना अनिवार्य नहीं होना चाहिए।
तथा सप्तमी विभक्तियों के प्रयोगयुक्त पाठ विभक्ति के प्रयोग से पहले
सकते हैं।

9. व्याकरण के अंश का सम्बन्ध यदि व्याकरण की पृथक् पुस्तक से और
तथा अंग्रेज़ी व्याकरण के कुछ अंशों से जोड़ दिया जाएगा तो उत्तम रहेगा

व्याकरण शिक्षा की उपयोगिता

आजकल शिक्षा शास्त्री कभी-कभी यह प्रश्न भी कर बैठते हैं कि व्याकरण पढ़
जाए कि नहीं। वे सभी भाषाओं के विषय में प्राय: चर्चा कर बैठते हैं। उनके इन विच
पर दृष्टिपात कर लेना ही उचित होगा।

व्याकरण-शिक्षण के विषय में आजकल प्रचलित विचारों को तीन वर्गों में रख
सकता है।

प्रथम वर्ग उन व्यक्तियों का है जो व्याकरण की शिक्षा को अनिवार्य समझते
उनके मतानुसार व्याकरण की शिक्षा के बिना भाषा शिक्षा अधूरी है।

द्वितीय वर्ग के विद्वान् व्याकरण की शिक्षा को निरर्थक समझते हैं। उनके अनु
भाषा बोलने, सुनने, लिखने तथा पढ़ने से अपने आप आ जाती है। उसके सीखने के लि
व्याकरण के नियमों को याद करना व्यर्थ है। ये प्राय: मनोविज्ञान के सिद्धान्तों की दु
देते हैं और कहते हैं कि भाषा केवल अनुकरण से आती है।

एक तीसरा वर्ग उन विद्वानों का है जो मध्यम मार्ग अपनाने का प्रयत्न करते हैं
कहते हैं कि व्याकरण के बिना काम चल ही नहीं सकता। नियमों से मुक्त भाषा अट
हो जाएगी, अत: कुछ अंश तक व्याकरण अवश्य पढ़ाया जाए, किन्तु यह व्याक
व्यावहारिक अथवा क्रियात्मक हो। वे औपचारिक रूप से व्याकरण पढ़ने को अच्छा न
समझते। औपचारिक व्याकरण में सबसे पहले व्याकरण के नियम आते हैं और नियमों
प्रयोग बाद में बताया जाता है। व्यावहारिक व्याकरण में इसका उल्टा होता है। सबसे पह
व्याकरण का प्रयोग बताया जाता है, उसके बाद नियमों की जानकारी कराई जाती है।

उपर्युक्त तीनों मतों में दूसरे मत से कोई समझौता नहीं हो सकता। संस्कृत भाषा
ज्ञान तब तक असम्भव होगा, जब तक व्याकरण न पढ़ाया जाए। तृतीय मत कुछ स
अवश्य है, किन्तु व्यावहारिक व्याकरण प्रौढ़ों को संस्कृत सिखाने में तो कुछ उपयुक्त
हो सकता है पर बालकों को संस्कृत की शिक्षा देने में क्रियात्मक व्याकरण से काम

चलेगा। बालकों को संस्कृत के अभ्यास का अवसर नहीं रहता और वे अपने दैनिक जीवन में संस्कृत का स्वयं प्रयोग नहीं करते। ऐसी स्थिति में उनसे यह आशा करना कि वे पहले व्याकरण का प्रयोग सीख जाएं और उसके पश्चात् नियमों की ओर ध्यान दें, दुराशा मात्र होगा। मातृभाषा के लिए क्रियात्मक व्याकरण उपयुक्त हो सकता है। किन्तु संस्कृत के शिक्षण में इसकी उपयोगिता संदिग्ध है। क्रियात्मक व्याकरण का सिद्धान्त इस परिकल्पना (Hypothesis) पर आधारित है कि छात्र उस भाषा का प्रारम्भिक ज्ञान रखते हैं। संस्कृत की शिक्षा के लिए तो व्याकरण की शिक्षा अनिवार्यत: देनी ही होगी और उसकी उपयोगिता के विषय में सन्देह नहीं किया जा सकता।

संस्कृत में व्याकरण को वेद का मुख्य बताया गया है–

छन्द पादौ तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्।
ज्योतिषामयनं चक्षु: निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते॥

रामायण में भी कहा गया है–

नूनं व्याकरणं कृत्स्नमनेन बहुधा श्रुतम्।
बहु व्याहरतानेन न किंचिपदभाषितम्॥

व्याकरण की शिक्षा सामग्री

माध्यमिक कक्षाओं में सिखाई जाने वाली व्याकरण की सामग्री को संक्षिप्त रूप-रेखा नीचे प्रस्तुत की जा रही है, जिस पर संस्कृत के विद्वानों एवं शिक्षा शास्त्रियों की सहमति समझ पड़ती है।

1. कक्षा 6 के लिए–

(क) संज्ञा–निम्नलिखित प्रकार के संज्ञा शब्दों के सभी विभक्तियों में एकवचन और बहुचन रूपों का ज्ञान–

अकारान्त पुल्लिंग शब्द–बालक, नर, देव, इन्द्र, सेवक, पुत्र, पुरुष, अध्यापक, विद्यालय, अवकाश, वानर, अश्व, गज, काक, शृगाल, दन्त, कण्ठ, पाद, हस्त, आम, वृक्ष, पान्त, मार्ग आदि।

उकारान्त पुल्लिंग–पशु, साधु, गुरु, बन्धु, शत्रु, वायु आदि।

अकारान्त स्त्रीलिंग–लता, बालिका, छात्रा, माला, शाखा, कन्या, पाठशाला, गंगा, नौका, बाला।

इकारान्त स्त्रीलिंग–नदी, नारी, भगिनी, नगरी।

अकारान्त नपुंसकलिंग–फलम्, कमलम्, पुस्तकम्, मित्रम्, वनम्, नीडम्, धनम्, जलम्, दुग्धम्, भोजनम्, अन्नम्, मोदकम्, चक्रम्, पत्रम्, वस्त्रम्, मुखम्, चित्रम्, चन्दनम्।

(ख) सर्वनाम–तद् (तीनों लिंगों में) यत्, किम, अस्यद, युष्मद, इदम, (केवल एकवचन व बहुवचन में प्रथमा, द्वितीया, तृतीया, षष्ठी, सप्तमी के बहुधा रूप)।

(ग) कारक–'सह' के साथ तृतीया विभक्ति के प्रयोग का ज्ञान।

(घ) विशेषण–निम्नलिखित प्रकार के विशेषण शब्दों का बोध–रक्त, विशाल, उष्ण, आर्द्र, शीत, प्रमुख, बुभुक्षित, लालायित, शठ, सरस, मधुर, कृष्ण, मनोहर, पुलकित, लिप्त, रुचिकर, कुशल, शुक्ल आदि।

(ङ) संख्या–एक से 10 तक संख्या का ज्ञान कराया जाएगा।

(च) अव्यय–अथ, अत्र, तत्र, यत्र, कुत्र, आम, बाढ़म्, सर्वदा, एकदा, यदा, तदा, कदा, सदा, एव, यथा, कथम्, किम्, शोप्रम, एवम्, पुनः, च, वा, न, हि, सह, अथवा, शनैः-शनैः अपि, आयः, बिना।

(छ) धातु–निम्नलिखित धातुओं के एकवचन और बहुवचन तथा तीनों पुरुषों में निम्नलिखित लकारों में रूप–(वर्तमान) लट, (अनद्यतने) लङ्, (भविष्यत्), लृट्, (आज्ञार्थक) लोट लकार पठ्, लिख, क्रीङ्, हस, पत्, (वि) कस्, चल, धाव, खा, गै, मम्, कूज, नृत्, (वि) चर्, कृ, नी, त्रुट, कथ्, गै, अर्पय, भू, जीव्, दृश्, नम्, पा, वह्, वस, भक्ष् प्रच्छ्, क्षिप्।

(ज) कृदन्त प्रत्यय–क्त्वा, ल्यप्, तुमुन्।

कत्त्वा–सम्बन्ध भूत कृदन्त (अव्यय)

ल्यप्–सम्बन्ध भूत कृदन्त (अव्यय)

तुमुन–हेत्वर्थ कृदन्त (अव्यय)

2. कक्षा 7 के लिए–

(क) संज्ञा–छठी कक्षा में प्रयुक्त शब्दावली के अतिरिक्त निम्नलिखित स्तर के संज्ञा शब्दों की तीनों वचनों की रूप-रचना का बोध।

अकारान्त पुल्लिंग–छठी कक्षा में सिखाए गए शब्दों का द्विवचनान्त प्रयोग।

इकारान्त पुल्लिंग–मुनि, कवि, कपि, ऋषि, गिरि, रवि, हरि और नृपति।

उकारान्त पुल्लिंग–छठी कक्षा के लिए निर्धारित शब्दों का द्विवचनात्मक प्रयोग तथा तरु, रिपु, प्रभु, जन्तु आदि शब्दों की रूप रचना का बोध।

अकारान्त स्त्रीलिंग–छठी कक्षा के शब्दों का द्विवचनात्मक प्रयोग।

इकारान्त स्त्रीलिंग–मति, गति, रुचि, बुद्धि, भक्ति, स्थिति, प्रीति, रीति, कीर्ति, नीति।

उकारान्त स्त्रीलिंग–छठी कक्षा में दिए गए शब्दों का द्विवचनात्मक प्रयोग।

अकारान्त नपुंसकलिंग–छठी कक्षा में दिए गए शब्दों के द्विवचनात्मक प्रयोग तथा पंकजम्, अमृतम्, गरलम्, जीवनम्, सलिलम्, छत्रद्, पात्रम्, आसनम्, भाजनम्, ज्ञानम्, प्रणम्, गमनम्, पठनम्, शेदनम्, आग्रम्, दाडिमम्, कवलीफ्तम्, नारिकेलम् आदि शब्दों की रूप रचना का बोध।

(ख) सर्वनाम–छठी कक्षा में प्रयुक्त सर्वनाम सभी विभक्तियों और तीनों वचनों में।

(ग) कारक–बिना, अलम्, नयः, दा के योग में प्रयुक्त विभक्तियों का ज्ञान।

(घ) विशेषण–(अ) प्रथम पुस्तक में प्रयुक्त शब्दावली के अतिरिक्त निम्नलिखित स्तर के विशेषण शब्दों का बोध–पर, चतुर, निज, निकट, उज्जवल, धूसर, विस्तृत, ह्रस्व, दीर्घ, कृश, स्थूल, साधु, शोधन, सच्चरित्र, अन्ध, बधिर।

(आ) विशेषण और विशेष्य में लिंग, वचन और विभक्ति के अनुसार अन्विति का ज्ञान।

(ङ) संख्या–एकादश से पंचाशत् तक।

(च) अव्यय–इव, चिरम्, ह्य, श्वः, इवः, ततः, यतः, कुतः, सर्वतः, अतः, पुरतः, पश्चात्, पुर, पृतक्, बहिः, अन्तः, किंचित्, तु, इदानीम्, उपरि, अधः, अधुना, यत्, कृतम्।

(छ) धातु–प्रथम पुस्तक में प्रयुक्त धातुओं के अतिरिक्त निम्नलिखित धातुओं के रूप एकवचन, द्विवचन और बहुवचन में निम्नलिखित लकारों में–

लृट् लकार	(वर्तमान)
लङ् लकार	(अनद्यतन)
लृट् लकार	(भविष्यत्)
लोट् लकार	(आज्ञार्थक)

भक्षय, जनय, श्रु, अस्, स्मृ, इप, त्यज्, जीव्, दह्, धृ, रक्ष, वस्, ह, नी, दा, स्पृश, चुर, चिन्त्, कथय, रचय।

(ज) प्रत्यय–क्त (कर्मणि धूत कृदन्त)

तत्य
अनीय } विध्यर्थ कर्मणि कृदन्त
यत्

(झ) संधि परिचय–दीर्घ, यण, गुण और वृद्धि संधि।

3. कक्षा 8 के लिए–

(क) संज्ञा–**अकारान्त पुल्लिंग**–प्रथम और द्वितीया पुस्तक में प्रयुक्त शब्दावली के अतिरिक्त निम्नलिखित स्तर के संज्ञा शब्दों की तीनों वचनों में रूप-रचना का बोध।

अनिल, आश्रम, कपाल, कर्दम, कोष्ठ, कुठार, कुवेर, गायक, दिवस, दिव
दीप, द्वारपाल, प्रपात्, पवन, प्रदीप, भ्रमर, चयन, विग्रह, व्याघ, सैनिक।

उकारान्त पुल्लिंग–इक्षु, इन्दु, हेतु, सेतु, बिन्दु।

अकारान्त पुल्लिंग–पितृ, भ्रातृ, दातृ, नेतृ, कर्तृ।

व्यंजनान्त पुल्लिंग–आत्मन्, राजन, विद्वस्, मस्त्, चन्द्रमस्, भगवत्, धीमत्, धनि
स्वामिन्, हस्तिन्, विद्यार्थिन्।

इकारान्त स्त्रीलिंग–वृष्टि, शक्ति, मुक्ति, सृष्टि, दृष्टि, सिद्धि, युक्ति।

अकारान्त स्त्रीलिंग–मातृ।

व्यंजनान्त स्त्रीलिंग–आपद्, विपद्, सम्पद्, संसद।

अकारान्त नपुंसकलिंग–अन्तरिक्षम्, आतपत्रम्, पंकाजम्, उपधानम्, व्यंजन
ओदनम्, सुभाषितम्, चामरम्, मौक्तिकम्।

इकारान्त नपुंसकलिंग–वारि।

उकारान्त नपुंसकलिंग–मधु, अश्रु।

व्याजनान्त नपुंसकलिंग–पयस्, सरस्, मनस्, तमस्, नामन्, जन्यन्।

(ख) सर्वनाम–'अदस' (का केवल असौ और अभी का प्रयोग), अन्य तथा प

(ग) कारक–रुच्, धिक्, उभयतः, अधितः, परितः, प्रति, सर्वतः के योग
प्रयुक्त विभक्तियों का ज्ञान।

(घ) विशेषण–प्रथम व द्वितीय पुस्तक में प्रयुक्त विशेषणों के अतिरिक्त नीचे दि
गए विशेषणों का भी प्रयोग किया जा सकता है।

कुब्ज, खंज, वामन, खल्वाट, मूक, वाचाल, पिशुन, श्याम, गौर, दरिद्र, पिपा
जिज्ञासु, बुभुक्षु, कुटिल, वक्र, क्रुर, बुद्ध, प्राज्ञ, निपुण, कुशल, खल, बुद्धिमत्, धनव
गुणवत्, सुगन्धि, सुरभि, शुचि, सुमति।

(ङ) संख्या–एक पंचाशत् से शतम् तक संख्या का ज्ञान।

(च) अव्यय–प्रथम व द्वितीय पुस्तक में प्रयुक्त अव्ययों के अतिरिक्त निम्नलिखि
अव्यय शब्दों का प्रयोग सिखाया जा सकता है। स्म, चित्, नक्तम्, विवा, धिक्, अहो, ह
हा, खलु, सम्प्रति, साम्प्रतम्, अकस्मात्, अपि, प्रति, अति, अहोरात्रम्, नक्तदिवम, अहर्निश

(छ) धातु–रच्, सेव्, लथ्, सह, यत्, शुभ, मोद् आदि धातुओं का लट् तथा लृ
(वर्तमान तथा भविष्यत् काल में) प्रयोग।

(ज) प्रत्यय–क्त, क्तवतु और स्त्री प्रत्यय में से अक्, इका, आ, ई।

(झ) सन्धि–पूर्वरूप, अयादि।

4. कक्षा 9 के लिए–

माध्यमिक कक्षाओं के सिखाए गए शब्दों के अतिरिक्त निम्नलिखित शब्दों की रूप रचना का ज्ञान।

(क) संज्ञा–पुल्लिंग अकारान्त–गो, ऋकारान्त–नृ।

स्त्रीलिंग इकारान्त–दधि।

स्त्रीलिंग इकारान्त–धी।

व्यंजनान्त पुल्लिंग–सम्राज, दिव्प्, युवन्, श्वन्।

व्यंजनान्त स्त्रीलिंग–अप्, वाच्, दिश्, विद्युत्, तडित्।

व्यंजनान्त नपुंसकलिंग–वपुष्, धनुष्।

(ख) सर्वनाम–पूर्व, पर, दक्षिण, उत्तर।

(ग) विशेषण–गच्छत् आदि।

(घ) क्रियापद–भ्वादि, तुदादि, दिवादि, स्वादि, तनादि व चुरादि गणों से निम्नलिखित– प्र + आप्, क्षिप्, ईक्ष, कृ, धा, जन्, तृप्, दंश्, दिश्, नश्, भज्, भास्, मन्, मंज्, मृ, रभ्, राज्, भाष्, वृत्, वृध्, शभ्, स्था।

(ङ) कारक–उपपद विभक्तियों का प्रयोग।

(च) संख्या–एक से चतुर तक का तीनों लिंगों तथा विभक्तियों में प्रयोग।

(छ) अव्यय–समम्, साकम्, सार्धम्, प्रथृति, हन्त।

(ज) प्रत्यय–णिजन्त, स्त्रीप्रत्यय, तरप्, तमप्।

(झ) सन्धि–विसर्ग सन्धि।

(ञ) समास–द्वन्द्व, कर्मधारय, तत्पुरुष, द्विगु।

5. कक्षा 10 के लिए–

(क) संज्ञा–पुल्लिंग इकारान्त–पति, सखि।

पुल्लिंग अकारान्त–नो।

इकारान्त नपुंसकलिंग–अक्षि।

व्यंजनान्त पुल्लिंग–पुस्, पाथिन्।

व्यंजनान्त स्त्रीलिंग–अगिर।

इकारान्त नपुंसकलिंग–अक्षि।

व्यंजनान्त नपुंसकलिंग–अहन्, वयस्।

(ख) सर्वनाम–उभ, अभय, कतिपय, अदस्, ईदृश्, यादृश्, तादृश्, कीदृश्।

(ग) विशेषण–ददत्, गरीयस्, महीयस्, कियत्।

(घ) क्रियापद–अदादि, जुहोत्यादि, स्वादि, क्रयादि, गणों की निम्नलिखित धातु- अस्, इ, आधि + ई, क्री, द्रह्, ज्ञा, छिद्, दुह्, दा, ध, वच्, ब्रू, धा, धी, या, स्द्, वच्, विद्, हन्, शी, स्तु, शक्।

(ङ) कारक–भावे सप्तमी, अनादरे षष्ठी, निर्धारणे षष्ठी, सप्तमी का प्रयोग।

(च) संख्या–शतोपरि संख्या निर्माण।

(छ) अव्यय–आङ्, धृते, अन्तरा, अन्तरेण, नाम, कृते।

(ज) प्रत्यय–यगन्त (कर्मवाच्य) इयस्, इष्ठ।

(झ) सन्धि–व्यंजन सन्धि के प्रमुख नियम।

(ञ) समास–अव्ययी भाव, बहुव्रीहि।

व्याकरण शिक्षण के उद्देश्य

संस्कृत शिक्षा के सभी स्तरों (प्रारम्भिक, मध्य, उच्च) पर व्याकरण की शिक्षा के निम्नलिखित उद्देश्य को ध्यान में रखना चाहिए–

1. छात्रों को संस्कृत भाषा के ध्वनि-तत्त्व से परिचित कराना।
2. शब्दों के विभिन्न रूपों का ज्ञान प्रदान करना।
3. शुद्ध वाक्य रचना की योग्यता प्रदान करना।
4. छात्रों की तर्क शक्ति एवं रचनात्मक वृत्ति का विकास करना।
5. उनकी भाषा के गुण-दोषों को परखने की क्षमता प्रदान करना।
6. सैद्धान्तिक व्याकरण का ज्ञान करते हुए सिद्धान्तों का प्रयोग करने का अवसर प्रदान करना।

व्याकरण की पाठ्य सामग्री का क्रम

व्याकरण की शिक्षा के सम्बन्ध में प्रश्न उठता है कि छात्रों को सर्वप्रथम क्या पढ़ाया जाना चाहिए। पाठ्य-सामग्री को अनुस्तरित करने में मनोवैज्ञानिक क्रम तथा तार्किक क्रम दोनों का ध्यान रखना चाहिए। मनोवैज्ञानिक क्रम से तात्पर्य यह है कि छात्र की मानसिक योग्यता एवं तत्परता के आधार पर सामग्री का चयन किया जाए और तार्किक क्रम से तात्पर्य यह है कि विषय-वस्तु के विकास का क्रम ध्यान में रखा जाए जिससे पूर्वापर पक्ष स्पष्ट हो जाए। आजकल बहुत से विद्वान् केवल मनोवैज्ञानिक क्रम अपनाने का परामर्श देते हैं। संस्कृत व्याकरण के सम्बन्ध में यह परामर्श अधिक उपयोगी नहीं है। वस्तुतः संस्कृत-व्याकरण की पाठ्य सामग्री का चयन करते समय दोनों ही दृष्टिकोणों का आश्रय लिया जाना चाहिए। इन दोनों दृष्टियों से व्याकरण की पाठ्य-सामग्री का क्रम निम्नलिखित ढंग से हो तो अच्छा रहेगा–

1. **संस्कृत वर्णमाला**–शुद्ध उच्चारण, वर्णों का वर्गीकरण।
2. **सन्धि**–स्वर तथा व्यंजन–पहले सरल, बाद की कक्षाओं में कठिन सन्धियां। तत्पश्चात् विसर्ग संन्धि।
3. **नाम शब्द**–संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण। लिंग तथा वचन भेद का स्पष्ट ज्ञान। विभिन्न कारकों का ज्ञान।
4. **आख्यान**–पहले भ्वादि गण की, तत्पश्चात् अन्य गणों की धातुएं। पहले आत्मनेपदी, बाद में परस्मैपदी तथा उभयपदी। पहले केवल पांच लकार, बाद में अन्य लकारों का ज्ञान।
5. **समास**–लगभग सभी समासों का ज्ञान प्रारम्भ से ही कराया जाए तो अच्छा है।
6. कृदन्त तथा तद्धित प्रत्यय।
7. **उपसर्ग**–कुछ उपसर्गों का ज्ञान प्रारम्भ से ही करा देना उचित है।

संस्कृत व्याकरण की शिक्षा
[Lesson Planning of Grammar]

व्याकरण की शिक्षा की योजना बनाते समय निम्नलिखित क्रम ध्यान में रखना लाभदायक होगा–

1. सामान्य प्रारम्भिक बातें
2. सामान्य उद्देश्य
3. विशिष्ट उद्देश्य
4. पूर्वज्ञान
5. सहायक सामग्री
6. **प्रस्तावना**–पूर्व पठित प्रकरण पर आवृत्यात्मक प्रश्न जिससे पहले की सामग्री को दुहराया जा सके। तत्पश्चात् आवश्यकता अनुसार उद्देश्य कथन।
7. **पाठ्योपस्थापन**–प्रस्तुत प्रकरण से सम्बन्धित कई उदाहरण प्रस्तुत किए जाएंगे। कुछ वाक्य होंगे और उन पर प्रश्न किए जाएंगे। यह सोपान उदाहरण तथा तुलना का है।
8. **नियम-निर्धारण**–प्रस्तुत उदाहरणों के आधार पर सामान्य नियम अध्यापक छात्रों की सहायता से निकालेगा और बाद में सूत्र रूप में श्यामपट्ट पर लिख देगा।
9. **पुनरावृत्ति**–उदाहरण के रूप में प्रस्तुत संस्कृत वाक्यों का छात्र हिन्दी में अनुवाद करे और उपर्युक्त नियमों का प्रयोग करे। प्रस्तुत नियम से सम्बन्धित कुछ हिन्दी वाक्य अध्यापक श्यामपट्ट पर लिखे और छात्रों को यह निर्देश दे कि उन हिंदी वाक्यों का वे संस्कृत में अनुवाद करें।

10. गृह कार्य–गृह कार्य के रूप में निम्नलिखित कार्य दिए जा सकते हैं–

(क) संस्कृत वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद।

(ख) हिन्दी वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद।

(ग) रिक्त स्थानों की पूर्ति–कुछ संस्कृत वाक्य लिखे जाएं जिनमें कुछ शब्दों का स्थान रिक्त छोड़ दिया जाए। पठित नियम के आधार पर छात्र उस वाक्य को पूरा करें।

व्याकरण पाठ-योजना–1

विद्यालय का नाम–..... **दिनांक**–.....

अध्यापक का नाम–..... **कक्षा**–.....

विषय–संस्कृत व्याकरणम् **कालांश**–चतुर्थ

शीर्षक–स्वर संधि (गुण संधि) **अवधि**–40 मिनट

सामान्य उद्देश्य–

1. छात्रों को संस्कृत भाषा के ध्वनि तत्त्व से परिचत कराना।
2. शब्दों के विभिन्न रूपों का ज्ञान प्रदान करना।
3. शुद्ध वाक्य रचना का ज्ञान प्रदान करना।
4. छात्रों की तर्क शक्ति एवं रचनात्मक वृत्ति का विकास करना।
5. उनकी भाषा के गुण-दोषों को परखने की क्षमता प्रदान करना जिससे वे शुद्ध लिख सकें।
6. सैद्धान्तिक व्याकरण का ज्ञान प्रदान करते हुए सिद्धान्तों के प्रयोग करने का अवसर प्रदान करना।

विशिष्ट उद्देश्य–छात्रों को स्वर-सन्धि के द्वितीय भेद 'गुण सन्धि' का अर्थात् अ या आ के परे किसी भिन्न स्वर इ, ई, उ, ऊ या ऋ के होने पर दोनों को मिलाकर क्रमशः ए, ओ या अर् हो जाता है–इसका सम्यक् ज्ञान एवं अभ्यास कराना।

पूर्व ज्ञान–

1. छात्र सन्धि के सामान्य अर्थ और महत्त्व से परिचित हो चुके हैं।
2. छात्र स्वर-सन्धि के प्रथम भेद 'दीर्घ सन्धि' का अध्ययन और अभ्यास कर चुके हैं।

सहायक सामग्री–श्यामपट्ट पर लिखे हुए कतिपय सन्धिष्ट और सन्धेय पद।

प्रस्तावना–छात्राध्यापक कक्षा के श्यामपट्ट पर निम्नलिखित पदों को लिखकर छात्रों से प्रश्न करेगा–

(1) देवालयः (2) मुनीशः

प्रश्न–

1. प्रथम पद का सन्धि-विच्छेद करो।
2. इन दोनों शब्दों में किन-किन वर्णों की सन्धि हुई?
3. वर्णमाला में ये वर्ण किस नाम से विख्यात हैं?
4. द्वितीय पद का सन्धि-विच्छेद करो।
5. इन दोनों शब्दों में किन-किन वर्णों का मेल हुआ है?
6. वर्णमाला में ये वर्ण किस नाम से प्रसिद्ध हैं?
7. स्वरों के मध्य होने वाली सन्धि का क्या नाम है?
8. स्वर सन्धि का यह कौन सा भेद है?

उद्देश्य कथन–इन शब्दों में दोनों ओर समान स्वरों के मध्य ही सन्धि हुई है किन्तु यदि अ या आ के सामने उनसे भिन्न स्वर इ, ई, उ, ऊ या ऋ आ जाए तो उनके मेल से जो स्वर-सन्धि होती है, आज हम उसी का अध्ययन करेंगे।

पाठ्योपस्थापन–छात्राध्यापक छात्रों से प्रश्न करता जाएगा और श्यामपट्ट पर लिखता जाएगा।

1. सुरेन्द्र शब्द का क्या अर्थ है?
2. इस नाम का सन्धि-विच्छेद करो।
3. प्रथम शब्द के अन्त में कौन-सा स्वर है?
4. द्वितीय शब्द के आरम्भ में कौन-सा स्वर है?
5. सन्धि होने से अ और ई स्थान पर कौन-सा स्वर हो गया है?
6. देवताओं में सर्वप्रथम किसकी पूजा की जाती है?
7. गणेश शब्द का सन्धि-विच्छेद करो।
8. इन दोनों शब्दों में किन-किन वर्णों का मेल हुआ है?
9. सन्धि होने से अ और इ के स्थान पर कौन-सा स्वर हो गया है?
10. महेन्द्र नाम का सन्धि-विच्छेद करो।
11. इन दोनों शब्दों में किन वर्णों का मेल हुआ है?
12. सन्धि होने से आ और ई के स्थान पर कौन-सा स्वर हो गया है?
13. अपने मित्र रमेश के नाम में सन्धि-विच्छेद करो।
14. इस सन्धि में किन वर्णों का मेल हुआ है?
15. सन्धि होने से, आ और ई के स्थान पर कौन-सा वर्ण हो गया है?
16. 'परोपदेशे पाण्डित्यम्' इस वाक्य में सन्धि युक्त पद कौन-सा है?

17. परोपदेश का सन्धि-विच्छेद करो।
18. इस सन्धि में किस-किस वर्ण का मेल हुआ है?
19. अ और उ के स्थान पर कौन-सा स्वर हो गया है?
20. 'जलोर्मि' शब्द का सन्धि-विच्छेद करो।
21. इन दोनों शब्दों में किन स्वरों का मेल हुआ है?
22. अ और ऊ के स्थान पर कौन-सा स्वर हो गया है?
23. 'महोर्मि' शब्द का सन्धि-विच्छेद करो।
24. इन दोनों शब्दों में किन स्तरों का मेल हुआ है?
25. आ और ऊ के स्थान पर कौन-सा स्वर हो गया है?
26. 'महोदधि' शब्द का सन्धि-विच्छेद करो।
27. इन दोनों शब्दों में किन वर्णों का मेल हुआ है?
28. आ और ऊ के स्थान पर कौन-सा स्वर हो गया है?
29. 'ब्रह्मर्षि' शब्द का सन्धि-विच्छेद करो।
30. इन दोनों में किस-किस वर्ण का मेल हुआ है?
31. अ और ऋ के स्थान पर कौन-सा स्वर हो गया है?
32. 'महर्षि' शब्द का सन्धि-विच्छेद करो।
33. इन दोनों शब्दों में किस-किस वर्ण का मेल हुआ है?
34. आ और ऋ के स्थान पर कौन-सा स्वर हो गया है।

नियम-निर्धारण–इन उदाहरणों के आधार पर हम क्या नियम निर्धारित कर सकते हैं?

"यदि अ या आ के आगे इ या ई, उ या ऊ अथवा ऋ आए तो उन दोनों स्वरों के मेल से क्रमशः ए, ओ, अर् हो जाता है।" इसे गुण सन्धि कहते हैं।

अध्यापक कथन–प्राचीन संस्कृत ऋ और ऌ स्वर भी वर्णमाला में स्वीकार किये जाते थे तथा इनका प्रयोग भी होता था; किन्तु जिस संस्कृत का हम अध्ययन करते हैं, उसमें ऋ तथा ऌ का प्रयोग नहीं होता है। अतः इनके उदाहरण नहीं बताए गए हैं। पाणिनि ने सन्धि में अ या आ के आगे ऋ होने पर अर् तथा ऌ होने पर अल् होना बताया है। इस सन्धि को पाणिनि ने अपने व्याकरण में 'अदेङ् गुण' सूत्र द्वारा गुण सन्धि बताया है। (अध्यापक सूत्र को श्यामपट पर लिखेगा।)

प्रयोग और अभ्यास या पुनरावृत्ति–छात्राध्यापक पूर्व लिखित पदों और शब्दों वाले लपेट श्यामपट को खोलकर भित्ति पर लटकाएगा और छात्रों के अभ्यास हेतु कुछ पदों में सन्धि-विच्छेद का आदेश देगा एवं कुछ शब्दों में सन्धि कराएगा, यथा–

सन्धि-विच्छेद करो–

(1) नरेन्द्रः, (2) महेशः, (3) महोदयाः, (4) देवर्षिः, (5) सूर्योदयः।

सन्धि करो–

(1) सर्व + ईशः (2) पर + उपकारः (3) राजा + ऋषि
(4) ग्रीष्म + ऋतु (5) तीर्थ + उदकम्

गृह कार्य–अपनी पाठ्य-पुस्तक के प्रथम गद्य पाठ से इस सन्धि के दस उदाहरण छांटिए एवं उनका सन्धि विच्छेद कीजिए।

व्याकरण पाठ-योजना–2

विद्यालय का नाम–..... **दिनांक**–.....
अध्यापक का नाम–..... **कालांश**–पञ्चम्
विषय–संस्कृत व्याकरणम् **अवधि**–40 मिनट
प्रकरण–भूतकालिक 'क्त' और 'क्तवतु' कृदन्त प्रत्यय

सामान्य उद्देश्य–

1. छात्रों को संस्कृत भाषा की विशेषता से परिचित कराना।
2. उन्हें शब्दों के विभिन्न रूपों का ज्ञान प्रदान करना।
3. उनमें शुद्ध वाक्य-रचना की योग्यता प्रदान करना।
4. छात्रों की तर्क-शक्ति एवं रचनात्मक वृत्ति का विकास करना।
5. उनको भाषा के गुण-दोषों को परखने की क्षमता प्रदान करना, जिससे वे शुद्ध-शुद्ध लिख व बोल सकें।
6. उन्हें सैद्धान्तिक व्याकरण का ज्ञान प्रदान करते हुए, सिद्धान्तों के प्रयोग करने का अवसर प्रदान करना।
7. छात्रों को संस्कृत भाषा के ध्वनि तत्त्व से परिचित कराना।

विशिष्ट उद्देश्य–छात्रों को भूतकालिक 'क्त' और 'क्तवतु' कृदन्त प्रत्ययों का ज्ञान कराना।

पूर्व ज्ञान–छात्रों को कृत्य प्रत्यय–तव्यत्, तव्य, अनीयर, यत् आदि का ज्ञान है।

सहायक सामग्री–लपेट श्यामपट पर लिखे हुए संस्कृत के कुछ वाक्य।

प्रस्तावना–अध्यापक लपेट श्यामपट पर लिखे हुए निम्नलिखित उदाहरणों को छात्रों के समक्ष प्रस्तुत करेगा।

1. एषः गन्तव्यः मार्गः।
2. का एषा कथनीया वार्ता?

3. 'दातव्यमिति ह्यानेंदीयतेऽनुपकारिणे।' (गीता)
4. 'अस्यशब्दानुरूपेण पराक्रमेण भाव्यं भविष्यतम् वा।' (पंचतन्त्र)
5. एतद पठनीयं पुस्तकम्।

उपर्युक्त उदाहरणों पर निम्नलिखित प्रश्न किए जाएंगे-

1. प्रथम वाक्य में 'गन्तव्य:' शब्द कौन-सा प्रत्यय है?
2. उपर्युक्त उदाहरणों में अन्य कौन-सा शब्द है, जिनमें 'तव्यत्' प्रत्यय है?
3. 'कथनीया' तथा 'पठनीय' में कौन-से प्रत्यय हैं?
4. ये प्रत्यय किस अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं?

उद्देश्य कथन-आज हम इसी प्रकार के कुछ अन्य कृदन्त प्रत्ययों का अध्ययन करेंगे, जो भूतकालिक हैं।

पाठ्योपस्थापन-प्रस्तुत पाठ को सुविधा की दृष्टि से दो अन्वितयों में विभक्त किया जाएगा।

प्रथमान्विति-'क्त' प्रत्यय

उदाहरण तथा तुलना-अध्यापक निम्नलिखित उदाहरणों को छात्रों के समक्ष प्रस्तुत करेगा-

1. '**गृतोऽहं** कलिंगान्' (दशकुमारचरित्र)
2. 'जलं पातुं **यमुनाकच्छमवतीर्ण**' (पंचतन्त्र)
3. 'गर्भस्थस्य च में पूर्व पिता **पंचत्वमागत:**
   मान्मातुश्च तदा पापैर गौत्र जै: सकलं **विस्मृतं**' (कथासरित्सागर)
4. '**अहो विस्मृतं** में हृदयम्' (विक्रमोर्वर्शीयम्)
5. '**प्रतिबुद्धामिदानीं** मकरन्दपूर्णचन्द्रेण' (मालतीमाधव)
6. '**आपदा कथित:** पथ इन्द्रयाणामसंयम:' (चाणक्य नीति)
7. '**जितम** अल्पत्यस्नेहेन' (उत्तररामचरितम्)
8. '**लक्ष्मीमाश्लिष्टो** हरि:' (सिद्धान्तकौमुदी)

उपर्युक्त उदाहरणों का अर्थ स्पष्ट करते हुए इन पर निम्नलिखित प्रश्न किए जाएंगे-

1. गतोऽह, यमुनाकच्छमवतीर्ण, पंचत्वमागत:, प्रतिबुद्धमिदानीं तथा लक्ष्मीमाश्लिष्टो में सन्धि विच्छेद करो।
2. मोटे काले छपे शब्द किन-किन क्रियाओं से बने हैं?
   निम्नलिखित मूल क्रियाओं को एक-एक करके अध्यापक श्यामपट पर लिखता जाएगा-
   गम्, अव + तृ, आ + गम्, हृ, वि + स्मृ, प्रति + बद्ध, कथ्, र्जिआ + श्लिष।

3. छात्र! उपयुक्त वाक्यों के अर्थों को ध्यान से देखो और यह पता लगाओ कि इनमें प्रयुक्त गत: अवतीर्ण: आदि मोटे काले छपे शब्द किस काल का बोध कराते हैं।
4. उपर्युक्त उदाहरणों में क्रियाएं किस वाक्य में हैं? (कर्मवाच्य तथा कर्तृवाच्य)
5. मोटे काले छपे पदों के लिंग और कारक बताओ।
6. मोटे काले छपे पद मूल क्रियाओं में कौन-सा प्रत्यय जोड़ने पर बने हैं?

नियम-निर्धारण-उपर्युक्त मोटे काले छपे शब्दों में 'क्त' प्रत्यय लगाया गया है। 'क्त' प्रत्यय किसी कार्य की समाप्ति का बोध कराता है। अत: यह भूतकालिक प्रत्यय है। यह कर्तृवाच्य तथा कर्मवाच्य में प्रयुक्त होता है। भूतकालवाची क्रियार्थक विशेषण है। अंग्रेजी में इसी अर्थ में 'पास्ट पार्टिसिपिल' (Past Participle) का प्रयोग होता है। 'क्त' प्रत्यय से युक्त पद विशेषण के अर्थ में प्रयुक्त होने के कारण विशेष्य (कर्त्ता अथवा कर्म) के ही लिंग और कारक में रखे जाते हैं।

(द्वितीयान्विति-'क्तवतु' प्रत्यय)

उदाहरण तथा तुलना-

1. सारस्वतश् चापि जगाद वेदं।
   नष्टं पुनर् यं ददृशुर्न पूर्वे॥
   व्यासम् तथैन बहुधा चकार।
   न यं वसिष्ट: कृतवान्न शक्ति॥ (बुद्ध चरितम्)
2. धिक चापलम्। किमुक्तवानसि? (उत्तररामचरितम्)
3. स तस्मित् पुरेऽनयदेशादागतांश चतुरो विप्रान् बनहूनि वस्तुनि विक्रीणतो दृष्ट्ता चिन्तितवान-अहो! केनोपायेनैषां धनं लभे? (पंचतंत्र)
4. एकैक: काष्ठिक: प्रीत्या काष्ठे द्वे द्वे ददौ मम।
   विक्रीतवान हतानि नीत्वा काष्ठानि चापणे॥ (कथासरित्सागर)
5. अनेन मधुरालपेनं सा क्षपां क्षपितवती।
6. राम: वाणेन रावणं हतवान्।

उपर्युक्त उदाहरणों को स्पष्ट करते हुए इन पर निम्नलिखित प्रश्न किए जाएंगे-

1. किमुक्तावानसि, विक्रितवानहं मे सन्धि-विच्छेद करो।
2. मोटे काले छपे शब्द किन-किन क्रियाओं से बने हैं?

निम्नलिखित मूल क्रियाओं को एक-एक करके अध्यापक श्यामपट पर लिखता जाएगा-

कृ, वच्, चिन्त, वि + क्री, क्षप, हन्।

3. उपर्युक्त उदाहरणों में रेखांकित शब्द किस काल का बोध कराते हैं?

4. उपर्युक्त उदाहरणों में क्रियाएं किस वाक्य की हैं?
5. मोटे काले छपे पदों के लिंग और कारक बताओ।
6. मोटे काले छपे पद मूल क्रियाओं में कौन-सा प्रत्यय जोड़ने पर बने हैं?

नियम-निर्धारण–उपर्युक्त मोटे काले छपे शब्दों में 'क्तवतु' प्रत्यय लगाया गया है। यह भी 'क्त' प्रत्यय की भांति भूतकालिक क्रियार्थक विशेषण है और विशेष्य के लिंग और कारक से अनुशासित है। अन्तर केवल इतना है कि यह कर्तृवाच्य में प्रयुक्त होता है जबकि 'क्त' कर्मवाच्य और कर्तृवाच्य दोनों में।

पुनरावृत्ति–

1. उपर्युक्त उदाहरणों का हिंदी में अनुवाद कीजिए।
2. निम्नलिखित क्रियाओं में 'क्त' और 'क्तवतु' प्रत्यय जोड़िए–
   पठ्, एना, पा, भू, कृ, त्यज्, लिख्।
3. निम्नलिखित पदों में क्रिया और प्रत्यय पृथक् कीजिए–
   सिक्तवतो, तृप्तवान्, कीर्ण, अदितवान्, उषितवान्।
4. 'क्त' और 'क्तवतु' प्रत्ययों का प्रयोग करते हुए निम्नलिखित वाक्यों को संस्कृत में अनुवाद कीजिए–
   (1) उसने कार्य किया।
   (2) राम ने लेख लिखा।
   (3) सुधा ने अपना पाठ पढ़ा।
   (4) सरला ने स्नान किया।
   (5) हरि ने देवों की रक्षा की।

गृह कार्य–रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए–

(1) ..... अहं मद्रपुरम्।
(2) वैकुण्ठम् ..... सः।
(3) अत्रभवतोः परस्परेण ज्ञानसंघर्षो .....।
(4) विष्णुः शेषं .....।
(5) सः शिवम .....।

अभ्यास के प्रश्न

1. व्याकरण को परिभाषित करते हुए संस्कृत व्याकरण की विशेषताओं पर दृष्टिपात कीजिए। संस्कृत व्याकरण का क्या महत्त्व है?

2. संस्कृत व्याकरण शिक्षण क्यों आवश्यक है? भाषा के शिक्षण में इसकी उपयोगिता सिद्ध कीजिए।
3. व्याकरण की शिक्षण-विधि पर प्रकाश डालते हुए, संस्कृत शिक्षण में व्याकरण की पाठ्य सामग्री के क्रम का वर्णन कीजिए।
4. 'व्याकरण शिक्षण के बिना भाषा शिक्षण अधूरा है।' इस कथन के औचित्य पर प्रकाश डालिए।
5. व्याकरण का विषय विद्यार्थियों को शुष्क और नीरस क्यों लगता है? इसे सरल बनाने के लिए आप क्या करेंगे?
6. संस्कृत व्याकरण की नियमित शिक्षा किस कक्षा से आरम्भ करनी चाहिए और क्यों? तर्क सहित उत्तर दीजिए।
7. "व्याकरण भाषा का सहचर है, स्वामी नहीं।" व्याख्या करें।
8. संस्कृत व्याकरण शिक्षण के उद्देश्यों को स्पष्ट कीजिए।
9. संस्कृत व्याकरण शिक्षण की आवश्यकता पर बल देते हुए निगमन विधि से 'गुण-सन्धि' पढ़ाने के लिए एक व्याकरण पाठ योजना तैयार कीजिए।

❑❑❑

अध्याय 9

संस्कृत गद्य शिक्षण–प्रक्रिया, उद्देश्य एवं सोपान, पाठ योजना

संस्कृत गद्य साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। निस्संदेह इसमें पद्य जैसा साहित्य और सरसता नहीं होती, फिर भी यह हमारी बुद्धि को बहुत प्रभावित करता है। यदि कविता आनन्द की वस्तु है तो गद्य में जीवन की वास्तविकता के दर्शन होते हैं।

संस्कृत शिक्षण की दृष्टि से गद्य शिक्षण का बहुत महत्त्व है। गद्य के द्वारा ही बच्चों को शब्द ज्ञान, वाक्य ज्ञान तथा विभिन्न लेखन शैलियों का ज्ञान कराया जाता है। वास्तव में गद्य शिक्षण के द्वारा ही उन्हें बहुज्ञ बनाया जाता है। इसके लिए पाठ्यक्रम में गद्य शिक्षण सम्बन्धी अनेक विषय होते हैं, जिन्हें सूक्ष्म पाठ (Intensive Reading) और द्रुत पाठ (Extensive Reading) के द्वारा पढ़ाया जाता है।

भाषा का जो लिखित रूप हमें अपने दैनिक जीवन में देखने को मिलता है और जिसका हम नित्य प्रति जीवन में उपयोग करते हैं, वह गद्य रूप में होता है। गद्य की परिभाषा के सम्बन्ध में संस्कृत के आचार्यों में **दण्डी** व **भामह** के नाम उल्लेखनीय हैं। दण्डी आचार्य ने गद्य की परिभाषा के प्रसंग में अपाद शब्द का उल्लेख कर गद्य के बारे में कहा है, "जिस रचना में छन्द शास्त्र के गण एवं गत्राओं का सम्बन्ध नहीं रहता, वह गद्य है।"

गद्य की सबसे सरल, व्यापक और सर्वमान्य परिभाषा यही हो सकती है कि जिस शब्दार्थ युक्त भाषा का साधारण बातचीत में प्रयोग किया जाता है, वही गद्य है। गद्य विरामादि व्याकरण के नियमों में आबद्ध वह रचना है, जिसमें भाव-गम्भीर्य हो अथवा न भी हो, लेकिन विचारों की अभिव्यक्ति अवश्य हो।

संस्कृत गद्य तथा उसका स्वरूप–संस्कृत गद्य को दो रूपों में विभक्त किया जा सकता है–(1) कथा तथा (2) आख्यायिका। ये दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। मूलरूपेण गद्य साहित्य के अनेक रूप होते हैं–निबन्ध, कहानी, उपन्यास, नाटक, यात्रा वर्णन, जीवनी, पत्र एवं आलोचना। पाठ्य-पुस्तकों में अधिकतर निबन्धों को ही स्थान दिया जाता है। छोटी कक्षाओं में वर्णनात्मक निबन्धों और उच्च कक्षाओं में विवरणात्मक, विवेचनात्मक

और भावात्मक निबन्धों को ही स्थान दिया जाना चाहिए। इसी प्रकार अन्य गद्य विधाओं में भी यही पक्ष अपनाया जाता है, चाहे वह कहानी हो या नाटक।

संस्कृत गद्य शिक्षण के उद्देश्य

संस्कृत गद्य शिक्षण के दो तरह के उद्देश्य हैं–सामान्य तथा विशिष्ट। प्राथमिक तथा उच्च कक्षाओं के विभिन्न उद्देश्य होते हैं।

सामान्य उद्देश्य–

1. विद्यार्थियों के सूक्ति कोष और संस्कृत शब्द भण्डार को विकसित कर उसे सबल बनाना।
2. बालकों को शुद्ध संस्कृत उच्चारण की क्षमता प्रदान करना।
3. छात्रों को पठन व वाचन कला में कुशल बनाना।
4. विद्यार्थियों में संस्कृत अध्ययन के प्रति रुचि उत्पन्न करना।
5. छात्रों की बोध शक्ति, कल्पना शक्ति और विवेचन शक्ति को विकसित करना।
6. छात्रों को पूर्ण मनोयोग से सुनने और सुनकर अर्थ ग्रहण करने के योग्य बनाना।
7. छात्रों को उचित गति और उचित आरोह-अवरोह के साथ मौखिक पठन करने में कुशल बनाना।
8. छात्रों को पूर्ण मनोयोग से मौन वाचन (पठन) करने और इस प्रकार लिखित सामग्री का अर्थ ग्रहण करने के योग्य बनाना।
9. छात्रों को गद्य की विभिन्न शैलियों का ज्ञान प्रदान करना।
10. छात्रों की निरीक्षण शक्ति का विकास करना तथा पठित अंश की समीक्षा करने के योग्य बनाना।
11. छात्रों के व्यावहारिक ज्ञान में वृद्धि करना।
12. छात्रों की रचनात्मक तथा सृजनात्मक शक्ति का विकास करना।
13. छात्रों का चरित्र निर्माण करना।
14. छात्रों की मानसिक, तार्किक एवं बौद्धिक शक्तियों का विकास करना।
15. छात्रों के व्यक्तित्व का बहुमुखी विकास करना।

गद्य शिक्षण के विशिष्ट उद्देश्य–किसी भी गद्य पाठ के विशिष्ट उद्देश्य पाठ में निहित मुख्य भाव या कलात्मक विशेषता पर आधारित होते हैं। बालकों में इन्हीं को समझाने की क्षमता उत्पन्न करना उस विशेष गद्य पाठ का उद्देश्य होता है। बालक की भाषा का परिवर्तन कर उसकी रुचि और अभिवृत्तियों के विकास पर ध्यान लक्षित रहता है।

गद्य शिक्षण के उद्देश्यों को अधोलिखित भागों में विभक्त किया जा सकता है

1. ज्ञान–इसके अन्तर्गत नई बातों की जानकारी दी जाती है। ज्ञान के प्रकार हैं– तत्त्वों का ज्ञान, विषय-वस्तु का ज्ञान और रचना रूपों का ज्ञान।

2. अर्थबोध (अर्थग्रहण)–यह समझ पाना कि किसी शब्द का कहां-कहां किन-किन परिस्थितियों में प्रयोग किया जा सकता है तथा शब्दों का अंतर स्थापित की क्षमता उत्पन्न करना।

3. ज्ञानोपयोग (अभिव्यक्ति)–अर्जित ज्ञान का सम्बन्ध चाहे भाषा तत्वों से या विषय-वस्तु से, उसका विभिन्न परिस्थितियों में प्रयोग करना, ज्ञानोपयोग के अन्तर्गत आता है; अर्थात् शब्दों का यथास्थान प्रयोग करने के लिए छात्रों को सक्षम बनाना।

4. अभिरुचि–छात्रों के अशुद्ध उच्चारण को शिक्षक द्वारा, कभी छात्रों से और स्वयं बोलकर व लिखकर शुद्ध करना चाहिए जिसके फलस्वरूप छात्रों की पाठ के प्रति रुचि उत्पन्न होगी।

5. अभिवृत्ति–छात्रों के मन पर पाठ को पढ़ने का जो प्रभाव पड़ता है, उसे मनोवृत्ति या अभिवृत्ति कहते हैं। छात्रों में विषय-वस्तु में गर्वित भावना उत्पन्न होनी

6. कौशल–जब कोई बात अपने शब्दों में इस प्रकार कही जाती है कि उसे दूसरे लोग सुनकर या पढ़कर प्रभावित हो जाएं तो वह कौशल उत्पन्न करना तथा भावनात्मक वाचन (पठन) का कौशल उत्पन्न करने का प्रयास करना है।

7. मौलिकता–रचना कार्य में मौलिकता लाने की योग्यता प्राप्त करना।

पठन शिक्षण की दृष्टि से गद्य पाठों के प्रकार–

1. गहन अध्ययननिष्ठ पाठ–ज्ञान, अर्थग्रहण, वाचन, रुचि और अभिवृत्ति उद्देश्य की पूर्ति करना।

2. द्रुत वाचनोदिष्ठ गद्य पाठ–पढ़कर अर्थग्रहण, विषय-वस्तु का ज्ञान तथा साहित्य में उद्देश्यों के प्रति रुचि।

गद्य पाठ के शिक्षण में नवीन शब्दों का ज्ञान देने की युक्तियां

गद्य पाठ के आत्मीकरण सोपान के अन्तर्गत नवीन शब्दों का ज्ञान दिया जाना है। गद्य शिक्षण में नवीन शब्दों का ज्ञान निम्नलिखित विधियों द्वारा दिया जा सकता है

1. बालकों को उस शब्द से सम्बन्धित प्रत्यक्ष वस्तु को दिखाकर।
2. वस्तु से शब्द का सम्बन्ध स्पष्ट करके शब्द उत्पत्ति द्वारा।
3. वस्तु के चित्र, प्रतिरूप, रेखाचित्र और मानचित्रों की सहायता से उदाहरण तुलना करना।

4. क्रिया प्रदर्शन, अंग चेष्टा या अभिनय द्वारा; जैसे–लाल-पीला होना, क्रोध की मुद्रा बताकर स्पष्ट किया जाना।
5. वाक्य में उस शब्द के यथोचित्त प्रयोग द्वारा।
6. उदाहरण एवं तुलना।
7. पर्यायवाची शब्द, विलोम शब्द, सन्धि-विच्छेद, समास तथा प्रत्यय, उपसर्ग का ज्ञान देकर।
8. अध्यापक द्वारा उस शब्द से सम्बन्धित अन्तर्कथा, जैसे–मुहावरे, कहावतें, सूक्तियां या परिभाषा देकर।
9. शब्दों के सरल भाषा में अनुवाद द्वारा।

उपर्युक्त विधियों का विस्तृत अध्ययन इस प्रकार है–

1. दृश्य सामग्री द्वारा (By means of Visual Aids)–छोटी कक्षाओं में कुछ शब्दों के अर्थ दृश्य सामग्री की सहायता से स्पष्ट किए जा सकते हैं। यह सामग्री है–वस्तु, प्रतिमूर्ति, चित्र, रेखा-चित्र आदि। जलज का अर्थ कमल का फूल दिखाकर स्पष्ट किया जा सकता है।

2. अंग संचालन द्वारा (By means of Gestures)–कुछ शब्दों का स्पष्टीकरण अंग संचालन के माध्यम से किया जा सकता है, जैसे–''त्यौरी चढ़ाना'' का स्पष्टीकरण त्यौरी चढ़ाकर किया जा सकता है। इसी प्रकार 'घूर घूर कर देखना' का अर्थ भी अंग संचालन द्वारा बताया जा सकता है।

3. वाक्य प्रयोग द्वारा (By use in Sentences)–कुछ शब्द तथा मुहावरों का स्पष्टीकरण उनका सरल वाक्यों में प्रयोग करने से बड़ी आसानी से हो जाता है। उदाहरणार्थ यदि बच्चों से 'कर्कश' शब्द का अर्थ निकलवाना है तो बच्चों के सम्मुख यह वाक्य रखा जा सकता है–कोयल की वाणी मधुर होती है और कौए की कर्कश। फिर 'कर्कश' शब्द का अर्थ पूछा जा सकता है। आवश्यकतानुसार एक से अधिक वाक्य भी बनाये जा सकते हैं। बच्चों के सामने पूरी स्थिति उत्पन्न करनी चाहिए।

4. पर्यायवाची शब्दों द्वारा (By means of Synonyms)–कभी-कभी पर्यायवाची शब्द के कथन द्वारा भी अर्थ निकलवाया जा सकता है। 'भास्कर' शब्द के अर्थ निकलवाने के लिए बच्चों को उसके पर्यायवाची शब्द 'दिनकर' और 'दिवाकर' बताये जा सकते हैं। इस प्रकार भास्कर शब्द का अर्थ भी स्पष्ट हो जाएगा। प्रयत्न यह करना चाहिए कि कुछ बच्चों को उपस्थित किए गए पर्यायवाची शब्दों के अर्थ अवश्य आते हों।

5. विलोम शब्द के द्वारा (By means of Antonyms)–विलोम शब्द को प्रस्तुत करके भी शब्द के अर्थ निकलवाने में बड़ी सुगमता रहती है। उदाहरणार्थ 'निशा' शब्द के स्पष्टीकरण के लिए 'दिवस' शब्द विलोम रूप में प्रयुक्त करके 'निशा' के अर्थ को स्पष्ट किया जा सकता है।

6. खण्ड द्वारा (By means of Parts)–संयुक्त शब्दों के स्पष्टीकरण के लिए उन्हें खण्डों द्वारा प्रस्तुत करना सरल और उपयुक्त रहता है। इसकी अनेक प्रणालियां हैं–

(1) उपसर्ग को अलग करके; जैसे–सुपुत्र, कुपुत्र आदि शब्दों में।

(2) प्रत्ययों को अलग करके; जैसे–धनवान, भाग्यशाली आदि शब्दों में।

(3) समास विग्रह द्वारा; जैसे गृह लक्ष्मी या गृह स्वामी आदि शब्दों में। समास के प्रकार का नाम पूछ लेना भी युक्ति संगत होता है।

(4) **सन्धि-विच्छेद द्वारा** (By means of word Analysis)–जैसे निराकार विद्याध्ययन शब्दों में सन्धि युक्त शब्दों को श्यामपट्ट पर लिखकर बच्चों से सन्धि-विच्छेद कराया जा सकता है।

7. प्रसंग कथन द्वारा (By means of Reference to the Context)–कुछ शब्दों के अर्थ को स्पष्ट करने के लिए प्रसंग कथन आवश्यक होता है। बिना प्रसंग के उन्हें बताना कठिन है। उदाहरण के लिए 'पार्थ' और 'तथागत' के अर्थ स्पष्ट करने के लिए प्रसंग बताना आवश्यक हो जाता है। अर्जुन को पार्थ और भगवान् बुद्ध को तथागत क्यों कहते हैं बताना होगा।

8. व्याख्या द्वारा (By means of Explanation)–कभी-कभी कुछ ऐसे शब्द और मुहावरे सामने आ जाते हैं जिन के स्पष्टीकरण के लिए व्याख्या का सहारा लेना पड़ता है। उदाहरणार्थ–'गिरगिट की तरह रंग बदलना', 'नौ दो ग्यारह होना' या 'गंगा गये गंगा दास यमुना गये यमुना दास' के स्पष्टीकरण के लिए व्याख्या आवश्यक है। मुहावरे का भाव तभी स्पष्ट किया जा सकता है।

9. शब्द व्युत्पत्ति द्वारा (By means of word Building)–कभी-कभी ऐसे शब्द भी प्रयोग में आ जाते हैं जो बोली के शब्द होते हैं। कुछ शब्द बिगड़ते-बिगड़ते नया रूप धारण कर लेते हैं। इन शब्दों के अर्थ बताने के लिए उनकी व्युत्पत्ति की चर्चा करना अनिवार्य हो जाती है। उदाहरण के लिए विद्या, शिक्षा, बुद्धिजीवी आदि शब्दों का अर्थ व्युत्पत्ति द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

व्याख्या के साथ अन्य भाषा कार्य भी चलने चाहिए। इसके अतिरिक्त भाव-व्याख्या भी उपयुक्त प्रणाली के माध्यम से सम्पादित होनी चाहिए।

शब्दों की व्याख्या के लिए तीन विधियां
[Three Methods of Explanation of Words]

1. उद्बोधन विधि (Eliciting Method)
2. प्रवचन विधि (Telling Method)
3. स्पष्टीकरण विधि (Elucidating Method)

1. उद्बोधन विधि (Eliciting Method)–इस विधि से अध्यापक कठिन शब्दों का अर्थ स्वयं न बताते हुए विद्यार्थियों को भिन्न-भिन्न साधनों से उद्बोधित करता है। विद्यार्थी प्रत्यक्ष, अनुमान या कल्पना से लाभ उठाकर शब्द का अर्थ समझने की कोशिश करते हैं। इस प्रक्रिया में अध्यापक सहायक सामग्री, प्रत्यक्ष-प्रदर्शन, श्यामपट्ट आदि की सहायता लेता है।

उद्बोधन विधि में निम्न साधनों या उपायों से काम लिया जा सकता है–

(1) प्रत्यक्ष वस्तु प्रदर्शन–पुस्तक का अर्थ समझाने के लिए पुस्तक उपस्थित करना प्रत्यक्ष वस्तु है।

(2) चित्र या मॉडल द्वारा–यथा ऋषि का अर्थ समझाने के लिए किसी ऋषि का चित्र उपस्थित करना।

(3) प्रत्यक्ष क्रिया द्वारा–किसी क्रिया को करते हुए अर्थ समझाना।

(4) रेखाकृति द्वारा–जैसे वर्ग आकृति श्यामपट पर बनाना।

(5) अंग संचालन व अभिनय द्वारा–क्रोध का अर्थ समझाने के लिए क्रोध का अभिनय करना।

(6) कथानक व अमूर्त विचारों द्वारा–काल्पनिक, पौराणिक कहानियों द्वारा सत्यवादी हरिश्चन्द्र की कथा की ओर संकेत करना।

उद्बोधन विधि प्रारम्भिक कक्षाओं में ही लाभदायक है। उच्च कक्षाओं में पर्याय, परिभाषा आदि बताने से काम चल जाता है।

प्रयत्न यही करना चाहिए कि अर्थ स्वयं बताने के बदले उद्बोधित किया जाए, क्योंकि उस दशा में उद्बोधित किया हुआ अर्थ शीघ्र स्मरण हो जाता है।

2. प्रवचन विधि (Telling Method)–यदि शब्द का अर्थ उद्बोधित न हो सके तो अध्यापक को चाहिए कि निम्न रीति से किसी एक रीति से स्वयं अर्थ बताए–

(1) पर्यायवाची शब्दों द्वारा–निर्यात, भाग्य, निशेश, चन्द्रमा, शशि आदि।

(2) कठिन शब्दों की परिभाषा देना, जैसे–मरु-भूमि = वह भूमि भाग जहां पानी न हो। इसी प्रकार 'पारस' आदि।

अर्थ विस्तार करके–जैसे कोल्हू का बैल = वह बैल जो कोल्हू में काम करे, परन्तु जैसे कोल्हू का बैल दिन रात काम करता है, वैसे ही यह मुहावरा उस व्यक्ति के लिए प्रयुक्त किया जाता है, जो दिन रात काम करे।

इसी प्रकार कलिंग का विजयी वीर–वह वीर जिसने कलिंग देश को जीता था, अर्थात् अशोक।

(4) अनुवाद करके–जैसे–

परमाणु बम = Atom Bomb चिकित्सालय = Hospital आदि

3. स्पष्टीकरण विधि (Elucidating Method)–उद्‌बोधन या किसी अन्य विधि द्वारा शब्दार्थ स्पष्ट न हो तो स्पष्टीकरण विधि अपनाई जा सकती है। इनमें नीचे दिये गये तरीके अपनाये जा सकते हैं।

(1) व्युत्पत्ति द्वारा–'विद्या' की व्युत्पत्ति 'विद्' धातु से, 'शिक्षा' की उत्पत्ति 'शस्' धातु से।

(2) तुलना द्वारा–शब्दों की तुलना करके पर्याय या विलोम शब्दों द्वारा अर्थ स्पष्ट किया जा सकता है, जैसे–कायर–वीर, दानी–कंजूस, वेदना–पीड़ा, विधि–रीति इत्यादि।

(3) प्रत्यय द्वारा–शब्दों के अंत में आने वाला शब्दांश प्रत्यय होता है। क्रिया के पश्चात् आने वाले शब्द कृत प्रत्यय हैं तथा संज्ञा एवं विशेषण शब्दों के अंत में आने वाले प्रत्यय तद्धित प्रत्यय हैं यथा पढ़ना से पढ़ाई कृत प्रत्यय, ओढ़ना से ओढ़नी तद्धित प्रत्यय।

(4) उपसर्ग द्वारा–उपसर्ग तीन प्रकार के हैं–

(क) संस्कृत उपसर्ग, जैसे–प्रति, अप, उप, परा, प्रति, सम आदि।

(ख) हिन्दी उपसर्ग, जैसे–अ, अन, कु, बिन आदि।

(ग) उर्दू उपसर्ग, जैसे–खुश, गैर, बद, हम आदि।

इन उपसर्गों का अर्थ समझाना चाहिए और इनके योग से धातु या संज्ञा के अर्थ में जो परिवर्तन हो जाता है उसका स्पष्टीकरण करना चाहिए।

(5) सन्धि तथा समास द्वारा निर्मित शब्द–जैसे रत्नाकर, पीताम्बर, महोत्सव, जन्मांतर, कर–कमल, दतचित्त आदि।

शब्द रचना को समझाने के उपरान्त कठिन शब्द के उपसर्ग, प्रत्यय, धातु आदि पृथक् करने चाहिएं और सन्धि–विच्छेद या विग्रह द्वारा संयुक्त शब्दों का विश्लेषण करना चाहिए। इससे शब्द रचना भी समझ में आती है और अर्थ का स्पष्टीकरण भी होता है।

शब्दों की व्याख्या के लिए सर्वप्रथम उद्‌बोधन विधि का सहारा लेना चाहिए, विशेष कर छोटी कक्षाओं में। इसके उपरान्त प्रवचन विधि और यदि प्रवचन विधि से अर्थ स्पष्ट न हो तो स्पष्टीकरण की उपरोक्त विधि अपनानी चाहिए।

विचार विश्लेषण
[Analysis of Thought]

वाचन और अर्थ निरूपण के बाद विचार–विश्लेषण का स्थान आता है। भाषा शिक्षण अथवा किसी भी पाठ के दो प्रधान उद्देश्य हैं–

1. भाषा के ज्ञान में वृद्धि होना।
2. विचार ग्रहण करना।

पहला उद्देश्य वाचन और व्याख्या से पूर्ण हो जाता है। विचार ग्रहण करने की क्षमता विचार–विश्लेषण के माध्यम से ही विकसित होती है। भिन्न–भिन्न प्रकार के पाठों में भिन्न–भिन्न प्रकार के विचार होते हैं। विचारों के विश्लेषण के लिए प्रश्नोत्तर, कथोपकथन, उदाहरण, प्रदर्शन, तुलना, दृष्टांत, जटिल विचारों का स्पष्टीकरण करना पड़ता है। वास्तव में विचार विश्लेषणात्मक प्रश्नों का बाहुल्य होता है। विषय से सम्बन्धित प्रश्न पूछ कर शिक्षक पूर्ण गद्यांश का विचार–विश्लेषण क्रमिक रूप से करता चलता है। विचार–विश्लेषण में अग्रलिखित बातों का ध्यान रखना पड़ता है–

1. जटिल भावों एवं विचारों का स्पष्टीकरण होना चाहिए। इसके लिए दृष्टांत, उदाहरण एवं प्रदर्शन आदि की सहायता लेनी चाहिए।
2. गद्यांश के विचारों के साथ छात्रों का तादात्म्य स्थापित किया जाना चाहिए।
3. छात्रों के पूर्व अनुभवों का नवीन अनुभवों के साथ सम्बन्ध जोड़ना मनोवैज्ञानिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।
4. लेखक के विचारों के साथ–साथ अपने विचारों का तादात्म्य स्थापित करना। छात्रों को इस योग्य बनाना कि वे लेखक के विचारों को भली–भांति समझ सकें।
5. लेखक का संक्षिप्त परिचय भी देना चाहिए। ऐसा करने से उसके विचारों को समझने में सहायता मिलती है।
6. विचार–विश्लेषण का अन्तिम सोपान है बोध परीक्षा। अध्यापक लेख सम्बन्धी प्रश्न पूछ कर इस बात की जांच कर सकता है कि छात्रों ने कितना कुछ समझ लिया है।

श्यामपट्ट कार्य (Black-board Work)–श्यामपट्ट अध्यापक का मित्र एवं सहायक होता है। हिन्दी शिक्षण में श्यामपट्ट बड़ा उपयोगी है। गद्य पाठ में इसकी उपयोगिता और भी बढ़ जाती है। जटिल वाक्यों को श्यामपट्ट पर लिखकर उनका अर्थ स्पष्ट कराया जा सकता है। इसके साथ ही समस्त भाषा कार्य सन्धि–विच्छेद, समास–विग्रह, प्रत्यय–उपसर्ग, पर्यायवाची शब्द आदि श्यामपट्ट की सहायता से सम्पादित किये जाते हैं। शब्दार्थ के स्पष्टीकरण में श्यामपट्ट सर्वाधिक सहायक है।

इसके अतिरिक्त परिभाषाओं तथा उदाहरणों आदि को भी श्यामपट्ट पर लिख देने से छात्रों को इनका स्पष्टीकरण हो जाता है।

छात्रों को भी श्यामपट्ट के प्रयोग के लिए उत्साहित किया जा सकता है, जैसे–वाक्य बनवाना, पर्यायवाची शब्द लिखना, किसी कठिन शब्द का अर्थ लिखना आदि इसके अन्तर्गत आ जाते हैं। निस्संदेह श्यामपट्ट एक बहुमूल्य एवं उपयोगी साधन है।

अर्थ ग्रहण परीक्षण (Testing of grasping of Meanings)–बच्चों ने भाग को किस सीमा तक सीखा है और पाठ की सामग्री को किस सीमा तक ग्रहण किया है, यह जानने के लिए उनसे बोध-परीक्षण हेतु प्रश्न पूछने चाहिए। बच्चों के उत्तरों को पूर्ण रूप में ग्रहण करना चाहिए।

कक्षा कार्य एवं निरीक्षण कार्य (Class work and Inspection Work)–ग्रहण-परीक्षण के पश्चात् छात्रों को आवश्यकतानुसार समय देकर श्यामपट सार को अपनी-अपनी अभ्यास पुस्तिकाओं में उतारने का अवसर देना चाहिए। अध्यापक को देखना चाहिए कि समस्त छात्र अपना कार्य स्वतन्त्रता एवं शुद्धता के साथ करते हैं। उसे यथासम्भव प्रत्येक छात्र के पास जाकर उनके लिखित कार्य का सुधार करना चाहिए।

जब सभी छात्र श्यामपट सार को अपनी पुस्तिकाओं में उतार चुकें तों अध्यापक को श्यामपट पर अंकित कार्य को मिटा देना चाहिए।

आवृत्यात्मक प्रश्न अन्तिमावृत्ति (Final Recapitution)–सभी अन्विंतियों में समन्वय करने के लिए सम्पूर्ण पाठ्यांश पर 4-5 प्रश्न ऐसे होने चाहिएं कि पूर्ण पठित अंश की आवृत्ति हो जाए।

आवृत्ति में कल्पना जागरण एवं भाषा कार्य भी होना चाहिए। पाठ के सारांश या पूर्ण पाठ की कुशलता और तार्किक क्षमता का पता आवृत्यात्मक शब्दों के माध्यम से लगाया जाता है। इस स्थल पर बच्चों से ऐसे प्रश्न पूछने चाहिए जिनसे यह ज्ञात हो सके कि पढ़ाये हुए पाठ का क्या प्रभाव पड़ा है, जैसे–

1. यदि अमुक स्थिति में तुम होते तो क्या करते?
2. अमुक घटना का उस पर क्या प्रभाव पड़ा होगा?
3. इस घटना से तुम को क्या शिक्षा मिलती है?

गृह कार्य (Home Work)–विचारों में अधिक परिपक्वता तथा लेखन सम्बन्धी सुधार के लिए गृह-कार्य अनिवार्य होता है। गृह-कार्य पाठ पर आधारित होना चाहिए। गृह कार्य सोच समझ कर देना चाहिए। सम्पूर्ण पाठ पढ़ा देने के पश्चात् विषय-सामग्री से सम्बन्धित घटना प्रश्न, चरित्र-चित्रण, लाभ हानि, मिलने वाली शिक्षा आदि लिखने को दिए जाने चाहिए।

बालकों की क्षमता, पाठांश, बच्चों के स्तर, घर पर मिलने वाले समय को ध्यान में देखते हुए कार्य देना चाहिए।

संस्कृत के गद्य का महत्त्व

'गद्यम् कवीनाम् निष्कषं वदन्ति' अर्थात् गद्य को कवियों की कसौटी कहा गया है। काव्यशास्त्र में जितना महत्त्व पद्य का है, उससे कहीं ज्यादा गद्य का है। संस्कृत साहित्य में गद्य का प्रयोग कब से प्रारम्भ हुआ, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। तैत्तिरीय

संहिता तक में हम गद्य का दर्शन कर सकते हैं। उपनिषदों में भी गद्य का भाग पद्य के भाग से अधिक है। इससे विदित होता है कि वैदिक काल में भी गद्य का प्रयोग होता था।

कविता में कवि अलंकार व पिंगल से बंधा रहता है, किन्तु अलंकार व पिंगल शैली भाषा के विकास में मार्गदर्शक का काम करते हैं। काव्य में कवि कोई भूल कर डालता है, तो यह कहकर उस भूल की उपेक्षा कर दी जाती है कि मात्राओं के बन्धन के कारण उसे ऐसा करना पड़ा, किन्तु गद्य में लेखक के लिए कोई बन्धन नहीं होता। इसीलिए उसे गद्य में बड़ी सावधानी बरतनी पड़ती है। दूसरी बात यह है कि अलंकार एवं पिंगल जैसे मार्गदर्शकों का भी अभाव रहता है, अत: कवि को अपनी शैली के विकास में व्यक्तिगत गुणों का भी आश्रय लेना पड़ता है। इसीलिए कहा जाता है कि गद्य कवियों की कसौटी है।

संस्कृत में गद्य में दण्डी, सुबन्धु और बाण के ग्रन्थ मुकटायमान हैं। इसके पूर्व के गद्य-काव्यों में शैली का यह विकास नहीं मिलता, जो कादम्बरी या दशकुमारचरित में दिखाई पड़ता है। दण्डी, सुबन्धु व बाण के ग्रन्थ नीरस गद्य ग्रन्थ न होकर गद्य-काव्य हैं और पाठक के मन को उतना ही आनन्द प्राप्त होता है, जितना उच्चकोटि के काव्य से।

संस्कृत गद्य एक गुथी हुई माला के मणियों के समान होता है। जिस प्रकार माला के मणियों में से एक मणि अलग हो जाने से माला ढीली पड़ जाती है, इसी प्रकार गद्य में भी शब्दों को उचित स्थान न देने पर भाव अस्पष्ट हो जाता है।

संस्कृत गद्य की विशेषताएं

संस्कृत गद्य महत्त्वपूर्ण है और इसकी निम्नलिखित प्रमुख विशेषताएं हैं–

1. समास बहुल शैली–समास का अर्थ है संक्षिप्त करना। संस्कृत गद्य की यही सबसे बड़ी विशेषता है कि जिस बात को हिन्दी और अंग्रेज़ी में बताने के लिए पृष्ठों की आवश्यकता होती है वही संस्कृत का एक वाक्य अथवा शब्द उस अर्थ को स्पष्ट करने में समर्थ होता है। समास को यदि संस्कृत-गद्य का प्राण कहा जाए तो अतिश्योक्ति नहीं होगी। समास-भूयस्त्वमेतद् गद्यस्य जीवितम्। इस शैली का प्रयोग हरिषेण की प्रयाग प्रशस्ति, बाणभट्ट, दण्डी और सुबन्धु की कृतियों में विशेष रूप से प्राप्त होता है।

2. गद्य एवं पद्य का मिश्रण–अन्य भाषाओं में गद्य और पद्य का प्रयोग अलग-अलग होता है, परन्तु संस्कृत में दोनों का ही प्रयोग एक साथ होता है। उपनिषदों में तो यह प्रवृत्ति विशेष रूप से विद्यमान है। अधिकांशत: गद्य साहित्य गद्य और पद्य मिश्रित रूप में ही मिलता है। हितोपदेश, पंचतंत्र, कथासरित्सागर, बेतालपंचविंशतिका, भोज-प्रबन्ध, शुकसप्तति, बृहत्कथामंजरी आदि गद्य पद्य मिश्रित शैली की रचनाएं हैं।

3. संस्कृत गद्य का रूप–संस्कृत गद्य को दो रूपों में विभक्त किया जा सकता है–

(1) कथा (2) आख्यायिका।

कथा कवि की कल्पना की उपज होती है और आख्यायिका में ऐतिहासिक तथ्य होता है तथा शैली आत्मकथा की भांति होती है।

4. विचार-विनिमय एवं सिद्धान्त वर्णन का उचित माध्यम–कोमल एवं दुरूह भावों को व्यक्त करने में जितनी शक्ति संस्कृत गद्य में उपलब्ध होती है उतनी अन्य भाषा में नहीं। गद्य-पद्य के माध्यम से कोमल और दार्शनिक दुरूह तथ्यों को अभिव्यक्त करने की क्षमता संस्कृत गद्य में ही विद्यमान है।

गद्य-शिक्षण की प्रक्रिया (सोपान)

गहन या सूक्ष्म अध्ययन के फलस्वरूप यह तो असम्भव है कि एक ही दिन में अथवा पीरियड में पूर्ण पाठ पढ़ा दिया जाए। इसलिये पाठ को आवश्यक अन्वितियों में विभाजित कर लेना चाहिए। गद्य-शिक्षण में सामान्यतया हरबार्ट (Herbart) के 'पंच पदों' (Herbartian Steps) का प्रयोग किया जाता है। फिर भी विभिन्न लेखकों ने इस सम्बन्ध में अलग-अलग सोपान निश्चित किये हैं। सुविधा के लिये हम इस प्रक्रिया का विवेचन निम्न प्रकार से कर सकते हैं–

1. प्रस्तावना
2. विषय प्रवेश
3. आत्मीकरण या तुलना
4. नियमीकरण
5. प्रयोग या व्यावहारिक जीवन से सम्बन्ध।

संक्षेप में इन्हें इस प्रकार भी स्पष्ट किया जा सकता है–

1. प्रस्तावना (Introduction)–प्रस्तावना का मुख्य उद्देश्य है–छात्रों में विषय के प्रति रुचि उत्पन्न करना। उन्हें अभीष्ट पाठ को पढ़ने के लिये उत्साहित एवं प्रेरित करना तथा उनमें जानने की जिज्ञासा पैदा करना।

प्रस्तावना में पूर्व ज्ञान परीक्षण के अन्तर्गत क्रमिक शृंखला द्वारा अंतिम प्रश्न ऐसा होना चाहिए जो पाठ के उद्देश्य कथन से सहज सम्बन्धित किया जा सके। प्रस्तावना के द्वारा पाठ रूपी भवन में प्रवेश किया जाता है। दूसरे शब्दों में छात्रों के पूर्व ज्ञान के आधार पर प्रस्तुत विषय के साथ सहज सम्बन्ध स्थापित किया जाता है।

प्रस्तावना अनेक प्रकार से सम्पादित हो सकती है, यथा–

(क) प्रश्नोत्तर प्रणाली द्वारा

(ख) लेखक के परिचय द्वारा

(ग) किसी घटना के वर्णन के द्वारा

(घ) शिक्षोपकरणों द्वारा तथा

(ङ) पूर्वकथन के द्वारा।

प्रस्तावना सरल, स्पष्ट, रुचिकर, छोटी तथा बच्चों के पूर्व ज्ञान पर आधारित होनी चाहिए। इसके लिये 5 मिनट का समय उपयुक्त माना गया है।

2. उद्देश्य कथन (Statement of the Aim)–प्रस्तावना का अन्तिम प्रश्न पाठ के उद्देश्य कथन से जुड़ा होना चाहिए। उद्देश्य कथन स्पष्ट, सटीक, संक्षिप्त और रोचक होना चाहिए। पाठ का शीर्षक एवं पृष्ठ संख्या भी बता देनी चाहिए जिससे बच्चे सरलता से पाठ को निकाल सकें और पढ़ने के लिये तैयार हो जाएं।

3. विषय प्रवेश–प्रस्तुतिकरण (Presentation)–बच्चों की बोध क्षमता अपेक्षाकृत कम होती है। इसलिये सम्पूर्ण पाठ को एक साथ पढ़ाना अमनोवैज्ञानिक है। अत: आवश्यक हो जाता है कि पाठ्यांश को भाव एवं अनुच्छेदों के अनुसार अन्वितियों (इकाइयों) में बांट लिया जाए और एक-एक अन्विति को छात्रों के सम्मुख शृंखलाबद्ध रूप से क्रमश: उपस्थित किया जाए। विशेष परिस्थितियों में दो से अधिक अन्वितियां भी की जा सकती हैं।

4. वाचन (Reading)–किसी भी गद्यांश का पहले वाचन कराया जाता है। वाचन की क्रिया में पर्याप्त सावधानी की अपेक्षा की जाती है। वाचन क्रिया के तीन सोपान हैं–

अध्यापक द्वारा आदर्श पाठ (Model Reading by the Teacher)–आदर्श वाचन विद्यार्थियों के समक्ष एक आदर्श उपस्थित करने की दृष्टि से किया जाता है, जिसका अनुकरण करके विद्यार्थी अपने वाचन में सुधार कर सकें। इसलिये अध्यापक को उचित हाव-भाव, आरोह-अवरोह के साथ उच्चारण का ध्यान रखते हुए आदर्श वाचन प्रस्तुत करना चाहिए।

आदर्श पाठ की उपयोगिता (Utility of model Reading)–

(1) आदर्श पाठ के बिना गद्यांश विद्योर्थियों के लिये अपरिचित रहता है। आदर्श पाठ से कक्षा में जीवन आ जाता है। बच्चों का साहस बढ़ता है और पाठ में रुचि जागृत होती है।

(2) आदर्श वाचन के उपरान्त छात्रों द्वारा उच्चारण की अशुद्धि की सम्भावना कम रहती है।

(3) प्रभावशाली आदर्श पठन से पद्य का सारा और गद्य का आधा भाव समझ आ जाता है, अत: आदर्श पठन से ही पाठ का आरम्भ करना चाहिए।

(4) विद्यार्थी आदर्श वाचन का ही अनुकरण करते हुए उच्चारण स्वर, लय, गति, यति आदि सीख सकते हैं। जिस प्रवाह के साथ अध्यापक बोलता है, छात्र उसी उत्साह के साथ बोलने का प्रयास करेंगे।

चैम्पियन (Champion) ने आदर्श पाठ को निम्न उद्देश्यों से प्रेरित होकर पढ़ने को कहा है–

"आदर्श रूप में शिक्षक को पाठ के आरम्भ से ही पढ़ना चाहिये, और उसका उद्देश्य यह हो कि विद्यार्थी गद्यांश का सामान्य प्रवाह तथा उद्देश्य समझ जायें।"

विशेष–गद्य का पठन करते समय अध्यापक को बाएं हाथ में पुस्तक पकड़नी चाहिए और दायां हाथ स्वतंत्र रखना चाहिए। खड़े होने का आसन एकदम सीधा हो। सीमित अंग संचालन द्वारा स्वाभाविकता लाने का प्रयत्न करना चाहिए। अध्यापक की मुख-मुद्रा प्रफुल्लित रहे और पठन करते समय उस पर उसके भाव स्पष्ट परिलक्षित हों।

एक समस्या (A Problem)–यहां एक समस्या उपस्थित होती है और वह यह कि जिस समय अध्यापक आदर्श वाचन करता है उस समय बच्चे अपनी पुस्तकों को खोलें या नहीं। इस विषय में कुछ शिक्षा विशारदों का कहना है कि छात्रों को पुस्तक बंद करके अध्यापक की ओर देखना चाहिए।

दूसरी ओर कुछ शिक्षा विशारद इस पक्ष में हैं कि जब अध्यापक आदर्श वाचन करे उस समय बच्चों की पुस्तकें खुली होनी चाहिए और उन्हें उन पुस्तकों की ओर देखना चाहिए।

दोनों पक्षों की ओर से अपने-अपने मत में अनेक बातें कही गई हैं। दोनों का समन्वित रूप ही प्रस्तुत किया जाता है।

समन्वय (Eclectism)–उद्देश्य कथन के साथ पुस्तकें खुलवा देनी चाहिएं और छात्रों को उचित आसन (Posture) में बैठाकर पुस्तक एवं अध्यापक दोनों की ओर देखने के लिए स्वतन्त्र छोड़ देना चाहिए। मनुष्य मात्र की देखने की गति पढ़ने अथवा उच्चारण की गति से अधिक होती है। शब्द और उनके उच्चारण में साहचर्य स्थापित करना चाहिए। इससे बच्चों की जिज्ञासा भी शांत होती है और कक्षा में जीवन भी रहता है।

अध्यापक का आदर्श वाचन यदि भावानुसार प्रभावशाली ढंग से होता है तो छात्र स्वत: ही अध्यापक की ओर देखते हैं। अत: इस ओर अध्यापकों को समन्वय का दृष्टिकोण ही अपनाना चाहिए।

अनुकरण पाठ का उद्देश्य होता है–बच्चों को पाठन-कला में निपुण करना, उनका उच्चारण शुद्ध करना और उनकी झिझक दूर करके उन्हें साहसी वक्ता बनाना। आदर्श वाचन (पठन) के उपरान्त अध्यापक को विद्यार्थियों से वाचन करवाना चाहिए। उसके लिए एक छात्र से एक ही वाचन करवाना पर्याप्त नहीं, चार-पांच विद्यार्थियों से एक-एक करके व्यक्तिगत रूप से वाचन करवाना चाहिए। प्रारम्भ में कक्षा के अच्छे पाठकों को अवसर देना चाहिए और फिर पिछड़े बच्चों को आगे लाना चाहिए।

वाचन करते समय छात्रों को बीच में टोकना उचित नहीं। जो कुछ आदेश देने हों वे पठन से पूर्ण अथवा बाद में देने चाहिएं।

प्रत्येक छात्र जहां-जहां अशुद्ध बोले, वहां अन्य छात्रों से अथवा स्वयं उसे ठीक करवाना चाहिए। इसमें पूर्ण सावधानी से काम लेना चाहिए।

जिस समय छात्र अनुकरण पठन करें उस समय अध्यापक को सम्पूर्ण कक्षा की ओर देखते रहना चाहिए। जिससे सभी अन्य छात्र अपनी-अपनी पुस्तकें देखें और समझने का प्रयत्न करें। इससे कक्षा में अनुशासन भी बना रहता है।

विद्यार्थियों द्वारा मौन वाचन
[Silent Reading by The Students]

अनुकरण पाठ के बाद छात्रों को मौन वाचन का अवसर देना चाहिए। मौन वाचन के समय छात्र गद्यांश का वाचन मौन रूप से करते हैं। उसके भावों को ग्रहण करते हैं। मौन वाचन से पूर्व कठिन शब्दों एवं भावों का स्पष्टीकरण हो जाना चाहिए ताकि छात्र गद्यांश का भाव आसानी से ग्रहण कर सकें। इससे बोध परीक्षा का काम सरल हो जाता है।

मौन वाचन भी एक कला है। इसलिए छात्रों को मौन वाचन की शिक्षा देना भी गद्य-पाठ के उद्देश्यों के अन्तर्गत है। 10-11 वर्ष से कम आयु के बच्चों से मौन-पाठ करवाना सम्भव नहीं होता। इसलिए मौन वाचन कक्षा 6 से ही सम्पादित किया जाना चाहिए। कुछ विद्वानों ने व्याख्या के बाद मौन वाचन कराना ठीक समझा है।

मौन रूप से पढ़ाने के अन्तर्गत कई उद्देश्य निहित हैं–

1. छात्रों को त्वरित (तेज़) गति से पढ़ना सिखाया जाए।
2. मौन रह कर पढ़ते हुए भी वे विचार करना सीख सकें।
3. बालक गद्यांश का केन्द्रीय भाव समझ सकें।
4. बोध गम्यता के लिए मौन वाचन आवश्यक है।
5. मौन वाचन से समस्त छात्रों को एक साथ पढ़ने का अवसर प्रदान करना।

जिस समय बच्चे मौन वाचन कर रहे हों उस समय अध्यापक उनको मौन वाचन की उपयुक्त विधि बता सकता है, छात्रों की वैयक्तिक समस्या का समाधान कर सकता है, कक्षा में लिखित शब्दों का निरीक्षण कर सकता है इत्यादि। उसे सम्पूर्ण कक्षा पर दृष्टि रखनी चाहिए।

अंत में इतना कहना उपयुक्त होगा कि मौन वाचन से त्वरित गति और भावों को ग्रहण करना सरल हो जाता है।

अध्यापक द्वारा आदर्श पाठ, तत्पश्चात् विद्यार्थियों द्वारा सस्वर एवं मौन-पाठ से वाचन क्रम समाप्त हो जाता है। वाचन के बाद व्याख्या की बारी आती है।

संस्कृत गद्य में छात्रों की रुचि उत्पन्न करने के उपाय

संस्कृत हो या अंग्रेज़ी, फ्रैंच आदि मातृभाषा से अतिरिक्त कोई भी भाषा हो उसे सीखना और लिखना उबाऊ तो नहीं, हां कठिन साध्य अवश्य होते हैं, क्योंकि मातृभाषा मां के स्तनपान के साथ बालक के हृदय में प्रवेश करती जाती है, जबकि अन्य भाषा को बालक को प्रयत्न सहित सीखना पड़ता है।

संस्कृत चूंकि नियमों में भी आबद्ध है, अतः इसे सीखने में बालक को थोड़ा श्रम पड़ता है, फिर भी अनेक ऐसे उपाय हैं, जिनको अगर प्रयोग में लाया जाए तो संस्कृत शिक्षण को रोचक बनाया जा सकता है।

संस्कृत गद्य शिक्षण को रोचक बनाने के उपाय–

1. प्रारम्भिक स्तर पर अति सरल मातृभाषा से साम्य रखने वाले अनुच्छेदों तथा श्लोकों का अध्ययन कराया जाए, ताकि बालकों को संस्कृत कठिन न लगे।
2. उन्हीं धातुओं का शिक्षण किया जाए, जो अति सरल हों।
3. कक्षा 6, 7, 8 में क्रमशः एकवचन, द्विवचन तथा बहुवचन का ही ज्ञान कराया जाए, क्योंकि संस्कृत में जब तीनों वचन एक साथ आते हैं, तो बालकों के मस्तिष्क में इनका भय बैठता है। अतः प्रारम्भिक कक्षाओं में अलग-अलग वचनों का ज्ञान कराके फिर कक्षा-9 में सब एक साथ पढ़ाए जाएं।
4. छोटे-छोटे संवाद कण्ठस्थ करने को दिए जाएं तथा उनका अभिनय कराया जाए।
5. कक्षानुसार सरल से कठिन की ओर ध्यान रखते हुए सुभाषितों तथा लोकोक्तियों को कंठस्थ कराया जाए तथा उनका प्रयोग मातृभाषा के प्रयोग में आवश्यक रूप से कराया जाए, ताकि बालक समझे कि संस्कृत भाषा के प्रयोग से हमारी मातृभाषा भी अधिक समृद्ध बनती है।
6. कक्षा 6, 7, 8 में तो अत्यधिक सरल व्याकरण का ही ज्ञान कराया जाए, जो मातृभाषा जैसी हो, लेकिन कक्षा-9 से पाठ्यक्रम में व्याकरण अधिक और गद्य, पद्य तथा कथा साहित्य क्रमशः दिए जाएं; क्योंकि बालक अनुच्छेदों, पद्यों तथा संवादों आदि के अर्थों को रटकर अच्छे प्राप्तांक प्राप्त कर लेते हैं, अतः व्याकरण में रुचि नहीं होती है।
7. परीक्षा में भी कक्षा-9 से व्याकरण पर आधारित प्रश्न प्रमुखता से पूछे जाने चाहिए।
8. कक्षा में अन्ताक्षरी का खेल कराया जाए, चाहे तो यह अन्त्याक्षरी शब्दों पर आधारित हो या श्लोकों पर आधारित हो।

9. संस्कृत साहित्यकारों में सम्बन्धित उत्सव मनाए जाएं, उनमें बच्चों जैसी ही वेशभूषा तथा वैसा ही आचरण करने को कहा जाए।
10. बच्चों को रुचियों के अनुसार कवियों की कलाकृतियों में से संग्रह करने को प्रेरित किया जाए।
11. मातृभाषा में रचना कराते समय संस्कृत उदाहरणों के प्रयोग पर बल दिया जाए।
12. गीता आदि का सामूहिक वाचन हो।
13. परीक्षा परिणाम के समय श्रेणी-निर्धारण में संस्कृत के प्राप्तांकों को जोड़ा जाए।
14. दृश्य-श्रव्य सामग्री का प्रयोग किया जाए।
15. संस्कृत विषय का प्रतिदिन कालांश हो।

शिक्षण क्रम–उपर्युक्त दृष्टि से गद्य-पाठ की पाठ योजना की रूप-रेखा एवं उसके शिक्षण का क्रम निम्नलिखित होगा–

1. सामान्य प्रारम्भिक बातें यथा–दिनांक, कक्षा, कालांश, अवधि, विषय शीर्षक।
2. सामान्य उद्देश्य
3. विशिष्ट उद्देश्य
4. सहायक सामग्री
5. पूर्व-ज्ञान
6. प्रस्तावना
7. उद्देश्य-कथन
8. विषयोपस्थापन–
   (1) पाठ्य-सामग्री (अन्विति का उल्लेख)
   (2) शिक्षक द्वारा आदर्श वाचन
   (3) सन्धि-विच्छेद, कठिन शब्दोच्चारण, अनुवाचन
   (4) छात्रों द्वारा अनुकरण वाचन
   (5) बोध-परीक्षा
9. विस्तृत व्याख्या
   (1) समास-विग्रह
   (2) पदार्थ-कथन
   (3) मौन वाचन

(4) विचार-विश्लेषणात्मक प्रश्न

(5) शिक्षक द्वारा स्पष्टीकरण

10. सस्वर वाचन-शिक्षक अथवा छात्रों द्वारा

11. पुनरावृत्ति

12. प्रयोग-

(1) कक्षा-कार्य

(2) गृह-कार्य

गद्य-पाठ योजना-1

विद्यालय का नाम-..... दिनांक-.....

अध्यापक का नाम-..... कक्षा-.....

विषय-संस्कृत गद्य अवधि-40 मिनट

शीर्षक-भारतस्य राष्ट्र-ध्वज: कालांश-प्रथम:

सामान्य उद्देश्य-

1. छात्रों को गद्यांश के अर्थ तथा भाव भली-भांति समझाकर उन्हें अपने भाव व्यक्त करने की क्षमता प्रदान करना।
2. लेखक के भावों एवं विचारों के अनुसार गद्यांश का वाचन करने की योग्यता प्रदान करना।
3. छात्रों के सूक्ति-भण्डार एवं शब्द-भण्डार में वृद्धि करना।
4. छात्रों को विविध विषयों का ज्ञान प्राप्त कर उन्हें बहुज्ञ बनाना।
5. उन्हें विविध गद्य-शैलियों का परिचय प्रदान करना।
6. उनमें कल्पना तथा विचार-शक्ति का विकास करना।
7. व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करने में उन्हें सहायता देना।
8. पाठगत आदर्शों से प्रेरणा लेकर, छात्रों को अपने चरित्र निर्माण के योग्य बनाना।
9. संस्कृत भाषा के प्रति उनमें अनुराग उत्पन्न करना।
10. छात्रों की रचनात्मक प्रवृत्ति को प्रोत्साहन देना।

विशिष्ट उद्देश्य-(1) छात्रों को राष्ट्र-ध्वज को गौरव व महत्त्व से परिचित कराना।

(2) उन्हें राष्ट्र-ध्वज के तीनों रंगों और चक्र चिन्ह के रहस्य से अवगत कराना।

सहायक सामग्री-(1) तिरंगा-ध्वज तथा तिलक, मालवीय और गाँधी जी के चित्र।

(2) लपेट श्यामपट पर लिखित उच्चारणाभ्यास हेतु कठिन पद।

(3) अन्य कक्षोपयोगी सामान्य उपकरण, चॉक इत्यादि।

पूर्व-ज्ञान-(1) छात्र अपने राष्ट्र के ध्वज के नाम व रूप-रंग आदि से भली-भांति अवगत हैं।

(2) छात्र स्वतन्त्र भारत में राष्ट्र-ध्वज के प्रति सम्मान की भावना का महत्त्व वे जानते हैं।

प्रस्तावना-(1) भारत का स्वतन्त्रता दिवस कौन-सा है?

(2) 15 अगस्त, 1947 को भारतवर्ष ने किन लोगों की दासता से मुक्ति प्राप्त की थी।

(3) स्वतन्त्र भारत के प्रथम प्रधानमन्त्री कौन थे?

(4) हमारे देश के वर्तमान प्रधानमंत्री कौन हैं?

(5) स्वतन्त्रता-दिवस को प्रधानमंत्री किस स्थान पर ध्वजारोहण करते हैं?

(6) हमारे देश की इस ध्वजा का क्या नाम है?

उद्देश्य कथन-प्रत्येक राष्ट्र की नीतियां, आचार-विचार और जीवन-शैलियां दूसरे राष्ट्र से भिन्न होती हैं। इसी भिन्नता के कारण हर एक राष्ट्र का ध्वज, राष्ट्र-गीत व राष्ट्र-चिह्न भी दूसरों से पृथक होते हैं। भारत ने भी स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् अपने ध्वज तिरंगा को गर्व के साथ उन्मुख आकाश में फहराया। आज हम अपने राष्ट्र के इसी गौरवमय चिह्न तिरंगा-ध्वज की विशेषताओं का अध्ययन करेंगे।

विषय-वस्तु-जयति राष्ट्र-ध्वज: स्वतन्त्र-भारतस्य। अस्मिंस्त्रयोरागा: विराजन्त, हरित: शुक्ल: केसरश्च। ते तथाक्रमम् भारतस्य तम:-सत्त्व-रज:सु त्रिष्वपि मायागुणेषु विजयं सूचयन्ति। शुक्ले रागेऽकित चक्रञ्च भारतस्य शीलशालिषु राष्ट्रेषु चक्रवर्तिनं इव प्रधानतां निवेदयति।

अस्मिन् ध्वजे स्थिता रागा: परस्परस्य शोभा बर्धयन्ति, ते शिक्षायन्ति भारतीयान् यूयमपि वयमिवान्योन्य: शोभां समेधयन्तो बन्धुभावेनात्र वसंत। यथात्र शुक्लं रागं नील-रक्तौ न रञ्जयत: नीलश्चरक्ते न मलिनयति, तथा अस्मास्वपि कश्चित् केनचित् सम्भूय वा एकाकी या कञ्चनान्यं नाच्छादयेत् न बाधेत। सर्वेऽपि स्वस्य-धर्मे स्थिरा: सन्तो जीवेयु:।

अस्यैव त्रिरागस्य ध्वजस्यच्छायायाम् अस्माकं पूर्व-जैस्तिलक-मालवीय-गांधि-प्रभृतिभिर्नेतृभि: सत्यम-अहिंसाञ्चावलब्य स्वातन्त्र्यं प्राप्तम्। इयं स्वतन्त्रता आस्माभि: अगस्तमासस्य पञ्चशतारिकायो सप्तचत्वारिंशदधिक-एकोनविंशतिशतत मे खिष्टाब्दे प्राप्ता। अस्मिन्नेव दिने अयम् राष्ट्र-ध्वज: विवताकाशे स्वतन्त्र-भारतस्य सर्वप्रथम तरंगितोऽभवत्। अस्माभिरस्य गौरवं प्राणपणेनापि सदा रक्षणीयम्।

विषयोपस्थापन-पाठ को निम्नलिखित अन्विति-द्वय में विभक्त कर पढ़ाया जाएगा-

1. जयति राष्ट्र-ध्वज: ..... जीवेयु।
2. अस्यैव त्रिरागस्य ..... रक्षणीयम्।

आदर्श वाचन–शिक्षक द्वारा–प्रथमान्विति का।

काठिन्य निवारण–अध्यापक द्वारा निम्नलिखित पदों का उच्चारण-सम्बोधन को कराया जाएगा एवं सन्धि-विच्छेद पूछा जाएगा–

(1) अस्मिंस्त्र्यो, (2) त्रिष्वपि, (3) रागेऽकिंतम्, (4) वयमि वाच्योऽनयो (5) बन्धुभावेनात्र, (6) अस्मास्वपि, (7) कञ्चनान्यम्।

अनुकरण वाचन–कतिपय छात्रों द्वारा।

बोध-परीक्षा प्रश्न–

1. तिरंगा-ध्वज में कौन-कौन से तीन रंग होते हैं?
2. चक्र का चिन्ह किस रंग में होता है?
3. ये रंग किसकी शोभा बढ़ाते हैं?

विस्तृत व्याख्या–अध्यापक निम्नांकित पदों का अर्थ, विविध युक्तियों से पूछे तथा आवश्यक व्याख्या करेगा–

पद	अर्थ	प्रणाली
1. शुक्लः	श्वेत, सफेद	वाक्य-प्रयोग द्वारा- "शंखः शुक्लः भवति"
2. यथाक्रमम्	क्रम के अनुसार	समास-विग्रह द्वारा-क्र अनितिक्रम्य-अव्ययी
3. तमः सत्त्व-रजः सु मायागुणेषु	माया के गुणों-तम, सत्त्व और रज में	व्याख्या द्वारा
4. शीलशालिषु	गुणवानों में	पद-विश्लेषण द्वारा शील शब्द का अर्थ पूछ
5. चक्रवर्तिन इव	प्रधान सम्राट् की	अर्थ-कथन द्वारा
6. समेधयन्तः	तरह बढ़ाते हुए	प्रत्यय द्वारा- सम् + एध + शतृ
7. यथात्र	जैसे-यहां उदाहरण के लिए	सन्धि विच्छेद द्वारा
8. सम्भूय	संगठित होकर	प्रत्यय द्वारा सम् + भू + ल्यप्
9. नाच्छादयेत्	नहीं ढकना चाहिए	सन्धि-विच्छेद द्वारा- न + आच्छादयेत
10. बाधेत	कष्ट देना चाहिए	अर्थ-कथन द्वारा

मौन वाचन–छात्रों द्वारा।

विचार-विश्लेषणात्मक प्रश्न–

1. इस पाठ में किस देश के राष्ट्र-ध्वज की लेखक चर्चा कर रहा है?
2. किसकी जय हो?
3. इस तिरंगा-ध्वज में कितने रंग विराजते हैं?
4. वे रंग क्रमशः कौन-कौन से हैं?
5. हरा रंग किस गुण का प्रतीक है?
6. श्वेत रंग किस गुण का प्रतीक है?
7. केसरिया रंग किस गुण का प्रतीक है?
8. ये रंग इन मायागुणों पर किस बात को सूचित करते हैं?
9. चक्र का चिन्ह किस रंग में अंकित है?
10. चक्र भारत की किस प्रकार के राष्ट्रों में प्रधानता को सूचित करता है?
11. चक्र भारत की अन्य राष्ट्रों में किसके समान प्रधानता को बताता है?
12. इस ध्वज में स्थित रंग परस्पर क्या करते हैं?
13. वे किसको शिक्षा देते हैं?
14. वे भारतीयों को क्या शिक्षा देते हैं?
15. तिरंगा-ध्वज में शुक्ल रंग किसको प्रभावित नहीं करता?
16. नीला रंग किस-किस को मलिन नहीं बनाता?
17. उसी प्रकार हममें से भी कोई किस प्रकार दूसरे के साथ व्यवहार न करे?
18. सभी किस प्रकार जीवित रहें?

आदर्श वाचन–द्वितीय अन्विति का शिक्षक द्वारा।

उच्चारणाभ्यास–अध्यापक निम्नलिखित पदों का छात्रों से उच्चारण पूछेगा और शुद्धोच्चारण का अभ्यास करायेगा–

(1) त्रिरागस्य, (2) गान्धि-प्रभृतृभिः नेतृभिः, (3) अहिंसा-ञ्चावलम्ब्यः, (4) सप्तचत्वारिंशदधिक-एकोनविंशतिशततमे, (5) तरंगितोऽभवत्।

अनुकरण वाचन–कतिपय छात्रों द्वारा।

विस्तृत व्याख्या–अध्यापक विविध युक्तियों द्वारा निम्नलिखित पदों का अर्थ पूछेगा तथा यथावश्यक स्वयं व्याख्या करेगा–

पद	अर्थ	प्रणाली
1. प्रभृतिभिः	इत्यादि के द्वारा	वाक्य-प्रयोग द्वारा- 'मोहन सोहन नन्दन- प्रभृतयः छात्राः अत्र तिष्ठन्ति।'

2. चावलम्ब्य	और, सहारा लेकर	सन्धि-विच्छेद एवं व्युत्पत्ति द्वारा-च + अवलम्ब्य, अव + लम्ब् + ल्यप्।
3. पञ्चदशतारिकायाम्	पन्द्रह तारीख को	वाक्य-प्रयोग द्वारा-अद्य मासस्य पञ्चतारिका अस्ति।
4. सप्तचत्वारिकदधिक एकोनविंशतिशततमे	सन् 1947 में	पदार्थ-कथन द्वारा
5. विततेाकाशे	विस्तृत विशाल आकाश में	सन्धि-विच्छेद द्वारा-विवत+आकाशे
6. गौरवम्	महत्त्व को	पर्याय-कथन द्वारा महत्त्वम्
7. प्राणपणेनापि	प्राणों की बाजी लगाकर	समास-विग्रह द्वारा-प्राणस्य पणेनापि षष्ठी तत्पुरुष
8. रक्षणीयम्	रक्षा करनी चाहिए	व्युत्पत्ति द्वारा रक्ष + अनीयर्

मौन वाचन–छात्रों द्वारा।

विचार-विश्लेषण प्रश्न–

1. इस तिरंगा-ध्वज की छाया में हमारे कौन-कौन से नेता रहे थे?
2. उन नेताओं ने किसका सहारा लेकर स्वतन्त्रता को प्राप्त किया था?
3. यह स्वतन्त्रता हमारे द्वारा कब प्राप्त की गई थी?
4. 15 अगस्त, 1947 को यह राष्ट्र-ध्वज कहां लहराने लगा था?
5. हमारे द्वारा सदा किसकी रक्षा की जानी चाहिए?
6. हमारे द्वारा सदैव इस ध्वज के गौरव की किस प्रकार रक्षा करनी चाहिए?

सस्वर वाचन–शिक्षक द्वारा दोनों अन्वितियों का।

आवृत्त्यात्मक–

1. स्वतन्त्र-भारतस्य राष्ट्र-ध्वजे कति रागाः सन्ति?
2. त्रिराग-ध्वजे के रागाः सन्ति?
3. शुक्ले रागे किम् अंकितं अस्ति?
4. ते रागाः अस्मान् कथं शिक्षयन्ति?
5. अस्माभिः अस्य ध्वजस्य रक्ष कथं करणीया?

गृह कार्य–सम्पूर्ण पाठ का हिन्दी भाषा में अर्थ लिखिए।

गद्य-पाठ योजना–2

विद्यालय का नाम–..... **दिनांक**–.....

अध्यापक का नाम–..... **अवधि**–40 मिनट

कक्षा–10, **वर्ग**–ख **कालांश**–प्रथम

विषय–संस्कृत गद्य **शीर्षक**–कामराज-योजना

सामान्य उद्देश्य–

(1) छात्रों को इस योग्य बनाना कि वे पाठगत ध्वनियों, शब्दों एवं वाक्यों का शुद्ध उच्चारण कर सकें।

(2) वे पाठगत भावों एवं विचारों को ग्रहण कर सकें।

(3) संस्कृति के प्रति उनमें अनुराग उत्पन्न हो सके।

(4) छात्रों के सूक्ति-भण्डार एवं शब्द-भण्डार में वृद्धि हो सके।

(5) उन्हें इस योग्य बनाना कि वे पाठगत आदर्शों से प्रेरणा लेकर अपने चरित्र का निर्माण कर सकें।

विशिष्ट उद्देश्य–

(1) छात्रों को 'कामराज योजना' नामक पाठ में निहित त्याग-भावना से परिचित कराना।

(2) उनके शब्द-भण्डार में स्वातंत्र्योत्तरकाले, राजनीति विशारदानां, सम्प्रति, अपसार्य, कायाकल्पं, मद्रप्रदेश, मोचयित्वा, संगठनम् आदि शब्दों की अभिवृद्धि करना।

सहायक सामग्री–श्रीमती इन्दिरा गाँधी का एक चित्र।

पूर्व ज्ञान–छात्र जानते हैं कि भारत की भूतपूर्व प्रधानमंत्री स्व. श्रीमती इन्दिरा गाँधी हैं।

प्रस्तावना–(चित्रं दर्शयित्वा)

(1) कस्या चित्रमिदम्?

(2) सा इदानीं किं सुशोभितं करोति?

(3) केन राजनीतिकदलेन सा सम्बद्धास्ति?

(4) सम्प्रति किं राजनीतिकसंगठनम् शासनारूढं वर्तते?

उद्देश्य कथन–एतस्य कांग्रेससंगठनस्य शुद्धीकरणाय कामराज-योजना प्रादुर्भूता। अद्य वयं तां योजनां पठिष्यामः, द्रक्ष्याम च तस्याः स्वरूपं क्रिया-पद्धति च।

विषयोपस्थापन–स्वातंत्र्योत्तरकाले भारते घटितासु निखिलासु घटनासु यैका घटना देशीयानां विदेशीयानां च राजनीतिविशारदानां प्रमुखविचारकाणां मानसम् आश्चर्यमहासागरे

न्यमज्जयत् सा खलु कामराजयोजनाख्यया सम्प्रति प्रसिद्धा वर्तते। इयं हि योजना कांग्रेसस्य समागता: त्रुटी: अपसार्य तस्य कायाकल्पं कर्तुमीहमानेन तत्कालीनमद्रप्रदेशीयमुख्यमन्त्रि भूतपूर्व कांग्रेसाध्यक्षेण तत्र-भवता कामराजनाकारमहो दयेन भारतीयकांग्रेसस्य प्रस्तुता सा च तत्क्षणमेव स्वीकृता-जाता। अयं खलु विचार: चिरकालादेव बहुचर्चित आसीद् यत् देशहितायं कांग्रेसस्य शुद्धीकरणमावश्यकस्ति। सोऽयं विचार, अस्या: योजनाया रूपेण मूर्त्तोजात:। अस्या: योजनाया आसीदिदमेव प्रमुखउद्देश्यं त् कांग्रेसस्य संगठने चेत्युभयो: पक्षयो: उचित सामंजस्य भवेत्। अद्यावधि योग्यनेतृणाम् कृते आकर्षकं प्रशासनमेवासीत् येन संगठनं शून्यं निर्जीवमिव चाभवत्। एतेन संगठनमुद्धर्तुकामै: कामराजप्रसतावस्य भूरि समादर: अभवत्। बहव: नेतार: स्व पदं त्यक्तु मैच्छन्।

तत्कालीनप्रधानमन्त्रिणा पंडित जवाहरलाल नेहरू महोदयेन तत्र दादशा: योग्य: नेतार: प्रशासनातु मोचयित्वा संगठनाय निर्वाचिता: येषु योजनाया: प्रस्तावक: कामराज-महोदयोऽप्यासीत्। संसारस्य कृते इयमतीव आश्चर्यकारिणी घटना आसीत्। यत्र: साम्प्रतिके युगे स्वार्थ परित्यज्य परोपकाराय कार्य कर्तुकोऽपि नेच्छति, विशेषत: नेतार: परन्तु अस्मि विपरीतमेव अभवत्। इयं योजना स्वकीये लक्ष्ये कियती सफलता लप्स्यते इति आगामी काल एवं कथयिष्यति। कतिपय विदुषाम् मतानुसारेण इयं योजना निरर्थका मृतप्राया व वर्तते, यत: केचित् नेतार: पदलोलुपतां त्युक्तु मसमर्था: सन्ति।

सुविधा की दृष्टि से आज के पाठ को दो अन्वितियों में विभक्त किया गया है-

प्रथमान्विति-

''स्वान्त्र्योत्तर काले ..... त्यक्तु मैच्छन्।''

आदर्श वाचन-अध्यापक प्रथम अन्विति का सस्वर वाचन करेगा।

सन्धि-विच्छेद-

स्वातन्त्र्योत्तर काले	=	स्वातन्त्र्य + उत्तरकाले
यैका	=	या + एका
कामराजयोजनाख्यया	=	कामराज-योजना + आख्यया
कर्तुमीहमानेन	=	कुर्तुम् + ईहमानेन
कांग्रेससाध्यक्षेण	=	कांग्रेस + अध्यक्षेण
तत्क्षणमेव	=	तत्क्षणम् + एव
चिरकालादेव	=	चिरकालात् + एव
शुद्धीकरणमावश्यकमस्ति	=	शुद्धीकरणम् + आवश्यकम् + अस्ति
सोऽयं	=	स + अयं
आसीदिदमेव	=	आसीत् + इयम् + एव
प्रमुखउद्देश्यम्	=	प्रमुखम् + उद्देश्यम्

चेत्युभयो:	=	च + इति + उभयो:
अद्यावधि	=	अद्य + अवधि
प्रशासनमेवासीत्	=	प्रशासनम् + एव + आसीत्
निर्जीवमिव	=	निर्जीवम् + इव
चाभवत	=	च + अभवत्
संगठनमुद्धर्तुकामै:	=	संगठनम् + उद्धर्तुकामै:
त्यक्तु मैच्छन्	=	त्यक्तुम् + ऐच्छन्

उच्चारणाभ्यास-उपर्युक्त शब्दों को एक-एक करके अध्यापक पूछता जाएगा और श्यामपट पर लिखते हुए बोलता जाएगा तथा छात्रों से इनके उच्चारण का अभ्यास करता जाएगा।

अनुवाचन-अध्यापक एक वाक्य बोलेगा और अनुशासित ढंग से समस्त छात्र धीरे-से उस वाक्य का उच्चारण करेंगे।

पुन: आदर्श वाचन-अध्यापक द्वारा।

अनुकरण वाचन-कतिपय छात्र गद्यांश का स्वर वाचन करेंगे।

बोध परीक्षा-1. प्रस्तुत गद्यांश में किस योजना का वर्णन किया गया है?

2. इसे कामराज-योजना क्यों कहते हैं?

विस्तृत व्याख्या

समास-विग्रह-

कामराज योजना	=	कामराजस्य योजना
कांग्रेसदले	=	कांग्रेसाख्ये दले इति कांग्रेसदले
कायाकल्पम्	=	कायाया: कल्पम्
देशहिताय	=	देशस्य हिताय
योग्यनेतृणाम्	=	योग्या: ये नेतार: तेषाम्

पदार्थ कथन-

पद	अर्थ	प्रणाली
स्वतन्त्र्योत्तरकाले	स्वतन्त्रता के बाद	विलोम (स्वतन्त्र्य का विलोम परतन्त्रता एवं उत्तर-काल का विलोम पूर्व-काल)
निखिलासु	सभी	व्युत्पत्ति (निम्नलिखित का अर्थ है समस्त, इसका सप्तमी के बहुवचन का रूप)

राजनीतिविशारदानां	राजनीति में चतुर	व्याख्या से
न्यमज्जयत्	डूबा दिया	हाथ से अभिनय करते हुए
आख्या	नाम से	अर्थ-कथन
कायाकल्पं	शारीरिक परिवर्तन एवं सुधार	व्याख्या
मद्रप्रदेशः	मद्रास, तमिलनाडु	मानचित्र में मद्रास (तमिलनाडु) दिखाकर
चिरकालात्	बहुत समय से	वाक्य-प्रयोग (सः चिरकालात् मम प्रतीक्षां करोति)
प्रशासनम्	सरकार	प्रश्न (आजकल भारत में किस दल का प्रशासन है?)
संगठनम्	संस्था	उदाहरण (कांग्रेस, जनसंघ, साम्यवादी दल आदि राजनीतिक संगठन हैं।)

मौन वाचन–छात्रों द्वारा उपर्युक्त गद्यांश का मौन वाचन किया जाएगा।

विचार-विश्लेषण प्रश्न–1. कामराज-योजना कब की घटना है?

2. इस घटना ने किन लोगों का ध्यान आकृष्ट किया?

3. 'आश्चर्यमहासागरे न्यमज्जयत्' से क्या तात्पर्य है?

अध्यापक कथन–आश्चर्य का कोई महासागर नहीं होता, जिसमें मन को डुबाया जा सके। यहां पर इसका तात्पर्य यह है कि सब के मन में अत्यधिक आश्चर्य हुआ।

4. कांग्रेस दल में कौन-सी त्रुटियां आ गयी थीं?

5. इन्हें दूर करना क्यों आवश्यक था?

6. त्रुटियों को दूर करने के लिये किसने इस योजना को भारतीय कांग्रेस के सामने रखा?

7. इसे तत्क्षण क्यों स्वीकार कर लिया गया?

8. कामराज-योजना में कौन-सा विचार मूर्त रूप हुआ?

अध्यापक कथन–इस योजना से यह आशा की गयी कि संगठन और शासन में सामंजस्य हो जाएगा और लोगों में पदलिप्सा कम हो जाएगी। अभी तक लोगों के मन में प्रशासन का आकर्षण अधिक था।

9. प्रशासन में अत्यधिक आकर्षण से कांग्रेस संगठन की कैसी दशा हो गयी?

अध्यापक कथन–यही कारण है कि कामराज योजना का अदर हुआ और बहुत से नेताओं ने अपने पद को छोड़ने की इच्छा व्यक्त की।

द्वितीयान्विति–

'तत्कालीन.....सन्ति।'

आदर्श वाचन–अध्यापक द्वारा।

सन्धि-विच्छेद–

कामराजमहोदयोऽप्यासीत्	=	कामराजमहोदयः + अपि + आसीत्
इयमतीव	=	इयम् + अतीव
कोपि	=	कः + अपि
मतानुसारेण	=	मतः + अनुसारेण
त्वकु सममर्थाः	=	त्यकुम + असमर्था

उच्चारणाभ्यास–उपर्युक्त शब्दों को एक-एक करके अध्यापक पूछता जाएगा और श्यामपट पर लिखता जाएगा तथा बोलता भी जाएगा। इसी समय छात्रों से इनके उच्चारण का अभ्यास भी कराता जाएगा।

अनुवाचन–अध्यापक एक वाक्य या वाक्यांश बोलेगा और अनुशासित ढंग से समस्त छात्र धीरे-धीरे उस वाक्य का उच्चारण करेंगे।

पुनः आदर्श वाचन–अध्यापक द्वारा।

अनुकरण वाचन–कतिपय छात्रों द्वारा।

बोध-परीक्षा–(1) कामराज-योजना को किस प्रधानमन्त्री ने प्रयुक्त किया?

(2) प्रधानमन्त्री ने इस योजना को किस प्रकार कार्य-रूप में परिणित किया?

(3) इस योजना से लोगों को क्यों आश्चर्य हुआ?

विस्तृत व्याख्या–

समास-विग्रह–प्रधानमन्त्रिणा = प्रधानश्चासौ मन्त्री इति प्रधानमन्त्री तेन मतानुसारेण = मतस्य अनुसारेण इति मतानुसारेण

पदलोलुपतां = पदस्य लोलुपतां

पदार्थ कथन–

पद	अर्थ	युक्ति
मोचयित्वा	मुक्त करके	व्युत्पति (कत्वा प्रत्यय बताकर)
निर्वाचिताः	चुन गये	व्युत्पति (क्त् प्रत्यय बताकर)
साम्प्रतिके	आज के	अर्थ-कथन
परित्यज्य	छोड़कर	ल्यप् प्रत्यय का उल्लेख करके

पदलोलुपतां पद का लालच अर्थ कथन

मौन वाचन–छात्रों द्वारा उपर्युक्त गद्यांश का मौन वाचन किया जाएगा।

विचार-विश्लेषण–1. पंडित जवाहरलाल नेहरू ने कितने नेताओं को शासन से मुक्त कर दिया?

2. इन्हें क्यों मुक्त किया गया?

अध्यापक कथन–इन बारह नेताओं के संगठन को सुदृढ़ बनाने के लिए कहा गया। इन नेताओं के आदर्श से लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ, क्योंकि आज के स्वार्थपरक युग में परोपकार की भावना आश्चर्यजनक ही है।

3. 'विशेषत: नेतार:' क्यों कहा गया है?

4. इस योजना का लक्ष्य क्या है?

5. क्या यह लक्ष्य प्राप्त हुआ?

6. कुछ लोगों को इस योजना में क्यों शंका थी?

अध्यापक कथन–इस योजना का तत्काल तो कुछ प्रभाव पड़ा, किन्तु बाद में इसका प्रभाव धीरे-धीरे कम हो गया। बाद में उन बारहों नेताओं में से कई पुन: शासन में आ गये। परिस्थितियां बदलती रहती हैं। कामराज-योजना उस समय की परिस्थिति के सर्वथा अनुकूल थी। इसके पीछे जो भावना थी, वह तो सराहनीय है ही।

सस्वर वाचन–दोनों अन्वितियों का शिक्षक द्वारा और समय मिलने पर कुछ छात्रों द्वारा भी।

पुनरावृत्ति–निम्नलिखित प्रश्नों का यथासम्भव संस्कृत में उत्तर दीजिए–

1. सम्प्रति कामराजयोजनाया: का आवश्यकता?

2. योजनाप्रास्तावकाले तत्रभवन्त: कामराजनाडार महाभागा: कस्मिन् पदे स्थिता: आसन्?

3. स: महोदय: सम्प्रति कस्मिन् पदे वर्तते?

4. अस्यां योजनायाम् कति नेतार: प्रधानमन्त्रिणा राज्यभार-विमुक्त कृता:?

कक्षा कार्य–रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए–

कामराजयोजनाया: ..... प्रमुखम् उद्देश्यम् यत् ..... देशस्य चरमोन्नति: भवति। केषामपि ..... मानसि पदलिप्साया: ..... न स्यु:। यथा कुटुम्बस्य कश्चित् प्रमुख: ..... अपत्यानम् कर्तव्यरूपेण भरणपोषणे लालनपालने च करोति तथैव तेषाम् ..... जायेरन्।

हल–कामराजयोजनाया: (एतत्) प्रमुखम् उद्देश्यम् यत् (भारत) देशस्य चरमोन्नति: भवति। केषामपि (नेतृणाम्) मानसि पदलिप्साया: (भावा:) न स्यु:। यथा कुटुम्बस्य

कश्चित् प्रमुख: (निजानाम्) अपत्यानाम् कर्तव्यरूपेण भरणपोषणे लालनपालने च करोति तथैव तेषाम् (मनस्यपि) भावा: जायेरन्।

गृह कार्य–दिए गए गद्यांश का हिन्दी भावार्थ लिखें।

अभ्यास के प्रश्न

1. संस्कृत गद्य-शिक्षण से आपका क्या अभिप्राय है? इसके मुख्य उद्देश्य क्या हैं? इन उद्देश्यों का स्पष्टीकरण करें।
2. गद्य पाठ में आए कठिन शब्दों की व्याख्या किस प्रकार करनी चाहिए। दस कठिन शब्दों को लेकर व्याख्या की विधियां समझाइए।
3. संस्कृत गद्य में विचार-विश्लेषण का क्या महत्त्व है? इस संदर्भ में अपने विचार लिखिए।
4. गद्य पाठ के पढ़ने में भाषा कार्य के अन्तर्गत कठिन शब्दों तथा मुहावरों के अर्थ एवं प्रयोग सिखाए जाते हैं। भाषा कार्य के अन्तर्गत किन-किन बातों का ध्यान रखा जाता है? शब्द ज्ञान करवाने की कौन-कौन सी प्रचलित विधियां हैं?
5. किसी गद्यांश के शिक्षण में विशिष्ट उद्देश्य निश्चित करते समय कौन-सी सावधानियां को ध्यान में रखना पड़ता है?
6. गद्य शिक्षण के सोपानों की व्याख्या करें।
7. संस्कृत गद्य-शिक्षण में छात्रों की उच्चारण अशुद्धियों को कैसे दूर किया जा सकता है?
8. गद्य की व्याख्या करते हुए गद्य और पद्य शिक्षण के उद्देश्य के अन्तर को स्पष्ट कीजिए।
9. संस्कृत गद्य शिक्षण में मौन वाचन की आवश्यकता एवं औचित्य पर प्रकाश डालें।
10. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए–
    (क) गहन अध्ययन
    (ख) विस्तृत अध्ययन।
    (ग) संस्कृत गद्य शिक्षण में मौन पठन।
    (घ) श्यामपट कार्य।

❑❑❑

अध्याय 10

संस्कृत पद्य शिक्षण–प्रक्रिया, उद्देश्य, सोपान एवं पाठ योजना

पद्य/काव्य क्या है?

पद्य/काव्य शब्द बड़ा व्यापक है। अनेक विद्वानों एवं साहित्याचार्यों ने इसकी परिभाषा एवं व्याख्या विभिन्न दृष्टिकोणों से की है, परन्तु फिर भी इसकी कोई ऐसी सर्वसम्मत परिभाषा नहीं मिलती। वास्तव में पद्य एक सौन्दर्यानुभूति है। इसका आस्वादन किया जा सकता है। इसे परिभाषित करना एक कठिन कार्य है। नीचे कुछ एक परिभाषाओं का उल्लेख किया जाता है–

1. दण्डी के मतानुसार, "काव्य शोभा करान्धमतिलंकारान्द्र चक्षते।"
   अर्थात् काव्य की शोभा बढ़ाने वाले धर्म को अलंकार कहते हैं।
2. आचार्य मम्मट के अनुसार, "तद दोषौ शब्दार्थो सगुण वनलंकृति पुनः क्वापि।
   अर्थात् दोष रहित, गुण युक्त प्रायः अलंकृत परन्तु कभी-कभी अनलंकृत शब्द और अर्थ को काव्य कहते हैं।
3. आचार्य कुन्तल ने वक्रोक्ति को काव्य की आत्मा माना है, यथा-
   "वक्रोक्तिर्काव्या जीवितम्।"
   अर्थात् वक्रोक्ति काव्य का जीवनाधार है।
4. क्षेमेन्द्र के मतानुसार, "औचित्यं स्थिरसिद्धस्य स्थिरं काव्यस्य जीवितम्।"
   अर्थात् औचित्य का अभिप्राय उचित काव्य सामग्री के विधान से है।
5. वामन ने रीति को ही काव्य की आत्मा माना है, यथा, "रीतिरात्मा काव्यस
6. विश्वनाथ ने 'साहित्य दर्पण' में कहा है, "वाक्यम् रसात्मकम् काव्यम्।"
   अर्थात् रस से युक्त वाक्य काव्य है।
7. पंडित जगन्नाथ के अनुसार, "रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्।"
   अर्थात् रमणीय का अर्थ बोध कराने वाला शब्द ही काव्य है।

संस्कृत में काव्य/पद्य का महत्त्व

संस्कृत काव्य का जीवन में अत्यधिक महत्त्व है। अतः पद्य का पठन पाठन दोनों आवश्यक है। पद्य को क्यों पढ़ा और पढ़ाया जाए, इसके विषय में संस्कृत के आचार्यों ने बड़े विस्तार से विचार किया है। प्राचीन आचार्यों के अनुसार पद्य के पठन-पाठन से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति होती है। इन चारों को संस्कृत में चतुर्वर्ग की संज्ञा दी गई है। स्त्रोत के पठन-पाठन से धर्म, राजाश्रय प्राप्त कर कविता की रचना से अर्थ और काम तथा निष्काम भाव से काव्य में प्रवृत्त होने से मोक्ष की प्राप्ति होती है। इन चारों वर्गों में जिस पुरुष की किसी में प्रवृत्ति न हो उसके जीवन को संस्कृत में बकरी के गले के स्तन के समान निरर्थक बताया है–

धर्मार्थकाममोक्षाणाम् यस्यैकोऽपि न विद्यते।
अजागलस्तनस्येव तस्य जन्म निरर्थकम्॥

काव्य चतुर्वर्ग की प्राप्ति का साधन है। अतः यह कहा जा सकता है कि इससे व्यक्ति अपना जीवन सार्थक बना सकता है।

आचार्य कुन्तक ने काव्य का प्रयोजन चतुर्वर्ग फल की प्राप्ति के साथ-साथ व्याधिवश, अज्ञानवश तथा अमृतवत् आनन्द की प्राप्ति भी बताया है। वे लिखते हैं–

चतुर्वर्गफलस्वादमज्यतिक्रम्य तद्विदाम्।
काव्यामृत रसेनानतश्चत्कारो वितन्यते॥
कटुकौषधवच्छास्यमविधा व्याधिनाशनम्।
आह्लध मृतवत्माव्यमविवेक गदापहम्॥

आचार्य भामह ने भी काव्यालंकार में उच्चकोटि का काव्य रचने से चतुर्वर्ग की प्राप्ति तथा अन्य कलाओं में दक्षता एवं कीर्ति की प्राप्ति भी बताया है। वे लिखते हैं–

धर्मार्थकाममोक्षाणां वैचक्षण्यम् कलासु च।
करोति प्रीतिम् कीर्तिं च साधुकाव्यनिबन्धनम्॥

काव्य से कीर्ति की प्राप्ति होती है, **आचार्य भामह** के इस कथन में अत्युक्ति किंचित मात्र भी नहीं है। कालिदास, भवभूति, माघ, वाल्मीकि, सूर, तुलसी, मीरा, निराला, कीट्स, शैली आदि काव्य के द्वारा ही इतनी ख्याति प्राप्त कर सके। सूर, तुलसी आदि भक्त कवियों ने धर्म की प्राप्ति काव्य से ही की। केशव, भूषण, चन्दवरदाई आदि कवियों ने राजाश्रय प्राप्त करके काव्य के द्वारा अर्थ प्राप्त किया। **कविवर मयूर** ने सूर्य का स्त्रोत रचकर अपने कुष्ट निवारण की कामना पूरी की। काम इच्छा की प्राप्ति के अन्य अनेक उदाहरण मिलते [illegible] है कि आचार्य उदयन एक बार जगन्नाथपुरी में भगवान् के

दर्शन की कामना से गए, परन्तु वहां उन्हें पहले दर्शन न हो सके। आचार्य उदयन ने
ही निम्नलिखित श्लोक की रचना करके उसका पाठ किया–

ऐश्वर्यमदमत्तोऽसि मामवज्ञाय वर्त्तसे।
उपस्थितेषु बौद्धेषु मदधीना तवस्थितिः॥

कहा जाता है कि इस श्लोक के पाठ के बाद भक्ति से विह्वल उदयनाचार्य
भगवान् जगन्नाथ के दर्शन हो गए। वाल्मीकि, कबीर, सूर, तुलसी आदि को काव्य के
मोक्ष प्राप्त हो गया। काव्य के पठन-पाठन से चतुर्वर्ग की प्राप्ति उपर्युक्त उदाहरण
स्पष्ट हो जाती है।

आचार्य मम्मट ने काव्य प्रकाश में कविता के प्रयोजन पर विचार करते हुए लिखा
है–

काव्यम् यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्यः परानिवृत्तये कान्तासंमिततयोपदेशयुजे॥

अर्थात् काव्य से यश एवं अर्थ की प्राप्ति होती है। लोकाचार का ज्ञान होता
आशिव! अमंगल! का निवारण होता है तथा सद्यः परमानन्द की अनुभूति के साथ-
कान्तासम्मत उपदेश प्राप्त होता है।

उपर्युक्त श्लोक के अन्तिम अंश पर विचार आवश्यक है। उपदेश प्रायः तीन प्र
से दिए जाते हैं। एक उपदेश बिल्कुल आदेश की तरह होता है। उसका अक्षरशः
आवश्यक है। राजाओं की आज्ञा, वेदाज्ञा इसी प्रकार के उपदेश हैं। इनको न मानने से
मिलता है या प्रायश्चित करना पड़ता है। उपदेश की दूसरी विधि मंत्रोपदेश की है।
एक मित्र की भांति किसी कार्य की अच्छाई-बुराई का वर्णन कर दिया जाता है और
सुनने वाले मित्र की इच्छा पर है कि वह उस कार्य को करे या न करे। पुराणों के
मित्रोपदेश हैं। तीसरा उपदेश कान्ता का कमनीय उपदेश है। पत्नी नम्रता, भक्ति,
आदि भावों से अभिभूत होकर सुन्दर वाचन, मधुर वाणी एवं कमनीय सूक्तियों द्वारा
पति को उपदेश देती है और अपने आकर्षण से पति से वह कार्य करवा लेती है।
प्रकार का उपदेश मनोविज्ञान के सिद्धान्तों पर आधारित है। आचार्य मम्मट के
कविता जो उपदेश दिया जाता है, वह कान्ता के समान कमनीय है।

काव्य रचना के उद्देश्य

अतः भारतीय आचार्यों ने काव्य के निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किए हैं-

1. यश की प्राप्ति
2. धन की प्राप्ति
3. पुरुषार्थ चतुष्टयसिद्धि
4. लोक-व्यवहार का ज्ञान

5. आनन्द-प्राप्ति
6. कला निपुणता
7. पाण्डित्य की प्राप्ति
8. उपदेश को सरल व सुन्दर रूप प्रदान करना।
9. व्युत्पत्ति।

उपर्युक्त उद्देश्यों के आधार पर विभिन्न स्तरों पर शिक्षा शास्त्रियों ने संस्कृत काव्य शिक्षण के निम्नलिखित उद्देश्य बताए हैं–

1. संस्कृत काव्य के प्रति छात्रों की रुचि अथवा अनुराग की भावना जागृत करना।
2. लय, गति एवं भावपूर्ण स्वर से काव्य या श्लोक पढ़ने की क्षमता उत्पन्न करना।
3. संस्कृत काव्य को पढ़ने के साथ ही उसके भावों को समझने की तथा उसे अपने शब्दों में व्यक्त करने की योग्यता उत्पन्न करना।
4. छात्रों में कल्पना-शक्ति का विकास करना।
5. कविता की विभिन्न शैलियों का ज्ञान देना।
6. छात्रों में काव्यगत सौन्दर्यानुभूति की योग्यता जागृत करना।
7. छात्रों को कवि के जीवन-दर्शन से परिचित कराना।
8. काव्य में आए हुए शब्द-योजना के आधार पर दृश्य चित्रों की उद्भावना करना।
9. छात्रों को वाच्यार्थ, लक्ष्यार्थ, व्यंग्यार्थ, प्रसंगोद्भावनाएं एवं समान भाव की कविताओं से परिचित कराना।
10. छात्रों को कविता के रस एवं आनन्द लेने के योग्य बनाना।
11. छात्रों में स्वयं कविता करने की योग्यता उत्पन्न करना।

गद्य एवं पद्य विधाओं में अन्तर

गद्य	पद्य
1. उद्देश्य में भाषा-तत्त्वों पर विशेष बल दिया जाता है।	1. रसानुभूति पर विशेष ध्यान दिया जाता है।
2. पाठ योजना के निर्देशक तत्त्वों में अन्तर है, यथा-भाषा तत्त्वों का ज्ञान एवं भाषा की अनुभूति होती है।	2. भावों के सौन्दर्य, कल्पना, मानसिक द्वन्द की अनुभूति होती है।

3. गद्य में व्याकरण पर अधिक ध्यान दिया जाता है।	3. पद्य में मॉडल व चित्र आदि का प्रयोग होता है।
4. गद्य में मॉडल व चित्रों की प्रधानता होती है।	4. काव्यगत सौन्दर्य भावों आदि पर विशेष बल दिया जाता है।
5. गद्य में प्रस्तावना प्रायः प्रश्नों के द्वारा सम्पन्न होती है। सरल होती है।	5. पद्य में प्रायः पंक्तियों से प्रस्तावना प्रारम्भ होती है। यह कठिन भी होती है।
6. गद्य में खण्डशः अभिव्यक्ति सम्भव है।	6. पद्य में समग्रता से अभिव्यक्ति आवश्यक है।
7. गद्य में उच्चारण संशोधन आदि पर अधिक बल दिया जाता है।	7. पद्य में उच्चारण पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता है।
8. गद्य में मौन पाठ का विशेष महत्त्व है।	8. मौन पाठ का पद्य में कोई स्थान नहीं है।
9. गद्य की विभिन्न विधाओं की पाठ योजना में अन्तर है।	9. पाठ योजना में अन्तर नहीं है।
10. विचार विश्लेषणात्मक प्रश्न पूछे जाते हैं।	10. रसानुभूति के प्रश्न पूछे जाते हैं।
11. गद्य में पुनरावृत्ति के लिए प्रश्न पूछे जाते हैं।	11. पद्य में सम्भावी कविता के तुलनात्मक प्रश्नों के द्वारा पुनरावृत्ति की जाती है।
12. रस, छंद, अलंकार का गद्य में अभाव होता है।	12. पद्य में रस, छन्द, अलंकार आदि का शिक्षण होता है।
13. पद्य में रागात्मक तत्त्वों का पूर्ण अभाव होता है।	13. पद्य में रागात्मक तत्त्व जैसे राग, लय आदि की प्रधानता होती है।
14. गद्य में आदर्श वाचन और अनुकरण वाचन की पुनरावृत्ति नहीं होती है।	14. पद्य में आदर्श वाचन और अनुकरण वाचन की पुनरावृत्ति होती है।

पद्य पाठ के शिक्षण में पाठ योजना की रूप-रेखा

संस्कृत में पद्य पढ़ाने के लिए पाठ-योजना की रूप-रेखा एवं कविता शिक्षण का क्रम निम्नलिखित होगा–

1. सामान्य प्रारम्भिक बातें; यथा–दिनांक, कक्षा, कालांश, अवधि, विषय, शीर्षक
2. सामान्य उद्देश्य
3. विशिष्ट उद्देश्य

4. सहायक (अधिगम) सामग्री
5. पूर्व ज्ञान
6. **प्रस्तावना**–कविता की प्रस्तावना निम्नलिखित ढंग से हो सकती है–
   (1) कतिपय प्रश्नों द्वारा,
   (2) कवि का संक्षिप्त परिचय देकर,
   (3) समानार्थक संस्कृत कविता का पाठ करके एवं उस पर प्रश्न करके,
   (4) मातृभाषा की किसी समान भाव वाली कविता का पाठ करके एवं उस पर प्रश्न करके।
7. **उद्देश्य कथन**–
8. **विषयोपस्थान**–
   (1) पाठ्य सामग्री का उल्लेख (अन्विति का उल्लेख)।
   (2) शिक्षक द्वारा वाचन–
      (क) आदर्श वाचन समूह,
      (ख) आदर्श वाचन मन्दगति, लयपूर्वक
      (ग) अनुवाचन–शिक्षक के नेतृत्व में छात्रों द्वारा (सामूहिक अनुवाचन)
      (घ) छात्रों द्वारा अनुकरण वाचन।
      (ङ) बोध-प्रश्न।
9. **स्पष्टीकरण**–(1) अन्वय, (2) पदच्छेद, (3) शिक्षक द्वारा स्पष्टीकरण, (4) भाव विश्लेषणात्मक प्रश्न, (5) शिक्षक द्वारा श्लोक का पाठन।
10. **तुलना**–संस्कृत तथा मातृभाषा में समान भाव की कविताओं का पाठ करके प्रस्तुत कविता की तुलना करना।
11. **सस्वर वाचन**–शिक्षक अथवा छात्रों द्वारा।
12. **प्रयोग**–
   (1) छात्रों का श्लोक कंठस्थ करना।
   (2) श्लोक की मातृभाषा में भावानुवाद करना।
   (3) अन्वय लिखाना।

काव्य शिक्षण पद्धतियां

कविता पढ़ाना वास्तव में एक कला है। शिक्षक को बहुत सोच-समझ कर इसका निर्वाह करना होता है। प्राथमिक कक्षाओं में शिक्षक को सर्वप्रथम स्वयं आदर्श रूप कविता पाठ छात्रों के समक्ष करना चाहिए। तत्पश्चात् उनको सुस्वर पाठ कराना अनिवार्य

है। कविता पाठ करते समय मधुरता, अक्षरों का साफ उच्चारण, पदों का उचित विभक्तिकाल सुन्दर और शुद्ध स्वर, धैर्य एवं लय और आरोह-अवरोह का ध्यान रखना चाहिए। शिक्षा शास्त्रियों ने संस्कृत काव्य-शिक्षण की कुछ प्रमुख प्रणालियों का उल्लेख किया है, जो निम्नलिखित हैं-

1. परम्परागत प्रणाली
2. गीत तथा अभिनय प्रणाली
3. दण्डान्वय प्रणाली
4. खण्डान्वय प्रणाली
5. व्यास प्रणाली
6. तुलना प्रणाली
7. व्याख्या प्रणाली
8. समीक्षा प्रणाली

1. परम्परागत प्रणाली-संस्कृत काव्य शिक्षण की परम्परागत प्रणाली में सर्वप्रथम शिक्षक छात्रों से श्लोक पढ़वाता है और उनसे श्लोक का अर्थ बताने के लिए कहता है। यदि छात्र उसको नहीं पढ़ पाते हैं तो अध्यापक स्वयं पढ़ता है और उसका अर्थ बताता है। इस प्रणाली में काव्य प्राय: गद्य की तरह ही पढ़ाया जाता है। इससे कविता में सौन्दर्यानुभूति नहीं आ पाती। इससे छात्र श्लोक का अर्थ तो समझ लेते हैं, लेकिन कविता के सौन्दर्य का बोध उन्हें नहीं हो पाता। प्राचीन काल में साधारण कोटि के अध्यापक इस प्रणाली का प्रयोग करते थे, जो प्राय: बहुत से स्कूलों व कॉलेजों में आज भी अध्यापन करते हैं, परन्तु मनोवैज्ञानिक दृष्टि से कविता-शिक्षण की यह प्रणाली उचित नहीं प्रतीत होती। यह प्रणाली नीरस है। इससे कविता शिक्षण के उद्देश्य पूर्ण नहीं होते।

2. गीत तथा अभिनय प्रणाली-यह प्रणाली प्राथमिक स्तर के बालकों के लिए उपयुक्त हो सकती है। इसके अन्तर्गत बाल गीतों का प्रयोग होता है, जिनका काव्य की दृष्टि से कोई विशेष महत्त्व नहीं है, परन्तु ये बालकों को रोचक लगते हैं। इन श्लोकों को बालक लय, स्वर एवं ताल से गाते हैं। इनमें संगीत तत्त्व प्रमुख होता है। बालकों को संगीत से प्रेम होता है। अत: बाल-गीतों को पढ़ाते समय केवल शब्दार्थ पर ध्यान न देकर ध्वनि तथा भाव पर भी ध्यान देना चाहिए। कविता की भाषा सरल हो, ताकि बालक उसे पहले सरलता से याद कर सके। इन बाल-गीतों को पहले एक-एक करके छात्रों से गवाना चाहिए। तत्पश्चात् कक्षा के समस्त छात्रों से सम्मिलित स्वर में गवाना चाहिए। संस्कृत साहित्य में बाल-गीतों का अभाव है। अत: इस प्रणाली का उपयोग करने का संस्कृत शिक्षक को बहुत कम अवसर मिलता है।

3. दण्डान्वय प्रणाली-सम्पूर्ण पद्यखण्ड को एक पूर्ण वाक्य में परिवर्तित करना ही दण्डान्वय कहलाता है। संस्कृत संश्लेषणात्मक भाषा है। अत: इसमें उपसर्ग एवं प्रत्यय मूल शब्द के साथ ही सम्बन्धित होते हैं। संस्कृत में किसी भी शब्द को किसी भी स्थान पर प्रयोग करें, सब का एक ही अर्थ निकलता है। यथा-'बालक: कन्दुकेन क्रीडति' अथवा 'क्रीडति कन्दुकेन बालक' दोनों का एक ही अर्थ है। परन्तु उचित स्थान पर प्रयुक्त

न होने पर छात्रों को अर्थ समझने में कुछ कठिनाई होती है। कर्त्ता, कर्म एवं विभक्तियों का ज्ञान होने पर उन्हें समझना बहुत आसान रहता है।

इस प्रणाली के अन्तर्गत सबसे प्रथम कार्य की खोज होती है। इस वाक्य द्वारा कर्त्ता, कर्म एवं क्रिया का ज्ञान होता है। संस्कृत में कविता का अन्वय करके पढ़ने में सरलता रहती है। इससे श्लोक का भाव समझने में आसानी रहती है। अन्वय दो प्रकार का होता है-दण्डान्वय और खण्डान्वय। अन्वय प्रबोध में दण्डान्वय की परिभाषा इस प्रकार की है-

आद्ये विशेषणं पूर्वं विशेष्यं तदन्तरम्
क्तवाणमुल्प्रभृत्येवं पूर्व दण्डान्वये भवेत्।

इस प्रणाली के द्वारा छात्रों को कर्त्ता, क्रिया, कर्म आदि को छांटने का ज्ञान होता है अथवा अध्यापक प्रश्नों के माध्यम से कर्त्ता, क्रिया, कर्म द्वारा श्लोक का अर्थ बतलाता है। इस प्रणाली के प्रयोग द्वारा छात्र सरलता से श्लोक का अर्थ समझ लेते हैं। छोटी कक्षाओं में इस प्रणाली का अधिक प्रयोग किया जाता है।

4. खण्डान्वय प्रणाली-यह प्रणाली दण्डान्वय प्रणाली से भिन्न होती है। परन्तु यह दण्डान्वय से उत्तम होती है। खण्डान्वय प्रणाली में व्याकरण को आधार नहीं माना जाता है। इस प्रणाली के अनुसार साहित्यिक अर्थ का स्पष्टीकरण प्रश्नों के आधार पर किया जाता है। यह प्रणाली उन श्लोकों के लिए उपयोगी है जिनमें अनेक विशेषताएं हैं तथा भावों की अधिकता है। इस तथ्य के लिए स्पष्टीकरण के लिए नीचे एक उदाहरण प्रस्तुत है-

"यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥"

इस पद को खण्डान्वय पद्धति से पढ़ाने के लिए निम्नलिखित प्रश्न करने होंगे-

प्रश्न-अहम् किम् करोमि?

उत्तर-अहम् सृजामि।

प्रश्न-अहम् किम् सृजामि?

उत्तर-अहम् आत्मानं सृजामि।

प्रश्न-अहम् कदा आत्मानं सृजामि?

उत्तर-यदा-यदा हि धर्मस्य ग्लानि: अधर्मस्य अभ्युत्थानं च भवति।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह प्रणाली अति उत्तम है। इसमें छात्रों के सहयोग के साथ पाठ को रुचिकर बनाया जा सकता है। अध्यापक के साथ ही छात्र भी सक्रिय होकर प्रश्नों के माध्यम से अपनी विचार शक्ति का प्रयोग करते हैं। इस पद्धति के द्वारा बालकों में आदि से अन्त तक जिज्ञासा की प्रवृत्ति जाग्रत रहती है क्योंकि यह पद्धति प्रश्नोत्तर विधि पर आधारित है। यह प्रणाली सामूहिक शिक्षण के लिए अधिक उपयोगी है जबकि दण्डान्वय

पद्धति का प्रयोग व्यक्तिगत शिक्षण के लिए उपयोगी है। खण्डान्वय पद्धति में जिस क्रम का विश्लेषण होता है, तात्पर्य कथन में उसी का संश्लेषण होता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि कक्षा शिक्षण में इस विधि का प्रयोग अधिक लाभदायक सिद्ध होता है।

5. व्यास प्रणाली–इस प्रणाली को भाष्य प्रणाली की संज्ञा दी गई है। इस प्रणाली के अनुसार शिक्षक कथावाचक की शैली को अपनाता है और छात्र एक निष्क्रिय श्रोता के रूप में होता है। शब्दों के ज्ञान के बिना अध्यापक भाव बिश्लेषण ठीक रूप से नहीं कर सकता। अत: इस प्रणाली से पढ़ाने के लिए अध्यापक का साहित्यिक ज्ञान विस्तृत होना चाहिए। भावाभिव्यक्ति के लिए अध्यापक उदाहरणों, अन्त:कथाओं, ऐतिहासिक घटनाओं एवं दृष्टान्तों द्वारा कविता के भावों को स्पष्ट कर देता है। इस प्रणाली से शिक्षण करते हुए अध्यापक सुमधुर कंठ से कविता वाचन करते हुए आवश्यकतानुसार भाव-भंगिमा तथा अभिनय का प्रदर्शन भी करता है। श्रीमद्भगवद्गीता पर जगद्गुरु शंकराचार्य का शांकर भाष्य या दुर्गा सप्तशती पर शान्नवी भाष्य इस प्रणाली का सर्वोत्तम उदाहरण है।

इस विधि का प्रयोग उच्च कक्षाओं के लिए किया जाना चाहिए। प्रारम्भिक एवं मध्य स्तर पर इस विधि का प्रयोग कदापि नहीं करना चाहिए, क्योंकि इस प्रणाली में शिक्षक सक्रिय होता है, छात्र निष्क्रिय रहते हैं।

6. तुलना प्रणाली–तुलना प्रणाली के अनुसार शिक्षक जिस कविता को छात्रों को पढ़ाता है, उसी से मिलती-जुलती कविताओं को उदाहरणार्थ छात्रों के समक्ष रखता है, जिससे छात्रों में प्रस्तुत कविता के प्रति रुचि जाग्रत होती है तथा कविता के भाव हृदयंगम करने में सरलता होती है। इस विधि से पढ़ाने के लिए अध्यापक को कठोर परिश्रम करना होता है तथा साहित्य का विशद् ज्ञान रखना भी आवश्यक है। इस विधि के अनुसार अध्यापक बालकों में विवेचना शक्ति को विकसित कर सकता है। तुलना के लिए तीन प्रकार की कविताओं का प्रयोग किया जा सकता है–

(1) अध्यापक समभाव को ही विभिन्न स्थलों पर विभिन्न विधि से स्पष्ट करता है।

(2) विभिन्न कवियों द्वारा लिखित समभाव वाले श्लोकों को लेकर तुलना करना अर्थात् एक ही भाव विभिन्न कवियों द्वारा किया जाता है। इस तुलना के द्वारा शिक्षक विभिन्न कवियों द्वारा दिए गए समभावों का तुलनात्मक अध्ययन बालकों के सम्मुख प्रस्तुत करता है।

(3) भिन्न भाषा के कवियों की तुलना प्रणाली से बालकों की विभिन्न भाषाओं के कवियों के भावों से परिचय मिलता है। यथा–

''यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत
अभ्युत्यानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥''

तुलसीदास जी ने भी लिखा है–

जब-जब होय धरम की हानी, बाढ़हि असुर महा अभिमानी,
तब-तब धरि प्रभु मनुज शरीरा, हरहि सकल सज्जन भव पीरा।

शिक्षक को चाहिए कि इस प्रणाली को अवश्य प्रयोग करें। इससे बालकों में ज्ञान की वृद्धि होती है।

7. व्याख्या प्रणाली–व्याख्या प्रणाली से तात्पर्य है–किसी भी पद या श्लोक के अर्थ का विस्तारपूर्वक वर्णन करना। व्याख्या प्रणाली में अध्यापक एक-एक श्लोक का अर्थ या व्याख्या, कवि की रचना शैली, कवि के उद्देश्य, रुचि तथा कवि के जीवन दर्शन के साथ विस्तृत रूप से करता है। व्याख्या प्रणाली में भावार्थ मुख्य होता है जबकि परम्परागत प्रणाली में शब्दार्थ का महत्त्व होता है। यदि श्लोकों का सम्बन्ध किसी पौराणिक अथवा ऐतिहासिक घटना के वर्णन से होता है तो शिक्षक छात्रों के समक्ष पूर्ण रूप से व्याख्या भी करता है। इससे छात्र की विषय में रुचि जागृत होती है तथा उससे सम्बद्ध अन्य बातों का ज्ञान होता है।

पदच्छेद: पदार्थोक्ति: विग्रहो वाक्ययोजना।
आक्षेपोऽथ समाधानं व्याख्यानं पंचधा स्मृतम्॥

व्याख्या प्रणाली में पदों का विच्छेद, पदों का अर्थ, पद-विग्रह, वाक्य योजना, आक्षेप और समाधान किया जाता है।

8. समीक्षा प्रणाली–समीक्षा प्रणाली में अध्यापक छात्रों को सहायक पुस्तकों की सूची बताकर उचित मार्गदर्शन करता है। छात्र स्वयं कविता की भाषा एवं शैली की समीक्षा करते हैं तथा केन्द्रीय भाव ग्रहण करते हैं। समीक्षा करते हुए प्रश्नोत्तर तथा तुलना प्रणाली का प्रयोग करते हुए समान भावयुक्त श्लोकों को बताता है। यह प्रारम्भिक एवं माध्यमिक स्तर के लिए प्रयुक्त नहीं है, क्योंकि इस स्तर पर बालकों का इतना मानसिक विकास नहीं होता है। अत: उच्च स्तर के लिए यह प्रणाली अधिक उपयुक्त है।

इन सभी प्रणालियों का विवेचन करने के पश्चात् हम यह कह सकते हैं कि सभी प्रणालियां सभी स्तर पर उपयोगी नहीं है, परन्तु यदि अध्यापक इनके माध्यम से छात्रों के स्तर को ध्यान में रखते हुए पढ़ाते हैं तो अवश्य शिक्षक तथा छात्रों को सहायता मिलती है।

दण्डान्वय तथा खण्डान्वय विधियों में अन्तर

दण्डान्वय	खण्डान्वय
1. इस प्रणाली में मातृभाषा का प्रयोग किया जाता है।	1. इस प्रणाली में संस्कृत भाषा का ही प्रयोग किया जाता है।

2. कर्त्ता तथा कर्म आदि के क्रम में अन्वय किया जाता है।	2. अन्वय तो होता है, लेकिन कर्त्ता, कर्म के क्रम में नहीं।
3. अन्वय करने के बाद पूरे श्लोक का अर्थ किया जाता है।	3. सीधे ही अर्थ कदापि नहीं किया जाता।
4. मातृभाषा का प्रयोग होने से संस्कृत-मय वातावरण नहीं रहता है जो अमनोवैज्ञानिक है।	4. संस्कृत भाषा का ही प्रयोग करने से संस्कृतमय वातावरण रहता है जो वैज्ञानिक है।
5. व्याकरण की प्रमुखता रहती है।	5. व्याकरण की प्रमुखता नहीं रहती है।
6. व्याकरण की प्रमुखता के कारण काव्य शिक्षण के प्रमुख उद्देश्य रसानुभूति में बाधा होती है।	6. व्याकरण के प्रमुख न होने से काव्य शिक्षण के प्रमुख उद्देश्य रसानुभूति में बाधा नहीं होती है।
7. मातृभाषा में प्रश्न पूछे जाने के कारण बालक सक्रिय नहीं रहते, निष्क्रिय रहते हैं।	7. संस्कृत भाषा में प्रश्न पूछे जाने के कारण बालक पूर्णत: सक्रियता तथा चेतनता लिए रहते हैं।
8. छात्र स्वयं भाव ग्रहण नहीं कर पाते हैं।	8. छात्र स्वयं भाव ग्रहण करने को प्रेरित रहते हैं।
9. साहित्यिकता का अभाव रहता है।	9. साहित्यकता का अभाव नहीं रहता है।
10. अलंकार, छन्द आदि का सामान्य परिचय कराया जाता है।	10. अलंकार, छन्द आदि का विस्तृत अध्ययन कराया जाता है।

कविता शिक्षण की पद्धतियां कक्षा स्तर के अनुसार निर्धारित करनी चाहिए। जैसे- उच्च प्राथमिक कक्षा तक गीत-अभिनय विधि खण्डान्वय, दण्डान्वय विधि विशेष उपयुक्त है। इस स्तर तक संस्कृत श्लोकों का लय, ताल, छन्दानुसार, आरोह-अवरोह के साथ वाचन पर विशेष ध्यान देना चाहिए। इसीलिए चार तरह से वाचन कराना, पाठ समाप्ति पर अंत में पुन: आदर्शवाचन कराना उचित रहता है। इससे काव्यमय वातावरण बना रहता है। कविता का प्रस्तुतिकरण सस्वर, मर्मस्पर्शी व भावोद्दीपक होना चाहिए। उच्च कक्षाओं में व्याख्या, समीक्षा, तुलना, व्यास प्रणाली, दण्डान्वय प्रणाली का प्रयोग करना चाहिए।

संस्कृत कविता शिक्षण में पहले 'बोध पाठ' कराना चाहिए। बोध पाठ में कविता का सरलीकरण, शब्दों का सीधा ही अर्थ बताया जाता है। इसके बाद 'रस पाठ' के रूप में कविता का शिक्षण कराया जाए। इस पाठ में कविता का मुख्य भाव-बोध कराना, काव्य सौन्दर्य की अनुभूति कराना, रसानुभूति कराना, कविता का आशय बोध कराना उचित है। कठिन शब्दों का अर्थ सीधा ही बता देना चाहिए। अर्थबोध में प्रविधियों, व्याकरण नियमों

में उलझाने से कविता से प्राप्त भाव सौन्दर्य, रसानुभूति नहीं होती और काव्यमय वातावरण समाप्त हो जाता है।

शिक्षण क्रम

पद्यात्मक पाठ तीन प्रकार के होते हैं-(1) सूचनात्मक, (2) सूक्ति रूप, (3) रसात्मक। सूचनात्मक तथा सूक्ति-रूप पाठों की पाठन विधि गद्य पाठों जैसी ही होती है। छन्दोबद्धता तथा चमत्कारपूर्णता के कारण पाठन-विधि में थोड़ा सा अन्तर पड़ जाता है, जहां विशेषता केवल छन्दोबद्धता की हो, वहां छात्रों को अन्वय करने की विधि भी बतानी चाहिए। छात्रों को वाक्य में पद-क्रम का स्वरूप समझा देने से वे अन्वय स्वयं करने लगते हैं। इस दृष्टि से हिन्दी तथा संस्कृत में कोई विशेष अन्तर नहीं है। अत: अर्थ ग्रहण के पश्चात् छात्र स्वयं अन्वय कर लेंगे। अन्वय रटाने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए, अन्यथा छात्र समझने का प्रयत्न नहीं करेंगे।

जिन श्लोकों में किसी प्रकार का चमत्कार हो, उनका अर्थ ग्रहण करा देने के पश्चात् चमत्कार का अनुभव कराने का प्रयत्न करना चाहिए। यदि छात्रों को चमत्कार का आनन्द मिल गया तो वे प्रसन्न हो उठेंगे और विषय में उनकी स्वाभाविक रुचि उत्पन्न हो जाएगी।

जो पाठ रसात्मक हो, उसको पढ़ाते समय अध्यापक को विशेष सावधान रहने की आवश्यकता होती है। संस्कृत शिक्षण में साहित्य के रसास्वादन का भी स्थान है। कविता के पाठ का प्रधान उद्देश्य आनन्द की प्राप्ति है। प्रारम्भिक कक्षाओं में यह आनन्द ध्वनि, अन्त्यानुप्रास (तुक) सरल मनोभाव आदि स्थूल तत्त्वों पर ही अवलम्बित रहती है। माध्यमिक व उच्च-स्तर पर सरल अलंकारों, रस तथा व्यंजित अर्थ पर आधारित रसानुभूति कराने का सचेष्ट प्रयत्न किया जाएगा। उपमा, अनुप्रास आदि सरल अलंकारों के नाम भी बताए जा सकते हैं। परन्तु साधारण रूप में पारिभाषिक शब्दों का भार उन पर लादा न जाएगा। हम को यह भी न भूलना चाहिए कि रसास्वादन का सम्बन्ध केवल काव्य से ही नहीं है। पद्य खण्डों की रसानुभूति भी यथास्थान और यथारूप कराई जाए। भाषा तथा उसके प्रयोगों की शिक्षा, शब्द भण्डार की वृद्धि और व्याकरण आदि के अभ्यासों से साहित्य के रसास्वादन में शिक्षक को बाधा न डालनी चाहिए।

अर्थ ग्रहण करा देने के पश्चात् अध्यापक को चाहिए कि वह कवि की अनुभूति को छात्रों के हृदय में जगाने का प्रयत्न करे। जिस प्रकार के भाव छात्रों की अनुभूति के विषय बन चुके हैं, उनसे सम्बद्ध रस की अनुभूति ही छात्रों से कराई जा सकती है। अनुभूति को जगाने के लिए भावोद्बोधक प्रश्नों तथा समानार्थक काव्यांशों का प्रयोग करना चाहिए। पद्यात्मक पाठों के अध्ययन में वाचन का बहुत महत्त्व होता है।

कविता पढ़ाने के लिए पाठ-योजना की रूप-रेखा एवं कविता शिक्षण का क्रम अग्रलिखित होगा-

1. सामान्य प्रारम्भिक बातें; यथा दिनांक, कक्षा, कालांश, अवधि, विषय, शीर्षक
2. सामान्य उद्देश्य
3. विशिष्ट उद्देश्य
4. सामान्य सामग्री
5. पूर्व-ज्ञान
6. **प्रस्तावना**–कविता की प्रस्तावना निम्नलिखित ढंग से हो सकती है-
   (1) कतिपय प्रश्नों द्वारा।
   (2) कवि का संक्षिप्त परिचय देकर।
   (3) समानार्थक संस्कृत कविता का पाठ करके एवं उस पर प्रश्न करके।
   (4) मातृभाषा की किसी समान भाव वाली कविता का पाठ करके एव उस पर प्रश्न करके।
7. उद्देश्य-कथन
8. **विषयोपस्थापन**–
   (1) पाठ्य-सामग्री का उल्लेख (अन्विति का उल्लेख)।
   (2) शिक्षा के द्वारा आदर्श वाचन।
   (3) अनुवाचन–शिक्षक के नेतृत्व में छात्रों द्वारा।
   (4) छात्रों द्वारा अनुकरण वाचन।
   (5) बोध-परीक्षा।
9. **स्पष्टीकरण**–
   (1) अन्वय
   (2) पदच्छेद तथा पदार्थ कथन
   (3) शिक्षक द्वारा स्पष्टीकरण
   (4) शिक्षक द्वारा श्लोक का पाठ
   (5) भाव विश्लेषणात्मक प्रश्न
10. **तुलना**–संस्कृत तथा मातृभाषा में समान भाव की कविताओं का पाठ करके उनसे प्रस्तुत कविता की तुलना करना।
11. **सस्वर वाचन**–शिक्षक अथवा छात्रों द्वारा।
12. **प्रयोग**–
   (1) छात्रों का श्लोक कंठस्थ करना।
   (2) श्लोक का मातृभाषा में भावानुवाद करना।
   (3) अन्वय लिखाना।

गद्य-पाठ योजना–1

विद्यालय का नाम–..... दिनांक–.....
अध्यापक का नाम–..... कक्षा–.....
कालांश–..... अवधि–40 मिनट
विषय–संस्कृत काव्य उपविषय–गीता मृतम्

सामान्य उद्देश्य–

1. संस्कृत कविता के प्रति छात्रों में सामान्य अनुराग उत्पन्न करना।
2. गति, लय, यति एवं भाव के अनुसार श्लोक पाठ करने की योग्यता उत्पन्न करना।
3. कविता के मुख्य भावों को ग्रहण करने की योग्यता प्रदान करना।
4. छात्रों के भावों का परिष्कार करते हुए उनमें उदात्त भावों का विकास करना।
5. कविता के अन्तर्गत शब्द-योजना के आधार पर दृश्य-चित्रों की उद्भावना करना।
6. काव्यगत सौन्दर्य अनुभूति करने की क्षमता प्रदान करना।
7. संस्कृत कविता का रसास्वादन करके अपने शब्दों में उसकी व्याख्या करने की क्षमता प्रदान करना।
8. छात्रों को कविता की विभिन्न शैलियों से परिचित करना।

विशिष्ट उद्देश्य–छात्रों को इस तथ्य से परिचित कराना कि धर्म के ह्रास के समय सज्जनों के परित्राण के लिए भगवान् अवतार धारण करते हैं। इसी बहाने छात्रों के समक्ष गीता के अमर सन्देश की झांकी प्रस्तुत करना और छात्रों के मन में उदात्त एवं पुण्य विचारों को सुदृढ़ करना।

सहायक सामग्री–लपेट श्यामपट पर तुलसीकृत दो चौपाइयां तथा कान्त कवि की कुछ पंक्तियां।

पूर्व ज्ञान–छात्र जानते हैं कि राम और कृष्ण अधिकांश भारतीयों द्वारा भगवान् के रूप में जाने जाते हैं। वे रामनवमी एवं जन्माष्टमी का महत्त्व जानते हैं। वे यह भी जानते हैं कि महाभारत का युद्ध कौरवों तथा पांडवों में हुआ एवं श्री कृष्ण ने अर्जुन को गीता का उपदेश दिया।

प्रस्तावना–अध्यापक छात्रों से निम्नलिखित प्रश्न करेगा–

प्रश्न 1. हम रामनवमी ... मनाते हैं?

उत्तर–भगवान् राम का जन्मदिन है।

प्रश्न 2. जन्माष्टमी मनाने का क्या कारण है?

उत्तर–भगवान् कृष्ण का जन्म दिवस है।

प्रश्न 3. राम और कृष्ण के समय की सर्वप्रथम घटनाएं कौन-सी थीं?

उत्तर–राम-रावण युद्ध, महाभारत।

प्रश्न 4. महाभारत का युद्ध किस-किस के बीच में हुआ?

उत्तर–कौरवों और पांडवों के बीच।

प्रश्न 5. अर्जुन कौन था?

उत्तर–पाण्डव एवं कृष्ण का सखा।

प्रश्न 6. भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को क्या उपदेश दिया?

उत्तर–गीता का उपदेश।

प्रश्न 7. यह उपदेश कब दिया गया?

उत्तर–महाभारत युद्ध के समय।

उद्देश्य कथन–महाभारत युद्ध के समय अर्जुन के मन में बड़ा विषाद उत्पन्न हुआ उस समय अर्जुन के रथ के सारथी एवं कुशल राजनीतिज्ञ तथा धर्मनायक भगवान् कृष्ण अर्जुन को कर्त्तव्यपरायणता का उपदेश दिया। यह उपदेश 'गीता' के नाम से प्रसिद्ध श्रीमद्भगवद्गीता में वेदों एवं उपनिषदों का सम्पूर्ण सार आ गया है। आज हम इसी गी के दो श्लोकों का अध्ययन करेंगे, जिसमें भगवान् श्रीकृष्ण ने इस बात पर बल दिया है सन्तों की रक्षा वे स्वयं करते हैं।

विषयोपस्थापन–

यदा-यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे-युगे॥ (गीता-417-

सम्पूर्ण पाठ (अर्थात् दोनों श्लोकों) को एक ही अन्विति में पढ़ाया जाएगा।

आदर्श वाचन–अध्यापक दोनों श्लोकों का उचित लय एवं भावपूर्ण मुद्रा में आद वाचन करेगा।

बोध परीक्षा–

प्रश्न 1. इन श्लोकों में वक्ता कौन है?

उत्तर–भगवान् श्रीकृष्ण।

प्रश्न 2. भगवान् श्रीकृष्ण किससे कह रहे हैं?

उत्तर–अर्जुन से।

प्रश्न 3. भगवान् अवतार कब लेते हैं

उत्तर–जब धर्म का ह्रास होता है।

स्पष्टीकरण–

अन्वय–सर्वप्रथम श्लोकों का खण्डान्वय प्रणाली से अन्वय किया जाएगा।

प्रश्न 1. एतयो श्लोकयोः कः कथयति?

उत्तर–भगवान् श्रीकृष्णः कथयति।

प्रश्न 2. सः कं कथयति?

उत्तर–अर्जुनम्।

प्रश्न 3. भगवान् श्रीकृष्णः अर्जुनं केन नाम्ना सम्बोधयति?

उत्तर–'भारत' नाम्ना।

प्रश्न 4. भगवान् कं सृजति?

उत्तर–आत्मानम्।

प्रश्न 5. कस्य ग्लानिः भवति?

उत्तर–धर्मस्य।

प्रश्न 6. अधर्मस्य किम्भवति?

उत्तर–अभ्युत्थानम्।

प्रश्न 7. भगवान् आत्मानं कदा सृजति?

उत्तर–यदा-यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति, अधर्मस्य च अभ्युत्थानम् भवति।

प्रश्न 8. केषाम परित्राणाय भगवान् सम्भवति?

उत्तर–साधूनां परित्राणाय।

प्रश्न 9. कस्य संस्थापनार्थाय सः अवतरति?

उत्तर–धर्मसंस्थापनार्थाय।

प्रश्न 10. अवतारस्य अन्यत् किं प्रयोजनम्?

उत्तर–दुष्कृताम् विनाशः।

पदच्छेद तथा पदार्थ कथन–कविता शिक्षण में पदार्थ के लिए सामान्य पदच्छेद ठीक है, किन्तु अनेकानेक युक्तियों का प्रयोग सौन्दर्यानुभूति में बाधक है, अतः पदार्थ का कथन करके आगे बढ़ा जाएगा।

पदच्छेद–

ग्लानिर्भवति	=	ग्लानिः + भवति
अभ्युत्थानमधर्मस्य	=	अभ्युत्थानम् + अधर्मस्य

तदात्मानं	=	तदा + आत्मानं
सृजाम्यहम्	=	सृजामि + अहम
धर्मसंस्थापनार्थाय	=	धर्मसंस्थापन + अर्थाय

पदार्थ–

पद	अर्थ
ग्लानिः	ह्रास, अवनति
भारत	अर्जुन
अभ्युत्थानम्	उन्नति
आत्मानं	स्वयं को
परित्राणाय	रक्षा के लिए
साधूनां	सज्जनों को
दुष्कृताम्	पापियों को
विनाशाय	नाश के लिए
संस्थापनाथार्य	स्थापना करने के लिए

अध्यापक कथन–इन श्लोकों में 'सृजामि' तथा 'सम्भवामि' दोनों क्रियाएं ध्यान देने योग्य हैं। एक का अर्थ है–रचना, दूसरे का अर्थ है–उत्पन्न होना। भगवान् स्वयं की रचना भी करते हैं। रचना और रचयिता दोनों ही वह स्वयं है। जब वे इस धरा पर उत्पन्न होते हैं और मनुष्य का शरीर धारण करते हैं तो इसे अवतार कहा जाता है। जब-जब धर्म की अवनति और अधर्म की उन्नति होती है तो पापों के नाश, सज्जनों की रक्षा एवं धर्म की स्थापना के लिए वे अवतार धारण करते हैं।

भाव-विश्लेषण–

प्रश्न 1. भगवान् अवतार कब धारण करते हैं?

उत्तर–जब धर्म की अवनति और अधर्म की उन्नति होती है।

प्रश्न 2. वे अवतार क्यों धारण करते हैं?

उत्तर–सज्जनों की रक्षा एवं धर्म की स्थापना के लिए।

प्रश्न 3. अवतार में कौन किसकी रचना करता है?

उत्तर–भगवान् स्वयं ही स्वयं की रचना करते हैं।

प्रश्न 4. कुछ प्रमुख अवतारों के नाम बताओ।

उत्तर–राम, कृष्ण, परशुराम, मत्स्य, कच्छप, नृसिंह, बराह, वामन आदि।

प्रश्न 5. इन श्लोकों से तुम्हें क्या शिक्षा मिलती है?

उत्तर–भगवान् धर्म की रक्षा करते हैं एवं अधर्म का नाश करते हैं।

आदर्श वाचन–अध्यापक श्लोकों का पुनः आदर्श वाचन करेगा।

तुलना (अध्यापक कथन)–छात्रो! जिस भाव को गीता के इन दो श्लोकों में व्यक्त किया गया है, उसी भाव को हिंदी के संत कवि भक्त शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास ने अपनी प्रसिद्ध रचना 'श्रीरामचरितमानस' में निम्नलिखित ढंग से प्रकट किया है–

जब जब होहिं धर्म कै हानी।
बाढ़हिं असुर महा अभिमानी॥
तब-तब धरि प्रभु मनुज शरीरा।
हरहिं दयानिधि सज्जन पीरा॥

यहां पर गोस्वामी तुलसीदास ने स्पष्ट रूप से कहा है कि धर्म की हानि एवं असुरों की वृद्धि होने पर सज्जनों की पीड़ा के निवारणार्थ प्रभु मनुष्य का शरीर धारण करते हैं।

उड़िया के प्रसिद्ध कवि लक्ष्मीकांत महापात्र ने भी 'युगावतार' शीर्षक के अन्तर्गत इसी प्रकार के भाव व्यक्त किये हैं। कान्त कवि लिखते हैं–

दुष्कृति विनाश-सन्तजन परित्राण–
कारण धरारे अवतरि महाप्राण।
स्वर्गर वारता धेनि अहे देवदूत।
पुण्यभूमि को करि अच्छा पूत।
धर्मस्थापन हेतु युगे-युगे जहिं।
अवतरि ऐसी शक्ति उस्वासइ महि।

यहां पर धेनि का अर्थ लाना, वारता का अर्थ वार्ता, ऐसी का अर्थ ईश्वरीय तथा उस्वासइ का अर्थ भार हल्का करने से है। उड़ीसा का यह प्रसिद्ध कवि कहता है कि दुष्कृति के विनाश एवं सन्तों के परित्राण के कारण हे देवदूत! तुम स्वर्ग के समाचार लाए हो जिसने पुण्य भूमि भारत को पवित्र किया है। युग-युग में पृथ्वी के भार को कम करने के लिए एवं धर्म की स्थापना के लिए ईश्वरीय शक्ति का अवतार होता है।

सस्वर वाचन–कतिपय छात्रों द्वारा श्लोकों का पाठ किया जाएगा।

प्रयोग–दोनों श्लोकों, तुलसी की चौपाई एवं कांत कवि की पंक्तियों को घर से कण्ठस्थ करके लाओगे।

गद्य-पाठ योजना–2

विद्यालय का नाम–..... **दिनांक–**.....
अध्यापक का नाम–..... **कक्षा–**.....
विषय–संस्कृत गद्य **अवधि**–40 मिनट
शीर्षक–हिमालय वर्णनम् **क्रालांश–**.....

सामान्य उद्देश्य–

1. गति, यति, लय एवं भार के अनुसार छंद पाठ करने की योग्यता उत्पन्न करना।
2. कविता के मुख्य भावों को ग्रहण करने की योग्यता प्रदान करना।
3. छात्रों के भावों का परिष्कार करते हुए उनमें प्रदत्त भावों का विकास करना।
4. कविता के अन्तर्गत शब्द-योजना के आधार पर दृश्य चित्रों की उद्भावना करना।
5. काव्य सौन्दर्य की अनुभूति करने की क्षमता प्रदान करना।
6. कविता का रसास्वादन करके अपने शब्दों में उसकी व्याख्या कर सकना।
7. छात्रों को कविता की विभिन्न शैलियों से परिचित कराना।
8. छात्रों को वाच्यार्थ, लक्ष्यार्थ, व्यंग्यार्थ, प्रसंगोद्भावनाएं, अन्त:कथाएं एवं समान भाव की कविताओं से परिचित कराना।
9. कवि के जीवन-दर्शन से छात्रों को परिचित कराना।
10. छात्रों की कल्पना-शक्ति का विकास करते हुए उन्हें काव्यगत रस एवं भाव का आनन्द लेने के योग्य बनाना।
11. स्वयं काव्य-रचना करने के लिए छात्रों को प्रोत्साहित करना।

विशिष्ट उद्देश्य–(1) छात्रों को हिमालय पर्वत की प्राचीनता और श्रेष्ठता से अवगत कराना।

(2) छात्रों में हिमालय के प्रति रागात्मक सम्बन्ध उत्पन्न कर, भारत के साथ उसकी अभिन्नता का ज्ञान देना।

सहायक सामग्री–लपेट श्यामपट्ट पर लिखित कतिपय समानान्तर कविताएं तथा कक्षोपयोगी अन्य सामान्य उपकरण।

पूर्व ज्ञान–(1) छात्र भारत की उत्तरी सीमा से दृढ़ प्रहरी हिमालय पर्वत के नाम से पूर्णतया परिचित हैं।

(2) वे इस पर्वत की सर्वोच्चता, महत्ता तथा उपयोगिता का ज्ञान भी रखते हैं।

(3) हिन्दी भाषा में इसके प्रति लिखी गई कविताओं का अध्ययन भी वे कर चुके हैं।

प्रस्तावना–अध्यापक छात्रों को निम्नलिखित कविता सुनाकर प्रश्न करेगा–

वाल्मीकिमुख्या: कवयो यदीयाम्, सर्वे प्रभूतां प्रथयन्ति कीर्तिम्।
वेदप्रभा दीपित भूसुराणाम् देश: चिरं भानु स भारताख्य:॥
सुधोपमैर्दिव्यजलै: सदैव, गंगादयो य सततं चुनन्ति।
श्री शारदागीतयश: प्रशस्ति: देश: चिरं भानु सभारताख्य:॥

1. इस कविता में किस देश का वर्णन किया गया है?
2. यहां की सबसे पवित्र नदी कौन सी है?
3. गंगा नदी किस पर्वत से निकलती है?
4. इस पर्वत का नाम हिमालय क्यों है?
5. इस पर्वत का सर्वोच्च शिखर किस नाम से विख्यात है?

उद्देश्य कथन–विश्व के समस्त पर्वतों में अपने उन्नत शिखरों के लिए प्रसिद्ध सदैव हिम से आच्छादित हिमालय भारत के गौरव का प्रतीक है। यह प्रकृति-प्रेमियों की रमणस्थली है तो कवियों की कल्पना का उज्जवल विषय। प्राचीन समय से आज तक अनेक कवियों ने, अनेक भाषाओं में, सुन्दर भावों और मंजुल कल्पनाओं से इसके रूप का वर्णन किया है, संस्कृत के प्रसिद्ध कवि कालदिास ने भी अपने महाकाव्य कुमारसम्भव के प्रारम्भ में इस पर्वत-श्रेष्ठ की मनोरमता का अनुपम वर्णन किया है। आज हम हिमालय के इसी विशद् वर्णन के कुछ श्लोकों का रसास्वादन करेंगे।

यं सर्वशैला: करिकल्प्य वत्सं मेरौ स्थिते दोग्धरि दोहदक्षे।
भास्वन्ति रत्नानि मनौषधीश्च प्रथूपदिष्टां दुदुहुर्धरित्रीम्॥
अनन्त रत्न-प्रभवस्य यस्य हिं न सौभाग्य विलोपि जातम्।
एकोहि दोषो गुण सन्निपाते निमज्जतीन्दो: किरणेष्विवाङ्क:॥

विषयोपस्थापन–पाठ को अन्वितियों में विभक्त करके पढ़ाया जाएगा–

1. 'यं सर्वशैल: ..... धरित्रीम्।'
2. 'अनन्त ..... अंक।'

आदर्श पाठ–अध्यापक प्रथम अन्विति का उचित स्वरारोह-अवरोह के साथ एवं उचित भाव-भंगिमा सहित सस्वर पाठ करेगा।

उच्चारणाभ्यास–अध्यापक निम्नलिखित पदों का उच्चारण छात्रों से पूछेगा तथा आवश्यक अभ्यास कराएगा–

(1) करिकल्प्य, (2) मेरौ, (3) महौषधीश्च, (4) प्रथूपदिष्टाम्, (5) दुदुहुर्धरित्रीम्।

अनुकरण पाठ–कतिपय छात्रों द्वारा।

बोध प्रश्न–(1) समस्त पर्वतों ने किसका दोहन किया?

(2) दोहन करके पृथ्वी से उन्होंने क्या प्राप्त किया?

स्पष्टीकरण–अध्यापक छात्रों के लिए निम्नलिखित पदों का अर्थ स्पष्ट करेगा–

पद	अर्थ	प्रणाली
1. परिकल्प्य	बनाकर या मानकर	व्युत्पत्ति द्वारा परि + कल्प् + ल्यप्

2. दोग्धरि	दोहन करने वाले	अर्थ कथन द्वारा
3. दोहदक्षे	दोहने क्रिया में कुशल	समास विग्रह द्वारा
4. भास्वन्ति	प्रभामय	पर्याय कथन द्वारा
5. महौषधीः	दिव्य औषधियों को	सन्धि विच्छेद द्वारा महा + औषधीः
6. पृथूपदिष्टाम्	राजा पृथु द्वारा बताई गई	सन्धि-विच्छेद द्वारा प्रथु + उपदिष्टाम्

भाव-विश्लेषण प्रश्न–(1) पृथ्वी को हम भारतीय किस प्राणी के रूप में मानते हैं?

अध्यापक कथन–श्रीमद्भागवत् पुराण में उल्लेख है कि एक बार राजा पृथु के राज्य में अन्न की भारी कमी हो गई। अन्न-उत्पादन भी नहीं हुआ। प्रजा भूख से मरने लगी। महाराज पृथु ने अपने ज्ञान द्वारा यह ज्ञात कर लिया कि पृथ्वी का यह दोष है कि उसने अपने में अन्नादिक को छिपा लिया है। यह कुपित हुआ और धनुष-बाण लेकर पृथ्वी को नष्ट कर डालने के लिए उद्यत हुआ। पृथ्वी उसके भय से गौ का रूप धारण कर भागी, किन्तु वह तब तक उसका पीछा करता रहा, जब तक वह गौ उसकी शरण में नहीं आई। तब से हम गौ के रूप में पृथ्वी को मानते हैं।

(2) गाय से दूध दुहाने के लिए किन-किन साधनों की आवश्यकता होती है?
(3) गाय किसके प्रति स्नेह होने के कारण दूध प्रदान करती है।
(4) गौ रूपी पृथ्वी का किसके आदेश से दोहन किया गया?
(5) गौ रूपी पृथ्वी का किसने दोहन किया?
(6) समस्त पर्वतों ने किसको बछड़ा बनाया?
(7) अतः हिमालय किसका पुत्र हुआ?
(8) दोहन के समय दोहनकर्त्ता कौन उपस्थित था?
(9) मेरुपर्वत किस क्रिया में चतुर था?
(10) हिमालय को बछड़ा बनाकर पर्वतों ने गौ-रूपी पृथ्वी से क्या निकाला?
(11) वे रत्न कैसे (रूप वाले) थे?
(12) वे औषधियां कैसी थीं?
(13) पृथ्वी का दोहन क्यों किया गया?

अध्यापक कथन–जब राजा पृथु पृथ्वी से कुपित थे, शरणागत पृथ्वी के समक्ष अपने अपराध को स्वीकार किया एवं अन्न, रत्न आदि सभी वस्तुएं पुनः

भांति देने के लिए कहा; तब राजा पृथु ने सभी वर्गों के प्राणियों और अनुचरों से भी पृथ्वी का दोहन करने के लिए कहा। राजा पृथु के आदेश से देव, दानव, पशु, वनस्पति, पर्वत आदि सभी ने गौ रूपी पृथ्वी का दोहन करके उत्तम पदार्थों, रसों और सम्पत्तियों को प्राप्त किया। पर्वतों द्वारा हिमालय को वत्स बनाकर पृथ्वी दोहन करने की कथा का उल्लेख श्रीमद्भागवत् महापुराण के चौथे स्कन्ध के अन्तर्गत 18वें अध्याय के 22वें श्लोक में हुआ है। व्यास जी कहते हैं, "गिरयो हिमवद्वत्सां नानाधातून स्वसानुषु।"

अर्थात् पर्वतों ने हिमालय वत्स वाली पृथ्वी से निकल कर अपने शिखरों पर अनेक प्रकार की धातुओं को धारण किया।

(14) इस पौराणिक कथा से हिमालय की क्या विशेषता प्रकट होती है?

अध्यापक कथन–हिमालय प्रत्येक युग में एक महत्त्वपूर्ण पर्वत रहा है, इसीलिए वह भारतीयों को प्रिय है तथा उनके द्वारा प्रशंसनीय व पूजनीय है।

(15) इस प्रतीकात्मक कथन का रहस्य क्या है?

अध्यापक कथन–हिमालय पृथ्वी-पुत्र है। अतः समस्त चराचर जगत् में वह सर्वश्रेष्ठ है। मां अपने शरीर के सारे दूध को, स्नेहवश अपने पुत्र को दे देना चाहती है। पृथ्वी ने भी यही किया है। पृथ्वी को वसुन्धरा कहा जाता है। उसका सार है–रत्न, दिव्य वनस्पतियां एवं अन्य खनिज पदार्थ वे सब हिमालय पर अपरिमित रूप में प्राप्त होते हैं जिसे मानो पृथ्वी ने ही उसे प्रदान किया है, अर्थात् समस्त पृथ्वी पर हिमालय पर्वत हो, अन्य स्थानों की अपेक्षा सर्वाधिक दिव्य सम्पदाओं को धारण करने वाला है–महान् है।

आदर्श पाठ–अध्यापक द्वारा–द्वितीय अन्विति का।

उच्चारणाभ्यास–अध्यापक निम्नलिखित पदों का उच्चारण छात्रों से पूछेगा तथा यथावश्यक अभ्यास कराएगा–

(1) अनन्तरत्नप्रभवस्य, (2) निभज्जतीन्दोः, (3) किरणेष्विवांक

अनुकरण पाठ–कतिपय छात्रों द्वारा।

बोध प्रश्न–(1) हिमालय पर्वत पर निरन्तर क्या छायी रहती है?
(2) हिम से आच्छादित हिमालय का वर्णन कैसा है?

स्पष्टीकरण–अध्यापक छात्रों के लिए निम्नलिखित पदों का अर्थ स्पष्ट करेगा–

पद	अर्थ	प्रणाली
1. अनन्त-रत्नप्रभवस्य	असंख्य रत्नों के उत्पन्न करने वाले	समास विग्रह द्वारा "अनन्तानि रत्नानि प्रभवति यस्यात सः तस्य"
2. सौभाग्य-विलोपि	सुन्दरता को नष्ट करने वाला	"सौभाग्य विलोपयति यति तत्" समास विग्रह द्वारा

3. गुण-सन्निपाते	गुणों के समूह में	समास विग्रह द्वारा "गुणानां सन्निपाते"
4. निमज्जति	लीन हो जाता है (नष्ट हो जाता है)	अर्थ कथन द्वारा
5. इन्दोः	चन्द्रमा का	"चन्द्रस्य" पर्याय-कथन द्वारा
6. अंक	कालिमा	"कृष्णं चिन्हिम" पर्याय कथन द्वारा

भाव विश्लेषणात्मक द्वारा–

1. हिमालय पर्वत क्या उत्पन्न करने वाला है?
2. हिमालय से रत्न कितनी मात्रा में उत्पन्न होते हैं?
3. हिमालय को सदा कौन आच्छादित किए रहता है?
4. हिमालय पर आच्छादित हिम होने से उस पर क्या उत्पन्न नहीं होते?
5. पर्वत की शोभा किन-किन कारणों से होती है?
6. हिम उस शोभा को कैसा बनाता है?
7. परन्तु कवि ने हिम को कैसा बताया है?
8. हिमालय के हिम का दोष किनमें लीन हो जाता है?
9. इस प्रकार हिमालय में दोषों की अपेक्षा क्या अधिक है?
10. चन्द्रमा का क्या दोष है?
11. चन्द्रमा की क्या विशेषता है?
12. चन्द्रमा की कालिमा किसमें लीन हो जाती है?
13. इस उदाहरण द्वारा कवि क्या सिद्ध करना चाहता है।

सस्वर पाठ–अन्वित-द्वय का, अध्यापक या छात्रों द्वारा।

आवृत्त्यात्मक प्रश्न–

1. सर्वशैलाः का दुदुहः?
2. धारित्री केन निर्दिष्टा?
3. शैलाः कं वत्स पर्यकल्पत?
4. कानि धरित्र्यया: शैलाः प्राप्नुवन्?
5. हिमालय दोषः–हिमं कस्मिन् निमज्जति?
6. हिमालय सौन्दर्यः केन न विनष्टम्?
7. चन्द्रमसः अङ्क केषु निमज्जति?
8. अतः गुणेषु विद्यमानेषु अपि कः न मान्यः भवति?

अभ्यास के प्रश्न

1. पद्य की परिभाषा देते हुए इसके सामान्य लक्षणों की चर्चा कीजिए।
2. संस्कृत पद्य शिक्षण के क्या उद्देश्य हैं? संस्कृत पद्य शिक्षण की विधियों का वर्णन कीजिए।
3. संस्कृत पद्य शिक्षण से आपका क्या अभिप्रायः है? पद्य शिक्षण की खण्डान्वय व दण्डान्वय विधि का वर्णन कीजिए।
4. संस्कृत गद्य शिक्षण में सौन्दार्यनुभूति से क्या तात्पर्य है? पद्य में रुचि को जागृत करने के लिए आप किन-किन साधनों को अपनाएंगे?
5. "आपके विद्यालयों में छात्र पद्य के प्रति शाश्वत प्रेम का सृजन नहीं कर सकता।" इस कथन की पुष्टि करते हुए स्पष्ट कीजिए कि पद्य-प्रेमोत्कर्ष में विद्यालय का क्या योगदान हो सकता है?
6. संस्कृत पद्य शिक्षण गद्य शिक्षण विधि से किस प्रकार भिन्न है? पूर्णतया स्पष्ट करें।
7. संस्कृत पद्य पाठ के शिक्षण में पाठ योजना की रूप-रेखा तैयार कीजिए।
8. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए–
   (क) पद्य शिक्षण में सामान्तर पंक्तियों का प्रयोग।
   (ख) पद्य शिक्षण के आवश्यक गुण।
   (ग) पद्य शिक्षण में सस्वर वाचन का महत्त्व।
   (घ) संस्कृत शिक्षण में पद्य शिक्षण का महत्त्व।

❑❑❑

अध्याय 11

संस्कृत रचना शिक्षण–प्रक्रिया, उद्देश्य, सोपान एवं पाठ योजना

मनुष्य अपने विचारों की अभिव्यक्ति बोलकर या लिखकर प्रकट करता है। विचाराभिव्यक्ति का लिखित रूप ही रचना है। बोलकर अभिव्यक्ति मौखिक रचना है। बालक पहले मौखिक अभिव्यक्ति करता है, इसलिए मौखक रचना कार्य लिखित रचना के पहले होता है। संस्कृत रचना के बिना छात्र का संस्कृत–ज्ञान अपूर्ण होता है। रचना के द्वारा ही बालक संस्कृत भाषा में बोलकर विचाराभिव्यक्ति के योग्य होता है तथा लिखकर अपने मन के भावों को प्रकट कर सकता है। 'रचना' अर्थात् नवीन निर्माण वाक्य रचना से लेकर बड़े–बड़े ग्रन्थों का निर्माण रचना की परिधि में आते हैं। संस्कृत में एक वाक्य से लेकर लम्बे–लम्बे भाषण, मौखिक रचना में माने जा सकते हैं। रचना के द्वारा ही बालक की क्षमता का मूल्यांकन सम्भव है। रचना के द्वारा ही ज्ञान में स्थायित्व आता है।

हमारे विद्यालयों में संस्कृत के अध्यापक संस्कृत रचना की ओर ध्यान नहीं देते। उनके ध्यान न देने का एक प्रमुख कारण यह रहता है कि छात्रों के लिए संस्कृत में लिखना तथा बोलना बहुत कठिन प्रतीत होता है, किन्तु मेरी समझ में यह स्वयं में कारण न होकर अध्यापक की अपेक्षा का ही परिणाम है। कार्य–कारण के सम्बन्ध को यहां लोगों ने उलट दिया है और कारण को ही कार्य समझ लिया है। छात्रों को संस्कृत की कविता एवं जटिलता का मिथ्या ज्ञान कराया जाता है। उसकी आड़ में संस्कृत के विरोधियों का मनोबल पुष्पित एवं फलित होता है। यह स्थिति अवांछनीय है। संस्कृत के अध्यापकों को भी रचना के क्षेत्र में आवश्यक कार्य करना चाहिए।

रचना का अर्थ–प्रत्येक व्यक्ति के अपने कुछ विचार होते हैं, भावनाएं होती हैं, जिन्हें वह मौखिक या लिखित रूप से व्यक्त करने का प्रयास करता है। इन भावों को सुन्दर, व्यवस्थित तथा प्रभावशाली रूप से प्रकट करने को ही रचना कहते हैं। रचना को अंग्रेज़ी भाषा में Composition कहते हैं। रचना का शाब्दिक अर्थ है–सजाना अथवा

संवारना। भाषा के क्षेत्र में रचना से तात्पर्य किसी विचार अथवा भाव को ऐसे शब्द समूह में संजोने से होता है, जिसका यथेष्ट प्रभाव पड़े। यही कारण है कि रचना को 'आत्माभिव्यक्ति' का अभ्यास, 'भाषागत प्रकाशन', 'विचारों की कलात्मक अभिव्यक्ति' आदि भी कहा गया है।

संक्षेप में रचना की परिभाषा निम्न शब्दों में की जा सकती है–

"रचना वह सार्थक तथा कलात्मक अभिव्यक्ति है, जिसके द्वारा हम निश्चित उद्देश्यों को सामने रखकर अपने विचारों को लिपिबद्ध करते हैं।"

रचना के रूप–रचना दो प्रकार की होती है–मौखिक रचना तथा लिखित रचना। दूसरे शब्दों में रचना कार्य मौखिक रूप से भी किया जा सकता है और लिखित रूप से भी। भाव-प्रकाशन सर्वप्रथम बोलचाल द्वारा ही होता है, लिपिबद्ध अक्षरों द्वारा बाद में होता है। वास्तव में मौखिक रचना लिखित रचना का आधार है। मौखिक रचना या बोलचाल के सम्बन्ध में अलग से विचार किया गया है। यहां हम केवल लिखित रचना के सम्बन्ध में ही चर्चा करेंगे।

लिखित रचना का महत्त्व

लिखित रचना भाषा शिक्षण का महत्त्वपूर्ण अंग है। इसके माध्यम से ही हम अपने विचारों को स्थायित्व प्रदान करते हैं। उन्हें संवार कर सुव्यवस्था प्रदान करते हैं और विभिन्न शैलियों में सजाकर साहित्य में अभिवृद्धि करते हैं। वास्तव में किसी भाषा का साहित्य उस जाति के अनुभवों तथा विचारों की लिखित रचना का ही परिणाम होता है। लिखित रचना के माध्यम से ही मानव संस्कृति सुरक्षित रहती है।

लिखित रचना या भाषा में हमें सतर्क रहना पड़ता है। इसमें अनावश्यक स्थलों अथवा प्रसंगों का कोई स्थान नहीं होता। हमें नपे–तुले शब्दों में ही सुव्यवस्थित ढंग से ही अपने विचारों को क्रमबद्ध करना पड़ता है। इस प्रकार समस्त ज्ञान–विज्ञान को स्थायी रूप देने के लिए लिखित भाषा (रचना) की आवश्यकता होती है। लिखित रचना के अभाव में इस विशिष्ट प्रकार के विकास की कल्पना नहीं की जा सकती।

रचना शिक्षण के उद्देश्य

रायबर्न के अनुसार, "लिखित रचना का मूल उद्देश्य छात्रों को इस योग्य बना देना है कि वे अपने विचारों को अपने ढंग से व्यवस्थित कर सकें तथा स्वतन्त्रतापूर्वक प्रभावशाली रूप में व्यक्त कर सकें।" इस आधार पर रचना–शिक्षण के निम्नलिखित उद्देश्य हो सकते हैं–

1. छात्रों को इस योग्य बनाना कि वे अपने विचारों को स्पष्टतापूर्वक, क्रमबद्ध रूप तथा शुद्ध भाषण में लिख सकें।

2. छात्रों के शब्द भण्डार एवं सूक्ति भण्डार में वृद्धि करना तथा उस शब्द भण्डार का सफलता से प्रयोग करना सिखाना।
3. छात्रों को रचना की विभिन्न शैलियों से परिचित कराना तथा उनमें स्वतन्त्र शैली के सृजन की क्षमता पैदा करना।
4. छात्रों की निरीक्षण, तर्क, कल्पना तथा विवेक शक्तियों का विकास करना।
5. छात्रों को सत्-साहित्य के सृजन के लिए प्रेरित करना।
6. छात्रों में अवलोकन, अध्ययन, चिन्तन और मनन की रुचि उत्पन्न करना।
7. छात्रों को अवसर एवं प्रसंगानुकूल भाषा शैली के प्रयोग करने तथा सामान्य पत्र और साहित्यिक रचनाएं लिखने के योग्य बनाना।
8. छात्रों को कम-से-कम भाषा से अधिक-से-अधिक भाव व्यक्त करने में निपुण करना।

चैम्पिसन महोदय के अनुसार रचना का परम लक्ष्य छात्रों को इतना सक्षम बनाना कि "वह अपनी बातों को स्वधानीपूर्वक, अपने शब्दों को अपने ढंग से स्वतन्त्र शैली में व्यक्त कर सकें।" (The ultimate aim of composition is to enable the pupil to arrange his own ideas, in his own way freely, to choose his own words, to express his own ideas freely.)

इस प्रकार रचना का मुख्य उद्देश्य यही है कि छात्र विभिन्न प्रकार की रचना शैलियों से परिचित होकर अपनी स्वतन्त्र शैली का निर्माण करें तथा मातृभाषा को शुद्ध रूप में लिखने एवं प्रयोग करने की क्षमता प्रदान करें।

लिखित रचना के विशेष गुण (विशेषताएं)

भाषा शास्त्रियों के मतानुसार लिखित रचना भाषा की शिक्षा में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। इसमें निम्नलिखित गुण अपेक्षित हैं-

1. रचना का लेख सुन्दर एवं स्पष्ट होना चाहिए।
2. रचना के लिए स्पष्ट, संक्षिप्त यर्थाथ तथा शुद्ध नपे-तुले शब्दों का प्रयोग अपेक्षित है।
3. उसमें भावानुकूल शब्दों का प्रयोग हो।
4. उसमें प्रवाह एवं क्रमबद्धता हो।
5. रचना संक्षिप्त तथा प्रसंगानुकूल हो।
6. विषय-सामग्री उचित-उचित अनुच्छेदों में विभाजित हो।
7. रचना में ऐसे वाक्यों का प्रयोग न किया जाए जो भावों को अस्पष्ट बना दें। शिथिल वाक्य भी भावों को अस्पष्ट बना देते हैं। वाक्य छोटे तथा स्पष्ट होने चाहिए।

8. अनावश्यक या निरर्थक शब्दों का प्रयोग नहीं होना चाहिए।
9. भाषा एवं शैली सामयिक हो।
10. समस्त रचना में भाव की एकता का निर्वाह हो।
11. उसमें तर्क, कल्पना, विवेचन तथा विवेक का समावेश हो।
12. भावानुकूल भाषा एवं शब्दावली आवश्यक है।
13. भाषा व्याकरण सम्मत हो। अशुद्ध प्रयोग करना तथा दुर्बल वाक्य बनाना रचना कार्य को अस्वाभाविक एवं दोषपूर्ण बना देते हैं।
14. उच्च कक्षाओं की रचना गहन एवं गम्भीर हो परन्तु छोटी कक्षाओं की रचना सरल होनी चाहिए।

रचना शिक्षण की प्रक्रिया

रचना शिक्षण की प्रक्रिया के पांच सोपान हैं-

1. रचना के विषय में चुनाव (Selecting the topic of Composition)-यह जरूरी नहीं कि रचना के विषय का चुनाव शिक्षक ही करे। छात्र खुद भी अपने अनुभवों के क्षेत्र से विषय ले सकते हैं। ऐसे विषयों को व्यक्त करने में वे स्वयं रुचि लेंगे। जहां छात्र विषय का चयन न कर सकें, वहां अध्यापक विषय प्रस्तुत कर सकता है।

2. विचारों का संकलन (Collection of Thoughts)-विषय की मौखिक चर्चा के साथ ही विचारों का संकलन हो सकता है।

3. विचारों की व्यवस्था (Organisation of Thoughts)-विचारों को क्रमबद्ध रूप में व्यवस्थित करना चाहिए। आवश्यकतानुसार श्यामपट पर छात्रों की सहायता के लिए रूप-रेखा दे देनी चाहिए। इसके लिए चित्रों की भी सहायता ली जा सकती है।

4. लिखना (Writing)-रूप-रेखा को विकसित करना और लिपिबद्ध करना।

5. संशोधन (Correction)-छात्रों के लिखने के बाद तुरन्त ही लिखाई का संशोधन होना चाहिए। अशुद्धियां निकालकर और समझाकर पुनः लिखने का आदेश देना चाहिए।

रचना के विषय

विद्यार्थियों की योग्यता तथा मानसिक अवस्था के अनुसार रचना के स्तर और विषय भिन्न-भिन्न हैं। रचना की शिक्षा वाक्य रचना से शुरू होती है। बाद में अभ्यास और प्रयोग द्वारा विविध विषयक लम्बी रचनाओं में सहायता दी जा सकती है।

रचना के विषयों का भी एक विशेष क्रम होना चाहिए जो निम्नलिखित सिद्धान्तों पर आधारित हो-

1. आरम्भ में रचना के विषय ऐसे होने चाहिए, जिनका छात्रों को अनुभव हो।

बच्चे उन विषयों में आसानी से रचना कार्य कर सकते हैं। जिनका उन्हें अनुभव हो, जिन वस्तुओं या स्थानों को वे देख चुके हों इत्यादि।

2. इसी क्रम में छात्रों को अपनी कल्पना शक्ति तथा विचार-शक्ति के प्रयोग में सहायता देनी चाहिए।
3. अंत में उनके विषयों की विविधता का विस्तार करना चाहिए तथा कठिन विषयों को उनके सम्मुख उपस्थित करना चाहिए।

रचना के विषयों से सम्बन्धित अनेक सुझाव व्याकरण की विभिन्न पुस्तकों में दिए गए हैं। पाठकों से निवेदन है कि वे उनका अध्ययन करें। कुछ एक विषयों का विवरण नीचे दिया जा रहा है।

आरम्भिक कक्षाओं के लिए रचना विषय-

1. सरल वाक्य बनाना।
2. साधारण प्रश्नों के उत्तर लिखना।
3. वार्तालाप।
4. अपूर्ण वाक्यों में रिक्त स्थानों की पूर्ति करना।
5. घरेलू मुहावरों का प्रयोग करना।
6. आस-पास की वस्तुओं आदि का सरल वर्णन करना।
7. चित्र वर्णन।
8. अनुभव के आधार पर वर्णन करना, जैसे-यात्रा, दृश्य दुर्घटना आदि।
9. डायरी लिखना।
10. काल्पनिक वर्णन-'यदि मैं शिक्षा मंत्री होता' या 'राजा होता' आदि।
11. साधारण पत्र व्यवहार करना।
12. किसी कहानी या लेख का सारांश लिखना।

माध्यमिक कक्षाओं तथा उच्च कक्षाओं के लिए रचना विषय-

1. शब्द-प्रयोग, मुहावरों का प्रयोग।
2. वाक्यों में रिक्त स्थानों की पूर्ति।
3. प्रश्नोत्तर।
4. कथा-वर्णन।
5. पाठ के आधार पर आत्मानुभव।

यह सब पाठ्य-पुस्तक पर आधारित होना चाहिए। इसके अतिरिक्त स्वतन्त्र रूप से भी रचना कार्य हो सकता है, जैसे-

1. चुटकले।
2. कथा वर्णन, घटना वर्णन।
3. दैनिक आवश्यकताओं के लिए रचना जैसे-निमन्त्रण, अभिनन्दन-पत्र, प्रार्थना-पत्र, तार, सूचना आदि।
4. व्यावहारिक तथा सरकारी पत्र।
5. संवाद रचना।
6. किसी अन्य भाषा में अनुवाद करना।
7. संक्षेप तथा सार लिखना।
8. विवरणात्मक लेख लिखना, जैसे-दुर्घटना, जीवनी, सैर आदि।
9. वर्णनात्मक, जैसे-दीवाली, मैच, रेलवे स्टेशन का दृश्य आदि।
10. विचारात्मक, जैसे-ग्राम्य जीवन, चल-चित्र, बेकारी, विज्ञान के लाभ-हानियां, जनसंख्या में वृद्धि आदि।
11. स्कूल पत्रिका के लिए सृजनात्मक रचना आदि।
12. भित्ति पत्रिका के लिए रचना कार्य।

वास्तव में एक सभी विषयों का क्रम आयोजन और बाद में छात्रों से इन विषयों में रचना कार्य करवाने का दायित्व अध्यापक पर है। यदि वह स्वयं इन सभी कार्यों में रुचि रखता हो तो वह छात्रों से यह सब कार्य करवा सकता है। इसके लिए अधिक समय, परिश्रम एवं स्वाध्याय की आवश्यकता है।

रचना शिक्षण की प्रणालियां

रचना-शिक्षण की अनेक प्रणालियां हैं। भाव एवं भाषा का सम्बन्ध भाव एवं विचार से होता है और भाव एवं विचार अनुभव, अध्ययन, चिन्तन, मनन और कल्पना पर आधारित होते हैं। इसके अनुरूप भाषा ज्ञान में अन्तर होना अपेक्षित है और होता है। इसलिए रचना शिक्षण के विषय और प्रणालियों का चुनाव करते समय इस सत्य को ध्यान में रखना होगा। नीचे हम विभिन्न स्तरों पर प्रयोग की जाने वाली प्रणालियों का वर्णन कर रहे हैं-

1. प्रश्नोत्तर प्रणाली-यह एक प्राचीन प्रणाली है। अध्यापक प्रश्न करता है और विद्यार्थी उत्तर देते हैं। (कभी गुरुकुल पद्धति में यह प्रणाली प्रचलित थी। तब शिष्य प्रश्न पूछते थे और गुरु उत्तर देते थे)। इसके अन्तर्गत अध्यापक छात्रों के उत्तर की त्रुटियों का संशोधन भी करता है। इससे छात्रों की अभिव्यंजना शक्ति विकसित होती है। कल्पना एवं तर्क शक्ति में भी विकास होता है और छात्रों की वाक्य रचना शुद्ध हो जाती है। इस प्रसिद्धि

में पहले मौखिक कार्य सम्पन्न होता है। अध्यापक क्रम-विशेष में प्रश्न पूछता है। मौखिक विश्लेषण करने के बाद छात्रों को यथा विषय पर लिखित रचना का आदेश दिया जाता है। यह प्रणाली एक उपयुक्त प्रणाली है। पूर्व माध्यमिक और माध्यमिक स्तर पर इसका प्रयोग करना चाहिए।

प्रारम्भ में छात्रों के समीपवर्ती वातावरण से सम्बद्ध वस्तुओं और दृश्यों पर रचना सम्बन्धी प्रश्न किए जाते हैं और धीरे-धीरे प्रश्नों की सीमा विस्तृत हो जाती है और गूढ़ बातों तक पहुंचा जाता है।

2. भाषा यंत्र प्रणाली–इस प्रणाली के चार साधन होते हैं–ग्रामोफोन, भाषा के रिकार्ड, वर्णन चित्र तथा सहायक पुस्तक। रचना से सम्बन्धित चित्रों का कक्षा में प्रदर्शन करके तथ्य समझे जाते हैं। फिर ग्रामोफोन पर सम्बन्धित रिकार्ड बजाकर छात्रों को सुनाया जाता है। अध्यापक सूचक-दण्ड द्वारा चित्र पर संकेत करता चलता है। पूरा वर्णन करने के बाद प्रश्नों की सहायता से उसकी आवृत्ति कराई जाती है। फिर सहायक पुस्तकों की सहायता से छात्र अपने उत्तरों की जांच करते हैं और उनमें सुधार करते हैं।

यह प्रणाली पाश्चात्य शिक्षा शास्त्रियों की देन है। आज इसका प्रयोग भारतवर्ष में संस्कृत भाषा रचना क्षेत्र में भी होने लगा है। यह प्रणाली एक प्रकार से खेल-प्रणाली ही है। यह प्रणाली अपेक्षाकृत व्यय साध्य है।

3. चित्र वर्णन प्रणाली–अध्यापक छात्रों के सामने एक चित्र उपस्थित करता है। चित्र को दीवार पर टांग दिया जाता है। अध्यापक प्रश्नों द्वारा क्रम-विशेष में चित्र का वर्णन छात्रों से मौखिक रूप में कराया जाता है। यह चित्र किसी कहानी को प्रकट कर सकता है अथवा किसी दृश्य का द्योतक हो सकता है। इससे बच्चों की निरीक्षण शक्ति बढ़ती है और उनकी अभिव्यक्ति शक्ति का भी विकास होता है। वर्णन के पश्चात् सब छात्र स्वयं लिखते हैं। चित्र वर्णन से पाठ रोचक हो जाता है। छात्र यथेष्ट रुचि के साथ तथ्य ग्रहण करके उत्साहपूर्वक रचना का कार्य सम्पादित करते हैं। चित्र उनके लिए लिखने या रचना करने के लिए प्रेरक स्त्रोत बन जाता है। चित्र दिखाते हुए अध्यापक प्रश्न करेगा और छात्र छोटे-छोटे वाक्यों में उत्तर देंगे। यथा–

(1) इदम् कस्य चित्रम् अस्ति = इयं धेनुः अस्ति।
(2) अस्याः वर्णः कीदृशः = अस्याः वर्ण श्वेतः अस्ति।
(3) अस्याः कति पादा संति? = चत्वरा पादा संति।
(4) अस्मै किम् रोचते? = अस्मै हरित् तृणा, घास रोचते।
(5) इयम् का ददाति? = इयम् दुग्धम् ददाति।
(6) दुग्धस्य वयम् किम् कुर्मः? = वयम् दुग्धं पिबामः।

(7) दुग्धे के-के गुणा वर्तन्ते? = दुग्धम् शक्तिवर्द्धक अस्ति।
(8) दुग्धेन किम् लभामहे = दुग्धेन दधिम्, दधिना घृतम् लभामहे।

4. उद्बोधन प्रणाली–इस प्रणाली में निर्दिष्ट विषय की सामग्री को छात्रों से निकलवाया जाता है, उसकी कल्पना शक्ति को उद्दीप्त किया जाता है और उन्हें प्रस्तुत (निर्दिष्ट) विषय पर स्वयं सोचने, स्वयं निर्णय करने और स्वयं लिखने के लिए उत्साहित किया जाता है। इस प्रकार उद्बोधन विधि में छात्रों की कल्पना शक्ति को चित्रों, प्रश्नों अथवा किसी घटना विशेष से उद्बोधित किया जाता है।

इस प्रणाली को तभी अपनाया जा सकता है जब छात्र वर्णन करने का अभ्यास कर चुके हों। इसलिए यह प्रणाली उच्च कक्षाओं के लिए उपयोगी है। इसके द्वारा ऐतिहासिक अथवा भौगोलिक वर्णन, दृश्यादि के वर्णन, जीवन चरित्र एवं आत्मकथा लिखवाई जा सकती है।

5. वाचन प्रणाली–इस प्रणाली में अध्यापक सर्वप्रथम किसी विषय पर मौखिक रूप से क्रमबद्ध प्रवचन करता है और फिर छात्रों को लिखने का आदेश देता है। शास्त्रीय विषयों पर यथा वैज्ञानिक, विवेचनात्मक आदि विषयों पर निबन्ध लिखाते समय इस प्रणाली का प्रयोग करना उचित होता है।

6. तर्क या वाद-विवाद प्रणाली–तर्कपूर्ण तथा विवादास्पद विषयों पर रचना करवाने के लिए यह विधि अपनाई जाती है। छात्रों को कुछ समय पहले विषय दे दिया जाता है। छात्र दो दलों में बंटकर उस विषय के पक्ष और विपक्ष दोनों में सामग्री तैयार करते हैं। दोनों दल वाद-विवाद के माध्यम से समस्या पर विचार करते हैं। अंत में, अध्यापक अपना निर्णय भी दे सकता है। इसके बाद छात्रों को लिखने के लिए कहा जाता है। सभी सामाजिक, राजनीतिक एवं धार्मिक समस्याओं पर इस प्रणाली द्वारा रचना करनी चाहिए।

7. रूप-रेखा प्रणाली–यह प्रणाली प्रश्नोत्तर, उद्बोधन एवं प्रबोधन प्रणाली का मिश्रित रूप है। इस प्रणाली में अध्यापक किसी विषय या प्रकरण की रूप-रेखा प्रस्तुत करता है। अध्यापक प्रश्नोत्तर उद्बोधन आदि विधियों को सम्यक् रूप से प्रयुक्त करते हुए छात्रों की सहायता से श्यामपट पर रचना की रूप-रेखा तैयार करता है। इस विधि में अध्यापक एवं छात्र दोनों का ही सहयोग एवं सन्तुलन बना रहता है। इसके अन्तर्गत छात्रों को विचार-विमर्श करने तथा विचार प्रकाशन का पूर्ण अवसर मिलता है। यह विधि कक्षा के स्तरानुकूल बनाकर अपनाई जा सकती है।

8. अनुकरण विधि–छात्रों के सम्मुख किसी आदर्श रचना को प्रस्तुत किया जाता है। छात्र आदर्श रचना का अनुकरण करते हुए निर्दिष्ट विषय पर यथाक्रम एवं शैली में लिखने का प्रयत्न करते हैं। छात्रों को रुपए की आत्मकथा सुनाकर अथवा पढ़ने को देकर

उसी प्रकार की लेखनी की आत्मकथा लिखाई जा सकती है। किसी रेल यात्रा का वर्णन पढ़कर छात्र 'वायुमान से यात्रा' पर सरलता से वर्णन कर सकते हैं।

इस प्रणाली में छात्रों को अपनी शैली के लिखने का अवसर नहीं मिलता। इस विधि का प्रयोग छोटी कक्षाओं में सीमित रूप से करवाया जा सकता है।

9. समवाय प्रणाली–समवाय प्रणाली रचना की प्रगतिशील प्रणाली है। भाषा के विभिन्न अंगों, गद्य, पद्य, नाटक, कहानी, निबन्ध आदि की शिक्षा देते समय कुछ प्रश्न दिए जाने चाहिए। जिनका उत्तर बच्चे निबन्धात्मक शैली में लिखकर लाएं। दूसरे शब्दों में सभी विषयों के अध्ययन के समय रचना को आवश्यकतानुसार प्रश्रय दिया जाना चाहिए। इस प्रकार प्रत्येक पाठ का सम्बन्ध रचना के साथ जोड़ा जा सकता है। अत: अध्यापकों के लिए आवश्यक है कि किसी भी विषय को पढ़ाते समय छात्रों की लिखित भाषा में सुधार करते चलें।

यह प्रणाली प्रत्येक स्तर के लिए उपयोगी है। आज के विद्वान् इस प्रणाली के प्रयोग पर बल देते हैं।

10. प्रबोधन प्रणाली–इस विधि के अन्तर्गत अध्यापक रचना के विषय की सामग्री छात्रों के सामने सूत्र रूप में रख देता है तथा उन्हें सहायक पुस्तकें, पत्रिकाएं तथा अन्य सम्बन्धित सामग्री बता देता है। छात्र पुस्तकालय व वाचनालय से उक्त सामग्री प्राप्त करके अपनी रचना को पूर्ण करते हैं। अज्ञात तथा भावपूर्ण विषयों पर निबन्ध लिखाने के लिए यह विधि बहुत उपयुक्त है।

11. आदर्श विधि–यह प्रणाली अनुकरण प्रणाली का विस्तृत रूप है। इस प्रणाली में शिक्षक रचना सम्बन्धी आदर्श पाठ छात्रों के सामने प्रस्तुत करता है। प्रस्तुत करते समय छात्र उक्त पाठ को ध्यानपूर्वक सुनते हैं। इसके उपरान्त वह छात्रों के लिखने का आदेश देता है। यह विधि उच्च कक्षाओं के लिए उपयुक्त है।

12. मन्त्रणा प्रणाली–रचना की यह विधि डाल्टन विधि पर आधारित है। इस विधि में अध्यापक केवल पथ-प्रदर्शन करता है। रचना सम्बन्धी कार्य कक्षा में नहीं कराया जाता है। अध्यापक छात्रों को निर्दिष्ट विषय पर उपलब्ध पुस्तकों, पत्रिकाओं तथा अन्य सामग्री की सूची बता देता है। छात्र स्वाध्याय करके सामग्री से तथ्यों का चयन करके अपनी रचना पूर्ण करते हैं। वे स्वयं परिश्रम करके उस कार्य को पूरा करते हैं। अध्यापक समय-समय पर उनको प्रोत्साहन करता रहता है।

13. अध्ययन प्रणाली–यह प्रणाली उच्च कक्षाओं के लिए उपयोगी है। वास्तव में यह विधि मन्त्रणा एवं तर्क प्रणाली के संयुक्त प्रयासों का फल है। इस विधि में छात्रों को स्वयं अपने विचार प्रकट करने के योग्य बनाया जाता है। अध्यापक किसी निश्चित विषय के लिए पुस्तकों का हवाला देता है अर्थात् उपयोगी सामग्री बताता है। छात्र उन पुस्तकों का स्वयं अध्ययन और मनन करते हैं। आपस में विचार विनिमय करते हैं। आवश्यक

पढ़ने पर शिक्षक उनकी सहायता करते हैं। इसके पश्चात् उचित निष्कर्ष आने पर छात्र अपनी रचना पूरी करते हैं।

रचना शिक्षण में ध्यान देने योग्य बातें

रचना की शिक्षा में अध्यापक एवं छात्र दोनों को ही पर्याप्त सावधान रहना पड़ता है। इस सम्बन्ध में कुछ आवश्यक निर्देश इस प्रकार हैं–

1. अध्यापक का स्वयं एक अच्छा लेखक होना–रचना सिखाने वाला अध्यापक स्वयं लेखक होना चाहिए। उसे रचना शिक्षण की विभिन्न शैलियों का ज्ञान होना चाहिए। उसे खुद भी लिखने का अभ्यास करना चाहिए।

2. रचना के सम्पादन में शिक्षण सूत्रों का ध्यान रखना–रचना सिखाने में भी सदा सरल से जटिल, स्थूल से सूक्ष्म तथा साधारण से असाधारण की ओर जाना चाहिए। **डॉ० सफाया** के अनुसार, "पहले सरल वाक्य, फिर मिश्रित वाक्य, फिर अनुच्छेदन और अन्त में लम्बे-लम्बे लेख लिखवाने चाहिए।" विषयों का क्रम भी कठिनाई के अनुसार होना चाहिए।

3. रचना का स्तर सीखी हुई भाषा के अनुकूल होना चाहिए–उनमें स्तर के अनुसार शब्द सूक्ति आदि का प्रयोग होना चाहिए। प्रस्तुत रचना में उतने ही शब्दों तथा मुहावरों का प्रयोग होना चाहिए, जो बच्चे पहले ही सीख चुके हों। एक आध नए शब्द या मुहावरों को पहले श्यामपट्ट पर लिखकर समझाना चाहिए।

4. छात्रों में रचना के प्रति रुचि पैदा करना–इसके लिए आवश्यक है कि लिखित रचना के लिए दिए जाने वाले विषय बच्चों की रुचि के अनुसार हों, बच्चों के प्रत्यक्ष अनुभवों से सम्बन्धित हों। दूसरे शब्दों में बालकों के अनुभव को मुख्य मानकर विषय चुना जाना चाहिए। यथा सम्भव दृश्य-श्रव्य उपकरणों का प्रयोग भी किया जा सकता है। इससे छात्र रचना कार्य में रुचि लेते हैं।

5. छात्रों में स्वाध्याय की वृत्ति पैदा करना–रचना शिक्षण का एक यह भी उद्देश्य है कि छात्रों में स्वाध्याय की मनोवृत्ति पैदा की जाए ताकि वे स्वयं भी स्वतन्त्र रूप से विषय अध्ययन करके लेखन कार्य करें। वे पाठ्य-पुस्तक की सीमा से बाहर नहीं जाते। यही कारण है कि आजकल रचना का स्तर गिर रहा है। रचना के विषयों का विस्तार तभी हो सकता है, जब छात्रों का अध्ययन भी विस्तृत हो। इसके लिए स्कूल में दैनिक पत्र-पत्रिकाएं, कहानियों की पुस्तकें, लेख मालाएं, महापुरुषों की जीवनियां, इतिहास भूगोल सम्बन्धी सरल पुस्तकें, छोटे-छोटे निबन्ध, बाल कविता की पुस्तकें आदि उपलब्ध करानी चाहिएं।

6. बालकों को रचना के पूर्व मौखिक अभ्यास कराना चाहिए।

7. अध्यापकों को इस बात का यथाशक्ति प्रयास करना चाहिए कि रचना कार्य द्वारा

छात्रों की तर्क शक्ति, विचार शक्ति, निर्णय एवं अवलोकन करने की क्षमता का विक हो। इसके लिए उचित अवसर प्रदान करने चाहिए।

8. अध्यापक को उद्‌बोधन विधि द्वारा छात्रों की कल्पना शक्ति जागृत क चाहिए–छात्र अपनी कल्पना शक्ति का जितना प्रयोग करेंगे, उनकी रचनाएं उतनी सुन्दर होंगी। इसके लिए अनेक प्रकार के प्रश्न पूछे जा सकते हैं अथवा निम्न विषयों लिखने के लिए प्रेरित किया जा सकता है–

(1) यदि तुम शिक्षा मन्त्री होते, तो?

(2) यदि तुम पक्षी होते तो क्या करते?

(3) यदि तुम्हें एक खजाना मिल जाए, तो उसका क्या करोगे? इत्यादि।

9. शिक्षक को लिखित रचना की जांच अवश्य करनी चाहिए–छात्रों अशुद्धियों (भूलों) का सुधार करना आवश्यक है। इससे उनमें रचना की प्रौढ़ शक्ति विकास होगा।

10. रचना में भाषा एवं व्याकरण सम्बन्धी अशुद्धियों पर यथेष्ट ध्यान दिया चाहिए। इससे रचना के संशोधन पर अधिक-से-अधिक ध्यान देना चाहिए।

रचना संशोधन

रचना शिक्षण में चाहे जितनी सावधानी बरती जाए, छात्रों में प्राय: लिपि व्याकरण सम्बन्धी अशुद्धियों का होना स्वाभाविक है। इन अशुद्धियों को दूर करते चाहिए। छात्र भले ही विभिन्न विषयों पर रचना लिखते जाएं, परन्तु जब तक अध्य उनका संशोधन नहीं करता, तब तक रचना कार्य में प्रगति नहीं हो सकती। संशोधन से छात्र अपनी भूलें, अशुद्धियां, त्रुटियां और दोष जान सकते हैं और आगे से अपने लेख परिष्कार कर सकते हैं।

आजकल अध्यापक प्राय: संशोधन कार्य से बहुत घबराते हैं। संशोधन कार्य क अवश्य है परन्तु इतना नहीं जितना कि हम सोचते हैं। इसलिए इस सन्दर्भ में निम्न बात ध्यान रखना चाहिए–

1. सर्वप्रथम अध्यापक अधिक-से-अधिक मौखिक कार्य कराएं और जो लिखाएं उसे पूर्ण रूप से जांचे।
2. संशोधन करते समय छात्रों की सामान्य और व्यक्तिगत दोनों प्रकार की अशु पर ध्यान देना चाहिए। सामान्य अशुद्धियों को कक्षा में सामूहिक रूप से किया जाए और व्यक्तिगत अशुद्धियों को कक्षा में सामूहिक रूप से छात्र बुलाकर बता दिया जाए।
3. संशोधन कार्य धैर्य के साथ किया जाए। अध्यापक को किसी भी स्थि झुंझलाना नहीं चाहिए।

4. प्रमाद, लापरवाही तथा शीघ्रता के साथ होने वाली अशुद्धियों को कम करने के लिए छात्रों को लिखते समय सावधान कर देना चाहिए।
5. छात्रों के स्तर के अनुकूल ही संशोधन कार्य किया जाना चाहिए। कुछ अशुद्धियों को आगे के लिए छोड़ा जा सकता है।
6. संशोधन कार्य को करने के उपरान्त यह देखना चाहिए कि छात्रों ने अशुद्धियों का निवारण कर लिया है या नहीं।
7. प्रयोगात्मक व्याकरण पर पूरा ध्यान देना चाहिए ताकि व्याकरण की अशुद्धियों का सारा भार रचना पर ही न पड़े।
8. रचना के लिए अभ्यास-पुस्तिका बनवानी चाहिए। इस पुस्तिका पर अभ्यास कार्य विधिवत सम्पादित कराना चाहिए।
9. अशुद्धियों का निवारण रचनात्मक ढंग से किया जाए। छात्रों को हतोत्साहित नहीं करना चाहिए।
10. संशोधन कार्य में अध्यापक तीन विधियां अपना सकते हैं, यथा–प्रथम–छात्र अपनी रचना को लिखकर स्वयं अशुद्धियां निकालने का प्रयत्न करें। द्वितीय छात्र, स्वयं एक-दूसरे की रचनाओं को पढ़कर उनकी अशुद्धियां ठीक करें। तृतीय–अध्यापक स्वयं अशुद्धियां ठीक करें।
11. साधारणतया अध्यापकों को चाहिए कि छात्रों की रचनाओं का संशोधन उनकी उपस्थिति में करें, परन्तु विद्यालय में शायद ही इतना समय इस काम के लिए मिल सके। अत: कापियों को घर ले जाकर भी संशोधन कार्य किया जा सकता है।
12. संशोधन कार्य को सरल बनाने के लिए कुछ विशेष चिन्हों का प्रयोग करना चाहिए। कतिपय चिन्ह नीचे दिए गए हैं। अध्यापक स्वयं भी अपनी इच्छानुसार नए चिन्ह बना सकता है–

अ	=	अक्षर-विन्यास की अशुद्धि
लि	=	लिपि की अशुद्धि
स	=	सन्धि की अशुद्धि
क	=	कारक की अशुद्धि
×	=	अनावश्यक शब्द
( )	=	शब्दों को मिला लें
→	=	शब्दों का क्रम बदल लें
+	=	सन्धि द्वारा जोड़ लें

^ = कोई शब्द छूटा है
‖ = शब्दों को पृथक् करें
⊣ = अस्पष्ट है, अध्यापक से पूछें
? = बीच में यह शब्द जोड़ दें
// = नया अनुच्छेद आरम्भ करें

इन चिन्हों के अतिरिक्त विराम चिन्ह स्वयं लगाने चाहिए। जिन चिन्हों का प्रयोग अध्यापक करें उन्हें छात्र भी समझें, यह आवश्यक होता है।

13. सर्वसाधारण अशुद्धियों की एक सूची बना लेनी चाहिए और कक्षा में छात्रों को ऐसी अशुद्धियां समझा देनी चाहिए।
14. संशोधन के बाद यह भी देखना चाहिए कि छात्र एक बार समझी हुई अशुद्धि को दूसरी बार तो नहीं करते।

रचना की सामान्य त्रुटियां

सामान्यतः छात्रों की लिखाई में निम्न अशुद्धियों की सम्भावना रहती है-

1. लिपि की अशुद्धियां।
2. अक्षर विन्यास की अशुद्धियां।
3. सुलेख की समस्या (कुरूपता)।
4. शब्दावली सम्बन्धी अशुद्धियां।
5. मुहावरों का अशुद्ध प्रयोग।
6. व्याकरण सम्बन्धी अशुद्धियां।
7. विचारों का क्रमबद्ध न होना।
8. अनुच्छेदों से सम्बन्धित अशुद्धियां।
9. वाक्य-रचना सम्बन्धी अशुद्धियां।
10. भावों की अस्पष्टता।
11. विचार सामग्री का अभाव।

रचना सम्बन्धी अशुद्धियों के कारण

रचना-शिक्षण के क्षेत्र में कुछ एक अनुसंधान किए गए हैं। उन पर आधारित सम्बन्धी अशुद्धियों के कारण इस प्रकार बताए गए हैं-

1. स्वतन्त्र स्वाध्याय का अभाव-आजकल छात्रों में स्वाध्याय का प्रायः अभाव देखने को मिलता है। जिन छात्रों में स्वाध्याय की आदत नहीं होती, उनकी रचना व्याकरण सम्बन्धी, भाषा सम्बन्धी, विचार सम्बन्धी अनेक अशुद्धियां पाई जाती हैं।

2. लिखने में असावधानी-छात्र प्रायः लिखने में सावधान नहीं रहते। असावधानी अशुद्धियों को जन्म देती है। आरम्भ से ही जो अशुद्धियां असावधानी के कारण आ जाती हैं, आगे चलकर उनका निराकरण कठिन हो जाता है। इसलिए शिक्षक का कर्तव्य है कि वह बच्चों को सतर्क करे। उन्हें ध्यान से लिखने के लिए कहे। बहुत सी अशुद्धियों का निवारण इस प्रकार की सावधानी से स्वतः हो जाता है।

3. लिखित कार्य का संशोधन करना-प्रायः देखा गया है कि अध्यापक लिखित कार्य का संशोधन नियमित रूप से नहीं करते। लिखित कार्य का सम्यक् संशोधन रचना सम्बन्धी दोषों का परिष्कार करता है। इसलिए यह कार्य अध्यापक द्वारा नियमित रूप से सम्पन्न होना चाहिए।

4. गृह कार्य का अभ्यास न होना-यदि शिक्षक बच्चों को गृह कार्य बहुत थोड़ा देता हो और छात्रों में पर्याप्त अभ्यास की कमी रह जाए तो लिखित कार्य में भी अनेक अशुद्धियां आ जाती हैं। इसलिए गृह कार्य अवश्य देना चाहिए क्योंकि इनका अभ्यास स्वतः सक्षम है। इससे बहुत सी अशुद्धियों का निवारण हो जाता है। लिखित गृह कार्य का संशोधन अवश्य होना चाहिए।

5. रुचि का अभाव-किसी विषय आदि में रुचि न होने से अशुद्धियां होती हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि छात्रों की रचना कार्य के प्रति रुचि जागृत हो जाए। इसका विकास किया जाए। यह कार्य मनोवैज्ञानिक ढंग से सम्पन्न करना चाहिए।

नोट-विभिन्न कक्षाओं के लिए रचना के स्वरूप एवं विधियों की चर्चा पिछले पृष्ठों में की गई है। पाठकों से निवेदन है कि इस सम्बन्ध में उनका अध्ययन करें।

कुछ विचारकों ने रचना-शिक्षण के सन्दर्भ में लिखाई की मन्दता का भी उल्लेख किया है। पाठकों की जानकारी के लिए इसका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जाता है-

1. सुलेख की मन्दता
2. अक्षर-विन्यास की मन्दता
3. रचना की मन्दता

1. सुलेख की मन्दता-प्रायः विद्यार्थियों की लिखाई में अनेक दोष होते हैं। इन्हें देवनागरी लिपि का पूर्ण ज्ञान नहीं होता। ऐसे छात्र असावधानी या शीघ्रता से लिखते हैं या फिर घसीट कर लिखते हैं। इन सभी दोषों का विस्तृत विवेचन लिपि के शिक्षा प्रकरण में किया गया है। उन्हें दूर करने के लिए भी उपाय बताए गए हैं। इसी सन्दर्भ में निम्न बातों पर ध्यान देना चाहिए-

(1) छात्रों के हाथ की चेष्टा शक्ति कम होने पर उसको बढ़ाने के लिए धीरे-धीरे अभ्यास कराना चाहिए।

(2) यदि कोई छात्र दाएं हाथ से सुन्दर लिख सकता हो तो उसे बाएं हाथ से लिखने की अनुमति देनी चाहिए।

(3) प्रत्येक छात्र के सुलेख पर वैयक्तिक ध्यान देना चाहिए।

(4) सुलेख की प्रगति के लिए अनुलिपि, प्रति-लिपि और श्रुत-लिपि का अभ्यास करना चाहिए।

2. अक्षर-विन्यास की मन्दता–इस सम्बन्ध में अक्षर विन्यास की शिक्षा के प्रकरण में विचार किया गया है। प्रत्येक छात्र की वैयक्तिक त्रुटियों का निदान करके अक्षर-विन्यास की मन्दता का उपाय करना चाहिए। ऐसे छात्रों को बाल साहित्य पढ़ने और उसमें शब्दों के अक्षरों का निरीक्षण करने का आदेश देना चाहिए। सावधानी एवं एकाग्रता से लिखने पर बल देना चाहिए।

इसके अतिरिक्त बच्चों को कठिन शब्दों के अक्षरों का विश्लेषण सिखाना चाहिए। अक्षर-विन्यास की एक नोट बुक रखने का आदेश देना चाहिए। जो बालक हिन्दी अक्षर-विन्यास में दुर्बल होते हैं वे प्रायः उच्चारण में भी दुर्बल होते हैं। इसलिए उनका उच्चारण भी ठीक करना चाहिए।

3. रचना की मन्दता–रचना की मन्दता के कारण इस प्रकार हैं–

(1) मौखिक अभिव्यक्ति का अभाव।

(2) शब्दावली की न्यूनता।

रचना सम्बन्धी मन्दता को दूर करने के लिए छात्रों को पढ़ने के लिए पर्याप्त सामग्री देनी चाहिए जिससे उनकी शब्दावली बढ़ जाए, वे भाषा प्रयोग सीख जाएं और उन्हें वर्णन शैली का ज्ञान हो जाए। सबसे बड़ी बात यह है कि उनकी रचना के प्रति रुचि उत्पन्न करनी चाहिए। उन्हें प्रोत्साहन मिलना चाहिए और साथ ही उनमें आत्म-विश्वास का संचार होना चाहिए।

शिक्षण क्रम

मध्य स्तर पर किसी उपयुक्त विषय पर अनुच्छेद लिखना प्रमुख रचना-कार्य है। प्रत्येक रचना-कार्य में, विशेष रूप से अनुच्छेद लेखन में, पाठ योजना की रूप-रेखा का चित्रण के क्रम का ढंग निम्नलिखित होगा–

1. सामान्य प्रारम्भिक बातें।
2. सामान्य उद्देश्य।
3. विशिष्ट उद्देश्य।
4. सहायक सामग्री (चित्र आदि)।
5. पूर्व-ज्ञान।

6. **प्रस्तावना**–अनुच्छेद-लेखन, पत्र-लेखन, संवाद-लेखन आदि के लिए उपयुक्त विषय का निर्वाचन ही प्रस्तावना है। यह कार्य छात्रों की सहायता से हो तो अधिक अच्छा है। इसी स्थल पर उद्देश्य-कथन कर दिया जाए। प्रस्तावना उपयुक्त प्रश्नों द्वारा भी हो सकती है।

7. **विषयोपस्थापन**–

(1) अध्यापक द्वारा शब्दों एवं सूक्तियों का बताना–केवल वही शब्द जो प्रस्तुत रचना-पाठ के लिए आवश्यक हैं। इन शब्दों को अनेक वाक्यों में प्रयुक्त करके छात्रों को बताना चाहिए।

(2) लगभग पन्द्रह-बीस आदर्श वाक्यों को अध्यापक मौखिक रूप से प्रस्तुत करेगा, जिनमें सम्बन्धित विषय का वर्णन होगा। इन वाक्यों में पठित शब्दों का ही प्रयोग होगा। वाक्यों को एक-दो बार दुहराया जाएगा। यह कार्य प्रश्नोत्तर विधि से भी हो सकता है।

(3) छात्रों द्वारा रचना कार्य–छात्र अनुच्छेद अथवा पत्र लिखेंगे।

8. **संशोधन**–यथासम्भव एक-दो छात्रों से कक्षा में ही निबन्ध पढ़वाकर शीघ्रता से उनका संशोधन और शेष कॉपियों को एकत्र करके अध्यापक द्वारा बाद में संशोधन। संशोधन पर आगे पुनः विचार किया जाएगा।

9. **गृह कार्य**–अन्य विषयों के वर्णन में सहायक 10-15 नये शब्दों को बताकर छात्रों से उस विषय पर घर से अनुच्छेद लिखकर लाने को कहना।

रचना-पाठ योजना–1

विद्यालय का नाम–..... **दिनांक**–.....

अध्यापक का नाम–..... **कक्षा**–.....

विषय–संस्कृत रचना **उपविषय**–गजः

कालांश–..... **अवधि**–40 मिनट

सामान्य उद्देश्य–

1. छात्रों को इस योग्य बनाना कि वे प्रश्नों का उत्तर सरल वाक्यों में दे सकें।
2. उन्हें सरल एवं शुद्ध भाषा में मौलिक रूप से अपने भावों को अभिव्यक्त करने की क्षमता प्रदान करना।
3. उन्हें अपने भावों को लिखित रूप देने में योग्यता प्रदान करना।
4. उन्हें स्वयमेव संस्कृत रचना करने की प्रेरणा देना।

विशिष्ट उद्देश्य–छात्रों को भावों पर कुछ वाक्य लिखने की योग्यता प्रदान करना।

सहायक सामग्री–हाथी का एक चित्र।

पूर्व ज्ञान–(1) पशुओं में ऐसे कौन-से पशु हैं जिन पर हम सवारी करते हैं?

(2) इनमें सूंड वाला पशु कौन-सा है?

(3) इस चित्र में तुम क्या देखते हो (चित्र दिखाकर)? आज हम लोग हाथी विषय में संस्कृत में कुछ वाक्य बोलने और लिखने की चेष्टा करेंगे।

विषयोपस्थापन–अध्यापक श्यामपट्ट पर निम्नलिखित शब्द लिखेगा और उनका अर्थ स्पष्ट कर देगा। छात्र भी इन शब्दों का अर्थ लिख लेंगे। अध्यापक इन शब्दों को वाक्यों में प्रयोग करके भी मौखिक रूप से बता देगा–

गजः, विशालम्, ह्रस्वे, अक्षिणी, पादाः, स्तम्भवत् दृढ़ाः, स्थूला, कर्णौ, मुखात् निक्षिपति, शुण्डया, पिबतिः, जिघ्रति, श्वसिति, धीरः, गंभीरः, उपयोगः, वाहन वरयात्रायाम्, मृगया।

छात्रो, अब मैं कुछ प्रश्न पूछूंगा जिनका उत्तर तुम यथासम्भव संस्कृत में दो। संस्कृत में न दे सको तो हिन्दी में ही दो। (छात्रों के उत्तर न देने पर अथवा हिन्दी में देने पर अध्यापक स्वयं संस्कृत वाक्य कह देगा)–

प्रश्न 1. (हाथी का चित्र दिखाकर) कः एषः पशुः?

उत्तर–एषः गजः अस्ति?

प्रश्न 2. कीदृशोऽयं पशु।

उत्तर–अयं एकः महान् पशुः अस्ति।

प्रश्न 3. अस्य शरीरं कीदृशम्?

उत्तर–अस्य शरीरम् अतिविशालम् अस्ति।

प्रश्न 4. अस्य देहे के द्वे अंगे ह्रस्वे भवतः।

उत्तर–अस्य देहे अक्षिणौ ह्रस्वे भवतः।

प्रश्न 5. अस्य कति पादाः सन्ति?

उत्तर–अस्य चत्वारः पादाः सन्ति।

प्रश्न 6. ते कीदृशाः भवन्ति?

उत्तर–ते स्तम्भवत् वृद्धा स्थूलाश्च भवति।

प्रश्न 7. अस्य कीदृर्श कर्णौ?

उत्तर–अस्य कर्णौ शूर्पवत् दीर्घौ भवतः।

प्रश्न 8. अस्य दीर्घौ दन्तौ कुत्र तिष्ठतः?

उत्तर–अस्य दीर्घौ द्वौ दन्तौ मुखाद्वहिः तिष्ठत?

प्रश्न 9. सः कया खाद्यवस्तूनि मुखे निक्षिपति?

उत्तर–सः स्वशुण्डया खाद्यवस्तूनि मुखे निक्षिपति।

प्रश्न 8. सः शुण्डया कानि अन्यानि कार्याणि करोति?

उत्तर–सः तया जलं पिबति, जघ्रति, श्वसिति च।

अध्यापक कथन–एवं हस्तस्य सर्व कार्य शुण्डया एवं करोति।

प्रश्न 1. कीदृशी अस्य प्रकृति?

उत्तर–(अध्यापक कथन)–गजः प्रकृत्या धीरः गम्भीरश्च भवति। स्वबुद्धिप्रभावेन अयं जनानां उपकारं कराति। मानपमानं च जानाति।

प्रश्न 2. सर्वेषु पशुषु तस्य कीदृशी स्थितिः?

उत्तर–सः सर्वेषु पशुषु बुद्धिमान् बलबान् च भवति।

प्रश्न 3. प्राचीनकाले अस्य कः उपयोगः आसीत्?

उत्तर–प्राचीनकाले युद्धेषु विशेषतया अस्योपयोगः आसीत्।

प्रश्न 4. केषु अन्येषु कार्येषु अस्योपयोगः भवति?

उत्तर–वाहनकार्ये वर यात्रायां अस्योपयोगाः भवति?

अध्यापक कथन–गजं भारतवर्षस्य दर्शनीयः सर्वश्रेष्ठश्च पशुः अस्ति। अस्य विशाल शरीर गम्भीरः स्वभाव, मन्दा गतिः, अनुशासनपालनं च लोके स्वाभिमुखं आवर्जयति।

कक्षा-कार्य–श्यामपट पर लिखे हुए शब्दों का उपयोग करते हुए 'गजः' शीर्षक पर संस्कृत में कुछ वाक्य लिखो जिनमें हाथी का वर्णन हो।

संशोधन–अध्यापक एक-दो छात्रों को निबन्ध पढ़ने को कहेगा और स्वयं उनका संशोधन करता जाएगा। शेष कॉपियों को वह बाद में देख लेगा।

गृह कार्य–हिमालयः, उत्तरस्यां दिशि, वनस्पतयः, अनेकः, वन्यपशवः, तीर्थस्थानानि, तपोवनानि, औषधयः, विशालः, लभ्यन्ते, सन्ति, निवसन्ति, प्राप्यन्ते शब्दों की सहायता से हिमालयः विषय पर संस्कृत में कुछ वाक्य लिखो।

रचना-पाठ योजना–2

विद्यालय का नाम–..... **दिनांक**–.....

अध्यापक का नाम–..... **कक्षा**–.....

कालांश–..... **अवधि**–40 मिनट

विषय–संस्कृत रचना **उपविषय**–वर्षाकालः

सामान्य उद्देश्य–

1. छात्रों में वार्तालाप के द्वारा विशेष अवसरों के अनुकूल भाषा का प्रयोग करने की क्षमता उत्पन्न करना।
2. सूक्तियों के समुचित प्रयोग की शिक्षा देना।
3. प्रश्नों का उत्तर पूर्ण वाक्य में देने योग्य बनाना।

4. किसी भी विषय का विस्तार कर सकने अथवा संक्षिप्तीकरण करने की प्रतिभा का सृजन करना।
5. विविध विषयों पर स्वतन्त्रतापूर्वक अपने भावों की संस्कृत-भाषा में अभिव्यक्ति कर सकने की सामर्थ्य प्रदान करना।
6. संस्कृत भाषा के उच्चारण और लेखन की शक्ति का विकास करना।
7. अनेक प्रकार का वाक्य संगठन भावानुकूल कर सकने की प्रवीणता उत्पन्न करना।

विशिष्ट उद्देश्य–(1) भारत में कृषि के लिए एवं जन-जीवन के अस्तित्व के लिए वर्षा का महत्त्व समझाना।

(2) वर्षा ऋतु में होने वाले वातावरण के आनन्दमय परिवर्तन के वर्णन की शक्ति देना।

सहायक सामग्री–वर्षा काल में वन व ग्राम की शोभा के चित्र द्वय तथा कक्षोपयोगी अन्य सामान्य उपकरण।

पूर्व ज्ञान–(1) छात्र वर्षा के महत्त्व और उसके आगमन के मासों का सामान्य ज्ञान रखते हैं।

(2) छात्र वर्षा काल में होने वाले वसुन्धरा के दिव्य परिवर्तनों से भी परिचित हैं।

(3) छात्र षड्ऋतुओं का भी साधारण ज्ञान रखते हैं।

प्रस्तावना–(1) एकस्मिन् वर्षे कति मासाः भवन्ति?

(2) वर्षे कति ऋतवः भवन्ति?

(3) षड्ऋतुनाम् कानि नामानि सन्ति?

(4) ग्रीष्मर्तौ पश्चात् को नाम ऋतुः प्रारम्भते?

उद्देश्य कथन–ग्रीष्मर्तौ सूर्यस्य प्रचण्डाः किरणा, भूमि दहन्ति। तापेन सर्वे प्राणि विकलाः जायन्ते। जलाशयेषु जलाभावः वर्तते। जीवनं दुस्सह दुर्वह च भवति। तवै आकाशे मेघाः एकत्रीभवन्ति वर्षन्ति च भूमौ। अयमेव वर्षा ऋतु। एतम् वर्षाऋतुं समधिकृत्यैव वयमद्य एकां निबन्धरचना विधास्यामः।

विषयोपस्थापन–अध्यापक वर्षा ऋतु में आकाश व वन की शोभा वाले प्रथम चित्र का छात्रों के सम्मुख प्रदर्शन करेगा।

प्रश्न	उत्तर
1. वर्षर्तौ आकाशे के समुद्-भवन्ति?	वर्षर्तौ आकाशे मेघाः समुद्-भवन्ति
2. ते किं कुर्वन्ति?	ते तत्र इतस्ततः विचरन्ति।

3. तेषां रूप-वर्णनं कुरू?	परस्पर संघर्षगणं प्राप्य घोरगर्जनां कुर्वन्ति।

अध्यापक कथन–एकेन कविना उक्तम्–
(लपेट श्यामपट्ट का प्रदर्शन करेगा)

"क्वचित्प्रकाशं क्वचिदप्रकाशम्,
नभः प्रकीर्णाम्बुधरं विभाति।
क्वचित् क्वचित् पर्यत सन्निरुद्धम्।
रूप यथा शान्तमहार्णवस्य।"

	ते विचरन्तः कज्जल-पर्वताः इव प्रतीयन्ते।
	कदाचित् ते आकाशे एकत्री भवन्ति अपरे क्षणे एव विलीनाः भवन्ति।
	वर्षर्तौ नभसि यदा वारिदाः सम्बलितः भवन्ति तदा भूमौनिविडान्धकारः जायते।
4. आकाशे विद्युत् कथं भाति?	यदा कदा तेषु मेघेषु स्फुरन्तौ विद्युत चित्तं आवर्जयति।
5. घनाः भूम्यै किं प्रयच्छन्ति?	सूर्यतापतप्तायै भूम्यै ते मेघाः शीत जलं प्रयच्छन्ति।
6. जलधाराः ताः कथं प्रतीयते?	ता अनवरत भूमौ पतिताः जलधाराः मेघमण्डपाद् आलम्बिताः कौशेय-रज्जव इव प्रतीयन्ते।
7. चित्रे वनस्य शोभा कथं दृष्यते?	वर्षर्तौ प्रकृतेः शोभा अद्भुता जायते।
8. वर्षर्तौ वनस्पतयः कथं भान्ति?	द्रुमः बल्लर्यश्च हरिताः प्रफुल्लिताश्च वर्तन्ते।
9. अस्मिन् ऋतौ भूमौ कानि अंकुरितानि भवन्ति?	भूमौ नवानि बीजानि अंकुरितानि भवन्ति।
10. भूमिः कथं विभाति?	सर्वत्रैव पृथ्वी हरितदुकूलावृताइव शोभते।
11. समीरः कथं बहति?	समीरः शीतलः सुरभितः भवति कदाचित् रभसा पुनश्च मन्दं-मन्दं बहति।

12. नवीनं जलं पृथिव्यां कथं प्रवहति? वर्षासु नवीनजलं निर्झरान् सरांसि नदीश्च प्रपूरयति। पर्वतेतु कलकल-ध्वनिना निर्झरा अग्रेसरन्ति। तट-मर्यादा भित्त्वां नद्यः वेगेन समुद्रं प्रति प्रयान्ति।

(द्वितीय चित्र का प्रदर्शन किया जाएगा)

13. चित्रं विलोक्य ग्रामस्य शोभां वर्णयत्? वर्षर्तौ ग्रामीणांक्षेत्राणि शस्यश्यामलानि भवन्ति।

14. कृषकः किम् अनुभवन्ति? कृषकाः मोदमग्नाः जायन्ते।

15. चित्रे ग्रामस्य मार्गाः कथं दृश्यन्ते? यद्यपि वर्षर्तौ ग्रामीणां मार्गा; पङ्किलाः भवन्ति, तत्र क्रमियः उत्पद्यन्ते पुनरपि अन्नोत्पादनस्य आशय प्रमुदिता एव सर्वे भवन्ति।

16. वर्षर्तौ जीवानां दशा का भवति? वने मयूराः नृत्यन्ति।
इन्द्रगोपाः प्रादुर्भवन्ति।
जलाशयेषु मण्डूकाः शब्दं कुर्वन्ति।
पक्षिणः कलं कूजन्ति पशवश्चसुखिनः भूत्वा विहरन्ति।

17. वर्षर्तृ-शोभाः सर्वेषु ऋतुय कीदृशी अस्ति? ममेद दृढ़ं मतं यत्-वर्षर्तौ यादृशी प्रकृतिशोभा रमणीया भवति न तादृशी अन्यस्मिन् कस्मिश्चन् ऋतौ सा दृश्यते अस्मिन् ऋतौ सर्वे मोदं अनुभवन्ति।

(लपेट श्यामपट प्रदर्शन द्वारा)

अध्यापक कथन–निगदितं वाल्मीकिना रामायणे यत्-

1. मत्ताः गजेन्द्रा मुदिता गजेन्द्रा
वनेषु विश्रान्ततराः मृगेन्द्राः।
रम्यः नगेन्द्राः निभृताः नरेन्द्राः,
प्रकीडितो वारिधरैः सुरेन्द्रः।

2. बहन्ति वर्षन्ति, नदन्ति, भान्ति,
ध्यायन्ति नृत्यन्ति समाश्वसन्ति।
नद्याः घना मत्तगजा वनान्ताः,
प्रिया विहीनाः शिखिनः प्लवंगा॥

संशोधन–अध्यापक कुछ छात्रों के पंक्तियों में लिखित निबन्ध को पढ़वाकर सुनेगा। कुछ छात्रों के लेखों में संशोधन भी करेगा। अन्य छात्रों की पंजिकाओं को एकत्र कर संशोधनार्थ ले जाएगा।

गृह-कार्य–इसी प्रकार 'वसन्त ऋतु' पर एक निबन्ध लिखो।

अभ्यास के प्रश्न

1. संस्कृत रचना शिक्षण के क्या उद्देश्य हैं? प्राथमिक स्तर पर रचना शिक्षण की किन्हीं चार विधियों का वर्णन कीजिए।
2. संस्कृत रचना को रुचिकर एवं उपयोगी बनाने के लिए आप कौन-से उपाय करेंगे?
3. रचना शिक्षण में संशोधन कार्य का क्या महत्त्व है? संस्कृत अध्यापक को अपने छात्रों की रचनाओं का संशोधन किस प्रकार करना चाहिए।
4. 'मौखिक रचना लिखित रचना की आधारशिला है।' इस कथन की पुष्टि कीजिए।
5. छात्र रचना सम्बन्धी कौन-कौन सी अशुद्धियां करते हैं? इनके निवारण के लिए संस्कृत शिक्षक को क्या करना चाहिए?
6. लिखित रचना से आप क्या समझते हैं? बोलचाल और लिखित रचना में क्या सम्बन्ध है? आप रचना कार्य में छात्रों की रुचि कैसे बढ़ाएंगे?
7. लिखाई और रचना की मन्दता के क्या कारण हैं? मन्दता को दूर करने के लिए आप कौन से कार्य करेंगे?
8. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी करें–
   (क) छात्रों की लिखित रचना में मौलिकता लाने के उपाय।
   (ख) उद्बोधन प्रणाली के गुण अथवा दोष।
   (ग) रचना शिक्षण के लिए प्राथमिक कक्षाओं के लिए अपेक्षित विषय।
   (घ) संस्कृत शिक्षण में पद्य शिक्षण का महत्त्व।

❑❑❑

अध्याय 12

नाटक शिक्षण—प्रक्रिया, उद्देश्य, सोपान एवं पाठ योजना

नाटक का स्वरूप और महत्त्व

नाटक साहित्य की महत्त्वपूर्ण विधा है। संस्कृत में 'नाटक' काव्य का अंग माना गया है। काव्य के दो भेद हैं–(1) श्रव्य काव्य, (2) दृश्य काव्य।

श्रव्य काव्य केवल कर्ण सुखद होता है। नाटक दृश्य-काव्य है जो कानों और नेत्रों दोनों को सुख देता है। अभिनय-युक्त होने के कारण नाटक में प्रभावोत्पादक शक्ति अपेक्षाकृत अधिक होती है। नाटक जन-साधारण की वस्तु है, इसमें लोकहित और लोकरंजन की भावना अधिक होती है। नाटकों में समस्त कलाओं का समावेश होता है, इसलिए संस्कृत भाषा में कहा गया है–

"काव्येषु नाटकं रम्यम्।"

नाटक के लिए संस्कृत में 'रूपक', 'रुप्य' और नाटक 'नाट्य' शब्द का प्रयोग मिलता है। 'नाट्य' शब्द 'नट' धातु से बना है। 'नट' धातु में नेत्र के अर्थ के साथ-साथ अभिनय का अर्थ भी समाहित है। भरतमुनि ने 'नाट्य' शब्द को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि सम्पूर्ण संसार के भावों का अनुकीर्तन ही नाट्य है। उनके अनुसार–

अवस्थाणुकृतिर्नाट्यम्

अर्थात् किसी भी अवस्था में अनुकरण को नाटक कहते हैं। यहां अवस्था से तात्पर्य मानव जीवन की उन सम्पूर्ण परिस्थितियों से है जिनका उन्हें अपने जीवन में सामना करना पड़ता है।

अदिनय भरत ने अपने 'अभिनय-नाट्य शास्त्र' में नाटक की विस्तृत व्याख्या करते हुए लिखा है, "नाटक वह प्रयोग है जिसमें किसी प्रसिद्ध ऐतिहासिक अथवा कल्पित कथा के आधार पर नाटककार द्वारा रुपचरित के अनुसार नाट्य प्रयोक्ता द्वारा प्रशिक्षित नट रंगमंच पर अभिनय तथा संगीत की सहायता से दर्शकों के हृदयों में यथा रस उत्पन्न करके उनका मनोविनोद करते हैं और परोक्ष रूप में उन्हें उपदेश देते हैं और मन: शान्ति प्रदान करते हैं।"

इस विवेचन से यह स्पष्ट है कि–

1. नाटक गद्य, पद्य अथवा मिश्रित किसी भी रूप में लिखा जा सकता है।
2. इसमें कल्पना के स्थान पर वास्तविकता अधिक होती है।
3. नाटक में लोकहित और लोकरंजन की भावना अधिक होती है।
4. इसमें मनोरंजन के साथ हितकारी उपदेश मिलते हैं।

   हितोपदेश जननम् नाटयमेतद् भविष्यति।
   विनोदकरणम् लोके नाट्यमेतद् भविष्यति॥
5. नाटक भिन्न-भिन्न रुचि के मनुष्यों को सन्तुष्ट करता है।
6. भरतमुनि ने भी इस सत्य को स्वीकार किया था। नाटक जन-साधारण की वस्तु है।
7. कालिदास ने लिखा भी है–

   "नाट्य भिन्न रुचेजनस्य बहुधाप्येकम् स्माराधनम्।" (मालविकाग्निमित्रम्)

भारतीय नाट्य परम्परा

भारतीय नाट्य-परम्परा बहुत पुरानी है। नाटक के आदि आचार्य भरतमुनि माने जाते हैं। भरतमुनि ने नाटक का पहला प्रयोग इन्द्र के ध्वजोत्सव में किया। इन्द्र की आज्ञा से विश्वकर्मा ने नाट्य गृह बनाया। इसके पश्चात् एक के बाद कई नाटक खेले गए।

हमारे पूर्वजों ने नाट्य कला को उसके उच्च शिखर तक पहुंचा दिया था। उस समय के नाटक और नाट्य शालाएं इस बात का प्रमाण हैं। भारतीय नाट्य परम्परा समस्त संसार में सर्वोत्कृष्ट थी और इसे राज्याश्रय भी प्राप्त था। कालिदास ने जहां स्वयं उच्चकोटि के नाटकों का निर्माण किया वहां अपने पूर्ववर्ती नाट्यकारों जैसे भास, सौमिल्ल तथा कविपुत्र का भी उल्लेख किया है। लेकिन दुर्भाग्य से हिन्दू शासन के साथ-साथ इस कला का भी पतन होता गया। मुस्लिम काल में तो नाट्य कला का प्राय: लोप सा ही हो गया था।

नाटक परम्परा में अश्वघोष का नाम बड़े आदर से लिया जाता है। अश्वघोष संभवत: प्रथम शताब्दी ई० में साकेत में निवास करते थे। वे कदाचित् कनिष्क के समकालीन व परामर्शदाता थे। उनका सर्वप्रसिद्ध नाटक शारिपुत्र-प्रकरण है जिसमें शारिपुत्र और मौद्गल्यायन के बौद्ध बनने का इतिवृत है। उनके दूसरे नाटक का नाम नहीं मिलता, किन्तु उसकी योजना सुन्दर है। इसमें वृद्धि, कीर्ति, धृति आदि भावनाओं के संवाद प्रस्तुत हैं। तीसरा नाटक भी पूर्ण रूप में नहीं मिलता, किन्तु जो अंश प्राप्त है, उससे इसकी लोकप्रियता सिद्ध होती है। यह नाटक धार्मिक है, किन्तु इसमें हास्य का पुट है। सोमदत्त इसका नायक है और मगधवती वेश्या, कोमुधगंध विदूषक आदि पात्र हैं।

शूद्रक प्रसिद्ध नाटक मृच्छकटिक के रचयिता हैं। कल्हण ने राजतरंगिणी (3-343) में उन्हें विक्रमादित्य का समकक्ष बताया है। स्कन्दपुराण, वेतालपंचविंशतिका, कथा-सरित्सागर, कादम्बरी और हर्षचरित जैसे प्रसिद्ध ग्रन्थों में शूद्रक का उल्लेख है। इससे शूद्रक की लोकप्रियता सिद्ध होती है। शूद्रक कालिदास के पहले हुए हैं। मृच्छकटिक नाटक के आगे दिये गये श्लोक से इस नाटक की कथा का संक्षेप में परिचय मिल जाता है। वह श्लोक इस प्रकार है–

अवन्तिपुर्वा द्विजसार्थवाहो युवा दरिद्रं किल चारुदत्तः।
गुणानुरद्धा गणिका च यस्य वसन्तशोभेव वसन्तसेना॥

आधुनिक युग में जो नाटक लिखे गये हैं या लिखे जा रहे हैं; उनमें प्राकृत भाषा का प्रयोग नहीं है। वे सुललित संस्कृत में लिखे गये हैं। इनकी कथावस्तु भी आधुनिक युग के अनुरूप है; उदाहरणार्थ, 'छत्रपति साम्राज्य' में शिवाजी के चरित्र एवं 'प्रताप' में महाराणा प्रताप के चरित्र का वर्णन है। कश्मीर-सन्धान-समुद्यम में राजगोपालाचार्य, पं० नेहरू, डॉ० श्यामाप्रसाद मुकर्जी, शेख अब्दुला, ग्राहम आदि पात्र हैं। पृथ्वीराज-विजय में गांधी जी का स्वतन्त्रता संग्राम वर्णित है तो भारत-विजय में भारत की स्वतन्त्रता की कथा है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि संस्कृत में आधुनिक विषयों के आधार पर नाटकों का प्रणयन हो रहा है। इससे इस धारणा को बल मिलता है कि संस्कृत किसी अर्थ में मृत भाषा नहीं है।

नाटक का शैक्षणिक महत्त्व

यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है कि दृश्य-श्रव्य शिक्षण प्रणाली शिक्षण की महत्त्वपूर्ण प्रणाली है। यही कारण है कि सभी शिक्षा शास्त्री दृश्य-श्रव्य उपकरणों की उपयोगिता के बारे में एकमत हैं। नाटक शिक्षा प्रदान करने का एक उपयुक्त साधन है। विदेशों में भी नाटक के माध्यम से शिक्षा देने के महत्त्व को समझा जा रहा है। नाटक केवल मात्र मनोरंजन का साधन ही नहीं है, बल्कि एक महत्त्वपूर्ण प्रणाली भी है जिसके माध्यम से छात्रों को शिक्षा दी ा सकती है। नाटक दर्शकों के मन पर तुरन्त प्रभाव डालता है। इसके द्वारा आवरण और व्यवहार की शिक्षा भी सरलता से दी जा सकती है।

नाटक शिक्षण के उद्देश्य

साधारणतया नाटक मनोरंजन का साधन है, परन्तु जब हम इसका प्रयोग शिक्षा की दृष्टि से करेंगे तो केवल मनोरंजन ही एकमात्र उद्देश्य नहीं होगा। विद्यार्थियों की आवश्यकताओं को सामने रखते हुए नाटक शिक्षण के अनेक उद्देश्य हैं जिनका उल्लेख नीचे किया जाता है–

1. छात्रों के मन में दबी हुई प्रभुत्व कामना तथा आत्म-प्रदर्शन की इच्छा के लिए अभिव्यक्ति के अवसर प्रदान करते हुए उन्हें सन्तुष्ट करना।
2. छात्रों को मानव स्वभाव और उसके जीवन की विभिन्न परिस्थितियों से परिचित कराना और उन्हें वास्तविक जीवन के लिए तैयार करना।
3. अनुकरण की मूल-प्रवृत्ति का उदात्तीकरण करके उसकी अभिव्यंजना के लिए अवसर उपस्थित करना।
4. छात्रों को अवसरानुकूल शब्दावली का ज्ञान कराना।
5. छात्रों को शब्द, सूक्ति, लोकोक्ति और मुहावरों का ज्ञान कराना।
6. छात्रों का मनोरंजन करना और उनमें साहित्याध्ययन के लिए रुचि उत्पन्न करना।
7. उनको पूर्ण मनोयोग से सुनने और सुनकर अर्थ-ग्रहण करने के योग्य बनाना।
8. छात्रों के मनोभावों का परिष्कार करना।
9. छात्रों को भावानुसार उचित स्वर प्रवाह में पठन करने की कला में निपुण करना।
10. छात्रों को अभिनय कला की शिक्षा देना।
11. छात्रों को अवसरानुकूल आचरण करना एवं वार्तालाप करना सिखाना।
12. छात्रों के चरित्र में सुधार करना।
13. छात्रों की निरीक्षण, बोध, कल्पना एवं विवेचना आदि शक्तियों का विकास करना।
14. उन्हें नाटकों की भाषा, शैली, विषय सामग्री एवं प्रस्तुति की समीक्षा करने के योग्य बनाना।
15. उन्हें देश काल एवं परिस्थिति के अनुरूप आचरण करने की शिक्षा प्रदान करना।
16. रंगमंच पर अभिनय द्वारा भाषा का शुद्ध उच्चारण, प्रभावोत्पादक, भावानुकूल और अवसरानुकूल कथोपकथन, बोलचाल और भाषा प्रयोग सिखाना।
17. अभिनय तथा उसके सहायक रूपों, यथा संगीत, नृत्य, चित्रकारी तथा रंगमंच की शिक्षा प्रदान करना।

नाटक शिक्षण के इन उद्देश्यों की सीमा पाठ्य नाटक और शिक्षा के स्तर के आधार पर निश्चित की जाती है। उदाहरण के लिए निम्न कक्षाओं में हमारा विशेष ध्यान बच्चों का मनोरंजन करना और उन्हें आचरण एवं वार्तालाप की शिक्षा देने पर होता है जबकि उच्च कक्षाओं में नाटक के शास्त्रीय विश्लेषण और उसकी समीक्षा पर भी ध्यान दिया जाता है।

इसलिए किसी नाटक शिक्षण के उद्देश्य निश्चित करते समय हमें नाटक और कक्षा दोनों के स्तर को सामने रखना चाहिए।

नाटक शिक्षण प्रणालियां

नाटक शिक्षण की प्रचलित विधियों में कुछ प्रमुख विधियां निम्न हैं–

1. व्याख्या प्रणाली
2. आदर्श नाट्य पठन प्रणाली.
3. अभिनय प्रणाली
   (1) रंगमच अभिनय प्रणाली
   (2) कक्षा-अभिनय प्रणाली
4. प्रयोग प्रणाली
5. संयुक्त प्रणाली

प्रत्येक प्रणाली का विवरण नीचे दिया जा रहा है–

1. व्याख्या प्रणाली–इस प्रणाली में अध्यापक प्रश्नों तथा कथन द्वारा, नाटक की भाषा, शैली, पात्र, कथावस्तु, कथोपकथन, नाटक के लेखक तथा नाटक के उद्देश्य आदि की स्वयं व्याख्या करता है। अध्यापक इनके माध्यम से नाटक की विशेषताएं, गुण व दोष समझाता है। इसके साथ ही वह नाटक के सभी तत्त्वों, कठिन स्थलों, नाटककार के विचारों और भावों की पूरी व्याख्या भी करता है। अन्ततः वह नाटक की समीक्षा करने में विद्यार्थियों की सहायता भी करता है।

यह प्रणाली अपने में अपूर्ण है। माध्यमिक कक्षाओं और हाई स्कूल की कक्षाओं के लिए इसकी अधिक उपयोगिता नहीं। हां, उच्च कक्षाओं में जहां नाटकों के सत्त्वों के आधार पर किसी नाटक के गुण-दोष परखे जाते हैं, इस प्रणाली का प्रयोग किया जाता है।

2. आदर्श नाट्य पठन प्रणाली–यह प्रणाली प्रयोग प्रणाली का ही एक रूप है। अध्यापक स्वयं अभिनेता के रूप कक्षा के सामने खड़ा होकर अभिनय पठन करता है अर्थात् स्वयं अभिनेता बनकर सभी चरित्रों का अभिनय करता हुआ उनका चरित्र दर्शाता है। वह कक्षा के सामने सारा नाटक इस ढंग से पढ़ता है कि पात्रों के भाव, चरित्र और कार्य सुनने मात्र से ही स्पष्ट हो जाते हैं। आवश्यकतानुसार वह कठिन तथा विशेष स्थलों की व्याख्या करते हुए उनका स्पष्टीकरण भी करता है। विद्यार्थी निष्क्रिय श्रोता तथा द्रष्टा बनकर सारे नाटक का रसास्वादन करते हैं।

इस प्रणाली को पूर्ण नहीं कहा जा सकता। इसमें यह दोष है कि समस्त कार्य अध्यापक ही करता है। छात्र मूक श्रोता बन जाते हैं। सभी अध्यापक कुशल अभिनेता नहीं हो सकते। नाटक की शिक्षा का उद्देश्य भी पूरा नहीं होता।

3. अभिनय प्रणाली–इस प्रणाली के अनुसार नाटक का अभिनय करा कर उस प्रयोगिक रूप स्पष्ट किया जाता है। अभिनय रंगमंच पर भी हो सकता है और कक्ष भी।

(क) रंगमंच अभिनय प्रणाली–इस प्रणाली में छात्र नाटक के अभिनय में भाग लेते हैं और रंगमंच पर विधिपूर्वक उसे खेलते हैं। इस पद्धति में रंगमंच का नि किया जाता है और पात्रानुकूल वेशभूषा पर भी ध्यान दिया जाता है।

यह विधि बालकों की अभिव्यंजना शक्ति का विकास करने में सहायक होती दृश्य-काव्य होने के कारण बालकों पर स्थायी प्रभाव भी पड़ता है। परन्तु इस प्रणाल सबसे बड़ा दोष यह है कि इसमें समय बहुत लगता है। रंगमंचीय अभिनय में खर्च बहुत अधिक होता है और पर्याप्त अभ्यास की अपेक्षा रहती है।

(ख) कक्षा-अभिनय प्रणाली–रंगमंच अभिनय प्रणाली में जो कठिनाइयां हैं वे कक्षा अभिनय विधि में नहीं होतीं। सम्पूर्ण नाटक का कक्षा में ही अभिनय कराय सकता है। प्रणाली में अध्यापक कक्षा के छात्रों को विभिन्न पात्रों की भूमिका में भाग पढ़ते हैं और तदनुकूल वांछित अभिनय करते हैं।

नाटक की शिक्षा के लिए यह प्रणाली उत्तम मानी जाती है। इस विधि से धन की बाधा दूर हो जाती है और प्रत्यक्ष अभिनय भी सम्पादित होता है। इतने पर भी प्रणाली दोष रहित नहीं कही जा सकती। कथावस्तु, कथोपकथन की बारीकियों चरित्र-चित्रण से पूर्ण परिचित न होने के कारण छात्र केवल वाचन ही करते हैं, स अभिनय नहीं कर पाते। साथ ही नाटकों के तत्त्वों की व्याख्या के अभाव में यह दोषपूर्ण रह जाती है।

4. प्रयोग प्रणाली–नाटक दृश्य काव्य है। इसका उपयुक्त प्रभाव तभी पड़ स है जब इसे देखा जाए। इसलिए नाटक शिक्षण की सबसे उत्तम प्रणाली यही है कि रंगमंच पर प्रदर्शित किया जाए। इस पद्धति से छात्रों को यथेष्ट लाभ होता है। रंगमं दृष्टिकोण से इसे रंगमंच अभिनय प्रणाली अथवा प्रयोग प्रणाली कहते हैं। इस प्रणाल शैक्षिक उपयोगिता तो सबसे अधिक है पर कक्षा-शिक्षण में इसका प्रयोग नहीं कि सकता क्योंकि समय, धन एवं साधनों की कमी रह जाती है अर्थात् अभाव रहता है

5. संयुक्त प्रणाली–नाटक शिक्षण की उपर्युक्त सभी प्रणालियों में गुण भी है दोष भी। दूसरे शब्दों में कोई भी प्रणाली परिपूर्ण नहीं है। संयुक्त प्रणाली द्वारा प्रणालियों को एक-दूसरे के पूरक के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है अर्थात् स संयुक्त रूप से अपनाया जा सकता है, यथा–

सर्वप्रथम आदर्श नाट्य प्रणाली का प्रयोग हो, बीच में अध्यापक आवश्यकत व्याख्या भी करता जाए। वह कठिन शब्दों का अर्थ प्रवचन विधि से समझाए और स सम्बन्धी चरित्र सम्बन्धी तत्त्वों को प्रश्नोत्तर विधि से स्पष्ट करे। इसके पश्चात्

अभिनय का प्रयोग किया जा सकता है। सम्पूर्ण नाटक समझना अथवा पढ़ाने के बाद अध्यापक नाटकीय पात्रों का कार्य विद्यार्थियों में बांटे और कक्षा में अभिनय करवाए। इस प्रकार लगभग सभी प्रणालियों का समावेश हो जाता है।

नाटक शिक्षण के सोपान

इन सभी प्रणालियों की अपनी-अपनी विशेषताएं हैं लेकिन वे सब अपने में अलग से अपूर्ण हैं। कक्षा में नाटक शिक्षण निम्नलिखित सोपानों में करना चाहिए-

1. प्रस्तावना-नाटक की प्रस्तावना पूर्व कथा द्वारा अथवा 'प्रश्नोत्तर' द्वारा करनी उपयुक्त रहती है। यदि नाटक कल्पित कथा पर आधारित हो तो नाटक के परिचयात्मक पाठ से प्रस्तावना का उद्देश्य पूर्ण हो जाता है।

2. उद्देश्य कथन-उद्देश्य कथन इस प्रकार करना चाहिए कि यथा रस की जागृति हो जाए। इस पाठ का शीर्षक और पृष्ठ संख्या भी बता देनी चाहिए जिससे बच्चे पाठ को पढ़ने के लिए तैयार हो जाए।

3. प्रस्तुतिकरण-कुछ विद्वान आदर्श पठन से नाटक शिक्षण का प्रारम्भ करना चाहते हैं तो कुछ मौन पठन से। परन्तु नाटक का आरम्भ परिचयात्मक पठन से करना उचित रहता है। प्रस्तुतिकरण में निम्नलिखित सोपानों को अपनाया जाता है-

(1) परिचयात्मक वाचन-उद्देश्य कथन के पश्चात् अध्यापक को नाटक का परिचयात्मक पठन प्रस्तुत करना चाहिए। परिचयात्मक पठन वह है जिसे अध्यापक ठीक आदर्श पठन या वाचन की तरह सात्विक अभिनय के साथ करता है। लेकिन छात्र उस समय अपनी-अपनी पुस्तकों में देखते रहते हैं। अध्यापक दृश्य आदि के विषय में जो संकेत होते हैं, उनका भी पठन करता है, जिससे वस्तु स्थिति का स्पष्ट ज्ञान हो सके। इस वाचन को परिचयात्मक पठन का नाम इसलिए भी दिया गया है, क्योंकि इसके द्वारा बच्चों को नाटक की कथा एवं पात्रों का परिचय प्राप्त होता है।

(2) केन्द्रीय भाव ग्रहण परीक्षण-परिचयात्मक भाव को जानने के लिए कुछ ऐसे प्रश्न पूछे जाएं, जिनसे नाटक के मुख्य पात्र और केन्द्रीय कथानक का ज्ञान हो सके। इसके बाद व्याख्या करनी चाहिए।

(3) शब्द व्याख्या-कुछ विद्वान नाटक शिक्षण में शब्द व्याख्या को कोई स्थान नहीं देते। उनके अनुसार इससे रस भंग होता है। नाटकों का चयन करते समय हमें भाषा की सरलता और स्पष्टता का ध्यान रखना चाहिए, परन्तु यदि कोई शब्द कठिन आ जाए तो उसकी व्याख्या अवश्य करनी चाहिए।

(4) आदर्श पठन-अध्यापक को छात्रों की पुस्तकें बंद करवाकर उनके सम्मुख आदर्श पठन प्रस्तुत करना चाहिए। केवल भाव मुद्राओं द्वारा भाव प्रदर्शन करना चाहिए। अंग-संचालन बहुत सूक्ष्म रूप से होना चाहिए।

(5) अनुकरण वाचन-अध्यापक को उपयुक्त छात्रों को यथा-पात्रों की भूमिका में खड़ा करना चाहिए और फिर पठन करवाना चाहिए। अध्यापक स्वयं भी किसी पात्र की भूमिका निभा सकता है। इस पठन में आंगिक अभिनय भी किया जा सकता है। यह समस्त क्रिया एक सहयोगी क्रिया का रूप धारण कर लेगी और सहयोग की भावना भी बढ़ाएगी।

(6) कथा एवं अन्य तथ्यों की व्याख्या-व्याख्या कक्षा के स्तरानुकूल होनी चाहिए। छोटी कक्षाओं में केवल कथानक सम्बन्धी या पात्र के बारे में ही प्रश्न पूछना पर्याप्त रहेगा। बड़ी कक्षाओं में कथानक के साथ-साथ चरित्र व्याख्या भी करनी चाहिए।

(7) द्वितीय आदर्श पठन-आवश्यकता अनुभव करने पर अध्यापक को संश्लेषण के लिए द्वितीय आदर्श पठन प्रस्तुत करना चाहिए।

4. संक्षिप्तावृत्ति-यहां पर बच्चों से ऐसे प्रश्न पूछने चाहिए जो पूरी कथा, कथोपकथन चरित्र, संवाद आदि पर आधारित हों। बालक नाटक के गुण-दोष भी बता सकेंगे। नाटक के प्रभाव का मूल्यांकन किया जा सकता है।

5. गृह कार्य-अन्त में कथा-वस्तु, कथोपकथन और पात्र-परिचय तथा चरित्र-चित्रण पर कुछ प्रश्न पूछे जा सकते हैं, जिनके उत्तर बच्चों को घर से लिखकर लाने को कहा जा सकता है।

नाटक शिक्षण के सम्बन्ध में कुछ विशेष बातें

1. नाटक आरम्भ करने से पहले नाटककार तथा आवश्यकतानुसार नाटक के ऐतिहासिक या सामाजिक पृष्ठभूमि का संक्षिप्त परिचय देना चाहिए।
2. नाटक पढ़ाने से पहले पूरी कथा (कथानक) नहीं बतानी चाहिए। पहले ही कहानी बता देने से छात्रों की रुचि नाटक में कम हो जाती है, अर्थात् उन घटनाओं को जानने की सारी उत्सुकता नष्ट हो जाती है।
3. नाटक के चरित्र एवं पात्रों की संक्षिप्त रूप-रेखा खींचनी चाहिए।
4. नाटक में आए हुए गीतों को पढ़ाने में कविता शिक्षण पद्धति का ही प्रयोग करना चाहिए।
5. इसी प्रकार गद्य के कठिन अंगों को पढ़ाने के लिए गद्य शिक्षण पद्धति का प्रयोग करना चाहिए।
6. सम्पूर्ण नाटक को एक ही बार या एक ही दिन में समाप्त करने की चेष्टा नहीं करनी चाहिए। एक बार केवल एक अंग पढ़ाना चाहिए।
7. एकांकी नाटक तथा रेडियो नाटक को एक दिन में पढ़ाया जा सकता है, पर यदि उसके बहुत से दृश्य हों तो एक दृश्य को एक घंटे में पढ़ाना चाहिए।
8. कथोपकथन स्वाभाविक होना चाहिए।

9. पात्रों का चयन ठीक हो।
10. नाटक पढ़ाने के बाद छात्रों से प्रश्न भी पूछे जा सकते हैं।
11. नाटकों का चयन करते समय पूरी सावधानी एवं सूझ-बूझ से काम लेना चाहिए। कक्षा के स्तर को ध्यान में रखते हुए नाटकों का चयन करना चाहिए।

नाटक शिक्षा को सर्वप्रिय बनाने के लिए विद्यालयों में विशेष अवसरों पर नाटकों के मंच पर अभिनय करने की व्यवस्था की जानी चाहिए। वर्ष में तीन चार बार यह व्यवस्था जा सकती है। इसके अतिरिक्त कक्षा में भी अभिनय प्रणाली को प्रोत्साहन देना हिए। यह समस्त कार्य स्वयं अध्यापक की क्षमता, योग्यता और निपुणता पर निर्भर ता है। कुछ भी हो, छात्रों को अभिनय करने का प्रोत्साहन मिलना चाहिए। इससे तत: वे व्यावहारिक जीवन से सफल रहते हैं।

अभ्यास के प्रश्न

1. नाटक शिक्षण के विभिन्न उद्देश्यों तथा विषयों का विवरण दीजिए।
2. भारतीय नाट्य परम्परा को स्पष्ट करते हुए पाठ्यक्रम में नाटक के स्थान की समीक्षा प्रस्तुत करें।
3. संस्कृत शिक्षण में अभिनय का क्या स्थान है? संस्कृत से उदाहरण देकर समझाइए।
4. संस्कृत शिक्षण में नाटक शिक्षण की कौन-कौन सी प्रणालियां प्रचलित हैं? आप किस प्रणाली को उपयुक्त मानते हैं और क्यों?
5. संस्कृत शिक्षण में नाटक शिक्षा के महत्त्व पर प्रकाश डालें। उचित उदाहरण भी दीजिए।
6. नाटक के मुख्य तत्त्व कौन-कौन से हैं? माध्यमिक कक्षाओं में आप इन तत्त्वों की व्याख्या किस प्रकार करेंगे?
7. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी करें-
   (क) माध्यमिक स्तर पर नाटकों का चयन।
   (ख) नाटक शिक्षण के सम्बन्ध में आधारभूत बातें।
   (ग) नाटक शिक्षण विधि और कहानी शिक्षण विधि में अन्तर।
   (घ) नाटक शिक्षण के सोपान।

❑❑❑

अध्याय 13

संस्कृत में अनुवाद शिक्षण- प्रक्रिया, उद्देश्य तथा सोपान

अनुवाद का अर्थ-अनुवाद अंग्रेज़ी के Translation शब्द का हिन्दी रूपांतर है। इसका अर्थ है-एक भाषा के भावों या विचारों को दूसरी भाषा में रूपांतरित करना अर्थात् अनुवाद वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा किसी एक भाषा के भावों या विचारों को दूसरी भाषा में व्यक्त किया जा सकता है। जैसे-अंग्रेज़ी से हिन्दी में, हिन्दी से संस्कृत में परिवर्तित करना।

अनुवाद की परिभाषा-शिक्षा शब्दकोष के अनुसार, "अनुवाद मूल शब्दों और वाक्यांशों का यथासम्भव निकटतम मुहावरेदार तुल्यार्थक शब्द प्रदान करके प्रदत्त भाषा सामग्री दूसरी भाषा में प्रतिपादन का कार्य है।"

स्टार्म महोदय-एक व्यक्ति एक शब्द का दूसरी भाषा में अनुवाद उसी समय कर सकता है, जब उसके प्रयोग पर उस व्यक्ति का अधिकार हो। इसलिए वह अनुवाद करते समय उसे समझता ही नहीं है अपितु उसका प्रयोग भी कर सकता है।

प्राचीन भाषा संस्कृत का वर्तमान समय में इसका प्रचलन कम है। आरम्भ में बालक मातृभाषा को ही सीखता है। मातृभाषा का समुचित ज्ञान हो जाने पर बालक को संस्कृत भाषा का आरम्भिक ज्ञान कराया जाता है। तत्पश्चात् ज़रूरत पड़ने पर संस्कृत के माध्यम से अपने विचारों को अभिव्यक्त कर सके।

अनुवाद शिक्षण की उपयोगिता-

1. इससे मूल भाषा व अनुदित की गई भाषाओं का ज्ञान हो सकता है।
2. इससे छात्रों के शब्दकोष में वृद्धि होती है।
3. इससे छात्रों का व्याकरणिक ज्ञान परिपुष्ट होता है। अत: भाषा पर अधिकार होता है।
4. इसके द्वारा संस्कृत शिक्षण रोचक, सरल, सुग्राहय बन जाता है।
5. छात्रों की सृजनात्मक शक्ति का विकास होता है।
6. इससे विभिन्न भाषाओं के साहित्य का परिचय प्राप्त होता है।
7. इस प्रक्रिया के द्वारा संस्कृत और मातृभाषा में समीपता उत्पन्न होती है।
8. मातृभाषा से संस्कृत में अनुवाद करने की प्रक्रिया में मनोवैज्ञानिक शिक्षण सत्रों

का अनुसरण किया जाता है। ज्ञात से अज्ञात की ओर बढ़ते हुए छात्र दूसरी भाषा को आसानी से सीख लेता है।

9. अनुवाद सद्भावना बनाए रखने में सहायक होता है।

अनुवाद शिक्षण की प्रक्रिया–अनुवाद शिक्षण करते हुए अध्यापक किस प्रक्रिया को अपनाए यह छात्रों के मानसिक स्तर पर निर्भर करता है। इसके लिए छात्रों मं शब्द ज्ञान आध्यधिक होना चाहिए। इसके लिए सामान्यत: तीन विधियां अपनाई जाती हैं–

1. पुस्तक प्रक्रिया–इसमें अनुवाद शिक्षण के लिए अलग–अलग पुस्तकें तैयार की जाती हैं। पाठ्य-पुस्तक के अंत के अनुवाद हेतु कुछ वाक्य दिए जाते हैं, वहीं उससे संबंधित कठिन शब्द व व्याकरण के नियम भी होते हैं। जिन्हें पढ़कर अनुवाद करने में छात्र को सुविधा होती है। इसके लिए पहले सरल वाक्य फिर क्रमश: कठिन और मिश्रित वाक्यों को अभ्यास के लिए रखा जाता है। एक एक लकार के वाक्यों का अनुवाद करना सिखाया जाता है। इसके बाद कारकों तथा प्रत्ययों का प्रयोग। जब छात्र सभी लकारों के वाक्यों में कारकों का समुचित प्रयोग करके अनुवाद करना सीख जाते हैं। तब छात्रों को मिश्रित वाक्यों एवं गंध–खंडों को अनुवाद करने को कहा जाता है। यह प्रक्रिया व्यस्थित, मनोवैज्ञानिक समय की दृष्टि से मितव्ययी तथा सामान्य बुद्धि के बालकों के लिए उपयोगी है।

2. अनुकरण एवं तुलना प्रक्रिया–इसमें सबसे पहले आदर्श अनुवाद प्रस्तुत किया जाता है। छात्र उसे समझते हैं, फिर उन्हें मातृभाषा में कोई अनुच्छेद दे दिया जाता है जो शैली और शब्दावली की दृष्टि से आदर्श अनुवाद के अनुच्छेद के सदृश ही रहता है। इस प्रक्रिया में छात्र अधिक सक्रिय रहता है तथा माध्यमिक स्तर के लिए उपयोगी होता है। इसमें छात्र अनुकरण एवं अभ्यास के द्वारा सीखते हैं।

3. दुभाषिया प्रक्रिया–इस विधि में एक व्यक्ति मातृभाषा में बोलता है और दूसरा बड़े सम्मेलनों में, संस्कृत गोष्ठियों में इस विधि का प्रयोग किया जाता है। कक्षा में अध्यापक पूरे अनुच्छेद या एक–एक वाक्य का अनुवाद करा सकता है। इसके द्वारा छात्रों को संस्कृत बोलने की प्रेरणा मिलती है और वे अनेक संस्कृत शब्दों को अपनी सक्रिय शब्दावली में सम्मिलित कर लेते हैं। यह प्रक्रिया उच्च स्तर में शिक्षण करते हुए अपनाई जाती है। इस प्रक्रिया के द्वारा दूसरे देशों के व्यक्तियों की भाषाएं एवं विचारों को समझा जा सकता है।

संस्कृत अनुवाद के शिक्षण उद्देश्य–

1. छात्रों को संस्कृत भाषा के माध्यम से विचार-विनिमय के सुयोग्य बनाना।
2. इसके द्वारा अन्य भाषा की विषय-वस्तु को संस्कृत में लिखने का अभ्यास कराना।
3. छात्रों में शुद्ध संस्कृत लिखने की क्षमता का विकास करना।

4. शब्द भण्डार में वृद्धि करना।
5. संस्कृत साहित्य को आधुनिक भावों एवं विचारों से समृद्ध कराना।
6. विभिन्न भाषाओं की शैली को समझने तथा उस शैली के अनुसार भावों को संस्कृत में प्रयोग करने की क्षमता उत्पन्न करना।
7. संस्कृत में अपने विचार अभिव्यक्त करने की कुशलता का विकास करना।
8. छात्रों को अन्य लेखकों की भाषा एवं शैली के अनुसार संस्कृत भाषा में लिखने की योग्यता प्रदान करना।
9. अनुवाद द्वारा छात्रों में संस्कृत के प्रति अनुराग उत्पन्न करना।

संस्कृत अनुवाद कार्यों में ध्यान देने योग्य बातें–

1. मूल भाषा एवं शैली की रक्षा होनी चाहिए।
2. भाषा सरल और सहज होनी चाहिए।
3. अनुवाद छात्रों के मानसिक स्तर के अनुसार होना चाहिए।
4. अनुवाद कार्य सरल से कठिन की ओर करना चाहिए।
5. अनुवाद कार्य में अभ्यास करवाना चाहिए। जिससे अनुवाद में शुद्धता आएगी।
6. अनुवाद करते समय लकार, लिंग, वचन, पुरुष, धातु और विभक्तियों का ध्यान रखना चाहिए।
7. यदा तदा, तर्हि, यावत इत्यादि अव्यवों का प्रयोग सावधानीपूर्वक करना चाहिए।
8. उपसर्ग और प्रत्ययों के प्रयोग से नए शब्दों के निर्माण का अभ्यास भी कराना चाहिए।
9. कर्ता के पुरुष और वचन के अनुसार ही क्रिया का प्रयोग किया जाए, इस बात का ध्यान रखना चाहिए।
10. विराम चिह्नों का भी सावधानीपूर्वक प्रयोग करना चाहिए।
11. कर्तृवाच्य, भाववाच्य एवं कर्मवाच्य के नियमों को ठीक प्रकार से जानकर ही इनका प्रयोग करना चाहिए।
12. अनुवाद में निपुणता हासिल करने के लिए धातु रूप, शब्द रूप कारक चिह्नों लिंगों एवं वचनों का ज्ञान होना नितान्त आवश्यक है तभी शुद्ध अनुवाद किया जा सकता है।

अनुवाद शिक्षण के सोपान

संस्कृत अनुवाद शिक्षण के लिए निम्न सोपानों का अनुसरण किया जा सकता है–

1. सामान्य आरम्भिक बिंदु–दिनांक, कक्षा, वर्ग, विषय, प्रकरण, अवधि इत्यादि।

2. निरीक्षण एवं संशोधन कार्य–छात्रों के लिखित अनुवाद का निरीक्षण करना और व्यक्तिगत रूप से त्रुटियों का संशोधन करना आदि का यहां उल्लेख किया जाता है।

3. कक्षा कार्य–पठित विषय-वस्तु की जांच अथवा अभ्यास हेतु छात्रों के कतिपय हिन्दी वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद पूछा जाता है।

4. गृह कार्य–छात्रों को अनुदित वाक्यों के सदृश कतिपय हिन्दी वाक्य देना और उनका संस्कृत में अनुवाद करके लाने का आदेश देना यहां अंकित किया जाता है।

अनुवाद पाठ–योजना

अनुक्रमांक–..... **दिनांक**–.....

विषय–..... **कालांश**–पंचम (40 मिनट)

उपविषय–..... **कक्षा**–3 वर्ग

सामान्य उद्देश्य–

1. छात्रों को संस्कृत के माध्यम से विचारों को आदान-प्रदान करने की योग्यता प्रदान करना।
2. विद्यार्थियों को हिन्दी व संस्कृत के वाक्यांशों का तुलनात्मक ज्ञान प्रदान करना।
3. व्याकरण पाठ में सीखे गए नियमों के प्रयोग के लिए अवसर प्रदान करना।
4. संस्कृत भाषा के प्रयोग में छात्र जो त्रुटियां करते हैं, उनसे उन्हें परिचित कराते हुए उनको दूर करने के की प्रेरणा देना।
5. छात्रों को शुद्ध संस्कृत लिखने का अभ्यास कराना।

विशिष्ट उद्देश्य–छात्रों को वर्तमान काल (लट् लकार) प्रथम पुरुष की क्रियाओं का प्रयोग करने की क्षमता प्रदान करना तथा श्यामपट्ट पर हिन्दी में लिखे हुए वर्तमानकालिक दस वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद करना सिखाना।

सहायक सामग्री–

1. लपेट श्यामपट्ट पर लिखित लट् लकार के कुछ हिन्दी वाक्य।
2. अन्य उपयोगी उपकरण।

सामान्य उद्देश्य–संस्कृत अनुवाद के पांच या छः सामान्य उद्देश्य लिखे जाते हैं।

विशिष्ट उद्देश्य–प्रस्तुत प्रकरण के शिक्षण का विशिष्ट उद्देश्य लिखा जाता है।

सहायक सामग्री–मातृभाषा के वाक्यों या अनुच्छेद को लपेट श्यामपट्ट पर लिखकर लाया जा सकता है, उपयोगी शिक्षण उपकरण।

पूर्वज्ञान–प्रस्तुत पाठ के विषय में छात्र जो सामान्य ज्ञान रखते हैं अथवा अभ्यास कर चुके हैं, इसका उल्लेख किया जा सकता है।

प्रस्तावना–प्रस्तुत पाठ पर छात्रों पर ध्यान केन्द्रित करने तथा नवीन ज्ञान की प्राप्ति हेतु तैयार करने के लिए छात्रों से पूर्व ज्ञान के आधार पर चार या पांच प्रस्तावना प्रश्न पूछना यहां लिखे जाते हैं।

उद्देश्य कथन–पढ़े जाने वाले पाठ का सरल, संक्षिप्त एवं स्पष्ट भाषा में उद्देश्य कथन रखा जाता है।

प्रस्तुतिकरण–श्यामपट्ट पर लिखित मातृभाषा के वाक्यों को कक्षा के समक्ष प्रस्तुत करना और छात्रों को अपनी-अपनी अभ्यास-पुस्तिकाओं पर लिखने का आदर्श देना अंकित किया जाता है।

अनुच्छेद का मौनवाचन–छात्रों को लिखित वाक्यों का अनुच्छेद का मौन वचन करने के लिए आदर्श अंकित करते हैं।

कठिन शब्दों को रेखांकित करना तथा उनका निवारण करना–कठिन शब्दों के संस्कृत शब्द श्यामपट्ट पर लिखने और आवश्यकता पड़ने पर छात्रों को शब्द कोश के प्रयोग हेतु प्रोत्साहित करने का उल्लेख यहां होता है।

मौखिक अनुवाद–छात्रों की सहायता से हिन्दी वाक्यों का अनुच्छेद का मौखिक रूप से संस्कृत में अनुवाद करना किया जाता है।

अनुवाद लेखन–मौखिक रूप से अनूदित संस्कृत वाक्यों को अपनी-अपनी अभ्यास पुस्तिकाओं पर लिखने का आदेश यहां लिखा जाता है।

पूर्वज्ञान–

1. छात्रों को शब्द एवं धातु रूपों का सामान्य ज्ञान है।
2. छात्र विभक्ति एवं लकारों का अध्ययन कर चुके हैं।
3. साथ ही वे आकारान्त, अकरान्त, इकरान्त तथा उकारान्त संज्ञा शब्दों के रूपों से भी परिचित हैं।

प्रस्तावना–निम्नलिखित वाक्यों को छात्रों के समक्ष प्रस्तुत किया जाएगा–

1. लड़के पढ़ते हैं।
2. लड़कियां विद्यालय जाती हैं।
3. मोहन पत्र लिखता है।
4. दो बालक गेंद खेलते हैं।
5. हरी दौड़ता है।
6. बालक मोहन के साथ चलता है।
7. सुरेश सूर्य को नमस्कार करता है।
8. दो मनुष्य बाग को देखते हैं।
9. दो घोड़े दौड़ते हैं।
10. बहुत से हाथी यहां आते हैं।

विषयोपस्थापन–

1. उपर्युक्त दसों वाक्यों का छात्रों द्वारा मौन वाचन।
2. छात्रों द्वारा कठिन शब्दों पर चिह्न लगाना।
3. अध्यापक द्वारा स्पष्टीकरण तथा चिन्हित शब्दों में संस्कृत पर्याय बताना।

पढ़ना–पठ्	जाना–गम् (गच्छ)
लिखना–लिख्	खेलना–क्रीड्
चलना–चल्	नमस्कार करना–नम्
देखना–दृश	दौड़ना–धाव्
साथ–सह	गेंद–कन्दुक
बाग–उद्यान	घोड़ा–अश्व

गम् धातु के प्रयोग में द्वितीया विभक्ति होती है। सहयोग में तृतीया विभक्ति लगेगी। गेंद यहां साधन है, अतः तृतीया विभक्ति होगी।

4. उपर्युक्त सभी वाक्यों का संस्कृत में मौखिक रूप से अनुभव होगा। अध्यापक एक एक वाक्य लेता चलेगा।

अनुवाद लेखन–अध्यापक छात्रों से अनुवाद कार्य लिखने को कहेगा और स्वयं निरीक्षण करेगा।

संशोधन–लिखित कार्य का यथासम्भव कक्षा में ही संशोधन होगा।

गृह कार्य–निम्नलिखित वाक्यों का घर पर संस्कृत में अनुवाद करो–

1. विनोद सोता है।
2. सन्तोष यहां ठहरता है।
3. श्याम वहां बैठता है।
4. लड़का क्या खाता है?
5. मनुष्य क्या ले जाता है?

संस्कृत में अनुवाद–शिक्षण को रोचक एवं प्रभावपूर्ण बनाने हेतु सुझाव–

1. मातृभाषा की शिक्षा के साथ संस्कृत भाषा की शिक्षा आरम्भ होने पर अनुवाद की शिक्षा आरम्भ कर देनी चाहिए।
2. अनुवाद के लिए चुने जाने वाले वाक्य छात्रों की पठित विषय-वस्तु पर आधारित होने चाहिए।
3. आरम्भिक स्तर पर अनुवाद कार्य छात्रों की पाठ्य-पुस्तक पर आधारित होने चाहिए।
4. हिंदी से संस्कृत, संस्कृत से हिन्दी और पुनः अनुवाद का अभ्यास कराना

लिए चुने गए वाक्य छात्रों के संस्कृत ज्ञान एवं मानसिक स्तर के अनुकूल होने चाहिए।

5. अनुवाद सरल एवं सुबोध होने चाहिए।
6. अनुवाद द्वारा तुलनात्मक प्रवृत्ति का विकास करना चाहिए।
7. छात्रों को अनुवाद में कुशल बनाने के लिए व्याकरण का ज्ञान एवं अभ्यास अति आवश्यक है।
8. कर्ता के पुरुष और वचन के अनुसार ही क्रिया का प्रयोग करना चाहिए।
9. अनुवाद में अभ्यास पर विशेष बल देना चाहिए क्योंकि अभ्यास से कुशलता प्राप्त होती है।
10. अनुवाद करते समय सर्वप्रथम छात्रों की सहायता से मानसिक अनुवाद कराना चाहिए तत्पश्चात् छात्रों को अनुवाद लेखन के लिए आदेश देना चाहिए।
11. छात्रों द्वारा कृत अनुवाद कार्य का शिक्षक द्वारा निरीक्षण अवश्य होना चाहिए और व्यक्तिगत रूप से छात्र के समक्ष ही संशोधन भी करना चाहिए।
12. अनुवाद शिक्षण के अन्तर्गत पाठगत शिक्षण लक्षणों की पूर्ति अवश्य की जानी चाहिए।

अभ्यास के प्रश्न

1. संस्कृत अनुवाद शिक्षण के उद्देश्य कौन-कौन से हैं? स्पष्ट कीजिए।
2. संस्कृत अनुवाद शिक्षण की कौन-कौन सी प्रमुख विधियां हैं? उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।
3. संस्कृत अनुवाद शिक्षण के कौन-कौन से सामान्य नियम हैं? छात्रों को उनका ज्ञान कराना क्यों आवश्यक है?
4. संस्कृत शिक्षण में अनुवाद के महत्त्व पर प्रकाश डालिए?
5. आप संस्कृत अनुवाद शिक्षण को रोचक एवं प्रभावपूर्ण बनाने के लिए क्या करेंगे? सुझाव दीजिए।
6. स्कूल स्तर पर संस्कृत अध्ययन हेतु अनुवाद के अभ्यासों की रचना के लिए मार्गदर्शक सिद्धान्तों को स्पष्ट कीजिए। उचित उदाहरण भी दीजिए।
7. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए–
   (क) संस्कृत अनुवाद का महत्त्व।
   (ख) संस्कृत अनुवाद के भेद।
   (ग) संस्कृत अनुवाद के शिक्षण पद।

❑❑❑

अध्याय 14

संस्कृत शिक्षण में मूल्यांकन, अर्थ, स्वरूप एवं परीक्षाओं के प्रकार

परीक्षा एवं मूल्यांकन शिक्षा प्रणाली के अनिवार्य अंग हैं। विद्यार्थियों ने एक निश्चित अवधि में कितना कुछ सीखा, कितनी प्रगति की, शिक्षा के उद्देश्य कहां तक प्राप्त हुए–इन सब की जांच करने के लिए परीक्षाएं आयोजित की जाती हैं। परीक्षाओं के लिए प्रश्न-पत्र बनाये जाते हैं और विद्यार्थियों का मूल्यांकन किया जाता है। इस प्रकार परीक्षा एवं मूल्यांकन की एक निश्चित प्रक्रिया अपनाई जाती है।

मूल्यांकन से तात्पर्य

मूल्यांकन शब्द का यदि सन्धि-विच्छेद किया जाए तो यह दो शब्दों (मूल्य + अङ्कन) से मिलकर बना है, जिसका अर्थ है–मूल्य आंकना। लेकिन शिक्षा के क्षेत्र में यह व्यापक अर्थ में प्रयुक्त होता है। यह छात्र के ज्ञान की सीमा-निर्धारण के साथ-साथ उसकी रुचियों, कार्य क्षमताओं, व्यक्तित्व, व्यवहारों, आदतों तथा बुद्धि आदि की प्रगति को आंककर गुणात्मक निर्णय करता है।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान, नई दिल्ली की पुस्तक के अनुसार मूल्यांकन प्रक्रिया में निम्नांकित बातों के बारे में निर्णय किया जाता है–

1. शिक्षण उद्देश्यों की प्राप्ति किस सीमा तक हुई?
2. शिक्षा के उद्देश्य प्राप्त करने का तरीका कितना प्रभावी रहा?
3. कक्षागत अधिगम अनुभव कितने प्रभावी रहे?

उपर्युक्त तीनों बिन्दू मिलकर मूल्यांकन चक्र को पूरा करते हैं। इसे निम्नांकित चित्र द्वारा प्रकट किया जा सकता है–

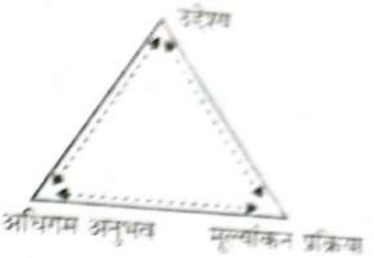

इस चित्र से यह स्पष्ट होता है कि शिक्षण उद्देश्य प्राप्त करना शिक्षा का अन्तिम उद्देश्य है, जिसके लिए बालकों को विभिन्न अधिगम अनुभव, जिन्हें साधन भी कह सकते हैं, दिए जाते हैं। ये उद्देश्य किस सीमा तक प्राप्त हुए तथा साधन इन्हें प्राप्त करने में कहां तक सफल रहें, इस साक्षी के रूप में मूल्यांकन किया जाता है। इस प्रकार ये तीनों आपस में जुड़े हुए हैं। यह कहा जा सकता है कि, "मूल्यांकन एक सतत् प्रक्रिया है जिसके माध्यम से व्यवहार परिवर्तन विषयक साक्षियों का संकलन किया जाता है तथा ऐसे परिवर्तनों की दिशा तथा स्तर के सम्बन्ध में निर्णय दिया जाता है।"

उपर्युक्त विचार-विमर्श के बाद मूल्यांकन का अर्थ स्पष्ट करने के सम्बन्ध में तीन प्रमुख बिन्दू उभर कर आते हैं–

1. मूल्यांकन एक सतत् प्रक्रिया है।
2. इस प्रक्रिया द्वारा उन साक्षियों के संकलन किया जाता है जो यह प्रमाणित करती हैं कि व्यवहार में वांछित परिवर्तन हुए या नहीं।
3. मूल्यांकन का प्रयोग साक्षियों को संकलन तक ही सीमित नहीं है, बल्कि इनका उद्देश्य यह निर्णय करना भी है कि परिवर्तन किस सीमा तक हुआ है।

इस प्रकार मूल्यांकन का अर्थ मूल्य निर्धारण से है अर्थात् सीखने के अनुभवों से बालक में किस सीमा तक अपेक्षित व्यवहार परिवर्तन हुए, इसका मूल्यांकन कर निर्णय देना है।

मूल्यांकन की परिभाषा–मूल्यांकन को निम्न प्रकार से परिभाषित किया गया है–

ई०बी० वेस्ले, "मूल्यांकन एक समावेशित धारणा है जो किए गए प्रयत्न के स्तर, मूल्य एवं प्रभावशीलता के बारे में संकेत प्रदान करती है। यह वस्तुनिष्ठ प्रमाण तथा आत्मनिष्ठ निरीक्षण का सम्मिश्रण है।"

डांडेकर के अनुसार, "मूल्यांकन हमें यह बताता है कि बालक ने किस सीमा तक किन उद्देश्यों को प्राप्ति किया है।"

मूल्यांकन का महत्त्व–मूल्यांकन का महत्त्व निम्न प्रकार से है–

1. मूल्यांकन द्वारा यह मालूम किया जाता है कि उद्देश्यों की प्राप्ति कहां तक हो सकती है।
2. मूल्यांकन प्रक्रिया से यह भी निश्चित किया जाता है कि किन विशिष्ट उद्देश्यों की प्राप्ति नहीं हो सकी है ताकि समुचित उपचारात्मक अनुदेशन दिया जा सके।

3. कक्षा में छात्रों का उद्देश्यों की प्राप्ति के अनुसार स्तरीकरण किया जा सकता है।
4. शिक्षण की विधियों तथा प्रविधियों का उपादेयता और उनकी कमजोरियों की भी ज्ञात किया जाता है।
5. शिक्षण व्यूह रचना में सुधार तथा विकास किया जाता है तथा अनावश्यक अधिगम स्त्रोतों को हटाया भी जा सकता है।
6. मूल्यांकन प्रक्रिया शिक्षण तथा छात्र दोनों के लिए पुनर्बलन का कार्य करती है।

इस प्रक्रिया में मानदंड परीक्षा का महत्त्वपूर्ण कार्य होता है जिससे छात्रों के व्यवहार परिवर्तन की जांच होती है, जिसके आधार पर शिक्षक को अपनी क्रियाओं के सुधार तथा विकास के लिए दिशा मिलती है।

मूल्यांकन के उद्देश्य

1. शिक्षा के उद्देश्यों को स्पष्ट करके उनकी उपयुक्तता को परखना।
2. शिक्षण में वांछित सुधार लाना।
3. शिक्षण विधि, पाठ्य-वस्तु, पुस्तकों और अन्य शैक्षिक साधनों की उपयुक्तता को परखना।
4. पूर्व निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति किस सीमा तक हुई है।
5. शिक्षण के द्वारा प्रदत्त तथ्यात्मक ज्ञान छात्रों ने किस सीमा तक प्राप्त किया है
6. छात्रों के व्यवहार सम्बन्धी परिवर्तनों की जानकारी हेतु।
7. भावी उपलब्धियों के सम्बन्ध में भविष्यवाणी अथवा अनुमान लगाने हेतु।
8. उचित शैक्षिक तथा व्यावसायिक निर्देशन प्राप्त करने में सहायता देने हेतु।
9. शिक्षण, पाठ्य-पुस्तक, पाठ्यक्रम आदि में सुधार लाने के उद्देश्य से।
10. शिक्षार्थियों को उचित शैक्षिक व व्यावसायिक निर्देशन प्रदान करने में सहायता देने हेतु।

मूल्यांकन की विशेषताएं

मूल्यांकन की विशेषताएं निम्नांकित हैं-

1. व्यापक प्रक्रिया-मूल्यांकन का क्षेत्र व्यापक है। यह परीक्षा की तरह ज्ञानात्मक पक्ष से ही सम्बन्धित नहीं है। व्यवहार की दृष्टि से देखा जाए तो मूल्यांकन बालक के तीनों पक्षों अर्थात् ज्ञानात्मक, भावात्मक तथा क्रियात्मक में हुए परिवर्तनों

मूल्य निर्धारण किया जाता है। इस प्रकार मूल्यांकन विद्यार्थी के व्यक्तित्व विकास के विभिन्न पक्षों से सम्बन्धित है।

2. उद्देश्यनिष्ठता-मूल्यांकन उद्देश्यनिष्ठ प्रक्रिया है। मूल्यांकन द्वारा यह ज्ञात किया जाता है कि शिक्षण द्वारा उद्देश्यों की प्राप्ति किस सीमा तक हो पाई है तथा इन उपलब्धियों का स्तर क्या है?

3. बाल केन्द्रित-शिक्षण के द्वारा बालकों में अपेक्षित व्यवहारगत परिवर्तन लाए जाने का प्रयत्न किया जाता है। इस प्रकार मूल्यांकन प्रक्रिया में बालक सदा केन्द्र बिन्दु रहता है।

4. सामाजिक प्रक्रिया-मूल्यांकन प्रक्रिया इस बात की जांच भी करती है कि शिक्षण कार्य समाज की आकांक्षा, आदर्श एवं आवश्यकता के अनुरूप हो रहा है या नहीं। इस प्रकार मूल्यांकन एक सामाजिक प्रक्रिया भी है।

5. अनवरत प्रक्रिया-मूल्यांकन का शिक्षण उद्देश्यों से गहरा सम्बन्ध है। बालकों में वांछनीय अधिगम अनुभव उत्पन्न हुए या नहीं, मूल्यांकन भी प्रतिदिन किया जाता है। इस प्रकार शिक्षण को सम्मुनत करने तथा बालक का सन्तुलित विकास करने के लिए मूल्यांकन अनवरत रूप से करना आवश्यक है।

6. सहकारी प्रक्रिया-मूल्यांकन प्रक्रिया में बालक से सम्बन्धित सभी व्यक्तियों का सहयोग आवश्यक है। बालक के विकास का सही मूल्यांकन करने के लिए अध्यापक को अन्य साथी अध्यापक, बालक के मित्र आदि से भी सम्पर्क करना होगा। उनके सहयोग के अभाव में यह कार्य असम्भव सा ही है। इस प्रकार मूल्यांकन एक सहकारी प्रक्रिया है।

7. अन्तर-क्रियात्मक प्रक्रिया-शिक्षण उद्देश्यों की प्राप्ति किस सीमा तक ही सीमित नहीं है अपितु यह भी देखता है कि अध्ययन-अध्यापन संस्थाएं कितनी प्रभावी रहीं। इस प्रकार मूल्यांकन दोनों तत्त्वों से सम्बन्धित हैं।

8. निर्णयात्मक प्रक्रिया-मूल्यांकन एक निर्णयात्मक प्रक्रिया है। इसके द्वारा शिक्षण विधि, शिक्षण अधिगम संस्थितियां, शिक्षण द्वारा उद्देश्यों की प्राप्ति, सीखने के अनुभवों की प्रभावशीलता आदि के बारे में निर्णय दिया जाना सम्भव है।

9. विश्लेषण-संश्लेषणात्मक-किसी उपलब्धि का स्तर निर्धारित करने के लिए उसकी स्पष्ट व्याख्या आवश्यक है। इसके लिए उद्देश्यों को परिभाषित किया जाता है ताकि मूल्यांकन के अन्तर्गत उद्देश्यानुरूप विधि अपनाई जा सके। यह विश्लेषणात्मक प्रक्रिया है। विश्लेषण के पश्चात् उद्देश्य से सम्बन्धित विशिष्टों को ध्यान में रखकर ऐसी परिस्थितियों का चुनाव किया जाता है कि उद्देश्य प्राप्ति के सम्बन्ध में उपयुक्त साक्ष्यियां संकलित हो सकें। इतना ही नहीं, इन साक्ष्यों की व्याख्या तथा सारांशीकरण भी किया जाता है। यह संश्लेषणात्मक प्रक्रिया है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि मूल्यांकन विश्लेषण-संश्लेषणात्मक प्रक्रिया है।

शैक्षिक मूल्यांकन प्रक्रिया के विभिन्न सोपान

मूल्यांकन प्रक्रिया के निम्नलिखित सोपान होते हैं–

1. शैक्षिक उद्देश्यों का चयन–शिक्षण उद्देश्य शिक्षण को दिशा प्रदान करते हैं। अत: इनका चयन भली प्रकार से किया जाना चाहिए। इनका चयन करते समय बालकों की रुचियों, योग्यताओं एवं आवश्यकताओं, व्यक्तित्व के पक्ष आदि को ध्यान में रखा जाना चाहिए। अत: शिक्षण उद्देश्य इन मूल्यों से भी सम्बन्धित होने चाहिए।

2. उद्देश्यों को व्यवहार परिवर्तन के रूप में लिखना–कोई भी शिक्षण उद्देश्य केवल उसी समय तक सार्थक है जब उसे पूर्ण रूप से परिभाषित कर दिया जाता है अथवा जब तक वह यह न स्पष्ट करे कि उसके द्वारा बालक के व्यवहार में कौन-कौन से परिवर्तन किस-किस क्षेत्र में लाए जाने हैं। उदाहरण के लिए–

(1) व्याकरणिक तत्त्वों यथा–सन्धि, समास, उपसर्ग, प्रत्यय आदि का प्रत्यास्मरण कर सकेगा।

(2) भाषा तत्त्वों के आधार पर उपर्युक्त को पहचान सकेगा।

(3) अवसरानुकूल अपने दैनिक जीवन में सन्धि, समास आदि में तुलना करके व्यावहारिक उपयोग कर सकेगा।

(4) कुशलता विकसित करने में समर्थ हो सकेगा।

इस प्रकार ज्ञान उद्देश्य, कौशल उद्देश्य, अभिवृत्ति उद्देश्य, रुचि उद्देश्य आदि के रूप में उद्देश्यों का परिभाषीकरण किया जाएगा।

3. अधिगम परिस्थितियों की पहचान–मूल्यांकनकर्त्ता को उन अधिगम परिस्थितियों की पहचान भी करनी चाहिए, जिनमें बालक का अपेक्षित व्यवहारगत परिवर्तन हुआ है। मूल्यांकन करते समय भी बालक को ऐसी परिस्थिति में रखा जाए जिससे कि वह वांछित व्यवहार की स्वाभाविक अभिव्यक्ति कर सके।

4. परीक्षणों का चुनाव–बालकों में हुए व्यवहारगत परिवर्तनों का मूल्यांकन करने के लिए अध्यापक को ऐसी प्रविधियों का चयन करना चाहिए जो व्यावहारिक परिवर्तन के सम्बन्ध में साक्षियां प्रस्तुत कर सकें। इसके लिए अध्यापक को सूझ से काम लेना होगा तथा स्वयं से निम्नांकित प्रश्न पूछेगा–

(1) मेरे द्वारा चयनित प्रविधि कौन-कौन से शैक्षिक उद्देश्यों की जांच कर रही है?

(2) इस प्रविधि के द्वारा शैक्षिक उद्देश्यों का मूल्यांकन किस रूप में करूंगा?

(3) क्या इस प्रविधि को सरलता से विद्यार्थी समझ सकेंगे?

(4) इस प्रविधि को यदि अलग-अलग व्यक्ति काम में लाएं तो क्या इससे एक ही प्रकार के निष्कर्ष आएंगे।

(5) क्या यह प्रविधि वही मूल्यांकन कार्य करेगी जिसे मैं चाहता हूं?

5. प्रविधि का प्रयोग एवं प्रभावों का लेखा–जब शिक्षक किसी प्रविधि का प्रयोग बालकों पर मूल्यांकन के लिए करें तो बालक द्वारा दिए गए उत्तरों अथवा लिखित परीक्षा तैयार कर लेना चाहिए। यदि परीक्षा लिखित रूप में की जा रही है, तो ऐसा करने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी, क्योंकि बालक स्वयं अपने उत्तर लिखित में देता है जिनकी जांच की जा सकती है।

संस्कृत शिक्षण में मूल्यांकन

मूल्यांकन का अर्थ–प्रत्येक विषय के शिक्षण के कुछ उद्देश्य होते हैं। उन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए अध्यापक छात्रों के व्यवहार में कुछ परिवर्तन लाने का प्रयास करता है। जब उसका प्रयास सफल होता हुआ जान पड़ता है, तब अध्यापक अपने किए हुए प्रयास का परिणाम जानने के लिए जो जांच या परीक्षण करता है, उसे मूल्यांकन कहते हैं। मूल्यांकन और परीक्षा में अन्तर होता है। परीक्षा तो केवल पढ़ाए हुए अंशों या पाठों के आधार पर कुछ प्रश्न पूछकर (लिखित रूप में या मौखिक) ली जाती है। उससे पाठ में से ख्याली-पुलाव न्याय के आधार पर कुछ अंशों पर ही प्रश्न पूछे जाते हैं। उन प्रश्नों का पाठ के उद्देश्यों की प्राप्ति से कोई सम्बन्ध हो या न हो इसका ध्यान नहीं रखा जाता; परन्तु मूल्यांकन में उद्देश्यों की प्राप्ति कहां तक हुई है, इसकी जांच की जाती है। यदि पूर्ण रूप से प्राप्ति नहीं हुई है, तो मूल्यांकन के आधार पर फिर पाठ पढ़ाए जाते हैं। छात्रों में जब तक यथोचित परिवर्तन नहीं आ जाता, तब तक पाठन और मूल्यांकन चलता रहता है। इस प्रकार मूल्यांकन पाठन की जांच के लिए एक सक्रिय और सशक्त उपाय है।

भाषा शिक्षण के प्रमुख चार उद्देश्य माने जाते हैं–

(1) सुनना, (2) बोलना, (3) पढ़ना और (4) लिखना सिखाना।

संस्कृत शिक्षण के भी ये ही उद्देश्य होते हैं।

अत: परीक्षण करते समय इन चारों कौशलों की जांच होनी चाहिए। आज की परीक्षण प्रणाली में इन सब कौशलों की जांच नहीं हो पाती। छात्र कुछ सुनकर समझ सकते हैं या नहीं, इसकी जांच नहीं की जाती। मौखिक परीक्षा के न होने से शुद्ध उच्चारण तथा भाषा की अन्य योग्यताओं (विराम, आरोह-अवरोह, सुरलहरी या इन्टोनेशन) की परीक्षा नहीं ली जाती। लिखने की योग्यता में भी सुलेख या शुद्ध वर्तनी पर ध्यान कम दिया जाता है।

वर्तमान परीक्षा प्रणाली में पूरे पाठ्यक्रम पर प्रश्न नहीं पूछे जाते। कुछ महत्वपूर्ण अंशों पर प्राय: प्रश्न पूछे जाते हैं और बार-बार उन्हीं की आवृत्ति की जाती है। कुछ प्रश्न इतने व्यापक होते हैं कि उनका अनुमान लगा लेना सरल होता है। अध्यापक भी छात्रों को अनुमानित प्रश्नों के आधार पर ही पढ़ाते या उनके उत्तर लिखा देते हैं। इससे आजकल परीक्षाओं के लिए 'गाइड' या 'गैस पेपर' बाज़ार में बिकते हैं और उन्हीं में दिए हुए प्रश्नों

के आधार पर छात्र परीक्षा के लिए अपेक्षित उत्तर रट लेते हैं या नकल करके लिख देते हैं। अत: आजकल की परीक्षा प्रणाली सर्वथा दूषित एवं शिक्षा विकास के लिए घातक हो रही है।

उक्त दोषों को दूर करने के लिए आजकल वस्तुनिष्ठ, अतिलघु उत्तरात्मक प्रश्नों पर विशेष बल दिया जाता है। इससे निम्न लाभ हैं–

1. विस्तृत पाठ्य-वस्तु का मूल्यांकन सम्भव।
2. मूल्यांकन में व्यक्तिनिष्ठता समाप्त।
3. रट कर उत्तर देने की आदत समाप्त।
4. विश्वसनीय अंकन।

संस्कृत शिक्षण में मूल्यांकन की उपादेयता

अन्य विषयों की भांति संस्कृत शिक्षा में भी मूल्यांकन का विशेष महत्त्व है। मूल्यांकन के द्वारा ही इस बात की जानकारी प्राप्त होती है कि शिक्षक का शिक्षण ठीक प्रकार का रहा है या नहीं। प्रत्येक कार्य की सफलता अथवा असफलता का ज्ञान उसके मूल्यांकन पर निर्भर करता है। यह बात संस्कृत शिक्षण के लिए भी सत्य है। जिस उद्देश्य को लेकर संस्कृत शिक्षण का कार्य किया जाता है, उसकी प्राप्ति हुई है अथवा नहीं, यह तभी ज्ञात होता है जबकि उसका परीक्षण किया जाए। अध्यापक द्वारा प्रदान किए गए ज्ञान को छात्र किस सीमा तक ग्रहण कर सके हैं यह विभिन्न परीक्षाओं द्वारा ही ज्ञात होता है। यदि मूल्यांकन न हो तो अध्यापक कभी यह जान ही न सकेगा कि उसका शिक्षण किस प्रकार का रहा है और इसीलिए संस्कृत शिक्षण में मूल्यांकन का विशेष महत्त्व है।

हमारे देश में जो मूल्यांकन प्रणाली प्रचलित है, उसका क्षेत्र सीमित है और उसमें केवल पाठ से सम्बन्धित जानकारी मात्र प्राप्त होती है। नवीन मूल्यांकन प्रणाली में जिन प्रश्नों को पूछा जाता है उनके उत्तर निश्चित होते हैं। उनसे विषयनिष्ठता आ जाती है। मूल्यांकन कई प्रकार से हो सकता है। इस नवीन मूल्यांकन प्रणाली को संस्कृत परीक्षा में प्रयोग करना अत्यन्त आवश्यक है और उसके हेतु प्रश्नों की रचना अत्यन्त महत्त्व है। प्रश्नों की रचना पर ही नवीन परीक्षा प्रणाली की सफलता निर्भर करती है। इस नवीन या वस्तुगत परीक्षा में प्रश्नों का गठन कई प्रकार से किया जा सकता है। यथा-

1. प्रत्याह्वान प्रश्न
2. प्रत्यभिज्ञान प्रश्न
3. बहु-विकल्प प्रश्न
4. हां-नहीं प्रश्न
5. रिक्त स्थानों की पूर्ति
6. समानता-निर्देश प्रश्न

1. प्रत्याह्वान प्रश्न–इस प्रकार के प्रश्नों का उत्तर कोष्ठक में लिखना होता है। जैसे–

(1) 'बालक' प्रथमा का बहुवचन (बालकाः)

(2) 'करि' तृतीया का एकवचन (करिणा)

(3) 'सुमनस्' चतुर्थी का एकवचन (सुमनसे)

2. प्रत्याभिज्ञान प्रश्न–इन्हें सत्यासत्य निर्देश प्रश्न के नाम से भी पुकारा जाता है। इनमें कुछ वाक्य दिए जाते हैं जिनमें छात्रों को निर्देश दिया जाता है तथा शुद्ध के आगे (√) और अशुद्ध के आगे (×) का चिन्ह लगवाया जाता है। उदाहरणार्थ–

(1) बालक शब्दस्य पञ्चमी बहुवचने 'बालकेभ्य:' इति रूपं भवति।

(2) पठ् धातुर्लोट् लकारे प्रथम पुरुष बहुवचन 'पठन्तु' इति रूपं भवति।

(3) गंगा हिमालयात् प्रभवति।

निम्नलिखित में सत्यासत्य का निर्देश करो–

(1) 'कमलम्' तृतीया के एकवचन का रूप है। ( )

(2) 'हरि:' शब्द पुल्लिंग है। ( )

(3) 'द्विज' पक्षी को भी कहते हैं। ( )

(4) 'इन्द्र' का रूप 'राम' शब्द की भांति चलेगा। ( )

(5) 'नीलकंठ' केवल शंकर जी को कहते हैं। ( )

(6) 'सुधांशु' का षष्ठी के एकवचन में 'सुधांशस्य' रूप होगा। ( )

3. बहुविकल्प प्रश्न–इस प्रकार के प्रश्नों के रूप में शुद्ध शब्द के हेतु आदेश दिए जाते हैं। उदाहणार्थ–

नीचे कुछ शब्द लिखे हैं और उनके बाद कुछ वाक्य लिखे हैं जो प्रत्येक शब्द की विशेषता बताते हैं। प्रत्येक वाक्य के अंत में कोष्ठक में उस शब्द को लिख दो, जिसकी वह वाक्य विशेषता बताता है–

कमल, देवता, आत्मा, कलश, मित्र, इन्द्र।

(1) संस्कृत में स्त्रीलिंग, किन्तु हिन्दी में पुल्लिंग है। ( )

(2) यह शब्द नपुंसकलिंग है, किन्तु इसी अर्थ के संस्कृत में पुल्लिंग और स्त्रीलिंग शब्द भी है। ( )

(3) संस्कृत में पुल्लिंग, किन्तु हिन्दी में स्त्रीलिंग है। ( )

(4) संस्कृत में यह नपुंसकलिंग है, किन्तु हिन्दी में पुल्लिंग है। ( )

(5) यह शब्द जब दूसरे लिंग में प्रयुक्त होता है तो अर्थ परिवर्तन हो जाता है। ( )

4. हां-नहीं प्रश्न–यह भी वास्तव में सत्यासत्य परीक्षणों का ही एक रूप है और इसमें भी सत्य के सम्मुख 'हां' और असत्य के सम्मुख 'नहीं' लिखना होता है।

5. रिक्त स्थानों की पूर्ति–इस प्रकार के रिक्त स्थानों की पूर्ति कराई जाती है।
उदाहरणार्थ–निर्देश–कोष्ठक में दिए गए शब्दों के द्वारा रिक्त स्थानों की पूर्ति करो।
सूर्योदकाले सर्वत्रैव ..... भवन्ति। पण्डितः सन्ध्यावन्दनं ..... गायन्ति।
..... हसन्ति। ..... दिवम् सोभायमानम् वर्तते।
(एतादृशं, प्रकाशः, कमलम्, इन्द्रस्य, गायकाः, कुर्वन्तिः, सुधांशोः)

6. समानता निर्देश प्रश्न–इस प्रकार के प्रश्नों में कुछ तथ्य दिए जाते हैं और उनसे समानता निर्देशन करने वाले शब्दों को लिखना होता है। इनका एक उदाहरण प्रस्तुत है–

निर्देश–नीचे तीन खाने बने हैं। पहले खाने में कुछ शब्द लिखे हुए हैं और शेष दो खाने रिक्त हैं। आगे अनेक शब्द दिए हुए हैं जो प्रथम खाने में लिखे हुए शब्दों के पर्यायवाची हैं। प्रत्येक शब्द के आगे उस शब्द के पर्यायवाची लिखो–

क	ख	ग
इन्द्रः	–	–
सुधांशुः	–	–
कमलम्	–	–
नीलकण्ठः	–	–
द्विजः	–	–
हरिः	–	–
विबुधः	–	–
प्रकाशः	–	–
पण्डितः	–	–

पर्यायवाची–विधु, विद्वान्ः, विप्रः, अजरः, मघवा, आलोकः, पंकजम्, सिंह, पिनाकी, पुरन्दरः, अमरः, शचीपति, राकेशः, प्रतिभावना, इन्दीवरम्ः, केसरी, चन्द्रशेखर, प्रभाकरः।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वस्तुनिष्ठ परीक्षणों का प्रयोग शिक्षा प्रणाली में अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होता है। इन नवीन परीक्षणों से यह लाभ होता है कि अंकन सरल हो जाता है और मूल्यांकन निष्पक्ष रूप से किया जा सकता है। प्रश्नों के उत्तर निश्चित होते हैं अतएव भ्रम की गुंजाइश नहीं रहती। परीक्षण वैध एवं विश्वसनीय हो जाता है, क्योंकि उत्तरों में से किसी प्रकार की भिन्नता नहीं होती। परन्तु नवीन परीक्षणों में प्रश्न-पत्र अनावश्यक रूप से लम्बा होता है। साथ ही प्रश्न-पत्र निर्माण अत्यन्त सावधानी से करना पड़ता है। कभी-कभी छात्र अनुमान के द्वारा भी उत्तर लिख देते हैं।

परीक्षाओं के प्रकार

संस्कृत भाषा में परीक्षाओं के दो प्रकार हैं–मौखिक व लिखित।

निरन्तर मूल्यांकन की प्रक्रिया चलती रहे, इसके लिए छात्रों के दैनिक कार्य, साप्ताहिक, पाक्षिक, मानसिक व वार्षिक परीक्षाओं की उपलब्धि की जांच मौखिक व लिखित रूप से की जाती है।

मौखिक परीक्षा–प्राचीन युग में संस्कृत शिक्षण पद्धति प्रायः मौखिक थी। इसमें मौखिक प्रश्नों के माध्यम से छात्रों के ज्ञान, पढ़ने की योग्यता, वर्तनी एवं उच्चारण शुद्धता, मौखिक आत्म-प्रकाशन की क्षमता आदि की जांच करते हैं। शलाका परीक्षा, शास्त्रार्थ, संवाद, प्रश्न पूछना भाषण एवं पद्यांशों का पठन इत्यादि प्रमुख हैं।

शलाका परीक्षा–प्राचीन काल में गुरू शिष्यों द्वारा प्राप्त ज्ञान के मूल्यांकन के लिए शलाका परीक्षा का उपयोग करता था। शलाका का शाब्दिक अर्थ है सलाई या दंडी। सलाई या दंडी के माध्यम से ली जाने वाली परीक्षा शलाका परीक्षा कहलाती थी। यह एक संचालनात्मक तथा प्रतिष्ठात्मक परीक्षा थी। कोई भी शिष्य जिस शास्त्र अथवा विषय में निपुण होता है उस विषय की परीक्षा देनी होती थी। इसे छात्र स्वाध्याय हेतु प्रेरित होता है तथा मानसिक योग्यता विकसित होती है।

शास्त्रार्थ (तर्क-वितर्क)–प्राचीन काल में आचार्य शिष्यों की परीक्षा शास्त्रार्थ (तर्क-वितर्क) पद्धति से लेते थे। इसमें ग्रंथ की किसी एक समस्या को प्रस्तुत कर उसमें अपने-अपने विचारों को प्रकट किया जाता था। इसके द्वारा शिष्य छात्रों के ज्ञान उच्चारण व आत्म-विश्वास आदि की परीक्षा लेते थे। वर्तमान काल में संस्कृत की वाद-विवाद प्रतियोगिताओं का आयोजन मौखिक परीक्षा के लिए किया जा सकता है।

संवाद–प्राचीन काल में गुरूकुलों में परवेश के समय गुरू प्रवेशार्थी के ज्ञान की परीक्षा हेतु संवाद छोटे-छोटे प्रश्न पूछकर करते थे। वर्तमान समय में छात्र के प्राप्तज्ञान एवं विषय के व्यावहारिक ज्ञान की जांच संवाद के माध्यम से विधिवत की जा सकती है।

भाषण–संस्कृत में मौखिक परीक्षा के अन्तर्गत भाषण कौशल की परीक्षा हेतु संस्कृत शिक्षक छात्रों को पूर्व निर्धारित प्रकरण पर भाषण देने के लिए कहता है। परीक्षक मण्डल छात्रों के भाषण को ध्यानपूर्वक सुनता है। उनके द्वारा प्रस्तुत विषय-वस्तु भाषा शैली, उच्चारण और प्रस्तुतिकरण आदि पर निर्धारित अंकों में से अंक देकर मूल्यांकन करता है। इससे छात्रों के भाषण कौशल की परीक्षा होती है।

मौखिक परीक्षा के गुण–इनके निम्नलिखित गुण हैं–

1. संस्कृत में ये परीक्षण शुद्ध वर्तनी एवं उच्चारण की शिक्षा हेतु उपयोगी हैं।
2. मौखिक परीक्षण आत्म-प्रकाशन की क्षमता प्रदान करने में सक्षम हैं।

3. दूसरे के विचारों को सुनकर समझने की योग्यता प्रदान करते हैं।
4. समान ध्वनि वाले पदों में विभेद करने की क्षमता उत्पन्न करते हैं।
5. शब्द रूपों एवं धातु रूपों, संधि, समास और श्लोकों के कंठस्थीकरण में सहायक होते हैं।

दोष–इनमें निम्नलिखित दोष हैं–

1. ये परीक्षण रटने पर बल देते हैं।
2. ये परीक्षण छात्रों को अच्छे अंक प्रदान नहीं करते।

राईटस्टोन के अनुसार, "मौखिक परीक्षण कितने ही क्यों न हों, पर छात्रों को अंक प्रदान कराने में ये एक निम्न आधार है। इसका महत्त्व केवल निदानात्मक साधन के रूप में और उन परिस्थितियों के रूप में है, जिनमें लिखित परीक्षणों का उपयोग नहीं किया जा सकता है।"

लिखित परीक्षण–वर्तमान समय में संस्कृत में लिखित परीक्षणों का प्रयोग प्राथमिक, माध्यमिक और उच्च तीनों ही स्तरों पर सफलतापूर्वक हो रहा है। लिखित परीक्षण छात्रों की ज्ञान उपलब्धि, किसी समस्या की आलोचनात्मक व्याख्या, विषय-वस्तु को संगठित करने की योग्यता तथा भाव-प्रकाशन की क्षमता की जांच करते हैं। इनमें मुख्य रूप से निबन्धात्मक परीक्षण प्रयुक्त होते हैं।

निबन्धात्मक परीक्षण–संस्कृत की परीक्षा में सदियों से निबन्धात्मक परीक्षणों का उपयोग होता आ रहा है। कतिपय दोष होते हुए भी निबन्धात्मक परीक्षण अपने गुणों की प्रचुरता के कारण वर्तमान परीक्षा प्रणाली में अपना अस्तित्व बनाए हुए हैं। इन परीक्षणों से छात्रों के तात्विक विवेचन, समालोचना एवं स्पष्टीकरण आदि का मूल्यांकन होता है। **सिम्स** ने लिखा है, "निबन्धात्मक परीक्षण एक समस्या मूलक स्थिति का सापेक्षिक रूप से स्वतन्त्र एवं विस्तृत प्रत्युत्तर है, जो छात्र के मानसिक अनुभवों की संरचना, गतियों एवं कार्य प्रणाली के सम्बन्ध में सूचना प्रदान करता है।"

निबन्धात्मक परीक्षण के प्रकार–निबन्धात्मक परीक्षण अब दो रूपों में मिलते हैं–

1. दीर्घ उत्तरात्मक परीक्षण
2. लघु उत्तरात्मक परीक्षण

1. दीर्घ उत्तरात्मक परीक्षण–दीर्घ उत्तरात्मक परीक्षण जैसा कि नाम से स्पष्ट है, में प्रश्नों के उत्तर विस्तृत होते हैं। बहुधा प्रश्नों के उत्तर कई-कई पृष्ठों के होते हैं। इसमें परीक्षार्थी प्रश्नों के उत्तर देने के लिए स्वतन्त्र होता है। इस परीक्षण में प्रश्नों की संख्या मुख्यत: 9 या 10 होती है अथवा इससे भी अधिक प्रश्न हो सकते हैं। इनमें से 5 या 6

प्रश्नों के उत्तर छात्रों के निर्धारित समय में लिखने पड़ते हैं। संस्कृत में दीर्घ उत्तरात्मक परीक्षण निम्नलिखित प्रकरणों पर तैयार किये जा सकते हैं–

(1) पाठ्य-पुस्तक पर आधारित विषय-वस्तु की समालोचना।
(2) श्लोकों का भावार्थ एवं गद्य खण्डों की मातृभाषा में व्याख्या।
(3) कथा तथा घटनाओं का वर्णन।
(4) पत्र तथा निबन्धन लेखन आदि।
(5) किसी कवि या लेखक का जीवन परिचय एवं भाषा शैली आदि।

गुण–इस परीक्षण के निम्नलिखित गुण हैं–

(1) ये परीक्षण मितव्ययी हैं क्योंकि इनकी रचना में समय एवं धन की बचत होती है।
(2) इन परीक्षणों में छात्रों को उत्तर देने एवं भाव प्रकाशन की पूर्ण स्वतन्त्रता रहती है।
(3) इनके द्वारा बालकों के तथ्यात्मक ज्ञान की परीक्षा होती है।
(4) इसमें छात्रों की लेखन शक्ति की क्षमता बढ़ती है तथा भाषा एवं शैली का परिमार्जन होता है।
(5) ये परीक्षण छात्र एवं शिक्षक दोनों के लिए उपयोगी है।

दोष–इस परीक्षण के निम्नलिखित दोष हैं–

(1) ये परीक्षण रटने पर अधिक बल देते हैं।
(2) ये पाठ्य-वस्तु का सीमित प्रतिनिधित्व करते हैं।
(3) ये विश्वसनीय नहीं होते हैं।
(4) इनके अंकन में विविधता रहती है तथा समय भी अधिक लगता है।

2. लघु उत्तर परीक्षण–ये परीक्षण निबन्धात्मक परीक्षा का परीक्षण के संशोधित एवं लघु रूप हैं। इस परीक्षण में ऐसे प्रश्नों की रचना की जाती है, जिनके उत्तर बहुत छोटे होते हैं। इसीलिए उन्हें लघु उत्तर परीक्षण कहा जाता है। इसके अतिरिक्त इस परीक्षण में प्रश्नों के उत्तर एक निर्धारित सीमा के अंदर ही लिखने पड़ते हैं। अत: ये नियन्त्रित उत्तर परीक्षण भी कहलाते हैं।

उदाहरणार्थ-निर्देश–निम्नलिखित कथनों की व्याख्या कीजिए। उत्तर लगभग 100 शब्दों अथवा 15 पंक्तियों से अधिक नहीं होना चाहिए–

(1) संस्कृत भाषाया: महत्वम्।
(2) गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति।
(3) बामोच्छिष्टं जगत्।

निर्देश–निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए। प्रत्येक प्रश्न का उत्तर लगभग 10 पंक्तियों अथवा लगभग 100 शब्दों से अधिक न हो–

(1) संस्कृत के लिखित कार्य में अशुद्धियों के रोकथाम के उपाय।
(2) संस्कृत शिक्षण में कंठस्थ करने का महत्त्व।
(3) अनुवाद विधि के लाभ एवं दोष।
(4) संस्कृत में वर्तनी शिक्षण।

गुण–इस परीक्षण में निम्नलिखित गुण हैं–

(1) इस परीक्षण में प्रश्नों के उत्तर भी सुनिश्चित होते हैं। इससे ये अधिक विश्वसनीय होते हैं।
(2) ये परीक्षण व्यक्तिगत मूल्यांकन के दोषों से भी मुक्त हैं।
(3) इनका अंकन अधिक वस्तुनिष्ठता से किया जा सकता है।
(4) ये छात्रों की उपलब्धि की अधिक व्यापकता से जांच करने में सक्षम हैं।
(5) इसकी रचना सरल एवं स्वाभाविक हैं। अत: शिक्षक अल्प अभ्यास से ही इनके निर्माण में दक्षता प्राप्त कर लेते हैं।

दोष–इस परीक्षण में कतिपय दोष भी हैं–

(1) इनसे भाषा शैली परिमार्जित नहीं हो पाती है और न ही उसका मूल्यांकन सम्भव है।
(2) इनसे छात्रों की मानसिक, तर्क एवं विचार-शक्ति का मूल्यांकन नहीं किया जा सकता है।
(3) समस्यात्मक विषयों की जांच हेतु यह परीक्षण उपयोगी नहीं है।

वस्तुनिष्ठ परीक्षण–वर्तमान समय में वस्तुनिष्ठ परीक्षणों का प्रयोग प्रत्येक विषय की नवीन परीक्षा प्रणाली के रूप में प्रचलित है। संस्कृत में भी इन परीक्षणों का प्रयोग अत्यधिक होने लगा है। वस्तुनिष्ठ परीक्षण वह परीक्षण है, जिनमें विभिन्न परीक्षक स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य करने के उपरान्त अंकों के सम्बन्ध में एक ही निष्कर्ष पर पहुंचते हैं अथवा समान कार्य के लिए समान अंक प्रदान करते हैं।

वस्तुनिष्ठ परीक्षण के प्रकार–वस्तुनिष्ठ परीक्षण मुख्यत: दो भागों में विभाजित किये जा सकते हैं–

1. प्रमापीकृत वस्तुनिष्ठ परीक्षण
2. शिक्षक-निर्मित वस्तुनिष्ठ परीक्षण

1. प्रमापीकृत वस्तुनिष्ठ परीक्षण–ये परीक्षण विशेषज्ञों द्वारा तैयार किये जाते हैं तथा इन्हें विभिन्न परिस्थितियों में प्रयोग करके प्रमाणित बना लिया जाता है।

2. शिक्षक-निर्मित वस्तुनिष्ठ परीक्षण–ये परीक्षण शिक्षक द्वारा निर्मित होते हैं, जिनमें सापेक्षित रूप से आत्मनिष्ठ तत्वों से प्रभावित हुए बिना अंकन किया जाता है। शिक्षक-निर्मित वस्तुनिष्ठ मुख्यतया दो प्रकार के होते हैं–

(1) प्रत्यास्मरण परीक्षण–इसके अन्तर्गत छात्रों को कुछ प्रश्न दिये जाते हैं, जिनके उत्तर छात्र स्मरण (याद) करके देते हैं। इनके द्वारा छात्रों की स्मरण शक्ति की जांच होती है। इनसे न केवल छात्रों की बुद्धि, तर्कशक्ति एवं विचारशक्ति की अपितु तथ्यात्मक ज्ञान की परीक्षा होती है। इसके दो उपभेद हैं–

(क) सरल प्रत्यास्मरण परीक्षण, एवं (ख) रिक्त स्थान पूर्ति परीक्षण।

(क) सरल प्रत्यास्मरण परीक्षण–इस प्रकार के परीक्षण में प्रश्नों के उत्तर स्मरण (याद) करके दिये जाते हैं। इस परीक्षण में प्रश्नों के उत्तर में केवल एक शब्द या संख्या लिखनी होती है। प्रश्नों के उत्तर प्रश्नों के सामने दिये हुए कोष्ठकों में लिखने होते हैं।

उदाहरणार्थ–

प्रश्न	**उत्तर**
(1) भारतदेश: कदा स्वतन्त्रत: अभवत्?	( )
(2) भारतस्य प्रथम: राष्ट्रपति क: आसीत्?	( )

सिद्धान्त–

(1) महत्त्वपूर्ण ज्ञान की जानकारी के विषय में अधिक प्रश्न होने चाहिए।
(2) जहां तक सम्भव हो, ऐसे प्रश्न हों, जिनके उत्तर एक ही हों।
(3) यथासम्भव प्रश्न स्पष्ट, सरल और स्वाभाविक हों।
(4) जांच की सुविधा हेतु प्रश्नों के उत्तर दाहिनी ओर लिखवाने चाहिए।

गुण–इस परीक्षण के निम्नलिखित गुण हैं–

(1) यह साधारण प्रश्नों के समान होते हैं।
(2) इनकी रचना सरल एवं सम्भावना नहीं रहती है।
(3) इसमें अनुमान की सम्भावना नहीं रहती है।
(4) इसमें पहचानने की अपेक्षा याद करना पड़ता है, जिससे स्मरण-शक्ति का विकास होता है।
(5) विवरणात्मक ज्ञान की जांच के लिए उपयोगी होते हैं।

दोष–इस परीक्षण के निम्नलिखित दोष हैं–

1. इनका कार्य-क्षेत्र रटने वाले ज्ञान तक सीमित है, जिससे छात्रों में रटने की आदत पड़ती है।
2. इनसे विचार-शक्ति का विकास नहीं होता है।
3. ये अपेक्षाकृत कम वस्तुनिष्ठ होते हैं।

(ख) रिक्त स्थान पूर्ति परीक्षण–इस परीक्षण के परीक्षण में अपूर्ण कथनों या वाक्यों को प्रस्तुत किया जाता है। छात्र रिक्त स्थानों की पूर्ति के लिए अपूर्ण कथनों या वाक्यों को सार्थक शब्दों से पूर्ण करते हैं। रिक्त स्थानों की पूर्ति स्मरण की सहायता से की जाती है। ये परीक्षण दो प्रकार के होते हैं–

(*i*) एक स्थान पूरक परीक्षण, (*ii*) बहुरिक्त स्थान पूरक परीक्षण।

(*i*) एक स्थान पूरक परीक्षण–ऐसे परीक्षणों में छात्रों को रिक्त स्थान की पूर्ति के लिए केवल एक स्थान रिक्त रखा जाता है, जो वाक्य का प्रमुख एवं सार्थक शब्द होता है। इससे छात्रों को रिक्त स्थान की पूर्ति में अधिक कठिनाई नहीं होती है।

निर्देश–

(1) भारतस्य राष्ट्रपति ..... अस्ति।

(2) उत्तरप्रदेशस्य राजधानी ..... अस्ति।

(*ii*) बहुरिक्त स्थान पूरक परीक्षण–इन परीक्षणों में छात्रों को रिक्त स्थान की पूर्ति के कई स्थान रिक्त रखे जाते हैं। वाक्य में से सार्थक एवं महत्त्वपूर्ण शब्दों को ही हटा कर रिक्त किये जाते हैं ताकि छात्र उनकी पूर्ति सरलता से कर सके।

निर्देश–

(1) रामः ..... वर्षाणि ..... न्यवसत्।

(2) वर्षासु ..... गर्जन्ति, वनेषु ..... तृत्यन्ति।

(3) अस्मिन् उद्याने ..... वृक्षाःसन्ति, तेषु पुष्पाणि ..... च सन्ति।

सिद्धान्त–

(1) कथन या वाक्य में केवल मुख्य शब्द हो छोड़ना चाहिए। अभीष्ट उत्तर कथन या वाक्य पढ़ने के साथ ही स्पष्ट होना चाहिए।

(2) इतने अधिक रिक्त स्थान नहीं होने चाहिए कि परीक्षण में क्लिष्टता का दोष आ जाए।

गुण–इस परीक्षण के निम्नलिखित गुण हैं–

(1) इन परीक्षणों से छात्रों में पुनः स्मरण करने की प्रवृत्ति का विकास होता है।

(2) ये परीक्षण नाम, दिनांक, प्रत्ययों आदि की पहचान आदि के मूल्यांकन के लिए उत्तम है।

(3) इस परीक्षण में रटने की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन नहीं मिलता है।

दोष--इस परीक्षण के निम्नलिखित दोष हैं–

(1) इनका प्रयोग ज्ञानात्मक विषयों तक ही सीमित है।

(2) अनावश्यक रिक्त स्थान उलझन पैदा कर देते हैं।

(3) यदि रिक्त स्थानों में एकरूपता नहीं होती है तो अंकन कठिन हो जाता है।

अभिज्ञान परीक्षण

1. एकान्त प्रत्युत्तर परीक्षण–यह परीक्षण सत्य-असत्य परीक्षण भी कहलाता है। इस परीक्षण के कथनों या वाक्यों में सत्य और असत्य दो सम्भावनाएं दी जाती हैं। बालक को एक चुनने के लिए निर्देशित किया जाता है। इस प्रकार बालकों के उत्तर के रूप में 'हां' या 'नहीं' अथवा 'सत्य' या 'असत्य' कथन के सामने ही लिखे रहते हैं।

उदाहरणार्थ–

(1) 'विहस्य' षष्ठी विभक्ति के एक वचन का रूप है। सत्य/असत्य

(2) 'विहाय' चतुर्थी विभक्ति के एक वचन का रूप है। सत्य/असत्य

सिद्धान्त–

(1) इस परीक्षण के कथनों में ऐसे शब्दों का जैसे–कभी नहीं, सदैव, कोई नहीं आदि का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

(2) अनिश्चित एवं संदिग्ध शब्दों का भी प्रयोग नहीं करना चाहिए।

(3) एक कथन में केवल एक ही विचार होना चाहिए।

गुण–इस परीक्षण के निम्नलिखित गुण हैं–

(1) इनकी रचना एवं अंकन सरल है।

(2) इनसे बालकों की निर्णय शक्ति का मापन किया जा सकता है।

(3) इनसे विस्तृत ज्ञान की जानकारी शीघ्र हो जाती है।

दोष–इस परीक्षण के निम्नलिखित दोष हैं–

ऐसे परीक्षण में अनुमान लगाने की सम्भावना अधिक रहती है, जिससे छात्रों की योग्यता का सही-सही मापन नहीं हो पाता है।

ये केवल सूचनाओं एवं तथ्यों की ही जांच करते हैं।

इन परीक्षणों में 50 प्रतिशत उत्तर सही होने को सदैव सम्भावना बनी रहती है, चाहे बालक को उत्तर मालूम हो या न मालूम हो।

अधिक प्रश्नों से परीक्षण की विश्वसनोयता समाप्त हो जाती है।

2. बहुसंख्यक चुनाव परीक्षण–इस परीक्षण में प्रत्येक उत्तर के रूप में विकल्प दिये जाते हैं। इन विकल्पों में से केवल सबसे उत्तम एवं उपयुक्त विकल्प होता है। छात्रों को यह निर्णय लेना पड़ता है कि विभिन्न विकल्पों में कौन-सा सही एवं सबसे अधिक उपयुक्त है।

सिद्धान्त–

(1) इन प्रश्नों में स्पष्ट रूप से किसी समस्या का आभास मिलना चाहिए।

(2) इस परीक्षण में कथन के जितने भी विकल्प सम्मिलित किये जा सकें, को लेने चाहिए। इससे अनुमान लगाने की सम्भावना कम हो जाती है।

(3) यह भी निश्चित होना चाहिए कि कथन का एक ही विकल्प पूर्ण एवं शुद्ध उत्तर के रूप में स्वीकृत हो सकता है।

(4) जो कथन धारणा एवं सिद्धान्त के प्रयोग की क्षमता का मूल्यांकन करते हों, आवश्यक रूप से प्रयुक्त करना चाहिए।

गुण–इस परीक्षण के निम्नलिखित गुण हैं–

(1) ये परीक्षण अत्यन्त लचकदार एवं उपयोगी होते हैं।

(2) इन परीक्षणों में अंकन की सरलता होती है।

(3) इन परीक्षणों में अनुमान की सम्भावना बहुत कम होती है।

(4) इन परीक्षणों का प्रयोग छात्रों की सूझ एवं निर्णय शक्ति के मूल्यांकन के लिए किया जाता है।

दोष–इस परीक्षण के निम्नलिखित दोष हैं–

(1) ऐसे परीक्षणों में समय अधिक लगता है।

(2) ऐसे विकल्पों की व्यवस्था करना कठिन होता है, जिनमें केवल एक ही सही हो।

(3) अनुमान की सम्भावना बनी रहती है।

3. समरूप या मिलान परीक्षण–इस प्रकार के परीक्षण में प्रत्येक प्रश्न में दो स्तम्भ दिये होते हैं। प्रश्न के कुछ अधूरे कथन प्रथम स्तम्भ में और दूसरे स्तम्भ में प्रथम स्तम्भ के पूरक कथन अव्यवस्थित रूप में रखे जाते हैं। छात्र को प्रथम स्तम्भ में दिये गये कथनों को दूसरे स्तम्भ में दिये गये उनके सही-सही भागों से मिलाना पड़ता है, जिससे वह मेल खाता है। इसलिए इसे मिलान परीक्षण या समरूप परीक्षण कहते हैं।

उदाहरणार्थ–

	I	II	III
(1)	बाल्मीकि	महाभारत्	.....
(2)	कालिदासः	चरित्रहीनः	.....
(3)	बाणः	रामायणम्	.....

सिद्धान्त–

(1) एक स्तम्भ के समस्त कथन एक प्रकार के ही होने चाहिए।

(2) एक स्तम्भ में 5 या 6 से अधिक कथन नहीं होने चाहिए अन्यथा समुचित लाभ नहीं होगा।

(3) कम विषय-वस्तु की जांच के लिए इस प्रकार के प्रश्नों का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

गुण–इस परीक्षण के निम्नलिखित गुण हैं–

(1) परीक्षण के लिए प्रश्नों का बनाना सरल है।

(2) ये परीक्षण विश्वसनीय तथा वैध होते हैं।

(3) इस परीक्षण में उत्तरों की संख्या अधिक होने से अनुमान की सम्भावना कम हो जाती है।

दोष–इस परीक्षण के निम्नलिखित दोष हैं–

(1) इनसे प्राप्त ज्ञान के सच की जांच नहीं हो पाती है।

(2) इसमें एक प्रश्न के गलत हो जाने पर अन्य प्रश्न स्वाभाविक रूप से गलत हो जाते हैं।

वस्तुनिष्ठ परीक्षण की विशेषताएं–इसकी निम्नलिखित प्रमुख विशेषताएं हैं–

(1) इन परीक्षणों में वैद्यता पाई जाती है।

(2) ये परीक्षण विश्वसनीय होते हैं।

(3) इन परीक्षणों में विभेदीकरण की क्षमता होती है।

(4) ये परीक्षण मितव्ययी हैं क्योंकि इनसे धन एवं समय की बचत होती है।

(5) ये परीक्षण पाठ्य-वस्तु का समुचित प्रतिनिधित्व करते हैं।

(6) एक प्रश्न का एक ही उत्तर होना इनकी प्रमुख विशेषता है।

(7) इस परीक्षण में अंकन में सरलता एवं अंकों में समानता रहती है।

(8) इन परीक्षणों से हटने की प्रवृत्ति समाप्त हो जाती है।

वस्तुनिष्ठ परीक्षण की सीमाएं–इनकी निम्नलिखित प्रमुख सीमाएं हैं–

(1) ये परीक्षण छात्रों को अनुमान लगाने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। छात्र अनुमान के आधार पर सत्य या असत्य पर चिह्न लगा देते हैं और शब्दों को रेखांकित कर दिया करते हैं।

(2) ये परीक्षण केवल तथ्यात्मक ज्ञान की जांच करते हैं।

(3) इन परीक्षणों से मानसिक शक्तियों की जांच नहीं हो पाती है।

(4) ये परीक्षण छात्रों की भाव प्रकाशन की क्षमता का परीक्षण करने में असमर्थ है।

(5) इनके अधिक प्रयोग से छात्रों की भाषा शैली परिमार्जित नहीं हो पाती है।

(6) इनके द्वारा विवादग्रस्त तथ्यों एवं समस्याओं का मूल्यांकन नहीं हो पाता है।

मूल्यांकन हेतु प्रश्न-पत्र व ब्लू-प्रिंट का महत्त्व

प्रश्न-पत्र विशेषताएं एवं ब्लू-प्रिंट का महत्त्व–बाह्य मूल्यांकन के लिए लिखित मूल्यांकन के लिए अध्यापक छात्र की परीक्षा लेता है। परीक्षा के लिए निश्चित अवधि के एक प्रश्न-पत्र को छात्र हल करता है। परीक्षाएं–मासिक, त्रैमासिक, अर्द्धवार्षिक और वार्षिक होती हैं। प्रश्न-पत्र सुनियोजित सभी उद्देश्यों पर आधारित और सभी प्रकार के प्रश्नों से पूर्ण होता है।

अच्छे प्रश्न-पत्र की विशेषताएं–

1. व्यापकता–पाठ्यक्रम के सभी अंगों का समावेश हो।

2. वैधता–अभीष्ट लक्ष्य का मापन हो। जिस उद्देश्य के लिए प्रश्न-पत्र का निर्माण किया गया हो उसी का मापन करें।

3. विश्वसनीयता–विभिन्न समय या विभिन्न परीक्षकों द्वारा मापन करने में सभी में समानता हो।

4. व्यावहारिकता–प्रश्न पत्र स्तर की दृष्टि से, समय की दृष्टि से उचित हो।

5. वस्तुनिष्ठता–उत्तर निश्चित व एक सा ही आए। भाषा स्पष्ट और संदेह रहित हो।

6. आंतरिक विकल्प–सभी प्रश्न अनिवार्य हों, उनमें आंतरिक विकल्प हों।

7. उपयोगिता–प्रश्न उद्देश्यनिष्ठ हों। प्रश्न सभी प्रकार के हों (बहुचयनात्मक, लघुत्तरात्मक, निबन्धात्मक) प्रश्नों के स्तर के अनुसार उनके अंक निर्धारित हों।

8. उद्देश्यानुसार अंक भार–अच्छे प्रश्न-पत्र में उद्देश्य के अनुसार अंक भार होने चाहिए–

ज्ञान–30 प्रतिशत, अवबोध–30 प्रतिशत, ज्ञानोपयोग–20 प्रतिशत, कौशल–20 प्रतिशत।

9. प्रश्नों के आकार की दृष्टि से अंक भार निम्न प्रकार का होना चाहिए-

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–20 प्रतिशत, अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न–10 प्रतिशत, लघूत्तरात्मक प्रश्न–30 प्रतिशत और निबन्धात्मक प्रश्न–40 प्रतिशत।

10. प्रश्न-पत्र के दो भाग होने चाहिए–'अ' भाग में वस्तुनिष्ठ एवं अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न हों तथा 'ब' भाग में लघूत्तरात्मक एवं निबन्धात्मक प्रश्न।

प्रश्न-पत्र निर्माण करने के प्रारूप के ब्लू प्रिंट के आधार पर निबन्धात्मक प्रश्नों का अंक भार, उद्देश्य, प्रश्न के स्वरूप, विषय-वस्तु से सम्बन्धित अनेक विश्लेषण होता है। प्रश्न-पत्र निर्माता पहले नील-पत्र तैयार करके उसके अनुरूप प्रश्न पत्र बनाता है। इस

प्रश्न-पत्र दोष रहित होता है, अच्छे प्रश्न-पत्र निर्माण के लिए तथा सभी दृष्टि से संतुलित बनाने के लिए नील-पत्र तैयार करना आवश्यक एवं अपरिहार्य है।

(1) वस्तुनिष्ठ प्रश्नों में निम्न प्रकार के प्रश्न आते हैं–

(क) बहुचयनात्मक प्रश्न (ख) रिक्त स्थानों की पूर्ति

(ग) सत्यासत्य के प्रश्न (घ) उचित क्रम में रखना

(ङ) समरूपता के प्रश्न (च) एक शब्द में उत्तर वाले प्रश्न

(2) अतिलघूत्तरात्मक प्रश्नों में उत्तर एक, दो वाक्यों में प्राप्त किया जाता है।

(3) लघूत्तरात्मक प्रश्नों में 50, 60 शब्दों में या 6, 7, पंक्तियों में उत्तर प्राप्त किया जाता है।

(4) निबन्धात्मक प्रश्नों में उत्तर सीमा नहीं होती है। फिर भी दो-तीन पृष्ठों से अधिक नहीं होना चाहिए।

विभिन्न पदों के लिए आदर्श प्रश्नों के स्वरूप निम्न प्रकार हो सकते हैं–

(1) **शब्द भण्डार सम्बन्धी प्रश्न**–शब्दों के पर्यायवाची, विलोम शब्द, प्रत्यय, उपसर्ग लगाकर नवीन शब्दों की रचना, अलग-अलग खण्डों में विभक्त अक्रम के पदों को क्रमबद्ध करना आदि प्रश्न।

(2) **व्याकरण सम्बन्धी ज्ञान के प्रश्न**–अशुद्ध वर्तनी शुद्ध करना, शब्द रूप, धातु रूप पूछना, एकवचन के साथ बहुवचन ज्ञात करना, वाक्य में उचित पद भरने, पद का व्याकरणिक परिचय पूछना, सन्धि, उपसर्ग, प्रत्यय विश्लेषण के प्रश्न।

(3) **रचना सम्बन्धी प्रश्न**–पदों का वाक्यों में प्रयोग, अनुवाद, हिन्दी से संस्कृत में, कहानी रचना, निबन्ध रचना, पत्र रचना आदि प्रश्न।

(4) **कौशल सम्बन्धी प्रश्न**–भाषा में चार कौशल होते हैं–सुनना बोलना, पढ़ना, लिखना। वाक्य बोलकर, संक्षिप्त कथा कहकर शुद्ध उच्चारण करना, प्रश्न करना व उत्तर प्राप्त करना सुनने के कौशल का परीक्षण होता है।

सरल संक्षिप्त वाक्यों में अभिव्यक्ति करना बोलने का मूल्यांकन है, लिखित सामग्री को गति व भावानुसार पढ़कर अर्थग्रहण करना पढ़ने का मूल्यांकन है और प्राप्त ज्ञान को लिखकर, विचाराभिव्यक्ति को क्रमबद्ध, प्रभावी रूप में लिखना ही लेखन कौशल का मूल्यांकन है।

संस्कृत शिक्षक को छात्र की संस्कृत भाषा की क्षमता का पता लगाने हेतु ध्यातव्य बिन्दु

भूमिका–संस्कृत शिक्षक को भाषा के चारों मूल कौशलों की क्षमता की जांच करना आवश्यक है। बालक की क्षमता संस्कृत भाषा में सुनने, बोलने, पढ़ने व लिखने की

कितनी है, यह जानकारी मूल्यांकन के द्वारा करनी चाहिए। आजकल मूल्यांकन में प्रश्न-पत्र देकर छात्र की लिखित क्षमता को ज्ञात कर लेते हैं। छात्र की मौखिक क्षमता के परीक्षण की उपेक्षा हो जाती है। यही कारण है कि संस्कृत में स्नातक होने पर भी छात्र संस्कृत में भाषण देने, संस्कृत में वार्तालाप करने और संस्कृत में वाचन, मौखिक प्रश्नोत्तर, संस्कृत श्लोक का सुन्दर पठन करने से हिचकिचाता है। अतः संस्कृत में वाचन, मौखिक प्रश्नोत्तर, संवाद, श्लोक पठन आदि और मौखिक मूल्यांकन भी आवश्यक है।

संस्कृत भाषा के तत्त्व–संस्कृत भाषा के निम्नलिखित तत्त्वों का मूल्यांकन करना चाहिए–

1. शुद्ध उच्चारण–(मौखिक परीक्षण) विशिष्ट ध्वनियों के शुद्ध उच्चारण का मूल्यांकन गद्य भाग का वाचन कराकर।

2. कविता पाठ–(मौखिक परीक्षण) आरोह, अवरोह, भावानुकूल वाणी से लय गति, यतिपूर्वक पठन की योग्यता का कविता पाठ कराकर मूल्यांकन।

3. शुद्ध वर्तनी–(लिखित परीक्षण) श्रुत लेख लिखवाकर छात्र की लिखित अभिव्यक्ति के द्वारा।

4. शुद्ध व गतिपूर्वक संस्कृत में अभिव्यक्ति–(मौखिक परीक्षण) प्रश्नोत्तर द्वारा किसी प्रसंग/वस्तु पर संस्कृत में वर्णन करवाकर जांच कर सकते हैं।

5. अवबोध परीक्षण–(लिखित परीक्षण) सारांश लेखन, अपठित, अंश के प्रश्नोत्तर गद्य पद्य में प्रसंगानुसार शब्द का अवबोध, केन्द्रीय भाव आदि लिखवाकर।

6. शब्द भण्डार–(मौखिक व लिखित) किसी वस्तु, घटना, दृश्य पर 10-15 वाक्य स्वरचित, नवीन शब्दों का वाक्य प्रयोग, पत्र लघु-निबन्ध। तात्पर्य यह है कि छात्र के मौखिक व लिखित परीक्षण में ज्ञान, अवबोध, अभिव्यक्ति, उच्चारण, पठन, सुनकर अर्थग्रहण, पढ़कर अर्थग्रहण आदि सभी तत्त्वों का मूल्यांकन अपेक्षित है।

प्रश्न-पत्र निर्माण करते समय धातव्य बिन्दू

शिक्षार्थी और शिक्षक दोनों की क्रियाएं सहगामी हैं। शिक्षक अपने विद्यार्थियों को शिक्षा देते हैं। लेकिन उनके द्वारा दिए गए ज्ञान की वांछित उपलब्धि या पाठ्य-वस्तु उद्देश्य की पूर्ति उचित रूप से हुई या नहीं इसके लिए छात्रों का परीक्षण करना आवश्यक है। परीक्षण वह प्रक्रिया है जिसमें छात्रों के माध्यम से व्यक्तियों, छात्रों या स की योग्यता, ज्ञान, कार्य-कुशलता आदि की जांच की जाती है। इस सम्बन्ध में **सी०वी० गुड** ने लिखा है कि "परीक्षण एक व्यापक शब्द है जो विद्यालय की पद्धति में मूल्यांकन करने के लिए प्रक्रियाओं को क्रमबद्ध रूप से चालू कराने वाली किसी संगठित योजना ओर निर्देशित करता है। इसमें प्रश्न-पत्र के आधार पर परीक्षाओं का चयन, प्रशासन अंकन तथा व्याख्या निहित है।"

परीक्षण करने के लिए विद्यालयों में परीक्षाओं की व्यवस्था है। परीक्षण करने के लिए शिक्षक प्रश्न-पत्र तैयार करता है। प्रश्न-पत्र तैयार करते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए–

1. वर्तमान समय में प्रश्न-पत्र में बहुधा दो भाग दिए जाते हैं–भाग 'अ' में वस्तुनिष्ठ प्रश्न तथा अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न होते हैं। भाग 'ब' में लघूत्तरात्मक व निबन्धात्मक प्रश्न होते हैं। सामान्यतया भाग 'अ' में सम्पूर्ण अंक के लगभग 33 प्रतिशत अंक होते हैं। भाग 'ब' में 67 प्रतिशत अंक निर्धारित होते हैं।
2. प्रश्न-पत्र का निर्माण करते समय शिक्षक को चाहिए कि प्रश्न-पत्र में इस प्रकार प्रश्न दे कि औसतन विद्यार्थी भी उसे हल करके परीक्षा उत्तीर्ण करने की दृष्टि से न्यूनतम अंक प्राप्त कर सके। अति सरल तथा अति-कठिन प्रश्न-पत्र नहीं बनाना चाहिए।
3. प्रश्न-पत्र में कुछ प्रश्नों का चयन इस प्रकार होना चाहिए कि उसे कुशाग्र बुद्धि वाले बालक ही हल करें ताकि उनकी बौद्धिक क्षमता का सही मूल्यांकन हो सके।
4. प्रश्न-पत्र में अस्पष्ट या महत्त्वहीन प्रश्नों को स्थान नहीं देना चाहिए।
5. प्रश्न में उस विषय-वस्तु को स्थान नहीं देना चाहिए जो उसके समाधान के लिए आवश्यक नहीं है। विकल्प उसी उद्देश्य पर आधारित हों।
6. जब किसी प्रश्न द्वारा सिद्धान्त या सम्मति को पूछा जाए तब उसके लिए लेखक का उल्लेख करना चाहिए।
7. प्रश्न का निर्माण ऐसे ढंग से किया जाए जिससे सही उत्तर के विषय में अनुमान लगाने के अवसरों को कम किया जा सके।
8. प्रत्येक प्रश्न भाषा, रचना एवं व्याकरण की दृष्टि से उपयुक्त हो।
9. प्रत्येक शब्द का निश्चित अर्थ होना चाहिए जिससे अस्पष्टता एवं अनिश्चितता को कम किया जा सके। अतः द्विअर्थी प्रश्नों का प्रयोग नहीं करना चाहिए।
10. प्रश्नों में विशिष्ट निर्धारकों का प्रयोग नहीं करना चाहिए।
11. भाषा में प्रश्न-पत्र बनाते समय भाषा के सभी तत्त्वों पर प्रश्न बनाने चाहिए ताकि छात्र की सर्वांग योग्यता पर मूल्यांकन किया जा सके।
12. वस्तुनिष्ठ प्रश्नों में चयनात्मक प्रत्यास्मरण के प्रश्नों को स्थान दिया जाए।
13. निबन्धात्मक प्रश्नों में विकल्प के प्रश्नों का उत्तर एक ही सही होना चाहिए।
14. छात्रों को प्रश्नों में से अपनी इच्छानुसार प्रश्न छांटने की अनुमति न दी जाए वरन् छात्रों से सभी प्रश्नों को हल करवाया जाए।
15. प्रश्नों को कठिनता के क्रम में व्यवस्थित किया जाना चाहिए।

तृतीय भाषा संस्कृत में व्याकरण, अनुवाद एवं भाषा कौशलों के मूल्यांकन हेतु उपाय

भाषा के मूल्यांकन में भाषा, कौशलों का मूल्यांकन होना चाहिए। सुनना, पढ़ना, बोलना व लिखना ये चार मुख्य मूल कौशल हैं–इनका मूल्यांकन लिखित तथा मौखिक दोनों ही तरह से किया जाना चाहिए। भाषा के मूल्यांकन में जितना महत्त्व लिखित मूल्यांकन का है उतना ही महत्त्व मौखिक रूप से किए जाने वाले मूल्यांकन का है, क्योंकि पढ़ना व बोलना इन दो मूल कौशलों का मूल्यांकन मौखिक रूप से सम्भव है। लिखित रूप से मूल्यांकन में तो अभिव्यक्ति की कुशलता व संस्कृत में बालक की उपलब्धि का परीक्षण होता है।

तृतीय भाषा संस्कृत में मूल्यांकन–तृतीय भाषा के रूप में बालक की संस्कृत मूलभूत योग्यता का परीक्षण होता है। बालक संस्कृत के चारों मूल कौशलों में योग्य हो, भाषा की संरचना, भाषा में छोटे-छोटे वाक्यों में अभिव्यक्ति, संस्कृत की सरल कहानियों, निबन्धों, कविताओं का अर्थग्रहण करते हुए श्रवण व पठन में योग्य हो, संस्कृत का व्यावहारिक व्याकरण का उसे ज्ञान हो, संस्कृत में शुद्ध रचना, भाषा तत्त्वों का ज्ञान हो, इनका परीक्षण संस्कृत तृतीय भाषा के रूप में किया जाता है। इस प्रकार संस्कृत व्यवहारगत परिवर्तनों का मूल्यांकन निम्नांकित दो प्रविधियों से किया जा सकता है–

1. निरीक्षण विधि–इसमें छात्रों की आदत तथा क्रियाओं का निरीक्षण कर निष्कर्ष निकाला जाता है। इस विधि में छात्रों की भावनाओं, श्रद्धा, भक्ति, सहयोग, संस्कृत आयोजनों में रुचि का मूल्यांकन होता है। साक्षात्कार, प्रश्नावली, संचित अभिलेख-पत्र छात्र के द्वारा किए गए संकलन आदि के माध्यम से निरीक्षण किया जाता है।

2. परीक्षण विधि–इसमें बुद्धि परीक्षण, मापक, परीक्षा, अभिरुचि परीक्षण सम्मिलित है। लिखित, मौखिक परीक्षण इसी विधि में आते हैं। इसमें शिक्षक जांच पत्र तैयार करता है और छात्रों का परीक्षण करता है।

भाषा कौशलों का मूल्यांकन

मौखिक व लिखित परीक्षा के द्वारा छात्र की भाषा कौशल सम्बन्धी उपलब्धि का पता लगाया जा सकता है। लिखित परीक्षा के साथ-साथ कुछ प्रतिशत अंक भार मौखिक परीक्षा के लिए भी रखे जाते हैं। मौखिक परीक्षण में अध्यापक संस्कृत के शब्द रूप, गद्य वाचन, कविता वाचन, कण्ठस्थ किए गए श्लोक, अनुवाद, किसी चित्र का वर्णन पर संस्कृत में सरल वाक्यों की रचना पर बोलना, संस्कृत के सरल वाक्य का हिन्दी में बताना, सरल प्रश्नोत्तर आदि प्रविधियों का उपयोग किया जाता है। मौखिक अभिव्यक्ति प्रकाशन की इस परीक्षा में शुद्धोच्चारण, मौखिक आत्माभिव्यक्ति तथा दूसरों के भाव

सुनकर उसे समझने की क्षमता, अर्थग्रहण करते हुए वाचन, गतिपूर्वक भावानुसार, विराम चिह्नों को ध्यान में रखते हुए वाचन, छन्द, लय, गति, यति के अनुसार आरोह-अवरोहपूर्वक श्लोक का पठन व वाचन आदि कौशलों का परीक्षण इस प्रविधि द्वारा सम्भव है।

अनौपचारिक रूप से भी सुनने, पढ़ने तथा बोलने के कौशल का मूल्यांकन हो सकता है–राष्ट्रीय दिवस, महापुरुषों की जयन्तियां, वार्षिक उत्सव आदि के समय संस्कृत में भाषण, कविता पाठ, निबन्ध रचना आदि के आयोजन किए जाते हैं। उसमें संभागी छात्र की संस्कृत में उपलब्धि का पता लग सकता है। संस्कृत में अनेक प्रतियोगिताओं का आयोजन भी किया जाना चाहिए। जैसे–संस्कृत गद्य, पद्य का सस्वर पठन, निबन्ध, भाषण प्रतियोगिता, अंत्याक्षरी में सम्भागी परीक्षण सम्भव है।

अध्यापक द्वारा बोले गए अंश का सारांश लिखने को दिया जाए। इससे छात्र की संस्कृत में समझने की योग्यता की जांच होती है। छात्रों से श्रुतलेख लिखवाया जाए और उन्हें उसका सारांश भी लिखने को कहा जाए। इससे छात्र की संस्कृत में शुद्ध वर्तनी, लिखित अंश को पढ़कर समझने की योग्यता का परीक्षण होता है।

लिखित परीक्षा के द्वारा भी छात्र की संस्कृत शब्दावली समझने, पढ़कर अर्थग्रहण करने तथा लिखकर अभिव्यक्ति करने के कौशल का परीक्षण होता है। लिखित परीक्षण में छात्रों के ज्ञान, अर्थग्रहण, अभिव्यक्ति, मौलिक रचना का परीक्षण किया जा सकता है।

नीचे तालिका द्वारा कौशलों के मूल्यांकन की प्रविधियों को स्पष्ट किया जा रहा है–

1. बालक ने संस्कृत में कितना ग्रहण किया इसका मूल्यांकन–

भाषा तत्त्व	जांच का प्रकार	परीक्षण विधि
1. वाणी को समझना	मौखिक	अध्यापक मौखिक रूप से प्रश्न पूछेगा। संस्कृत में वार्तालाप करेगा।
2. शब्दावली ज्ञान	1. मौखिक 2. वस्तुगत	कठिन शब्दों के अर्थ तथा उनके प्रयोग के सम्बन्ध में प्रश्न पूछकर।
3. वाचन योग्यता	मौखिक	परिच्छेद पढ़ने के लिए दिया जाए। उसके वाचन की गति की शुद्धता का ध्यान रखा जाए। अशुद्धियों व समय को नोट किया जाए।
4. पठित सामग्री	1. मौखिक 2. वस्तुगत 3. लिखित	पठित सामग्री पर छोटे-छोटे प्रश्न पूछकर। पठित सामग्री का हिन्दी में अनुवाद लिखित व मौखिक रूप में कराकर।

2. कौशलात्मक रचनात्मक जांच के लिए–

भाषा तत्त्व	जांच का प्रकार	परीक्षण विधि
1. उच्चारण	मौखिक	पढ़ने के लिए एक परिच्छेद दिया जाए। वाक्यांशों को गति, यति तथा वर्णों का शुद्ध उच्चारण, विराम चिन्हों की दृष्टि से सही उच्चारण आदि का परीक्षण किया जाए।
2. शब्दावली प्रयोग	1. मौखिक 2. लिखित	यह ध्यान रखा जाए कि छात्र वार्तालाप में व लिखित अभिव्यक्ति में किस प्रकार की शब्दावली का प्रयोग करता है।
3. बोलने की क्षमता	मौखिक	छात्रों को वार्तालाप में कहानी सुनाने में, किसी विषय पर बोलने में संस्कृत का प्रयोग करने के लिए कहा जाए।
4. सुलेख	लिखित	अनुच्छेद की नकल कराकर श्रुतलेख लिखवा कर यह देखना कि छात्र सुन्दर, स्पष्ट व पढ़ने योग्य लिख सकता है या नहीं।
5. लिखित अभिव्यक्ति	लिखित	पत्र, कहानी, घटना वर्णन किसी चित्र पर वर्णन कराया जाए। हिन्दी से संस्कृत में अनुवाद कराया जाए।
6. व्याकरण	लिखित मौखिक	व्याकरण ज्ञान का परीक्षण वस्तुगत प्रकार पर हो सकता है। छात्रों से धातुओं व शब्दों के रूपान्तर पूछे जाएं। सन्धि, उपसर्ग, प्रत्यय, समास, कारक, शब्दभेद, शब्द रचना आदि पर प्रयोगात्मक प्रश्न पूछना चाहिए। यह परीक्षण लिखित व मौखिक दोनों ही तरह का हो सकता है।
7. सुनने की क्षमता	मौखिक	अध्यापक एक परिच्छेद छात्रों के सामने स्पष्ट व मंथर गति से पढ़कर सुनाएगा। कविता को हाव-भाव को सुनाएगा। फिर छात्र से सुने गए अंश पर प्रश्न करेगा। छात्र के उत्तर से उसका परीक्षण होगा। अध्यापक देखेगा कि छात्र मनोयोगपूर्वक धैर्यपूर्वक सुन रहे हैं

		नहीं। छात्र द्वारा सही उत्तर से यह भी परीक्षण होगा कि छात्र अर्थग्रहण के साथ-साथ सुन रहे थे।
8. अनुवाद की क्षमता का परीक्षण	लिखित मौखिक	किसी गद्यांश का या वाक्य का हिन्दी से संस्कृत में और संस्कृत से हिन्दी में सही अनुवाद कराया जाए। अनुवाद का मूलभाव व शैली पूर्णतः सुरक्षित होनी चाहिए। अक्षरशः अनुवाद या भावानुवाद उचित नहीं है।

इस प्रकार अध्यापक मौखिक व लिखित रूप में संस्कृत में छात्र की योग्यता का समय रूप से मूल्यांकन कर सकता है।

आन्तरिक मूल्यांकन

मूल्यांकन का उद्देश्य है–जो शिक्षण किया गया है, उसको बालक ने ग्रहण किया अथवा नहीं या किया है तो किस सीमा तक किया है, यह जानना अर्थात् बालक को दिए ज्ञान का परीक्षण करना ही मूल्यांकन है। इस मूल्यांकन की दो स्थितियां हैं–

1. **पाठान्तर्गत मूल्यांकन**–कक्षा शिक्षण के समय जिस समय कि गद्य शिक्षण चल रहा है। उस समय शिक्षक बीच-बीच में ही प्रश्न करता चले और यह जानने का प्रयत्न करे कि जो कुछ मैं पढ़ रहा हूं उसको बालक ग्रहण कर पा रहे हैं अथवा नहीं। इसे आन्तरिक मूल्यांकन भी कहते हैं। पाठान्तर्गत मूल्यांकन प्रश्न द्वारा, लिखित कार्य देकर, श्यामपट कार्य कराकर किसी भी तरह किया जा सकता है। इसका उद्देश्य निम्न प्रकार है–
   (अ) छात्र अधिगम कर रहे हैं या नहीं इसकी जांच।
   (ब) शिक्षण प्रभावी हुआ है या नहीं।
   (द) छात्रों को ध्यानाकर्षित करने के लिए।
2. **पाठोपरान्त मूल्यांकन**–इस मूल्यांकन के सम्बन्ध में भी दो स्थितियां बनती हैं–
   (अ) आज का पूरा पाठ समाप्त होने पर अंत में मूल्यांकन हेतु सोपान में से हम 5-6 विभिन्न प्रकार के प्रश्न पूछें।
   (ब) सत्रान्त मूल्यांकन जिसको वार्षिक मूल्यांकन भी कहते हैं। अर्द्धवार्षिक, मासिक जांच भी बाह्य मूल्यांकन पर।

उपर्युक्त प्रश्नानुसार संस्कृत पाठ का शिक्षण कराते समय आन्तरिक मूल्यांकन निम्नांकित अवसरों पर किया जा सकता है–

(1) **प्रस्तावना**–प्रस्तावना के समय सर्वप्रथम आन्तरिक मूल्यांकन होता है। इससे बालक के तत्पाठ से सम्बन्धित पूर्व ज्ञान की परीक्षा होती है।

(2) अनुकरणवाचन–अनुकरणवाचन के समय शुद्ध व गतिपूर्वक वाचन का मूल्यांकन किया जाता है।

(3) बोध प्रश्न–इन प्रश्नों के द्वारा यह ज्ञात किया जा सकता है कि शिक्षक द्वारा आदर्श वाचन और 4-5 छात्रों के अनुकरण वाचन के द्वारा गद्यांश को ग्रहण करने के बाद बालक ने गद्यांश के भाव को कितना ग्रहण किया है। इस सोपान में 4-5 प्रश्न तथा सम्बन्धी पूछे जाते हैं।

(4) काठिन्य निवारण–इस सोपान में भी विभिन्न प्रविधि द्वारा अर्थ स्पष्ट करने के बाद शिक्षक जब किसी भी छात्र को खड़ा करके अभी-अभी बताए हुए शब्दों को अर्थ जानना चाहता है तब भी शिक्षक आन्तरिक मूल्यांकन करता है ताकि यह ज्ञात हो सके कि बताए हुए अर्थ को बालक ने ग्रहण किया अथवा नहीं।

(5) विचार-विश्लेषणात्मक प्रश्न–इसका मुख्य उद्देश्य तो वैसे गद्य पाठ का गहन अध्ययन कराना है लेकिन अगर शिक्षक को यह आभास हो कि बालकों ने प्रदत्त ज्ञान को ग्रहण नहीं किया तो वह विचार-विश्लेषणात्मक प्रश्न के सहायक प्रश्न को उसी समय पूछता है।

(6) आवृत्ति के प्रश्न–कक्षा शिक्षण समाप्ति पर आवृत्ति के प्रश्नों द्वारा मूल्यांकन किया जाता है।

इस प्रकार संस्कृत गद्य शिक्षण में उपर्युक्त छह स्थितियों में आन्तरिक मूल्यांकन सम्भव है।

आन्तरिक मूल्यांकन के उद्देश्य

मूल्यांकन शिक्षण में सतत् प्रक्रिया है। परीक्षा, मूल्यांकन का एक अंग है। कक्षान्त किया जाने वाला मूल्यांकन आन्तरिक मूल्यांकन होता है। आन्तरिक मूल्यांकन के उद्देश्य हैं–

1. शिक्षक जो भी शिक्षण कार्य करता है, उसको बालक ग्रहण कर रहे हैं या नहीं; वह शिक्षण बालकों को समझने की सीमा के अन्दर है या नहीं; इसकी जांच कक्षा शिक्षण के समय प्रश्नों के माध्यम से की जाती है।
2. अध्यापक को अपने उद्देश्य की सफलता मिलती रही है या नहीं; इसकी जांच करना।
3. बालक का ध्यान केन्द्रित करने के बाद तथा उनको कक्षा में क्रियाशील बनाये रखने के लिए।

आन्तरिक मूल्यांकन कैसे?

1. कक्षा-शिक्षण के समय विषय-वस्तु पर मूल्यांकन के प्रश्नों द्वारा।

2. संस्कृत भाषा में अनुकरण वाचन के द्वारा।
3. कक्षा में अभ्यास कार्य कक्षा कार्य देकर जांच करके।
4. कक्षा में वाक्य प्रयोग कराकर, शब्दों और धातु के रूप बुलाकर, कविता पाठ का वाचन कराकर आन्तरिक मूल्यांकन किया जा सकता है।

आन्तरिक मूल्यांकन की बालक के विकास में भूमिका

1. आन्तरिक मूल्यांकन के द्वारा अध्यापक अपने शिक्षण में आवश्यक सुधार कर शिक्षण को अधिक प्रभावशाली बनाता है।
2. आन्तरिक मूल्यांकन के द्वारा कक्षागत संस्कृत के कमज़ोर पक्ष का पता लगाकर उसका पुन: प्रभावी ढंग से शिक्षण कराया जाता है।
3. आन्तरिक मूल्यांकन से शिक्षण में सुधार होता है, अध्यापक तथा बालक के आत्म-विश्वास की जाग्रति होती है। बालक की कमज़ोरी दूर की जाती है।
4. आन्तरिक मूल्यांकन छात्र व अध्यापक दोनों के लिए हितकर है। इस प्रकार बालक के अधिक विकास में इसकी भूमिका महत्त्वपूर्ण है।

बाह्य मूल्यांकन

संस्कृत भाषा के प्रश्न-पत्र में उद्देश्यों का आधार–उच्च प्राथमिक स्तर पर संस्कृत प्रश्न पत्र में प्रश्न निम्नांकित तीन उद्देश्यों पर आधारित होते हैं–(1) ज्ञान, (2) अर्थग्रहण, (3) अभिव्यक्ति।

1. ज्ञान–इस उद्देश्य के अनुसार भाषा के तत्त्व, विषय-वस्तु तथा लिखित अभिव्यक्ति के विभिन्न रूपों से सम्बन्धित छात्र के ज्ञान को विकसित करने वाले प्रश्न होते हैं। इसमें शब्द भण्डार, वाक्य विन्यास, वर्तनी, शब्द रचना, विराम चिन्ह, उपसर्ग, प्रत्यय, सन्धि, समास आदि ज्ञान का परीक्षण होता है। इसमें विषय-वस्तु सम्बन्धी प्रश्न होते हैं। इसमें बालक ने जो कुछ पढ़ा है, जो कुछ सुना है, वही बात पूछी जाती है। ऐसे प्रश्नों का जवाब देते समय परीक्षार्थी प्रत्याभिज्ञान (पहचान) करता है, प्रत्यास्मरण (याद) करता है। जैसे-(क) बालकस्य-विभक्ति तथा वचन बताओ, (ख) पठ् धातु लोट् लकार प्रथम पुरुष बहुवचन का रूप बताओ, (ग) रूप लिखवाना, (4) हिन्दी में अनुवाद आदि।

2. अर्थग्रहण–इस उद्देश्य में बालक केन्द्रीय भाव ग्रहण करता है, सारांश लेखन करना। प्राय: अपठित गद्य-पद्य के प्रश्न अर्थ ग्रहण के होते हैं। ऐसे प्रश्न जिसमें बालक चिंतन करके अपने ज्ञान का उपयोग करते हुए उत्तर दे सकें। इसमें बालक शब्दों, मुहावरों, सूक्तियों का प्रसंगानुसार अर्थ समझता है। उचित शीर्षक बताता है। विचारों, भावों, तथ्यों का चयन करता है। मनोभाव, भाषा शैली, सारांश ग्रहण, भावों का मूल्यांकन करता है। इस

प्रकार के प्रश्नों में चिन्तन का अवसर मिलता है तथा प्राप्त ज्ञान का अपने प्रयोग करने का अवसर मिलता है।

3. अभिव्यक्ति–संस्कृत में अनुवाद, प्रश्नों का उत्तर संस्कृत में देना, पत्र लेखन, किसी चित्र घटना पर वाक्य प्रयोग करने की स्थिति में आता है।

ज्ञान, अर्थग्रहण, अभिव्यक्ति के प्रश्नों के उदाहरण–

"विशिष्टं ज्ञानं एवं विज्ञानं भवति। मनुष्य विज्ञानस्य प्रभावेण आकाशे पक्षी इव सुदूरम् उड्डीयते। मीनवत् चिरं जले तिष्ठति। आधुनिक विज्ञानस्य मूलाधारः विद्युत् आविष्कारः अस्ति।" (विश्वभरम्)

ज्ञान के कारण–

(1) आधुनिक विज्ञानस्य मूलाधारः अस्ति–

(क) विद्युत, (ख) आकाशः, (ग) विशिष्ट ज्ञान, (घ) सागर।

(2) विशिष्ट ज्ञानं किं? (हिन्दी में उत्तर दो)

अर्थग्रहण के प्रश्न–

(1) इस पाठ का सारांश लिखो।

(2) 'मीनवत् चिरं जले तिष्ठति' इससे क्या तात्पर्य है?

(क) मछली की तरह पानी में चिरकाल तक रहता है।

(ख) पक्षी की तरह आकाश में उड़ता है।

(ग) पानी में बहुत अधिक समय तक रहता है।

(घ) मछली की तरह पानी में तैर सकता है।

अभिव्यक्ति के प्रश्न–

(1) संस्कृत वाक्यों में प्रयोग करो–सुदूरम्, विद्युत, मीनवत्।

(2) संस्कृत में अनुवाद करो–मेरे पुत्र का नाम जयप्रकाश है। मैं शिमला में पढ़ाता हूं।

ब्लू प्रिंट या नील पत्र तैयार करना

प्रश्न-पत्र निर्माणकर्त्ता को चाहिए कि प्रश्न-पत्र बनाने से पूर्व ब्लू प्रिंट तैयार करे। इससे प्रश्न-पत्र निर्माण में सुविधा रहती है। ब्लू प्रिंट प्रश्न-पत्र में दिए जाने वाले प्रश्नों की संख्या व उसके लिए निर्धारित अंकों का दिग्दर्शन कराता है। ब्लू प्रिंट बनाते समय वस्तुनिष्ठ प्रश्न, अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न, लघूत्तरात्मक एवं निबन्धात्मक प्रश्नों की संख्या तथा निर्धारित अंक उसमें निर्दिष्ट कर देने चाहिए। संस्कृत भाषा में प्रश्न-पत्र बनाते समय ब्लू प्रिंट में अकों का प्रतिशत इस प्रकार विभाजित किया जा सकता है।

1. व्याकरण	46 प्रतिशत
2. विषय-वस्तु	34 प्रतिशत
3. प्रश्नोत्तर	10 प्रतिशत
4. रचना	10 प्रतिशत

भाग (अ) कुल प्रश्न 20 = अंक 30

भाग (ब) कुल प्रश्न 11 = अंक 70 = 100 अंक

परख पत्र का उदाहरण

कक्षा–8 संस्कृत **समय**–एक घंटा

पूर्णांक–25

नोट–सभी प्रश्न उत्तर-पुस्तिका में करते हैं। प्रश्न-पत्र सर्वप्रथम उत्तर-पुस्तिका में निम्न प्रारूप में हल करें।

प्रश्न	उत्तर क्रमाक्षर
-i	
-ii	
-iii	
-iv	

प्रश्न 1. (*i*) 'दृश्' धातु का लिङ् लकार प्र० पु० बहुवचन का रूप–

(क) पश्येत् (ख) दृश्येत्

(ग) पश्येषुः (घ) पश्यतु ( )

(*ii*) 'खादितुम' शब्द में कौन सा प्रत्यय लगा हुआ है?

(क) क्त्वा (ख) ल्यप्

(ग) तुमुन् (घ) क्त ( )

(*iii*) 'अस्माकम्' शब्द में विभक्ति है–

(क) द्वितीया (ख) षष्ठी

(ग) सप्तमी (घ) प्रथमा ( )

(*iv*) 'अनादरः' में उपसर्ग है–

(क) अन् (ख) अन

(ग) अ (घ) अना ( )

प्रश्न 2. हिन्दी में एक वाक्य में उत्तर दीजिए–

(*i*) 'भारतीय जनता तेषां अत्याचारैः पीड़िता आसीत्' –यहां तेषां क्रियाका है?

(*ii*) राजा शिवि की परीक्षा लेने कौन आया था?

(*iii*) विष्णुदत्त खीर का पात्र कहां रखकर आता था?

(*iv*) वाल्मीकि ऋषि का नाम 'वाल्मीकि' पड़ने का कारण क्या था?

प्रश्न 3. संस्कृत में एक वाक्य में उत्तर दीजिए–

(*i*) आदिकविः कः आसीत्?

(*ii*) चन्द्रशेखरः कस्य प्रान्तस्य नेता आसीत्?

प्रश्न 4. निम्न धातुओं में 'क्तवतु' प्रत्यय लगाकर क्रियापद बनाओ–

गम, दृश्।

प्रश्न 5. निम्नांकित शब्दों का संस्कृत वाक्यों में प्रयोग करो–

विहितः दण्डेन, विज्ञाय, मम।

प्रश्न 6. सन्धि-विच्छेद करो और सन्धि का अर्थ लिखो–

इत्यादि, नायकः, गणेशः।

प्रश्न 7. निम्नांकित गद्यांशों का हिन्दी में सप्रसंग अर्थ करो–

(क) एते सर्वे जन नायकाः स्व स्थानेषु स्थिताः शासनस्य विरोधं कृतवन्तः। एषु नेतृषु केचन नेतारः शस्त्रेण, स्वतंत्रतामासादितुम् प्रयतिवन्तः, केचन च अहिंसामार्गेण शासनस्य विरोधं कुर्वाणाः स्वतन्त्रता प्राप्तौ प्रयत्नं अकुर्वत्।

(ख) अनन्तरं क्षीरपात्रं तत्रैव स्थायित्व विष्णुदत्तः गतवान्। अपरे दिने तत्र गत्वा पश्यति यत् पात्रे एका स्वर्णमुद्रा आसीत्। सः तां स्वर्णमुद्रां प्राप्यः प्रसन्न अभवत्।

प्रश्न 8. तुलाया तु धृतं मांसं कपोतान् न्यूनतां गतम्।
शिविर्वीक्ष्य शरीरं स्वं सर्वत्रेवार्षयत् सुधीः।

प्रश्न 9. संस्कृत में अनुवाद करो–

(1) शिवि ने कपोत की रक्षा की।

(2) गुरु को नमस्कार।

(3) यह बालक पैर से लंगड़ा है।

(4) बालक शेर से डरता है।

नील पत्र

प्रकरण	ज्ञान				अर्थग्रहण				अभिव्यक्ति				योग				
	व०नि०	अ०लघू०	लघू०	नि०	अ०लघू०	लघू०	नि०	व०नि०	अ०लघू०	लघू०	नि०	क (¼)	ख (¼)	ग (¼)	घ (¼)		
1. शब्द	क (¼)														1(1)		
2. धातु	ख (¼)																
3. उपसर्ग	ग (¼)																
4. प्रत्यय	घ (¼)	1(1)													1(1)		
5. सन्धि			1(1)												1(1)		
6. गद्य		1(2)				1(2)		1(5)							3(9)		
7. पद्य								1(3)							1(3)		
8. अनुवाद												1(4)			1(4)		
9. रचना											1(2)	1(4)			2(6)		
योग	1(1)	2(3)	1(1)			1(2)	2(8)				1(2)	2(8)			10(25)		

प्रश्न 10. 'विद्यालय' पर संस्कृत में चार वाक्य लिखो।

(1) तालिका प्रश्न आकार–

प्रकार	प्रश्न संख्या	अंक भार
(1) वस्तुनिष्ठ प्रश्न	1 (4)	1
(2) अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न	4	6
(3) लघूत्तरात्मक प्रश्न	2	5
(4) निबन्धात्मक प्रश्न	3	13
योग	**10**	**25**

(2) तालिका उद्देश्य आधारित–

उद्देश्य	प्रश्न संख्या	अंक भार
(1) ज्ञानात्मक	5	7
(2) अर्थग्रहण	2	8
(3) अभिव्यक्ति	3	10
योग	**10**	**25**

संस्कृत में क्रिया आधारित मूल्यांकन

जिस उद्देश्य को लेकर कोई कार्य किया जाता है, उसकी उपलब्धि की जांच करना मूल्यांकन कहलाता है। संस्कृत में क्रिया आधारित शिक्षण को विशेष महत्त्वपूर्ण माना गया है। करके सीखना, गतिविधि के द्वारा सीखना क्रिया आधारित शिक्षण है। पूर्व अध्याय में क्रिया आधारित शिक्षण को अनेक प्रविधियों, क्रिया-कलापों की विवेचना की जा चुकी है। संस्कृत शिक्षण उन प्रविधियों को अधिकाधिक अपनाए, ऐसी आशा की जाती है।

क्रिया आधारित मूल्यांकन से तात्पर्य–क्रिया आधारित मूल्यांकन से तात्पर्य है कि छात्र की अर्जित योग्यता की जांच उसकी गतिविधियों, क्रिया-कलापों से किया जाए। मूल्यांकन। जब शिक्षण क्रिया आधारित है तो उसका मूल्यांकन भी क्रिया आधारित होना चाहिए। इस आधार पर क्रिया आधारित मूल्यांकन से निम्न प्रकार दो तरह का अभिप्राय है–

1. क्रिया/प्रयोग द्वारा छात्र की उपलब्धि का मूल्यांकन करना।
2. क्रिया आधारित शिक्षण विषय-वस्तु का मूल्यांकन करना।

सही मूल्यांकन तो वह है, जिस ज्ञान को छात्र अपने जीवन में क्रियान्वित करके अभिव्यक्ति करे। इस प्रसंग में महाभारत में एक प्रसंग है–

'गुरु द्रोणाचार्य' ने पाण्डवों व कौरवों को प्रथम दिन पाठ पढ़ाया जिसमें उन्होंने कहा जीवन में अपनाने योग्य दो सद् आचरण मुख्य हैं–(1) सदा सत्य बोलो तथा दूसरा (2) क्रोध मत करो। गुरु जी ने कहा कि इन्हें याद कर लेना कल सुनूंगा। दूसरे दिन पहले दिन का पाठ सुनाने को कहा। सभी ने उसको सुना दिया परन्तु युधिष्ठिर जी ने कहा कि याद नहीं हुआ। सभी ने उसका उपहास किया। इस तरह 10, 15 दिन निकल गए परन्तु उत्तर वही था। गुरु द्रोणाचार्य ने युधिष्ठिर को कठोर शारीरिक दण्ड देते हुए कहा कि यह छोटी सी बात भी याद नहीं हो सकी। युधिष्ठिर जी ने कहा कि आधा पाठ याद हो गया। वह था–क्रोध मत करो। गुरु जी के पूछने पर उन्होंने स्पष्ट किया कि आपने मुझे कठोरता से दंडित किया मुझे क्रोध नहीं आया। मैं समझ गया कि यह आधा पाठ याद हो गया। जीवन में नवीन ज्ञान को उतार लेना यही शिक्षा की सफलता है। एक सूक्ति भी है–यस्तु क्रियावान् पुरुषः सः विद्वान्। विद्वान वही है जो ज्ञान प्राप्त कर उसे अपने जीवन में अपना ले। अतः क्रिया आधारित मूल्यांकन ही सही मायने में मूल्यांकन है।

संस्कृत भाषा में उपलब्धि का मूल्यांकन प्रायः क्रिया आधारित होता है। सैद्धान्तिक परीक्षा में छात्र प्रत्यास्मरण कर प्रश्नों का उत्तर देता है परन्तु क्रिया आधारित मूल्यांकन में नवीन परिस्थिति में प्राप्त ज्ञान का उपयोग करते हुए अपनी योग्यता को व्यक्त करना है अर्थात् अवबोध, ज्ञानोपयोग, अर्थग्रहण, अभिव्यक्ति के प्रश्न भाषा में क्रिया आधारित हो सकते हैं। ज्ञान उद्देश्य आधारित प्रश्न सैद्धान्तिक माने गए हैं। भाषा में मौखिक परीक्षा क्रिया आधारित की कोटि में आ सकते हैं। परन्तु यदि वे प्रत्यास्मरण, प्रत्याभिज्ञान के प्रश्न हैं तो ज्ञान उद्देश्य की पूर्ति करने वाले माने जाते हैं। भाषा में अपठित गद्य-पद्य को प्रश्नोत्तर क्रिया आधारित मूल्यांकन की कोटि में गिने जा सकते हैं।

1. क्रिया/प्रयोग द्वारा छात्र की उपलब्धि का मूल्यांकन करना–इसके अन्तर्गत निम्न प्रकार के लिखित/मौखिक प्रश्न हो सकते हैं–

(1) अपठित गद्य पर प्रश्नोत्तर।
(2) सूक्ति, शब्द, लोकोक्ति, मुहावरे आदि का वाक्यों में प्रयोग।
(3) वाक्यों का घटनाक्रमानुसार क्रमबद्ध करना।
(4) सारिणी (तालिका) देकर वाक्यों की रचना कराना।
(5) वाक्य खण्डों को जोड़ना।
(6) पद समूह में से चयन कर वाक्य रचना करना।
(7) हिन्दी से संस्कृत में अनुवाद कराना।

(8) संस्कृत श्लोकों का सस्वर, लय, यति, गतिपूर्वक वाचन कराना। गद्यांश का शुद्ध वाचन कराना।

(9) मौलिक कहानी लेखन, निबन्ध लेखन, घटनापूर्ति, अपूर्ण कहानी को पूर्ण करना आदि कार्य।

(10) श्रुतलेख, अनुलेख, सुन्दर लेख कराना।

(11) अशुद्धि संशोधन कराना।

(12) सम लेखन, पल्लवन, सूक्ति की व्याख्या आदि कार्य।

(13) एकांकी अभिनय, कविता पाठ प्रतियोगिता, वाद-विवाद प्रतियोगिता, भाषण प्रतियोगिता आदि।

(14) मेरा संग्रह, श्लोक संचयन, सूक्ति संकलन, आदर्श वाक्य संकलन, कवि रचना की सारणी बनाना आदि कार्य।

(15) हस्तलिखित पत्रिका, भित्ति पत्रिका आदि कार्य में क्रियात्मक कार्य करना।

(16) बाल सभा जयन्तियां, वार्षिकोत्सव, साहित्यिक संध्या आदि में क्रियात्मक कार्य करना, 'प्रतिवेदन तैयार करना' आदि कार्य और संचालन-संयोजन का कार्य करना।

उपर्युक्त क्रियात्मक गतिविधियों द्वारा बालक की संस्कृत भाषा ज्ञान की अर्जित उपलब्धियों का मूल्यांकन किया जा सकता है।

2. क्रिया आधारित विषय-वस्तु शिक्षण का मूल्यांकन–क्रिया आधारित अनेक गतिविधियों का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। हमें यह भी विचार कर लेना चाहिए कि हम मूल्यांकन करते समय किस-किस का ध्यान रखें। सामान्य रूप से तो यह देखना चाहिए कि छात्र की प्रस्तुति किस प्रकार की है। सुन्दरता, स्पष्टता, मौलिकता, क्रमबद्धता, शुद्धता, प्रयुक्त शब्द, वाक्यांशों, वाक्यों का स्तर, औचित्य, प्रस्तुति के समय ध्वनि, स्वाभाविकता आदि के आधार पर मूल्यांकन किया जाता है। क्रिया आधारित शिक्षण के कुछ उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं–

(1) सारिणी से वाक्यों की रचना–वाक्य शुद्ध हों, स्पष्ट व सुन्दर हों, प्रयुक्त शब्द क्रमबद्ध हों, वाक्य पर्याप्त मात्रा में हों और सारिणी में दिए गए सभी पदों का प्रयोग हो।

(2) मेरा संग्रह–संकलित सामग्री स्पष्ट, सुन्दर तथा शुद्ध भाषा युक्त होनी आवश्यक है। सभी प्रकार की सामग्री शिक्षाप्रद, श्लोक, प्राकृतिक सौन्दर्य के पद, नीति परक श्लोक, कहानी, लोकोक्तियां, सूक्तियां, घटना का शाब्दिक चित्र, जीवनी आदि। यह सामग्री वर्गीकृत, क्रमबद्ध औचित्यपूर्ण होनी चाहिए। संकलन में अच्छे साहित्यकारों की, अच्छे

स्तर की रचनाएं होनी चाहिए। रोचकता के लिए संबंधित रंगीन चित्र सामग्री भी होनी चाहिए।

3. मौखिक–(कविता पाठ, भाषण, सस्वर वाचन आदि) इसमें प्रस्तुत करते समय छात्र में आत्म-विश्वास हो, निर्भयता हो, शुद्ध व गतिपूर्वक होना आवश्यक है। छात्र में कविता मात्र भी घबराहट न हो। गति मध्यम हो, न तीव्र हो और न मन्द। उत्तम पाठक के जो छः गुण बताए गए हैं, वे सभी हों. कविता पाठ में लय, ताल, यति, गति, स्पष्ट और शुद्ध उच्चारण होना चाहिए। भाषण में विषय वस्तु, प्रारम्भ, शुद्धता, क्रमबद्धता, औचित्य स्तरीय शब्द प्रयोग, प्रभावशीलता आदि के द्वारा मूल्यांकन किया जा सकता है।

4. लिखित मौलिक रचनाओं में–शुद्धता, सुन्दरता, स्पष्टता, विराम चिन्ह प्रयोग, व्याकरण समस्त भाषा, क्रमबद्धता, प्रभावी प्रारम्भ व उपसंहार आदि के आधार पर मूल्यांकन किया जाए।

क्रिया आधारित शिक्षण के मूल्यांकन के लिए छात्र को पर्याप्त समय पूर्व ही स्तरीय कार्य सम्पन्न करने हेतु निर्देश दे दिए जाएं। छात्रों को क्रिया आधारित स्तरीय कार्य हेतु निम्न प्रकार कार्य दिया जा सकता है। दिया गया कार्य एक सुन्दर-सी अभ्यास पुस्तिका में किया जाए। लिखावट सुन्दर, शुद्ध और स्पष्ट हो। सामग्री वर्गीकृत हो।

स्तरीय कार्य हेतु किए जाने वाले कुछ कार्य निम्न प्रकार सम्भव हैं–

1. सुभाषित/नीति परक श्लोकों का संलकन (20)
2. किसी एक धातु के पांचों लकारों में 45 वाक्यों की रचना अर्थ सहित।
3. किसी महापुरुष, नाम, प्राकृतिक दृश्य पर 10 वाक्य रचना। (5)
4. विद्या, बसंत ऋतु, परोपकार, संस्कृत भाषा, भारत देश, राष्ट्रीय दिवस, गाय हरियाणा, सदाचार आदि में किन्हीं दो पर 10-10 संस्कृत वाक्य रचना।
5. सूक्तियों/लोकोक्तियों, मुहावरों का संकलन हिन्दी अर्थ सहित। (10)
6. किसी 'आदर्श वाक्य', सूक्ति का पल्लवन (2)
7. प्रत्यय-विवेचन, उदाहरण (पांच)
8. समास-समास-विग्रह, विवेचना-10, 10 उदाहरण। (3 समास)
9. संधि-(स्वर, व्यंजन, विसर्ग) किसी एक की विवेचना 10, 10 उदाहरण।
10. किसी एक शब्द या क्रिया पद के उपसर्गों का उपयोग कर नए शब्दों की रचना (10 उदाहरण)।
11. दो सारणियां देकर उनके आधार पर वाक्य रचना अर्थ सहित कराना। (20 वाक्य)
12. पत्र-रचना, प्रार्थना-पत्र, आमन्त्रण-पत्र, पारिवारिक पत्र (5 पत्रों की रचना)

13. पाठ्य-पुस्तक के गद्य-पद्य पाठों का हिन्दी अनुवाद, उसमें प्रयुक्त पदों का व्याकरणिक परिचय दिया जाए। (दो गद्य दो पद्य पाठ) व्याकरणिक परिचय में पाठान्तर्गत संधि, प्रत्यय, धातु रूप, शब्द रूप, उपसर्ग-समास, सन्धि-विच्छेद आदि दिए जाएं। हर प्रत्येक पाठ में से 15, 15 पदों का परिचय दिया जाए।

14. कारकों का विशिष्ट प्रयोग नियम-उदाहरण सहित। (सभी कारकों का)

15. लघु कथाओं का संकलन (5 लघु कथाएं-पाठ्य-पुस्तक के अतिरिक्त)

उपर्युक्त 15 बिंदुओं में से किन्हीं 5 का कार्य स्तरीय कार्य हेतु दिया जा सकता है। शुद्धता, स्पष्टता, सुन्दरता, क्रमबद्धता और पर्याप्तता के आधार पर इनका मूल्यांकन किया जा सकता है। किसी एक परख परीक्षा (10 अंक) के अंक इसी स्तरीय कार्य पर दिए जाएं, ऐसा प्रावधान करना चाहिए।

अभ्यास के प्रश्न

1. मूल्यांकन से क्या तात्पर्य है? इसकी आवश्यकता और महत्त्व पर प्रकाश डालिए।
2. संस्कृत भाषा के विभिन्न कौशलों का मूल्यांकन कैसे किया जा सकता है?
3. मूल्यांकन की परिभाषा देते हुए भाषा के विभिन्न पक्षों के मूल्यांकन के विभिन्न परीक्षणों का विस्तार से वर्णन कीजिए
4. एक अच्छा प्रश्न-पत्र बनाते समय शिक्षक को मुख्य रूप से किन-किन बातों को ध्यान में रखना चाहिए?
5. वस्तुगत प्रश्न-पत्र रचना में कौन-कौन से सोपान हैं? संस्कृत शिक्षण में मूल्यांकन की वस्तुगत परीक्षा की उपयोगिता बताइए।
6. आंतरिक मूल्यांकन और बाह्य मूल्यांकन के उद्देश्यों पर चर्चा करते हुए संस्कृत शिक्षण में इनकी भूमिका स्पष्ट कीजिए।
7. संस्कृत शिक्षण में क्रिया आधारित मूल्यांकन से क्या अभिप्राय है? आप क्रिया द्वारा छात्र की उपलब्धियों का मूल्यांकन कैसे करेंगे?

❑❑❑

अध्याय 15

संस्कृत शिक्षण में गृह कार्य एवं संशोधन प्रक्रिया

गृह कार्य का विचार एक विवाद का विषय है। शिक्षा शास्त्रियों और विचारकों ने गृह कार्य के बारे में विभिन्न विचार प्रकट किए हैं। कुछ विचारकों का कहना है कि गृह कार्य छात्रों को अवश्य ही दिया जाना चाहिए। लेकिन ब्रे (Bray) ने गृह कार्य का कड़े शब्दों में विरोध किया है। उनका कहना है कि "सामान्य स्थिति में एक छात्र स्कूल बंद होने के समय तक पर्याप्त कार्य कर लेता है। अतः गृहकार्य जो कि साधारणतया हमारे स्कूलों में दिया जाता है, छात्रों के लिए लाभ की अपेक्षा अधिक हानिकारक है।"

कई बार कुछ माता-पिता गृह कार्य या विरोध करते हैं। कई घरों का वातावरण कुछ ऐसा होता है जहां बच्चों को घरेलू कार्य करने होते हैं। ऐसी स्थिति में उन्हें गृह कार्य करने का समय ही नहीं मिलता और वे जल्दी-जल्दी या फिर किसी की नकल करके गृह कार्य पूरा कर लेते हैं ताकि वे पाठशाला में अध्यापक की डांट-डपट से बच सकें। ऐसा गृह कार्य बच्चों के लिए हानिकारक होता है। इसके विपरीत श्री पी०सी० रेन (P.C. Wren) गृह कार्य का समर्थन करते हैं। कुछ माता-पिता यह चाहते हैं कि बच्चों को थोड़ा-बहुत गृह कार्य अवश्य दिया जाना चाहिए।

कुछ भी हो, संस्कृत शिक्षण में गृह कार्य की भूमिका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। गृह कार्य की भूमिका शिक्षक के सीखे हुए अनुभवों को दोहराने तथा मन मस्तिष्क में अर्जित योग्यता के आत्मसात की है। शिक्षक छात्रों को घर-घर स्वयं कार्य करने के लिए जो कार्य देता है, वह गृह कार्य कहलाता है। सीखी हुई मौखिक योग्यता को अभ्यास की सहायता से सुदृढ़ किया जाता है। शिक्षण की मनोविज्ञान की प्रक्रिया भी इस बात का समर्थन करती है। शिक्षण के तीन महत्त्वपूर्ण नियम हैं-तत्परता का नियम, प्रभाव का नियम और अभ्यास

का नियम। शिक्षण के तीसरे नियम के अनुसार सीखे हुए ज्ञान एवं कौशल को अभ्यास द्वारा सुदृढ़ किया जाता है।

गृह कार्य की आवश्यकता [Need of Home-work]

स्कूल से घर आने के पश्चात् बच्चों के पास काफी समय होता है। यदि उस खाली समय का सदुपयोग न किया जाए तो बालक गलत आदतों का शिकार हो जाते हैं। कहा भी गया है, 'खाली मस्तिष्क शैतान का घर।' केवल पांच-छः घंटों की स्कूल की शिक्षा बच्चों की उन्नति के लिए पर्याप्त नहीं है। जीवन में आगे बढ़ने के लिए कठिन कार्य की आवश्यकता पड़ती है। ऐसी स्थिति में गृह कार्य ही बालकों में नियमित रूप से कार्य करने की भावना का विकास करेगा।

गृह कार्य अध्यापकों तथा माता-पिता के बीच परस्पर सहयोग की कड़ी बनता है। गृह कार्य से माता-पिता को अपने बच्चों की प्रगति का पता चलता है। अन्य विषयों की तरह संस्कृत शिक्षण में भी गृह कार्य की पूर्णतः आवश्यकता होती है। संस्कृत शिक्षण के अन्तर्गत उच्चारण, वर्तनी, कठिन शब्दों का प्रयोग आदि अनेक बातें आती हैं, जिनका अभ्यास करने के लिए गृह कार्य की आवश्यकता होती है। केवल कक्षा में पढ़ाए जाने से ही छात्र पूरी तरह भाषा का ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता।

संस्कृत शिक्षण में गृह कार्य का स्वरूप [Nature of Home-work in Teaching of Sanskrit]

संस्कृत शिक्षण के प्रत्येक पक्ष का अभ्यास गृह कार्य द्वारा नहीं करवाया जा सकता; जैसे-उच्चारण, वर्तनी, उपसर्ग, प्रत्यय, समास आदि। इसलिए शिक्षक को गृह कार्य के स्वरूप का निर्धारण उन बिन्दूओं के आधार पर करना होता है जो संस्कृत भाषा के पठित अंश को सीखने में कठिन माने जाते हैं। ये बिन्दू मुख्य रूप से निम्नलिखित हैं-

(1) कठिन/क्लिष्ठ शब्दों के अर्थ बताना तथा उनका स्वतन्त्र संदर्भ में प्रयोग करना।

(2) संधि-समास का विग्रह करना तथा उनके नियम बताना।

(3) प्रत्यय और उपसर्ग की सहायता से नए शब्दों का निर्माण करना तथा उनका वाक्यों में प्रयोग करना।

(4) पाठ्य-वस्तु के ज्ञान तथा अर्थ ग्रहण पर आधारित प्रश्नों के उत्तर लिखित रूप में प्रस्तुत करना।

गृह कार्य का नियोजन-गृह कार्य का नियोजन संस्कृत शिक्षण में गृह कार्य के उद्देश्यों के अनुसार किया जाता है। ये उद्देश्य अग्रलिखित हैं-

1. छात्रों द्वारा कक्षाओं में अर्जित ज्ञान का कक्षा-कक्ष के बाहर पुनः-पुनः अभ्यास करना।
2. छात्रों को लिखित अभिव्यक्ति के अवसर प्रदान करना।
3. घर पर अवकाश के समय का सदुपयोग करना।
4. छात्रों के रचना कौशल को विकसित करना।
5. छात्रों की लिखित अभिव्यक्ति की त्रुटियों की जानकारी तथा शुद्ध करने की शिक्षण व्यूह तैयार करना।

इन उद्देश्यों की उपलब्धि के लिए संस्कृत अध्यापक को निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए-

(1) छात्रों को गृह कार्य उनकी वैयक्तिक योग्यता के अनुसार दिया जाए।

(2) गृह कार्य के प्रश्न विषय से सम्बन्धित हों।

(3) प्रश्न ऐसे हों, जिनके उत्तर देने में छात्र स्वयं सक्षम हों। उन्हें किसी दूसरे की मदद न लेनी पड़े।

(4) छात्रों के गृह कार्य करने की अवधि का ध्यान रखा जाए।

(5) छात्र घरेलू कार्यों में भी समय दे सकें, इसका भी ध्यान रखा जाए।

(6) छात्रों के स्तर एवं पाठ्य-वस्तु के अभ्यास अंश का समुचित नियोजन रखा जाए।

गृह कार्य के स्वरूप में प्रश्नों के प्रकार का भी ध्यान रखना आवश्यक है। प्रश्नों के प्रकार प्रश्न-पत्र निर्माण के सम्बन्ध में दिए गए निर्णय के अनुकूल ही होने चाहिए। संस्कृत विषयों के अनुसार गृह कार्य का अधोलिखित स्वरूप महत्त्वपूर्ण तथा समीचीन है-

गद्य-शिक्षण अधिगम-नये शब्दों का निर्माण, वाक्य, प्रयोग, लिखित प्रश्नोत्तर।

पद्य-शिक्षण अधिगम-भावग्रहण एवं भावार्थ लेखन।

नाटक-शिक्षण अधिगम-कथानक-लेखन, चरित्र-चित्रण।

कहानी-शिक्षण अधिगम-कथानक-लेखन, चरित्र-चित्रण।

रचना-शिक्षण अधिगम-मौलिक लेखन, पत्र, अनुच्छेद, निबन्ध।

व्याकरण-शिक्षण अधिगम-भाषा प्रयोग।

गृह कार्य के कार्य [Functions of Home-work]

1. **नये पाठ के लिए तैयारी** (Preperation for new Lesson)-बालक पाठ में आए नये शब्दों के अर्थ शब्द-कोष से खोजें अथवा अन्य सूचनाएं एकत्रित करें ताकि वे नये पाठ के अध्ययन के लिए तैयार हो सकें।

2. आत्म-विश्वास बढ़ाना (To increase Self-confidence)–गृह कार्य न अधिक कठिन हो और न ही अधिक सरल। गृह कार्य करने से बालकों में स्वतन्त्र अध्ययन के प्रति आत्म-विश्वास बढ़ता है। अत: बालकों में कार्य करने की प्रेरणा उत्पन्न होती है।

संस्कृत अध्यापक को गृह कार्य देते समय निम्न बातों पर ध्यान देना चाहिए–

(1) गृह कार्य कम-से-कम और आवश्यक हो।

(2) कुछ घरों में गृह कार्य करने की उचित सुविधा नहीं होती है।

(3) यदि गृह कार्य अधिक दिया जाएगा तो छात्र में आज का काम कल पर छोड़ने की आदत पड़ जाती है।

(4) गृह कार्य अधिक होने से अध्यापक के लिए सही जांच करनी भी कठिन होती है और छात्र भी गृह कार्य के प्रति लापरवाह हो जाते हैं।

(5) अधिक गृह कार्य का छात्र के स्वास्थ्य पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है।

(6) छात्रों की घर की परिस्थितियां अलग-अलग होती हैं; किसी को घर में बिल्कुल सहायता नहीं मिलती, किसी को ज्यादा सहायता मिलती है।

(7) अधिक गृह कार्य देने से बालकों को खेलने का समय नहीं मिलता, जो उनके स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होता है क्योंकि वे गृह कार्य करने के लिए घरों में बैठे रहते हैं।

(8) गृह कार्य अधिक होने से बालक सामाजिक क्रियाओं में भाग नहीं ले पाते।

इसलिए अध्यापक को चाहिए कि वह छात्रों को उतना ही गृह कार्य दे जो वास्तव में ही उनके लिए ज़रूरी हो। अत: गृह कार्य की मात्रा भी सीमित होनी चाहिए।

गृह कार्य के उद्देश्य
[Objectives of Home-work]

संस्कृत शिक्षण के अध्यापक को गृह कार्य के निम्नलिखित उद्देश्यों का ज्ञान होना चाहिए–

1. स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य करना–छात्रों को ऐसा अवसर प्रदान करना कि वे व्यक्तिगत रूप से स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य कर सकें; इससे उनमें आत्म-विश्वास बढ़ेगा।

2. अध्ययन में रुचि जागृत करना–गृह कार्य के द्वारा छात्रों में नियमपूर्वक अध्ययन का स्वभाव तथा रुचि उत्पन्न करना जिससे उनमें एकाग्रता तथा केन्द्रीयकरण की शक्ति बढ़े।

3. स्कूल के कार्य को दोहराना–बच्चे स्कूल में जो कुछ सीखते हैं, यदि उसे घर आकर दोहरा लेते हैं तो वह ज्ञान स्थायी हो जाता है।

4. खाली समय का सदुपयोग–प्राय: देखा गया है कि बच्चे घर आकर अपना समय शरारतों में या इधर-उधर घूमकर व्यर्थ नष्ट कर देते हैं, पर गृह कार्य उन्हें खाली समय का सदुपयोग करने की प्रेरणा देता है।

5. अध्यापक एवं अभिभावक के बीच की कड़ी–गृह कार्य से माता-पिता इस बात से सन्तुष्ट रहते हैं कि विद्यालय में उनके बालकों की नियमित रूप से पढ़ाई चल रही है।

6. पाठ्यक्रम पूरा करने में सहायक–आजकल पाठ्यक्रम आवश्यकता से अधिक लंबे होते हैं। स्कूल में केवल 35-40 मिनट पढ़ाने से वे पूरे नहीं होते। गृह कार्य के द्वारा अध्यापक को पाठ्यक्रम समय से समाप्त करने में मदद मिलती है।

7. कमज़ोर बच्चों की उन्नति में सहायक–कमज़ोर बच्चे अपने काम को गृह कार्य में पूरा कर लेते हैं। कई बार स्कूल में उनका काम अधूरा रह जाता है। इसलिए गृह कार्य द्वारा ही उन्हें उन्नति करने का अवसर मिलता है।

8. लिखित अभिव्यक्ति को बढ़ावा–भाषा शिक्षण में बालक की लिखित अभिव्यक्ति को बढ़ावा मिलता है।

9. शुद्ध वर्तनी का अभ्यास–जो छात्र कक्षा में अधिक अशुद्धियां करते हैं, वे गृह कार्य में अपनी अशुद्धियों को दूर करने का अभ्यास कर सकते हैं।

गृह कार्य के प्रकार
[Types of Home-work]

गृह कार्य के प्रकार निम्नलिखित हैं–

1. अनुवाद, व्याकरण तथा निबन्ध–जिससे छात्र कक्षा के लिए किए गए कार्य का अभ्यास कर सके।
2. कक्षा में पढ़ाए गए पाठ से सम्बन्धित प्रश्न।
3. स्मरण करने के लिए कोई ऐसा कार्य जो मनोरंजक हो; जैसे–नाटक का कोई अंश, कोई पद्यांश, कोई कहानी।
4. रचनात्मक कार्य; जैसे–चार्ट बनाना, मॉडल बनाना, कोई नक्शा बनाना अथवा ड्राइंग का कार्य।
5. सुलेख।
6. मुहावरों तथा कक्षा में पाठ में पढ़ाये गए शब्दों का वाक्य प्रयोग आदि।
7. अगले दिन जो पाठ पढ़ना है उसके कठिन शब्द, मुहावरे आदि छांटकर लाना।

गृह कार्य के सम्बन्ध में आपत्तियां [Difficulties relating to Home-work]

1. अधिक गृह कार्य से बच्चों को खेलने का अवसर नहीं मिलता।
2. छात्र मां-बाप के कार्यों में हाथ नहीं बंटा पाता।
3. छात्रों के मन और मस्तिष्क पर अधिक बोझ रहता है।
4. गृह कार्य के भय से छात्र भावात्मक स्थिरता खो बैठते हैं।
5. नकल करने की प्रवृत्ति का विकास।
6. गृह कार्य न करने पर झूठ बोलने की आदत का विकास होता है। जैसे-अध्याप पुस्तिका घर रह गई, कल बीमार हो गया था।
7. किसी-किसी घर के वातावरण में पढ़ना कठिन होता है, क्योंकि घर में उचित स्थान नहीं होता, जहां बच्चा पढ़ सके। कहीं शोर-शराबा अधिक होता है तो कहीं पर पर्याप्त रोशनी नहीं होती।
8. कभी-कभी गृह कार्य से बच्चों में पढ़ने के प्रति अरुचि जागृत हो जाती है।
9. सही जांच न होने पर भी बच्चे जैसा-तैसा काम कर लेते हैं। इस प्रकार गलत ढंग से काम करने पर बच्चे को विषय का सही ज्ञान नहीं होता।

गृह कार्य को प्रभावशाली बनाने के सुझाव [Suggestions for Effective Home-work]

संस्कृत गृह कार्य को प्रभावशाली एवं रुचिकर बनाना अध्यापक की समझदारी पर ही निर्भर करता है। अध्यापक ही यह निर्धारित कर सकता है कि कितना गृह कार्य दिया जाए जो बच्चों के लिए बोझ न बने। गृह कार्य ऐसा हो जो विद्यार्थी में चिन्तन शक्ति का विकास करे और उसे सही ढंग से गृह कार्य करने की प्रेरणा दे। इसके लिए अध्यापक को निम्नलिखित सुझावों को अपनाना चाहिए-

1. गृह कार्य चुनौतीपूर्ण होना चाहिए-गृह कार्य ऐसा हो जिसमें किसी खोज के लिए स्थान हो, नये तरीकों के लिए स्थान हो, अपने विचारों को प्रकट करने का स्थान हो। ऐसे गृह कार्य ही बच्चों और अध्यापकों के लिए लाभदायक होते हैं।

2. दैनिक जीवन से सम्बन्धित-गृह कार्य दैनिक जीवन से सम्बन्धित तथा छात्रों की रुचि के अनुसार हो। संस्कृत का शिक्षक बच्चों को जो निबन्ध लिखने को दे, यदि वह उनके दैनिक जीवन से सम्बन्धित हो तो बच्चों को निबन्ध लिखने में कठिनाई नहीं होगी।

3. गृह कार्य बालक को प्रोत्साहित करे-गृह कार्य ऐसा हो जो बालक को अध्ययन करने के लिए प्रेरित करे। संस्कृत शिक्षण में व्याकरण शिक्षण के लिए विशेषणों की सूची तैयार करके उसे विद्यालय में हुए वार्षिकोत्सव पर लिखने के लिए प्रयोग कर सकता है।

4. गृह कार्य सरल और सीमित हो-गृह कार्य इतना कठिन न हो कि उसे करने के लिए बालक को माता-पिता या किसी अन्य पर निर्भर रहना पड़े। गृह कार्य इतना अधिक भी न हो कि बालक को स्कूल से घर आने के बाद अधिक समय गृह कार्य पर भी लगाना पड़े। उदाहरण के लिए संस्कृत में बालक को पाठ्य-पुस्तक में से प्रश्न लिखने के लिए दिए जाएं तो वे मात्रा में अधिक न हों। व्याकरण में यदि शब्दों या मुहावरों के वाक्य बनाने हैं तो वे शब्द या मुहावरे इतने कठिन न हों कि बालक स्वयं वाक्य न बना सके और इसके लिए उसे माता-पिता की सहायता लेनी पड़े। कई बार माता-पिता बालक को डांट भी देते हैं कि तुम्हें गृह कार्य भी नहीं आता। इससे बालक में हीन भावना उत्पन्न हो जाती है।

5. मिलकर काम करने की भावना विकसित करना-गृह कार्य से बालक में मिलकर काम करने की भावना उत्पन्न होनी चाहिए। अध्यापक बालकों को प्रेरित करे कि वे स्वयं प्रश्न को हल करें या उनमें मिलकर काम करने की भावना को प्रोत्साहित करे। भाषा के घंटे में उस भाषा के नाटक बालकों से करवाना, ज्वलन्त समस्याओं पर बालकों के विचार जानना, बालकों के द्वारा उनके माता-पिता के विचारों को जानना।

6. सीखने के नये तरीकों और साधनों को प्रोत्साहित करना-शिक्षक बालकों को पाठ्य-पुस्तकों के अतिरिक्त अन्य अच्छे साधनों द्वारा गृह कार्य करने के लिए प्रोत्साहित करे। शब्द-कोष की सहायता, किसी पत्रिका से सहायता या व्यावहारिक रूप से उस स्थान का प्रत्यक्ष अनुभव भी हो सकता है। सामाजिक घटनाओं एवं परिवर्तनों के बारे में बालकों से ही जानकारी प्राप्त करना।

7. गृह कार्य में विविधता होनी चाहिए-एक ही प्रकार के गृह कार्य करते रहने से बालक बोर हो जाते हैं और ऐसा गृह कार्य उन्हें नीरस लगने लगता है। यदि गृह कार्य में विविधता होगी तो छात्रों की विभिन्न प्रकार की योग्यताओं को विकसित होने का अवसर मिलेगा।

8. बालकों के समक्ष समस्या प्रस्तुत करना-बालकों के समक्ष ऐसी समस्या रखी जाए जिन्हें वे एक साथ मिलकर उसका हल ढूंढें। बालकों को विभिन्न प्रकार के पत्ते, छोटे-छोटे जीव-जंतुओं के चित्र आदि एकत्रित करने को कहा जा सकता है। ऐसे कार्यों में बालक बहुत रुचि लेते हैं।

9. बालक के वातावरण की जानकारी-अध्यापक को यह पता होना चाहिए कि बालक कैसे वातावरण में रहता है, बालक घर में कैसे वातावरण में कार्य करता है। बालकों को यह भी बताया जाए कि वे गृह कार्य ऐसे करें जिससे उनके पारिवारिक संबंधों में अन्तर न पड़े। केवल बच्चों के गृह कार्य की कॉपियां जांचकर ही अध्यापक का कर्त्तव्य पूरा नहीं होता, उसे उपर्युक्त बातों का भी ध्यान रखना चाहिए।

10. सोच-समझ कर करना–गृह कार्य बालक सोच-समझ कर करें। प्राय: देखा जाता है कि बालक बिना सोचे-समझे उस विषय की घंटी में ही गृह कार्य समाप्त करने की सोचते हैं। परन्तु बालकों को ऐसा नहीं करना चाहिए।

गृह कार्य संशोधन प्रक्रिया, तकनीक एवं विधियां [Technique and Methods of Improving Home-work]

यह बात ध्यान देने योग्य है कि जो भी गृह कार्य दिया जाए, उसका संशोधन अवश्य किया जाए। इससे अभ्यास शिक्षण का लाभ होता है। छात्र भी गृह कार्य में रुचि लेता है और सीखने का सतत् अभ्यास करता है।

संस्कृत के गृह कार्य में अशुद्धियों के प्रकार पता होने चाहिएं। अशुद्धियों के कारण जानने चाहिएं और निराकरण की उचित विधि अपनानी चाहिए। लिखित कार्य में साधारण तौर पर अधोलिखित अशुद्धियां मिलती हैं–

1. वर्तनी की अशुद्धियां
2. व्याकरण की अशुद्धियां
3. सम्प्रेषण की अशुद्धियां

1. वर्तनी की अशुद्धियां–ऐसी अशुद्धियां अध्यापक द्वारा शुद्ध की जानी चाहिएं। यदि किसी तरह की अशुद्धि के संकेत अधिकतर छात्रों के लिखित कार्य में उपलब्ध होते हैं तो उनका उपचार शिक्षण द्वारा निराकृत किया जाए।

2. व्याकरण की अशुद्धियां–लिंग, वचन अथवा वाक्य स्तर पर कारक आदि के परस्पर सम्बन्ध की असावधानी अथवा अज्ञान के कारण ऐसी अशुद्धियां होती हैं। अत: इन्हें कारण सहित समझाना चाहिए। इसके अतिरिक्त पुनर्अभ्यास कराना चाहिए। विराम चिन्हों एवं अनुच्छेदों की तकनीकों का ज्ञान प्रदान करना भी आवश्यक है।

3. सम्प्रेषण की अशुद्धियां–पाठ्य-वस्तु की सूचनाओं, तथ्यों, घटनाओं की सही जानकारी न होने के कारण या लिखित अनुच्छेद में अस्पष्टता और अवांछनीय व्यवस्थाक्रम के कारण ऐसी अशुद्धियां हो सकती हैं। क्रमबद्धता और सम्पूर्ण अभिव्यक्ति के दोष भी पकड़े जा सकते हैं। किसी प्रश्न का उत्तर अथवा रचना की अभिव्यक्ति अधूरी, गलत अथवा भ्रमित हो सकती है। इसलिए अपूर्ण को पूर्ण, गलत को सही और भ्रामक को सत्यनिष्ठ स्तर पर लाने एवं अभ्यास कराने के लिए शिक्षण साधनों की अपेक्षा होती है।

कक्षा में छात्रों की संख्या बहुधा ज्यादा होती है। इसलिए कक्षा प्रबंध के द्वारा प्रशिक्षु विद्यार्थियों की मदद से भी इस कार्य का निष्पादन कराया जा सकता है।

संशोधन विधियों में तीन तकनीकों का प्रयोग किया जा सकता है–

(1) अशुद्धि जानना।

(2) अशुद्धि के कारण जानना।

(3) शुद्धि संशोधन कराना।

अशुद्धि के कारण–अशुद्धि के कारण प्राय: अज्ञान एवं असावधानी ही होते हैं। इसलिए रुचिकर शिक्षोपयोगी गृह कार्य तथा सावधानी से युक्त अभ्यास से निदानात्मक/उपचारात्मक मूल्यांकन संशोधन कार्य की विधि ही सर्वश्रेष्ठ है।

विविध विधाओं में गृह कार्य का वैशिष्ट्य–गद्य शिक्षण को उस दिन पढ़ाये हुए पाठ से सम्बन्धित कार्य घर से करके लाने से गृह कार्य की विशिष्टता व्यक्त होती है। इसमें यह बात अत्यन्त आवश्यक है कि अगले दिन सम्पूर्ण गृह कार्य का संशोधन और निरीक्षण हो। नाटक शिक्षण में चरित्र, कथोपकथन, कथा-वस्तु, नाटक की शैली आदि विषयों पर गृह कार्य करने की विशेषता है। कविता शिक्षण में विद्यार्थी को समान भाव वाला कोई दूसरा पद्य गृह कार्य के लिए दिया जा सकता है। इससे भी गृह कार्य का वैशिष्ट्य लक्षित होगा। व्याकरण शिक्षण में यदि विशेषण का पाठ पढ़ाया जा रहा है तो गृह कार्य के रूप में कुछ वाक्य दिए जा सकते हैं, जिनमें से विशेषण छांटने के लिए छात्र को कहा जाए। इस दृष्टि से गृह कार्य की उपयोगिता में वृद्धि होती है। रचना-शिक्षण में किसी अपूर्ण निबन्ध को लिखने के लिए गृह कार्य का उपयोग किया जा सकता है। यह भी गृह कार्य का एक अत्यन्त वैशिष्ट्य है।

अभ्यास के प्रश्न

1. संस्कृत में गृह कार्य का क्या महत्त्व है? इसके उद्देश्य क्या हैं?
2. गृह कार्य के पक्ष एवं विपक्ष में तर्क दीजिए।
3. 'गृह कार्य साधन है, साध्य नहीं।' स्पष्ट कीजिए।
4. संस्कृत भाषा शिक्षण के अन्तर्गत गृह कार्य का क्या महत्त्व है? इसे प्रभावशाली बनाने के लिए अध्यापक को किन-किन बातों का ध्यान रखना चाहिए।
5. संस्कृत शिक्षण में गृह कार्य के स्वरूप, प्रकार तथा इसकी संशोधन प्रक्रिया पर प्रकाश डालिए।

❑❑❑

अध्याय 16

संस्कृत भाषा की सह-पाठ्य क्रियाएं

प्राचीन काल में पाठ्य-पुस्तकों के आधार पर या जब पाठ्य-पुस्तकें नहीं थीं, भाषण विधि द्वारा छात्रों को शिक्षित किया जाता था। मध्य काल में तो पुस्तकें ही शिक्षा प्राप्ति की मुख्य आधारशिला थीं। पुस्तकों का अध्ययन करना, उनसे ज्ञान अर्जित करना और उसी के आधार पर कह-सुन या लिख देना मुख्य उद्देश्य था। पुस्तकें सब कुछ थीं, शारीरिक शिक्षा, खेलकूद एवं मनोरंजन के साधनों आदि को कोई महत्त्व नहीं दिया जाता था। विद्यालयों में जीवन का सर्वथा अभाव था। यह पद्धति बड़ी नीरस थी। 'रटाई-पिटाई और घुटाई' की पद्धति के विरुद्ध आधुनिक मनोविज्ञान ने जेहाद छेड़ा और आज बालक के केवल मानसिक विकास पर ही नहीं, वरन् सर्वांगीण विकास पर बल दिया जाता है। आज शारीरिक, मानसिक, नैतिक, भावात्मक, नेतृत्व आदि सभी पक्षों पर बल दिया जाता है जो बालक के व्यक्तित्व एवं सामाजिक जीवन में सहायक हैं।

आज भी संस्कृत शिक्षण की स्थिति शौचनीय है। कक्षा में अध्यापक का प्रभुत्व होता है और वही बोलता है। छात्र मूक श्रोता बनकर अध्यापक की बातों को सुनते हैं। पाठ्य-पुस्तकों के माध्यम से शिक्षक भाव-भावना का विकास करना चाहता है। भावाभिव्यक्ति के लिए छात्रों के विशेष अवसर नहीं दिया जाता है। संस्कृत की प्रत्येक विधा के शिक्षण के प्रति यही भाव देखा जाता है। गद्य-शिक्षण के समय या तो शिक्षक पढ़ता है, या कभी कभी छात्रों से पढ़वा लेता है। कठिन शब्दों या अंशों का वही स्पष्टीकरण करता है। पद्य शिक्षण के समय भी यही स्थिति देखी गई है। शिक्षक पढ़कर अर्थ बताते जाते हैं। छात्रों ने कितना समझा, कितना रसास्वादन किया; इसका उन्हें जरा भी ध्यान नहीं रहता। इस प्रकार आज भी अध्यापक एक क्रियाशील वक्ता है और छात्र निष्क्रिय श्रोता। कहने का अभिप्राय यह है कि आज भी संस्कृत शिक्षण का प्रचलित रूप 'भाषण पद्धति' ही है। यद्यपि यह शिक्षण के सामान्य सिद्धान्त के लिए यह रूप प्रतिकूल एवं घातक है।

भाषा शिक्षण के भव्य-भवन में भाव-प्रकाशन नींव है और लिखित कार्य ईंट-एवं सीमेंट का कार्य करते हैं। शिक्षक ही वह कारीगर है जो इस भवन को ठीक ढंग से

सकता है या बिगाड़ सकता है। शैली एवं भावाभिव्यक्ति के लिए लिखित कार्य का अभ्यास, मनोवैज्ञानिक तकनीक एवं प्रवीणता आवश्यक है। इसके लिए समय-समय पर विद्यालयों के पाठ्यक्रम में सहगामी क्रियाओं का सहयोग लेना आवश्यक है ताकि बालकों का भाषा सम्बन्धी ज्ञान (लिखित एवं अभिव्यक्ति) प्रौढ़ एवं सशक्त हो। अगर इन सूक्ष्म और गहनता से विचार करें तो पाठ्यक्रम और सहगामी क्रियाओं को एक-दूसरे का पूरक माना जाता है।

इन सहगामी गतिविधियों (क्रियाओं) पर प्रकाश डालते हुए माध्यमिक शिक्षा आयोग ने कहा है कि, "स्कूल केवल ऐसी औपचारिक शिक्षा का ही केन्द्र नहीं जहां असीम ज्ञान को प्रदान किया जाता है। यह एक ऐसी सजीव एवं पूर्ण जाति है जो शिष्यों को प्रशिक्षित करके उन्हें सम्मान द्वारा जीवित रहने की शिक्षा देती है। जीवन जीने की कला अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। समुचित ढंग से संयोजित विद्या ग्रहण करना ही सब कुछ नहीं है। सामाजिक जीवनयापन करने तथा सामूहिक रूप रखकर एक-दूसरे की सहायता करके अपने स्वभाव परिवर्तन का प्रशिक्षण यहीं मिलता है, उसकी पूर्ति केवल सामाजिक जीवन के साथ पाठ्यक्रम गतिविधियों द्वारा ही सम्भव है, जिसकी विद्यमानता स्कूल में होनी आवश्यक है।"

हमारे लिए यह कहना उचित एवं सार्थक होगा कि सहगामी क्रियाएं शिक्षण में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं और छात्रों के सर्वांगीण विकास में पूरा-पूरा योगदान देती हैं। इनके द्वारा छात्रों की सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। उनमें सच्चाई, न्यायप्रियता और ईमानदारी एवं सहयोग की भावना का विकास होता है। इनके द्वारा शिक्षकों को बालकों की रुचि का पता चलता है, जिससे शिक्षक उनकी रुचियों के अनुसार कार्यों में भाग लेने के अवसर देकर उनकी रुचियों का विकास कर सकते हैं।

सहगामी क्रियाओं के प्रकार (वर्गीकरण)
Types of Co-curricular Activities (Classification)

स्कूलों में जितने प्रकार की सहगामी क्रियाओं (गतिविधियों) का आयोजन किया जाता है, उनकी सुनिश्चित संख्या निर्धारित करना कठिन कार्य है। इस प्रकार की क्रियाओं की व्यवस्था स्कूलों की आवश्यकता, स्थानीय परिस्थितियों और संस्था के साधनों को ध्यान में रखकर ही की जानी चाहिए। मुख्यत: सहयोगी गतिविधियों (क्रियाओं) को निम्न रूप में विभाजित किया जा सकता है-

1. साहित्यिक क्रियाएं
2. खेल से सम्बन्धित क्रियाएं
3. कला सम्बन्धी क्रियाएं
4. सैनिक शिक्षा सम्बन्धी क्रियाएं

5. नैसर्गिक क्रियाएं
6. सामाजिक क्रियाएं
7. आर्थिक क्रियाएं
8. शैक्षिक क्रियाएं।

सहगामी क्रियाओं का महत्त्व [Importance of Co-curricular Activities]

पाठ्य-सहगामी गतिविधियों का सारांश में निम्न महत्त्व है-

1. शारीरिक महत्त्व
2. मानसिक महत्त्व
3. भावात्मक महत्त्व
4. मनोवैज्ञानिक महत्त्व
5. नैतिक महत्त्व
6. सामाजिक महत्त्व
7. साहित्यिक महत्त्व
8. रसात्मक एवं सौन्दर्यात्मक महत्त्व
9. सांस्कृतिक महत्त्व
10. मनोरंजनात्मक महत्त्व
11. अनुशासनात्मक महत्त्व
12. नागरिक महत्त्व

पाठ्य-सहगामी क्रियाएं छात्रों को समाज का अच्छा नागरिक बनने का प्रशिक्ष देती हैं। इस प्रकार की गतिविधियां छात्रों को स्कूल में व्यस्त रखती हैं और छात्रों मस्तिष्क शैतान का घर बनने से बचा रहता है। जिस विद्यालय में इस प्रकार की क्रिया का सुव्यवस्थित प्रबन्ध होता है, उसमें अनुशासनहीनता की समस्या नहीं होती।

माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952-53) ने पाठ्य सहगामी गतिविधियों के प्र की सिफारिश करते हुए कहा है-

"इन विविध गतिविधियों के विधिपूर्वक विन्यास से छात्रों को सदा प्रेरणा मि रहेगी और स्कूल के प्रत्येक छात्र को समय के सदुपयोग का ध्यान रहेगा। इसमें न के छात्रों की फालतु शक्ति को अभिव्यक्ति का अवसर उपलब्ध होगा अपितु विशेष गु साथ बौद्धिक विकास भी होगा।"

निष्कर्ष में यह कहा जा सकता है कि पाठ्य-सहगामी गतिविधियों द्वारा बालक सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास होकर उसकी अभिरुचि तथा अन्तःप्रेरणाओं के आधार

उसके सभी गुणों का उन्मेष होता है। इनसे साहित्यिक कार्यों की पूर्ति होती है और बालक स्कूल रूपी समाज में शिक्षा के वास्तविक उद्देश्य की पूर्ति करता है। इन क्रियाओं के बिना स्कूल एक दुकान के समान है। जहां शिक्षक कुछ पढ़ाते हैं और विद्यार्थी किताबी कीड़े बनकर केवल रटने में सफल रहते हैं। इससे शिक्षा के वास्तविक उद्देश्य की पूर्ति नहीं होती।

मुहीउद्दीन के कथनानुसार, "इन गतिविधियों को स्कूल की नियमित नियम सारिणी में समाहित करने से प्रत्येक छात्र को उसमें भाग लेने का अवसर प्राप्त होगा और वे सामाजिक अनुभवों का ज्ञान प्राप्त करके नागरिक शास्त्र की सम्पूर्ण बातों से परिचित होंगे। गतिविधियों का स्तर भी शिक्षाक्रम के अनुरूप उच्चता को प्राप्त होना चाहिए।"

पाठ्य-सहगामी क्रियाओं की उपयोगिता [Utility of Co-curricular Activities]

पाठ्य-सहगामी क्रियाओं की उपयोगिता निम्नलिखित है-

1. इनसे छात्रों के नागरिक गुणों के विकास हेतु अवसर प्रदान किया जाता है।
2. छात्रों में नेतृत्व के गुणों का विकास होता है।
3. इनके द्वारा नैतिक मूल्यों के विकास हेतु परिस्थितियां उत्पन्न की जाती हैं।
4. छात्रों को नवीन प्रकार की अभिरुचियों के विकास के लिए अवसर मिलते हैं।
5. इनसे छात्रों में प्रजातान्त्रिक गुणों का विकास होता है। वे अपने कर्त्तव्यों और अधिकारों के प्रति सचेत हो जाते हैं।
6. इन क्रियाओं से छात्रों का क्षेत्र व्यापक होता है और समाजीकरण से सहयोग की भावना का विकास होता है।
7. इन क्रियाओं के द्वारा छात्रों की मौलिकता और सृजनात्मकता क्षमताओं के विकास का अवसर प्राप्त होता है।
8. ये क्रियाएं कक्षा शिक्षण के अनुभवों के लिए पूरक का कार्य करती हैं।
9. शैक्षिक जैसी भ्रमण क्रियाओं से छात्रों का ज्ञान अधिक सार्थक एवं सजीव हो जाता है।
10. इनसे छात्रों में सहयोग भावना का विकास होता है, जिससे विद्यालय प्रशासन और निरीक्षण कार्य अधिक प्रभावपूर्ण हो जाता है।
11. इन क्रियाओं से शिक्षकों और छात्रों को एक-दूसरे को परस्पर समझने का अवसर मिलता है। शिक्षकों को छात्रों की विभिन्न प्रतिभा के बारे में पता चलता है, जिससे शैक्षिक निर्देशन अधिक सार्थक और सशक्त बनाया जा सकता है।

12. इससे स्कूल और समुदाय के सम्बन्ध सौहार्दपूर्ण होते हैं और दोनों में एक-दूसरे को सहयोग देने की भावना का विकास होता है।

सहगामी क्रियाओं के उद्देश्य
[Objective of Co-curricular Activities]

सहगामी क्रियाएं पाठ्यक्रम का विशेष अंग हैं। इसलिए पाठ्यक्रण की तरह ही इन क्रियाओं का मुख्य उद्देश्य शिक्षा के लक्ष्यों की प्राप्ति होना चाहिए। प्रजातान्त्रिक वातावरण में इन क्रियाओं का विशेष योगदान होता है। जिन गुणों का विकास पाठ्यक्रम नहीं कर सकता, उन गुणों का विकास करने में सहगामी क्रियाएं सक्षम होती हैं। किसी भी स्कूल में सुचारु रूप से आयोजित क्रियाएं निम्न उद्देश्य की पूर्ति में पूर्ण रूप से सहायक सिद्ध होती हैं–

1. चारित्रिक निर्माण एवं अच्छी आदतों का विकास करना।
2. लोकतन्त्रीय ढंग से स्वशासन का प्रशिक्षण और प्रजातान्त्रिक नागरिकता का विकास करती हैं।
3. छात्रों को अपने अवकाश के समय का सदुपयोग करने का अवसर प्रदान करना।
4. छात्रों का सर्वांगीण विकास करने में सहयोग देती हैं।
5. छात्रों में सामाजिक, नैतिक, सांस्कृतिक और अध्यात्मिक गुणों का विकास करती हैं।
6. विभिन्न संस्कृति और वातावरण से आए छात्रों में सहयोग एवं सह-अस्तित्व भावना का विकास करती हैं।
7. राष्ट्रीय एकता एवं विश्व-बन्धुत्व की भावना को बढ़ावा देती हैं।
8. छात्रों में समायोजन की क्षमताओं का विकास होता है, जिससे उन्हें अच्छे नागरिक बनने में सहायता मिलती है।
9. समाज एवं स्कूल के पारस्परिक सम्बन्धों को उन्नत बनाना ताकि समाज स्कूल की क्रियाओं से सम्बन्धित कार्यक्रमों में रुचि लेने के लिए प्रोत्साहित हो।

संस्कृत शिक्षण की दृष्टि से उपयोगी सहगामी क्रियाएं
[Useful Co-curricular Activities for Teaching Sanskrit]

संस्कृत भाषा में शिक्षण की दृष्टि से जिन उपयोगी सहगामी क्रियाओं का आयोजन किया जा सकता है, वे निम्न हैं–

1. व्याख्यान एवं भाषण–समय-समय पर स्कूलों में छात्रों को संस्कृत में व्याख्यान देने के लिए कहा जाना चाहिए। प्रत्येक छात्र को व्याख्यान एवं भाषण देना सिखाया

चाहिए। भाषण का प्रशिक्षण देने से छात्रों को ऐतिहासिक, साहित्यिक और राजनीतिक जानकारी तो प्राप्त होती ही है, उनका दृष्टिकोण भी व्यापक और उदार बन जाता है।

भाषण देना एक कला है जो साधारण वार्तालाप से भिन्न है। आज का युग सामाजिक और राजनैतिक चेतना का युग है। भारत में प्रजातंत्र शासन प्रणाली है। भाषण एक ऐसा सार्थक और सशक्त साधन है जिससे व्यक्ति अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत करने और जनता की राय को अपने पक्ष में करने में सफल हो सकता है। स्कूल में बालकों को ऐसे अवसर प्रदान करने चाहिए जिससे वे भाषा कला में निपुण हो सकें।

अच्छा भाषण देने हेतु छात्रों को निम्न बातों को अवश्य ही ध्यान में रखना चाहिए–

(1) भाषणकर्त्ता की आवाज़ स्पष्ट और उत्साहपूर्ण होनी चाहिए।
(2) उसमें आत्म-विश्वास और भाषा पर अधिकार होना चाहिए।
(3) आवाज़ में आरोह-अवरोह स्पष्ट रूप से दिखाई पड़े।
(4) विषय सामग्री की पहले से ही अच्छी तैयारी होनी चाहिए।
(5) विषय की प्रस्तुति सरलता, सहजता, स्पष्टता और निरन्तरता के साथ होनी चाहिए।
(6) विषय का आरम्भ नाटकीय ढंग से हो, लेकिन उसमें बनावटीपन की पुट नहीं होनी चाहिए।
(7) भाषण को कभी भी रटना नहीं चाहिए।
(8) भाषणकर्त्ता की आवाज़ में इतनी प्रबलता हो जिससे सबसे पीछे बैठे व्यक्ति को भी सुनाई दे।
(9) श्रोताओं को बीच-बीच में संबोधन करना अच्छा लगता है।
(10) भाषण नपा-तुला और विषयानुकूल होना चाहिए।

2. वाद-विवाद प्रतियोगिता–अपने विचारों को स्पष्ट रूप से प्रकट करने और लोगों को अपनी ओर आकर्षित करने की क्षमता उत्पन्न करने के लिए वाद-विवाद का आयोजन करना अत्यन्त आवश्यक है। इन वाद-विवाद प्रतियोगिताओं के द्वारा छात्रों का भाषण ज्ञान तो बढ़ाता ही है, साथ ही उनमें आत्म-विश्वास की भावना का विकास होता है, उनका भाषा उच्चारण शुद्ध होता है, उनकी बोलने की शैली में निपुणता आती है और उनमें और अधिक अध्ययन करने की रुचि का विकास होता है। इसलिए प्रत्येक स्कूल में संस्कृत भाषा से सम्बन्धित वाद-विवाद प्रतियोगिता को आयोजित करना अत्यन्त लाभप्रद होता है।

वाद-विवाद से तात्पर्य यह है कि किसी विषय के पक्ष और विपक्ष में अपने विचार व्यक्त करना। यह मौखिक अभिव्यक्ति के कौशल का विकास करने का सर्वोत्तम साधन

होता है। इस प्रतियोगिता के माध्यम से छात्रों में तर्कशीलता और भाषा कौशलों का विकास होता है। वाद-विवाद प्रक्रिया के अन्तर्गत प्रत्येक टीम के दो-दो सदस्य होते हैं। एक सदस्य विषय के पक्ष में बोलता है और दूसरा विपक्ष में। दोनों ही टीमों के वक्ता अपने-अपने तर्क और उदाहरण विषय के पक्ष या विपक्ष में निर्णायकों के सामने प्रस्तुत करते हैं। निर्णायक पक्ष और विपक्ष में बोलने वाले सभी वक्ताओं को ध्यान से सुनने के बाद श्रेष्ठ वक्ता और प्रथम आने वाली टीम की घोषणा करते हैं। वाद-विवाद का मुख्य ध्येय चुने गए विषय को सत्य की कसौटी पर कसकर परख करना होता है।

छात्रों को वाद-विवाद प्रतियोगिता में भाग लेने हेतु निम्न बातों को अवश्य ही ध्यान में रखना चाहिए-

(1) प्रत्येक वक्ता आरम्भ में ही स्पष्ट कर देता है कि वह पक्ष में बोलेगा या विपक्ष में बोलेगा।

(2) विपक्ष के पक्ष में बोलने वाला वक्ता ही प्रतियोगिता का आरम्भ करता है।

(3) इस प्रतियोगिता में प्रत्येक भागीदार अपने विपक्ष के प्रतिभागी की बात को अपने नुकीले तर्कों से काटता है।

(4) कई बार विषय की मांग को देखते हुए पक्ष में बोलने वाला भी आक्रामक भाषा का प्रयोग करता है।

(5) वाद-विवाद के प्रतियोगियों को सीमा में रहकर ही विषय की आलोचना करनी चाहिए। व्यक्तिगत आक्षेप और कटाक्ष से दूर रहना चाहिए।

(6) प्रत्येक भागीदार को श्रोताओं को अपने तर्कों से आकर्षित करना चाहिए।

(7) विरोध, सार्थक, सशक्त और विवेकपूर्ण होना चाहिए। विरोध के लिए नहीं होना चाहिए।

(8) वाद-विवाद में भाग लेने वाले प्रतियोगी में अच्छा भाषण देने का गुण भी होना चाहिए।

3. काव्य पाठ-काव्य का पाठ करना एक सौन्दर्यात्मक कला है। पद्य को सस्वर पाठ से लय और ताल का ध्यान रखते हुए प्रस्तुत किया जाता है। कविता में आए भावों एवं विचारों को पद्य पाठ करने वाले छात्र अपने ढंग से उचित गति-यति व स्वर के उतार-चढ़ाव के साथ प्रस्तुत करता है। प्राय: देखा जाता है कि यह प्रतिभा जन्म-जात होती है, किन्तु अभ्यास से इसमें संशोधन किया जा सकता है और प्रतिभा को निखारा जा सकता है। जाने-माने कवियों के पद्य पढ़ने के ढंग को सुनकर उनका अभ्यास करना बहुत लाभप्रद होता है। पद्य पाठ पढ़ते समय निम्न बातों का ध्यान रखना बहुत ज़रूरी है-

(1) पद्य कहने वाले की आवाज़ में स्पष्टता हो।

(2) शब्दों का उच्चारण शुद्ध होना चाहिए।

(3) पद्य सुनाते समय सुनाने वाले को आनन्द का अनुभव करना चाहिए।

(4) पद्य कंठस्थ होना चाहिए और शरीर के हाव-भाव पद्य के विषयानुकूल हों।

(5) पद्य सुनाने वाले की आवाज़ सब को सुनाई दे और आवाज़ में आरोह-अवरोह हो जिससे काव्य में निहित भाषा की स्पष्टता हो सके।

(6) पद्य सुनाते समय जो छात्र विजयी होते हैं, वही आगे चलकर अच्छे पद्य पाठक बनते हैं।

(7) पद्य भावपूर्ण है तो इसका पाठ भी भावपूर्ण ही होना चाहिए।

(8) पद्य गायन में संगीत की अनुकूलता को देखना बहुत आवश्यक होता है।

(9) यदि पद्य वीर रस से ओत-प्रोत है तो इसे ओजपूर्ण शैली में पढ़ा जाना चाहिए।

परिचर्या-परिचर्चा वार्तालाप या बातचीत करने का ढंग है। इस बातचीत में दो से अधिक छात्र भाग लेते हैं। परिचर्चा किस विषय को लेकर की जाती है और परिचर्चा में विषय के सभी पहलुओं को लेकर बातचीत हो जाती है और इसमें भाग लेने वाले खुल कर विचार-विमर्श करते हैं। विषय को लेकर सभी प्रतिभागी अपना-अपना पक्ष और विचार रखते हैं। परिचर्चा औपचारिक ढंग से भी हो सकती है और अनौपचारिक ढंग से भी की जा सकती है। प्राय: यह देखा जाता है कि अनौपचारिक परिचर्चा में तर्क-वितर्क की प्रक्रिया दिशाहीन हो जाती है। औपचारिक परिचर्चा में एक सभापति होता है। सभी सदस्यों को बारी-बारी अपना पक्ष रखने का अवसर दिया जाता है। ऐसे में अन्य प्रतिभागी अपनी जिज्ञासा को शान्त करने के लिए प्रश्न पूछते हैं, जिनका उत्तर वक्ता देता है। अंत में परिचर्चा के विषय पर सर्व-सम्मति से निष्कर्ष निकाल कर समाप्ति की जाती है। सफल, सार्थक, सशक्त परिचर्चा के लिए निम्न बातों को ध्यान में रखना आवश्यक होता है-

(1) परिचर्चा में सभी को स्वतन्त्रतापूर्वक अपना पक्ष रखना चाहिए।

(2) एक-दूसरे की बात को बीच में काटना उचित नहीं होता।

(3) परिचर्चा के समय सहज और सौहार्दपूर्ण वातावरण होना चाहिए।

(4) परिचर्चा में दिशाहीन होने से बचना चाहिए।

(5) संयोजक का यह कर्त्तव्य बनता है कि उग्र रूप धारण करने वाले सदस्य को शान्त करें।

(6) परिचर्चा में आत्मीयता, संयम और शिष्टाचार का वातावरण बना रहना चाहिए।

(7) अपनी असहमति को विनम्रतापूर्वक प्रकट करना चाहिए।

(8) परिचर्चा का ध्येय दूसरे का विरोध करना ही नहीं होता अपितु दूसरे सदस्यों की अच्छी बात को स्वीकारा जाना चाहिए।

(9) परिचर्चा करते समय बाहर से आमन्त्रित विद्वान् को सम्मान देते हुए [illegible] से प्रश्न पूछ अपनी आकांक्षाओं को दूर करना चाहिए।

सहपाठ्य क्रियाएं

श्लोकोच्चारण–मौखिक अभिव्यक्ति को प्रोत्साहन देने हेतु छात्रों को [illegible] श्लोक पाठ करने की व्यवस्था की जानी चाहिए। सुन्दर-सुन्दर एवं प्रेरक श्लोकों का [illegible] कर छात्रों को आरम्भिक कक्षाओं से ही इन्हें कंठस्थ करवा देना चाहिए तथा कक्षा [illegible] प्रार्थना सभा में तथा वार्षिक उत्सव में इनका पाठ करवाना चाहिए। गीता जयंती के [illegible] पर छात्रों को संगीता के श्लोकों का उच्चारण सिखाकर उसका अभ्यास करवाए तथा [illegible] प्रतियोगिता का आयोजन करें। श्लोकोच्चारण व्यक्तिगत एवं सामूहिक दोनों रूपों में किया जा सकता है। इससे विद्यालय में संस्कृतमय वातावरण बनता है। छात्रों में संस्कृत के प्रति रुचि उत्पन्न होती है। उनका उच्चारण शुद्ध होता है। निरन्तर सस्वर वाचन करने से स्वयं [illegible] लिखने की प्रेरणा मिलती है। निरन्तर सुनने से अर्थग्रहण करने की क्षमता का विकास होता है।

अभिनयीकरण–अभिनय के द्वारा छात्रों में आत्म-विश्वास बढ़ता है। संस्कृत साहित्य में तो एकांकी और नाटकों का मंचन करवाया जाता है। इन नाटकों के शिक्षण को रोचक बनाने के लिए इनका मंचन करवाना आवश्यक है। अभिनय में छात्र नाटक में [illegible] हुए विभिन्न पात्रों की वेशभूषा में यता सम्भव उन्हीं की वाणी में उनके कार्यों का वास्तविक अभिनय करते हैं। इससे छात्रों में संवाद की योग्यता उत्पन्न होती है। अभिनय में एक से अधिक इन्द्रियों को अपनी भूमिका निभानी पड़ती है। अभिनय कला में समय, शक्ति और धन तीनों की अधिक मात्रा में आवश्यकता होती है। परन्तु यह कार्य अत्यन्त प्रेरणादायक होता है। इसमें संस्कृत शिक्षक का यह उद्देश्य है कि वह अपने शिक्षण को रोचक बनाए तथा संस्कृत के प्रति छात्रों का सकारात्मक दृष्टिकोण उत्पन्न हो सके, पूरा भी हो जाता है। महीने में एक बार पाठ्य सहगामी क्रियाओं को आयोजन किया जा सकता है।

रचनात्मक प्रतियोगिताएं–छात्रों के सर्वांगीण विकास के लिए रचनात्मक प्रतियोगिताओं का अत्यधिक महत्त्व है। इसलिए विद्यालयों में राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व के विषयों पर निबन्ध, वाद-विवाद अथवा सामान्य ज्ञान प्रतियोगिताएं आयोजित की जा सकती है। निबन्ध अथवा वाद-विवाद के लिए संयुक्त राष्ट्र और उसके कार्य, विश्व की विविध समस्याओं जैसे–निरक्षरता, जनसंख्या विस्फोट, स्त्रियों की स्थिति, [illegible] हत्या, पर्यावरण प्रदूषण की समस्याओं से संबंधित विषय चुने जा सकते हैं। इसी [illegible] सामान्य ज्ञान प्रतियोगिताएं, निबन्ध लेखन प्रतियोगिताएं आयोजित करवाई जा सकती हैं।

इसी तरह विचार गोष्ठियां भी आयोजित करवाई जा सकती है। जिससे छात्रों की मौखिक अभिव्यक्ति प्रभावी होती है। अनेक पर्वों पर जैसे–संस्कृत दिवस, शिक्षक दिवस, मानव अधिकार दिवस, दीवाली, दशहरा इत्यादि भी विद्यालय में मनाए जा सकते हैं। उन पर भाषण व निबन्ध लेखन प्रतियोगिताएं आयोजित करवाई जा सकती हैं।

उच्चारण शिक्षण

उच्चारण का महत्त्व–संस्कृत में शुद्ध उच्चारण का विशेष महत्त्व है। शिक्षा नामक वेदांग उच्चारण की शिक्षा से ही सम्बद्ध है। अन्य भाषाओं में भी उच्चारण को महत्त्वपूर्ण माना गया है, किन्तु शुद्धोच्चारण की जितनी महत्ता संस्कृत में है उतनी अन्य भाषाओं में नहीं है। महर्षि पतञ्जलि ने महाभाष्य में यहां तक लिख दिया है कि 'एको शब्दः सम्यग्यातः सुप्रयुक्तः स्वर्गे लोके च काधुग्भवति' अर्थात् एक भी शब्द अच्छी तरह जाना हुआ और अच्छी तरह प्रयोग किया हुआ, इस लोक एवं परलोक में इच्छाओं की पूर्ति करने वाला होता है।

वेदाध्ययन में उच्चारण का विशेष महत्त्व था। इसलिए वेदों को गुरु अपने शिष्य को व्यक्तिगत रूप से पढ़ाता था। पाणिनि ने लिखा है–

मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्ण तो वा, मिथ्या प्रयुक्तो न तमर्थमाह।
स वाग्वजो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्र शत्रुः स्वरोऽपराधात्॥

अर्थात् स्वरों एवं वर्णों के शुद्ध उच्चारण से रहित मन्त्र अर्थ का अनर्थ कर देता है। इस प्रकार का अशुद्ध मंत्र यजमान के लिए भी वज्र की भान्ति घातक होता है, जिस प्रकार इन्द्र का शत्रु स्वर से मिथ्या प्रयोग के कारण स्वयं मारा गया। इसका संकेत एक वैदिक कथा की ओर है। विश्वरूप नामक असुर त्वष्टा का पुत्र था। विश्वरूप ने अपने कठिन तपस्या से इन्द्र का आसन विचलित कर दिया। घबराए हुए इन्द्र ने विश्वरूप को परास्त करने का प्रयत्न किया। वे सफल हुए और विश्वरूप का अंत हो गया। इस पर त्वष्टा को बहुत शोक एवं क्रोध हुआ। अतः त्वष्टा ने एक अभिचारिक यज्ञ किया। इस यज्ञ में पुरोहितों ने 'इन्द्रशत्रुर्विवर्द्धस्व' (इन्द्र के शत्रु अर्थात् वृत्रासुर की वृद्धि हो) मन्त्र का उच्चारण करके यज्ञ की आहुति दी। 'इन्द्र-शत्रु' समस्त पद है। इसका समास-विग्रह दो प्रकार से हो सकता है–एक तो 'इन्द्र का शत्रु' और दूसरा 'इन्द्र ही हो शत्रु जिसका।'

प्रथम विग्रह के अनुसार यह षष्ठी तत्पुरुष समास होगा और द्वितीय विग्रह के अनुसार बहुव्रीहि समास होगा। प्रश्न के अनुसार वृत्रासुर की वृद्धि की कामना है, किन्तु दूसरे के अनुसार इन्द्र की ही वृद्धि की कामना है। इस समस्त पद में निहित दोनों अर्थ उच्चारण के भेद से हो जाएंगे। पहली दशा में मन्त्र का उच्चारण 'इन्द्रशत्रुर्विवर्द्धस्व' के रूप में होगा और दूसरी में 'इन्द्र शत्रु र्विवर्द्धस्व' होगा। दूसरे उच्चारण में इन्द्र पर अधिक बल

दिया गया है। पुरोहितों ने दूसरे अर्थ के अनुसार ही मन्त्र-पाठ किया जिससे यज्ञ के अं
में वृत्रासुर नामक असुर का आविर्भाव तो हुआ, किन्तु इन्द्र ने अंत में उसको मारने
सफलता प्राप्त कर ली।

शुद्ध उच्चारण की महत्ता दर्शाने वाला एक अन्य श्लोक संस्कृत में बहुत प्रचलित है
यह श्लोक इस प्रकार है–

यद्यपि बहुनाधीषे तथापि पठ पुत्र व्याकरणम्।
स्वजनः खजनो सा भूत सकलं शकलं सकृच्छकृत्॥

इस श्लोक में पिता पुत्र से कहता है कि हे पुत्र! यद्यपि तुमने बहुत अध्ययन क
लिया है तथापि अब व्याकरण पढ़ो। यदि तुम व्याकरण पढ़ लोगे तो 'स्वजन' के स्थान प
'खजन', 'सकलं' के स्थान पर 'शकलं' और 'सकृत' के स्थान पर 'शकृत' का उच्चार
न करोगे।

इस श्लोक में उच्चारण भेद से ही अर्थ का अनर्थ दिखाया गया है। 'स' और 'श
के उच्चारण में छात्र प्रायः भूल कर सकते हैं, किन्तु इस भूल से अर्थ ही बदल जाता है
स्वजन का अर्थ है आत्मीय लोग जबकि खजन का अर्थ है कुत्ते लोग; सकल सम्पूर्ण के
लिए आता है तो शकल खण्ड के लिए; सकृत् का अर्थ एक बार है तो शकृत् का अर्थ है
विष्ठा।

पाणिनी ने भी शुद्ध उच्चारण की महत्ता को निम्नलिखित श्लोकों में व्यक्त किया है–

एवं वर्णाः प्रयोक्तव्याः नाडव्यक्ताः न च पीडिताः।
सम्यग्वर्णप्रयोगेण ब्रह्मलो के महीयते॥
सुतीर्थादागतं व्यक्तं स्वाम्नायं सुव्यवस्थितम्॥
सुस्वरेण सुवकोण सुवक्त्रेण प्रयुक्तं वर्ण राजते॥

अर्थात् ब्रह्मा की प्राप्ति भी सुस्पष्ट, सुव्यवस्थित, सुस्वर एवं सुप्रयुक्त वर्णों से होती
है। अतः वर्णों का प्रयोग अव्यक्त या पीड़ित न हो।

वर्णोच्चारण

वर्णों का उच्चारण किस प्रकार हो, इसके विषय में पाणिनीय शिक्षा में पाणिनि ने
बताया है–

व्याघ्री यथाऽहरेत् पुत्रान् दंष्ट्राभ्यां न च पीडयेत्।
भीता पतनभेदाभ्यां तद्वद्वर्णान् प्रयोजयेत्॥

अर्थात् जिस प्रकार बाघिन अपने बच्चों को मुंह में लेकर चलते समय इस बात का
ध्यान रखती है कि न तो बच्चों को दांत चुभें और न ही वे मुंह से गिर पड़ें, इसी प्रकार वर्णों
का उच्चारण करते समय स्थानादि ठीक हो और स्पष्ट स्वरित हो, किन्तु ऐसा न हो कि

अक्षर मुंह के अंदर ही रह जाएं या फिर बाहर गिरे हुए दिखाई पड़ें। इसी बात को महर्षि याज्ञवल्क्य ने इस प्रकार कहा है–

मधुरं च न चाव्यक्तं व्यक्तं चापि न पीडितम्।
स नाथस्यैकदेशस्य न वर्णाः सकरं गताः॥
यथा सुमत्रो नागेन्द्रः पदात्पदं निधापयेत्।
एवं पदं पदाद्यंत दर्शनीयं पृथक् पृथक्॥

अर्थात् वर्णों का उच्चारण मधुर हो तथा स्पष्ट हो। व्यक्त होते हुए भी अन्य वर्णों से प्रभावित न हो। सभी वर्णों का उच्चारण इस प्रकार किया जाए कि वे एक-दूसरे से मिले हुए प्रतीत न हों जिस प्रकार महामत्त गज एक पैर रखने के पश्चात् बड़ी सावधानी से दूसरा पैर रखता है, उसी प्रकार एक पद बोलने के पश्चात् दूसरे पद को बड़ी सावधानी से बोला जाए जिससे सभी पद स्पष्ट हों और पृथक् रूप से दर्शनीय हों।

पदोच्चारण

कभी-कभी पदों के उच्चारण में स्पष्टता का ध्यान न रखने के कारण या किसी पद पर बलाघात करने देने के कारण अर्थ में परिवर्तन हो जाता है, उदाहरणार्थ, निम्नलिखित संस्कृत वाक्य का उच्चारण करना–

सः फलं खादति।

इस वाक्य में यदि सः का उच्चारण व्यक्त न हुआ और आगे के वर्ण से प्रभावित हो गया तो संभव है कि विसर्ग का लोप हो जाए और 'सः फलं' के स्थान पर 'सफलं' हो जाए। किसी पद पर विशेष बलाघात करने से अर्थ बदल जाता है; जैसे यदि सः पर बल दे दिया जाए तो अर्थ होगा कि वही व्यक्ति फल खा रहा है, कोई अन्य व्यक्ति नहीं। सः पर ही बल तो दिया जाए किन्तु कुछ कम, तो पूरा वाक्य प्रश्न सूचक बन जाएगा और अर्थ होगा कि क्या वह फल खाता है? यदि फल पर बल दिया जाए तो अर्थ बदल जाएगा और तात्पर्य यह निकलेगा कि वह फल ही खा रहा है, कोई अन्य पदार्थ नहीं। यदि खादति पर बलाघात हो तो अर्थ निकलेगा कि वह फल को खा रहा है, कुछ और नहीं कर रहा है। इसीलिए याज्ञवल्क्य ने हाथी की चाल का उदाहरण दिया है; सामान्य अर्थ में एक पद के बाद दूसरा पद स्पष्ट रूप से बोला जाए ताकि किसी पद पर अनभीष्ट बलाघात न हो जाए।

उच्चारण दोष

वर्णों का उच्चारण किस प्रकार करना चाहिए, इस पर भी विचार किया गया है। इस संदर्भ में पाणिनी का अग्रलिखित श्लोक हमारा मार्गदर्शन करता है–

उपांशुदृष्टं त्वरितं निरस्यं,
विलंबितं गदगदितं प्रगीतम्।
निष्पीडितं ग्रस्तपदाक्षरं च,
वेदन्नदीनं न तु सानुनास्यम्।

अर्थात् वर्णों का उच्चारण निम्नलिखित ढंग से करना उचित नहीं है-

1. जीभ दबाकर उच्चारण करना और वर्णों को मुख में काट देना।
2. त्वरित अर्थात् वर्णों को बड़ी जल्दी-जल्दी बोलना।
3. निरस्त अर्थात् वर्णों को फेंकते हुए बोलना।
4. विलम्बित अर्थात् रुक-रुक कर बोलना।
5. गदगदित अर्थात् गद्गद स्वर में बोलना।
6. प्रगीत अर्थात् गा-गा कर बोलना।
7. निष्पीडित अर्थात् तुतलाकर एवं मुख के भीतर ही बुदबुदाते हुए बोलना या वर्णों को पीड़ित करना।
8. ग्रसतपदाक्षर अर्थात् अक्षरों या पदों को बीच में खा जाना या अपूर्ण उच्चारण करना।
9. दीन अर्थात् दीनता के स्वर में बोलना।
10. सामुनास्य अर्थात् सभी वर्णों को नाक से मिमियाकर बोलना।

शुद्धोच्चारण की सामर्थ्य

उपर्युक्त दस लक्षण वर्णों के अशुद्ध उच्चारण के हैं। इन दस दोषों को दूर करना आवश्यक है। पाणिनीय शिक्षा में इस बात की ओर भी संकेत दिया गया है कि किस प्रकार के पुरुष शुद्धोच्चारण करने में समर्थ हैं। उच्चारण के कुछ शारीरिक अंकों की आकृति एवं उच्चारणकर्त्ता की प्रकृति का भी प्रभाव पड़ता है। इसी बात को पाणिनीय शिक्षा में इस प्रकार कहा गया है-

प्रकृतिर्यस्य कल्याणी दन्तोष्ठौ यस्य शोभना।
प्रगल्भश्च विनीतश्च स वर्णान् वक्तुमर्हति॥

अर्थात् जिसकी प्रकृति अच्छी है या जिसकी संवेगात्मक दशा संतुलित है, जिसके दांत और ओष्ठ अच्छे हैं, जो उच्चारण करने में प्रगल्भ है, जो विनयी है और वर्णों का उचित उच्चारण कर सकता है। इसीलिए कहा गया है कि प्रसन्नचित्त होकर तथा चेष्टाओं पर नियन्त्रण करके उच्चारण करना चाहिए। इसी संदर्भ में महर्षि पाणिनि का दूसरा श्लोक देखिए-

न करालो न लम्बोष्ठो नाव्यक्तो नानुनासिकः।
गद्गदो बद्धजिह्वश्य न वर्णानं वक्तुमर्हति॥

अर्थात् जिसकी आकृति भयंकर है, ओष्ठ लंबे हैं, जो नाक से बोलता है, जो अत्यधिक भावुक है और गद्गद हो जाता है और जिसकी जीभ बंधी हुई है; ऐसा व्यक्ति वर्णों का शुद्ध उच्चारण नहीं कर पाता।

उच्चारण की शिक्षा

छात्रों को उच्चारण की विविधत शिक्षा देनी चाहिए जिससे वे वर्णों का स्थान, प्रयत्न आदि जानकर शुद्ध उच्चारण कर सकें। स्थान, प्रयत्न आदि के समयक् ज्ञान के अभाव में छात्र क्, ज्ञ, श, ऐ, औ, क्ष, त्र, ष, द्य, व आदि वर्णों का उच्चारण अशुद्ध करते हैं और अर्थ का अनर्थ कर देते हैं।

वर्णों के अशुद्ध उच्चारण में पदों का भी उच्चारण अशुद्ध हो जाता है। कभी उदात्त-अनुदात्त स्वरित में तथा ह्रस्व और दीर्घ में भी भ्रम हो जाता है। इनकी ओर भी छात्रों को प्रारम्भ में ही बता दिया जाए तो अच्छा रहेगा। शब्दों के उच्चारण में कभी-कभी किसी वर्ण के उच्चारण का शीघ्रतावश लोप हो जाता है। यह प्रारम्भिक छात्रों में सामान्य दोष रहता है। इस प्रकार भारतीय, पर्वतीय उद्देश्य आदि को वे भारती, पार्वती, उद्देश्य को भांति कहने लगते हैं। कभी-कभी छात्र बीच के भी किसी अक्षर का लोप कर देते हैं, जैसे अध्ययन को अध्यन कह देते हैं। लोप की ही भांति कभी-कभी शब्द के आदि में किसी वर्ण का आगमन भी कर लेते हैं। स्पष्ट को अस्पष्ट, स्थान को अस्थान, स्पर्श को अस्पर्श, स्नान को अस्नान कहने में छात्र 'अ' का आगमन कर लेते हैं जो अशुद्ध है। कभी-कभी कोई छात्र वर्णों का लोप या आगम न करके विद्यमान वर्णों के स्थानों में परिवर्तन कर देता है। ब्राह्मण को ब्रह्म तथा विशेषण के विसेषण कहने में छात्र वर्ण-विपर्यय की अशुद्धि कर देता है।

पदों के उच्चारण के उपर्युक्त दोषों से छात्रों को बचाना चाहिए। पदों पर कभी-कभी अनावश्यक बल दे दिया जाता है, जिससे समूचे वाक्य का अर्थ बदल जाता है। पीछे 'सः फल खादति' का उदाहरण देकर इस बात को स्पष्ट किया गया है। अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि वर्णों, पदों, वाक्यों की सार्थकता तभी है जबकि वे शुद्ध रूप से उच्चरित हों अथवा अर्थ का अनर्थ हो जाने का भय बना रहता है।

ङ, ञ, ण, न्, म् को प्राय (ं) अनुस्वार रखकर लिख दिया जाता है। मुद्रण की सुविधा की दृष्टि से प्रायः संगम, चंचल, पंडित, संतान, संभव लिखा जाता है किन्तु उच्चारण की दृष्टि से इनमें ऊपर का अनुस्वार एक-सा नहीं है, संगम और संतान को एक-दो बार कहकर पाठक स्वयं इसका अंतर पहचान लेंगे, उच्चारण संङ्गम, सन्तान की ही भांति होता है; संगम या सङ्तान कहना भी कठिन है। इसी प्रकार सम्बन्ध शब्द को देखए।

इसमें दोनों अनुस्वारों का उच्चारण भिन्न है। इसे सम्बन्ध कहना शुद्ध होगा, न कि सम्बन्ध या संबंध। इस प्रकार के दोषों की ओर छात्रों का ध्यान प्रारम्भ में ही दिला देना चाहिए।

शिक्षक को चाहिए कि बड़े धैर्य से बालक के अशुद्ध उच्चारण के दोष को दूर करके उसे शुद्ध एवं स्पष्ट ढंग से बोलना सिखाए। इस दिशा में महत्त्वपूर्ण बात यह है कि संस्कृत के अध्यापक का स्वयं का उच्चारण शुद्ध हो और यथासम्भव छात्र को अन्य विषय पढ़ाने वाले शिक्षकों का उच्चारण भी शुद्ध एवं स्पष्ट हो। शुद्ध उच्चारण बहुत कुछ अनुकरण से आता है। यदि बालक वर्णों एवं पदों का शुद्ध उच्चारण सुनता रहता है तो वह भी शुद्ध उच्चारण करने लग जाता है। यदि वह अशुद्ध एवं अस्पष्ट उच्चारण अपने गुरुओं से सुनता है तो वह भी अशुद्ध बोलने लगता है। शुद्ध उच्चारण की दिशा में निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना लाभदायक होगा–

1. छात्र ज्यों ही अशुद्ध उच्चारण करे, उसे तत्काल रोका जाए और शुद्ध उच्चारण बताया जाए।
2. वर्गों के उच्चारण स्थानों का छात्रों को ज्ञान करा देना लाभदायक होगा।
3. अभ्यास मुख्य विधि है, आवृत्ति एवं पुनरावृत्ति से छात्र को शुद्ध उच्चारण करना सिखाया जाए। अभ्यास से जीभ, जबड़े और ओंठ मंज जाते हैं तथा उच्चारण सरलता से होने लगता है।
4. छात्र को बहुश्रुत होना चाहिए। यदि वह अनेक बार वर्णों को सुनेगा तो उच्चारण सरलता से करेगा।
5. अध्यायक को अपना उच्चारण भी शुद्ध रखना चाहिए।
6. पद्य पाठ, गद्य पाठ, नाटक, कहानी, द्रुत पाठ आदि सभी से कठिन शब्दों का अनुवाचन एवं उच्चारणाभ्यास पूरी कक्षा से लिया जाए। इससे अयोग्य विद्यार्थी भी धीरे-धीरे शुद्ध उच्चारण सीख जाते हैं।
7. किन्तु उच्चारण शिक्षण जितना ही व्यक्तिगत होगा, उतना ही कारगर होगा। अत: छात्रों के उच्चारणों पर व्यक्तिगत ध्यान दिया जाना चाहिए।
8. केवल एक वर्ण का उच्चारणाभ्यास करना भाषा-शिक्षण सिद्धान्तों के प्रतिकूल है। भाषा में वाक्य पूर्ण इकाई है। शब्द भी सार्थक इकाई है। अत: सम्पूर्ण वाक्य का अथवा शब्दों का उच्चारणाभ्यास कराया जाए, न कि किसी वर्ण का।
9. यदि पद समस्त या संधियुक्त है तो पहले उनका समास-विग्रह या संधि-विच्छेद कर लिया जाए। फिर उच्चारण का अभ्यास कराया जाए।
10. उच्चारण शिक्षण में शीघ्रता नहीं बरतनी चाहिए। जितने ही विलम्ब एवं धैर्य से अध्यापक अपने छात्रों को उच्चारण सिखाएगा, उतना ही अच्छा होगा।
11. यदि सम्भव हो तो टेप-रिकार्डर की भी सहायता ली जा सकती है।

कहानी कहना (कहानी सुनना)

संस्कृत साहित्य की मुख्य रूप से दो विधाएं हैं–पद्य और गद्य। कहानी गद्य साहित्य की लोकप्रिय एवं मनोरंजक विधा है। कहानी सुनना या कहानी कहना एक कला है। इस कला में सभी निपुण नहीं होते, परन्तु अभ्यास के द्वारा प्रत्येक छात्र कहानी सुनाने में सक्षम हो सकता है। कहानी कहने वाले छात्रों में श्रोताओं को वशीभूत करने का सामर्थ्य होना चाहिए, अर्थात् कहानी कहने वाले की आवाज का जादू सिर पर चढ़कर बोलना चाहिए। कहानी को प्रभावोत्पादक ढंग से प्रस्तुत करने के लिए कहानी की घटनाओं को हाव-भाव से प्रकट करना चाहिए। अच्छी कहानी के ढंग के लिए निम्न बातों का होना आवश्यक है–

(1) कहानी का चयन उपयुक्त हो अर्थात् सोच-समझ कर चयन किया जाना चाहिए।
(2) कहानी के कथानक, पात्रों और घटनाओं का क्रमबद्ध रूप से ज्ञान होना चाहिए।
(3) संवाद पात्रों के अनुसार ही प्रस्तुत किए जाने चाहिए।
(4) भाषा और शब्दों का प्रयोग बालकों के मानसिक स्तर के अनुकूल ही होना चाहिए।
(5) कहानी सुनाते समय स्वर में उतार और चढ़ाव का होना भी बहुत आवश्यक है। ऐसा करने से कहानी सुनने वाले ऊबते नहीं हैं।
(6) कहानी कहने का ढंग ऐसा हो जिससे सुनने वालों में कौतूहल और जिज्ञासा बनी रहे।
(7) कहानी ऐसी होनी चाहिए जिससे बालकों को कोई सन्देश या शिक्षा मिले।

नाटक

नाट्याचार्य भरत मुनि के अनुसार, नाटक की परिभाषा निम्न है--

"किसी भी अवस्था के अनुकरण को नाटक कहते हैं।"

मानव जीवन को पूर्ण रूप से परिस्थितियों के अनुकूल ढाला जाता है। प्रत्येक व्यक्ति भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में पलता है और इन्हीं परिस्थितियों के आधार पर विभिन्न व्यवसायों को अपनाता है और सुव्यवस्थित ढंग से उन व्यवसायों का अनुसरण करता है और उसका यही अनुकरण नाटक कहलाता है। इसके द्वारा हम अपना वास्तविक रूप बदल कर दूसरे रूप में अपने को दिखाने की चेष्टा करते हैं अर्थात् नाटक में वास्तविकता को छुपा कर दूसरों को उसे अनुकरणीय अवस्था में ही सत्यता का बोध कराने का प्रयास किया जाता है।

नाटक के प्रमुख उद्देश्य–छात्र नाटकों को देखकर विपरीत से विपरीत दशाओं में भी अपने को सफल बनाने की विधि का ज्ञान प्राप्त करते हैं। छात्र व्यावहारिक होकर जीने का प्रयास करते हैं।

(1) छात्रों को चरित्र निर्माण की शिक्षा मिलती है।

(2) अवसर के अनुकूल आचरण करना सीखते हैं।

(3) भाषा शिक्षण की दृष्टि से संवाद और वार्तालाप सीखते हैं।

भाषा शिक्षण की दृष्टि से छात्रों के लिए नाटक आवश्यक अंग है। आचार व्यवहार की शिक्षा छोटे बालकों को नाटक के माध्यम से दी जा सकती है। शिष्य का गुरु के प्रति, पुत्र का माता-पिता के प्रति, छोटों का बड़ों के प्रति कैसा व्यवहार हो, यह शिक्षा व्यावहारिक रूप से नाटक के द्वारा दी जा सकती है।

इससे छात्रों को संवाद एवं वार्तालाप करने का प्रशिक्षण प्राप्त होता है। नाटकों की शिक्षा कुशल वक्ताओं को जन्म देती है क्योंकि छात्र रंग-मंच पर आने के बाद आपना सारा संकोच दूर कर देता है।

मनोविज्ञान की दृष्टि से भी नाटक बहुत उपयोगी है। छात्रों में ऐसी क्षमता उत्पन्न हो जाती है जिसके आधार पर वे समाज के रंग-बिरंगे वातावरण को परखने एवं विभिन्न प्रवृत्तियों के व्यक्तियों को पहचानने में समर्थ होते हैं।

अन्त्याक्षरी–काव्य में रुचि उत्पन्न करने के लिए अन्त्याक्षरी बहुत ही उपयोगी साधन है। प्राचीन काल में अन्त्याक्षरी का प्रयोग अध्यापक अधिक किया करते थे। परन्तु आज इसका प्रयोग धीरे-धीरे कम हो रहा है। संस्कृत भाषा शिक्षण में सहगामी गतिविधियों में अन्त्याक्षरी का महत्त्वपूर्ण स्थान है। संस्कृत भाषा के अध्ययन को रुचिकर बनने के लिए इसका प्रयोग किया जा सकता है। विद्यार्थी इस प्रकार की क्रियाओं में आनन्द का अनुभव करते हैं और उनका शब्द ज्ञान भी बढ़ता है। अन्त्याक्षरी दो प्रकार से कराई जाती है-

1. शब्दों की अन्त्याक्षरी
2. कविता की अन्त्याक्षरी

1. शब्दों की अन्त्याक्षरी–इस प्रकार की अन्त्याक्षरी में अध्यापक कोई भी एक शब्द कक्षा में बालकों को दे देता है, फिर एक बालक उस शब्द के अन्तिम वर्ण से दूसरा शब्द बोलता है, फिर दूसरा बालक इसी प्रकार उसके द्वारा बोले गए शब्द के अन्तिम वर्ण से नया शब्द बोलता है। यह प्रक्रिया कक्षा में चलती रहती है। उदाहरण के लिए अध्यापक ने कहा, 'नल' इसका अन्तिम वर्ण 'ल' है तो एक छात्र बोलेगा 'लड़का', फिर दूसरा छात्र कहेगा 'काम'। इस क्रिया से छात्रों के शब्द भण्डार में वृद्धि होती है। यह विधि छोटी कक्षाओं के लिए अधिक उपयुक्त है।

2. कविता की अन्त्याक्षरी–इस साधन के द्वारा छात्रों को बहुत सी कविताओं को कंठस्थ कराया जा सकता है। अगर छात्रों को प्रोत्साहन मिले तो वे स्वयं भी कविता बना सकते हैं। अन्त्याक्षरी के लिए जिन छात्रों को तैयार किया जाए, उन्हें राष्ट्र भावना, नीति, धर्म, परोपकार, आत्म-निर्भरता जैसे विषयों से सम्बन्धित कविताएं कंठस्थ कराई जाएं। यह विधि बड़े बच्चों के लिए अधिक उपयोगी है। इससे अध्यापक कक्षा में छात्रों के दो दल बना कर उनमें अन्त्याक्षरी प्रतियोगिता करवा सकता है। इसमें सबसे पहले एक दोहा बोला जाता है–

मतिरेव बलाम्यरीयसी यदभावे करिणामियं दशा।
इति घोषयतीव डिण्डिमः करिणो हस्तिपकाहतः क्वणन्॥

इस दोहे के अन्त में 'न' वर्ण आया है अब दूसरा छात्र कोई दोहा, गीत या कविता की पंक्तियां बोलेगा जो 'न' से प्रारम्भ होंगी जैसे–

नारिकेलसमाकारा दृश्यन्तेऽपि हि सज्जनाः
अन्ये बदरिकाकारा बहिरेव मनोहराः॥

अब पहला छात्र या पहला दल 'र' वर्ण से कविता की पंक्तियां बोलेगा, जैसे-

रत्नैर्महाहैस्तुतुषुर्न देवा न भेजिऐ भीमविषण भीतिम्।
सुधां विना न प्रययुर्विशमं न निश्चतार्थद्विश्मन्ति धीराः॥

इस प्रकार की गतिविधियों में विद्यार्थी बहुत आनन्द प्राप्त करते हैं और खेल-खेल में उन्हें कविताएं याद हो जाती हैं।

विद्यालय पत्रिका और सम्पादन–विद्यालय पत्रिका के लिए अध्यापक छात्र-छात्राओं को प्रेरित करता है कि वे कोई कविता, लेख, कहानी, लिखें। उनकी लिखी रचनाएं पत्रिका में प्रकाशित की जाती हैं। अपने विचारों को अभिव्यक्त करने का उन्हें सुअवसर मिलता है। इस प्रकार की क्रिया द्वारा छात्र-छात्राओं की रचनात्मक शक्ति का विकास होता है। उनके मौलिक ज्ञान में वृद्धि होती है। कुछ छात्रों से पत्रिका में सम्पादन का कार्य भी करवाया जाता है। इससे वे अपने उत्तरदायित्व को समझते हैं। विद्यालय पत्रिका में अपनी लिखी रचना को पढ़कर विद्यार्थी आनन्द का अनुभव करते हैं। इस प्रकार की क्रियाओं में विद्यार्थी उत्साह से भाग लेते हैं। विद्यालय पत्रिका के द्वारा छात्र-छात्राओं की अन्तर्निहित प्रक्रिया को बाहर आने का अवसर मिलता है।

अभ्यास के प्रश्न

1. संस्कृत भाषा में सह-पाठ्य क्रियाओं के आयोजक की आवश्यकता व महत्त्व पर प्रकाश डालिए।

2. सहगामी क्रियाओं का वर्गीकृत करते हुए संस्कृत भाषा शिक्षण में उनकी उपयोगिता पर प्रकाश डालिए।
3. "पाठ्य सहगामी क्रियाओं के बिना कोई भी शिक्षा पद्धति पूर्ण नहीं हो सकती।" इस कथन पर अपने विचार व्यक्त कीजिए।
4. कौन-कौन सी सह-पाठ्य क्रियाएं संस्कृत भाषा शिक्षण में उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं? विस्तार से स्पष्ट कीजिए।
5. संस्कृत श्लोकोच्चारण प्रतियोगिता का आयोजन करते समय किन-किन बातों को ध्यान में रखा जाना चाहिए?
6. संस्कृत शिक्षण में उच्चारण शिक्षण से आपका क्या अभिप्राय है? इसके विभिन्न साधनों की चर्चा करें।
7. संस्कृत में श्लोकोच्चारण का क्या महत्त्व है? उच्चारण दोषों की चर्चा करते हुए शुद्धोच्चारण की सामर्थ्य का वर्णन करें।
8. संस्कृत भाषा शिक्षण में भाषण एवं वाद-विवाद सह-पाठ्य गतिविधियां किस प्रकार सहायक सिद्ध हो सकती हैं? विवेचना कीजिए।
9. छात्र-छात्राओं को पाठ्य-सहगामी गतिविधियों में भाग लेने के लिए आप कैसे प्रोत्साहित कर सकते हैं?

❑❑❑

TEACHING OF SANSKRIT

B.Ed.

इकाई–IV

17. संस्कृत में उच्चारण शिक्षण–'अशुद्धि' उच्चारण के प्रकार, कारण तथा सुधार के उपाय
18. संस्कृत में अक्षर विन्यास शिक्षण–सामान्य अशुद्धियां, कारण तथा निवारण के उपाय
19. संस्कृत विषय-वस्तु
20. शब्दार्थ तथा अनुवाद

VIJAYA PUBLICATIONS
Ludhiana

अध्याय 17

संस्कृत में उच्चारण शिक्षण—अशुद्ध उच्चारण के कारण तथा सुधार के उपाय

उच्चारण शिक्षा का महत्त्व–भाषा मूलतः होती है। अतः उच्चारण वह मेरुदण्ड है जिसके आधार पर भाषा का सारा भवन खड़ा होता है। भाषा का सौन्दर्य, सौष्ठव, गठन व शुद्धता, उच्चारण की शुद्धता पर निर्भर है। **श्रीराम प्रकाश कुलश्रेष्ठ** के शब्दों में, "व्याकरण से भी दुगुना महत्त्व उच्चारण का है। एक सु-उच्चरित वाक्य व्याकरण असम्मत रहने पर भी अर्थ प्रदान करता है। किन्तु पूर्ण व्याकरण सम्मत वाक्य अशुद्ध उच्चरित होने पर श्रोता समझ नहीं पाता या अपूर्ण रूप से समझता है अथवा प्रयत्न करके ही समझ पाता है।"

–भाषा शिक्षण तथा भाषा विज्ञान

सभी भाषाओं में उच्चारण का महत्त्व है। किन्तु संस्कृत देववाणी में उच्चारण का विशेष महत्त्व है क्योंकि संस्कृत के आदि ग्रन्थ वेदों की परम्परा मौखिक चली आई है। महर्षि पतंजलि ने उच्चारण की विशेषता बताते हुए लिखा है–

"एको शब्दः सम्यक्जातः सुप्रयुक्तः स्वर्गेलोके च कामधुक् भवति।"

अर्थात् अच्छी तरह एक भी शब्द जान लिया जाए तो लोक एवं परलोक दोनों में हो कामनाओं की पूर्ति करेन वाला होता है।

'पाणिनीय शिक्षा' में शुद्ध उच्चारण की महत्ता को निम्न शब्दों में व्यक्त किया गया है–

मन्त्रोहीनः स्वरतो वर्णतो वा, मिथ्या प्रयुक्तों न तमर्थमाह।
स वाग्वजो यजमानं हिनस्ति, यथेन्द्रशत्रु स्वरतोऽपराधात्॥

अर्थात् यदि स्वर अथवा वर्ण को विकृत कर किसी मन्त्र का अशुद्ध उच्चारण किया जाता है तो वह अशुद्ध वाणी कार्य सिद्धि के लिए यजमान द्वारा किये गये यज्ञ को अथवा स्वयं यजमान को इसी प्रकार नष्ट कर देगी, जिस प्रकार स्वर को विकृत करने पर इन्द्र का शत्रु वृत्रासुर मारा गया था।

यहां अशुद्ध उच्चारण से 'इन्द्रः यः शत्रुः सः' (इन्द्र जो शत्रु है वह) के स्थान पर 'इन्द्रस्य शत्रु' (वृत्रासुर) मारा गया।

संक्षेप में उपर्युक्त श्लोक एक वैदिक कथा की ओर संकेत करता है। त्वष्टा पुत्र विश्व रूप एक असुर था, जिसने कठिन तपस्या कर इन्द्रासन को हिला दिया था। इन्द्र ने विश्व रूप के समाप्त्यर्थ प्रयत्न किये और सफल हुआ। इस पर शोककातर त्वष्टा ने अपने पुत्र के लिए अभिचारित यत्र कराया। इस यज्ञ में पुरोहितों ने 'इन्द्रशत्रु: विवर्द्धस्व' मन्त्र का उच्चारण कर यज्ञ में आहुति दी। इसमें 'इन्द्रशत्रु:' समस्त पद है जिसका समास विग्रह के आधार पर दो अर्थ सामने आये। प्रथम अर्थ में, 'इन्द्र-शत्रु: विवर्द्धस्व' अर्थात् (षष्ठी तत्पुरुष) इन्द्र के शत्रु वृत्तासुर की वृद्धि हो तथा दूसरे अर्थ में 'इन्द्रशत्रु: विवर्द्धस्व' इन्द्र ही है शत्रु जिसका (बहुब्रीहि) अर्थात् इन्द्र की वृद्धि हो। पुरोहितों ने इन्द्र पर अधिक बल दिया जिससे इन्द्र की वृत्रासुर पर विजय हुई।

उच्चारण की शुद्धता का महत्त्व प्रदर्शित करने के लिए प्राय: एक श्लोक सुनने को मिलता है जो इस प्रकार है–

यद्यपि बहुनाधीषे तथापि पठ: पुत्र व्याकरणम्।

स्वजन: श्वजन: माभूत् सकलंशकलं सकृच्छकृत्॥

अर्थात् हे पुत्र! यद्यपि तुम बहुत पढ़ चुके हो तथापि व्याकरण शास्त्र का ज्ञान प्राप्त करो क्योंकि यदि तुम व्याकरण का सम्यक् अध्ययन कर लोगे तो 'स्वजन' के स्थान पर 'श्वजन', 'सकल' के स्थान पर 'शकल' और 'सकृत्' के स्थान पर 'शकृत्' उच्चारण नहीं होगा।

उच्चारण शिक्षा का उद्देश्य

'ब्लाक' तथा 'ट्रेगर' ने प्रकृति की दृष्टि से भाषा को इन शब्दों में परिभाषित किया है, "भाषा यादृच्छिक मौखिक प्रतीकों की व्यवस्था है, जिसके द्वारा उस भाषायी समुदाय के लोग परस्पर विचारों आदान-प्रदान एवं सहयोग करते हैं।" –आऊट लाइन ऑफ **लिंग्विस्टिक अनालिसिस**

इस परिभाषा के आधार पर भाषा की मुख्य विशेषता उसका मौखिक व वाचिक होना है। इसलिए इसकी भी भाषा के लिए उच्चारण की शिक्षा अनिवार्य है, जिसके निम्नलिखित उद्देश्य सामने आते हैं–

1. संस्कृत सम्पर्क भाषा न होने से विद्यार्थी प्राय: संस्कृत शब्दोच्चार में त्रुटि करते हैं। अत: परिनिष्ठित संस्कृत हेतु शब्दोच्चार की शिक्षा देना उच्चारण शिक्षा का उद्देश्य है।
2. संस्कृत संश्लिष्ट भाषा है, इसमें संधिष्ठ एवं समासनिष्ठ पद बहुत मात्रा में होते हैं। अत: शुद्धोच्चारण के माध्यम से इन क्लिष्ट शब्दों को समझने में सरलता होती है।

3. शुद्धोच्चारण की शिक्षा द्वारा छात्रों को पदों का अर्थ समझने में सहायता मिलती है।
4. शुद्धोच्चारण द्वारा वर्णोच्चार एवं भाषा परिमार्जन में राह मिलती है।
5. संस्कृत अनेक भाषाओं की जननी है। अत: संस्कृत शुद्धोच्चार से अन्य भाषा के शब्दों को समझने में सुविधा होती है।

उच्चारण दोष के कारण–

अज्ञानता–संस्कृत ध्वनियों के उचित स्वरूप का ज्ञान न होने पर उच्चारण अशुद्ध हो जाता है। जैसे श के स्थान पर स बोला।

वर्ण के उच्चारण स्थान का सही ज्ञान न होना–जैसे–ण, न, ञ, ष आदि।

प्रयत्न लाघव–जैसे परमेश्वर का प्रमेश्वर, भक्षयिष्यामि का भक्षिष्यामि, आवश्यकता का आवश्यकता, दु:ख का दुख।

अभ्यास का अभाव–

क्षेत्रीयता या स्थानीय प्रभाव–जैसे–ऋ को, उत्तर भारत में 'रि' व दक्षिण में 'रु' बोलना। स्थायी को इस्थायी, स्तुति को अस्तुति बोलना।

पाणिनि के अनुसार अशुद्ध उच्चारण के दस लक्षण बताये गये हैं–

उपांशुदष्टं त्वरितं, निरस्तं, विलम्बितं गद्गदितं प्रगीतम्।

निष्पीडितं ग्रस्तपदाक्षरं च, वदेन्न दीनं न तु सानुनास्यम्॥

अर्थात्–

उपांशुदष्टं–वर्णों को ओठों व जीभ से दबाकर बोलना।

त्वरितम्–अतिशीघ्र बोलना।

निरस्तम्–वर्णों को फैंकते हुए बोलना।

विलम्बितम्–रुक-रुक कर बोलना।

गद्गदितम्–दबे हुए स्वर से बोलना।

प्रगीतम्–गा-गाकर बोलना।

निष्पीडितम्–तुतलाकर या हकलाकर बोलना।

ग्रस्तपदाक्षरम्–अक्षर या वर्णों को बीच-बीच में ग्रस्त कर बोलना।

दीनम्–दीनता के स्वर में बोलना।

सानुनास्यम्–प्रत्येक वर्ण को नाक के स्वर बोलना।

याज्ञवल्क्य शिक्षा में पठन के 14 दोष बताये गये हैं–

शंकितं भीतमुद्घुष्टम् व्यक्तमनुनासिकम्।
काकस्वरं मूर्द्धिनवतं तथा स्थानविवर्जितम्॥
विस्वरं विरसं चैव विश्लिष्टं विषामहतम्।
व्याकुलं तुलाहीनं च पाठदोषाश्च चतुर्दश:॥

अर्थात् शंका के साथ बोलना, भयभीत होकर बोलना, चिल्लाकर बोलना, अव्यक्त ध्वनि में बोलना, प्रत्येक वर्णन को नासिक से बोलना, कटुस्वर से बोलना, प्रत्येक वर्ण को मूर्धा से बोलना, उचित स्थान से न बोलना, स्वर रहित बोलना, नीरस ध्वनि में बोलना, प्रत्येक शब्द को काट-काट कर बोलना, विषम स्थान पर लगाघात, व्याकुलता के साथ पढ़ना तथा तालुहीन की भांति उच्चारण करना।

उपर्युक्त समस्त कारणों में ध्वनि, मात्रा व रूप सम्बन्धी अज्ञानता, उच्चारण स्थान का ज्ञान न होना, बलाघात का ज्ञान न होने के साथ ही भाव संकुलता की स्थिति का वर्णन भी किया गया है। गद्गद कंठ से बोलने या क्रोध के साथ बोलने में भी शुद्ध शब्दों का उच्चारण भी अनायास ही अशुद्ध हो जाता है।

उच्चारण की दृष्टि से पाणिनि ने पाठकों के दो प्रकार बताये हैं-

(1) श्रेष्ठ पाठक या उत्तम पाठक, (2) अधम या निकृष्ट पाठक। अशुद्ध उच्चारण करने वालों को ही अधम पाठक की संज्ञा दी गई है। जिसके लक्षण इस प्रकार हैं-

गीती शीघ्री शिर: कम्पी तथा लिखित पाठक:।
अनर्थज्ञो अल्प कण्ठश्चत षडेते पाठकाधमा:॥

अर्थात् जोपाठक गा-गा कर, शीघ्रतापूर्वक सिर को हिला-हिलाकर, लिखकर अर्थ को न जानते हुए तथा धीमे कंठ से वर्णों का उच्चारण करते हैं वे इन छ: लक्षणों से युक्त अधम पाठक कहलाते हैं।

उच्चारण शोधन के उपाय

1. प्रत्यक्ष वस्तु दिखाकर उच्चारण शुद्ध कराना जैसे-फूल को दिखाकर पुष्प का उच्चारण।
2. क्रिया पद की शुद्धि हेतु कार्य करके दिखाना। जैसे-दौड़ने की क्रिया दिखाकर 'धाव्'।
3. विशेषण पदों को शुद्ध कराने के लिए उसी प्रकार के शब्दों का अभ्यास करना। जैसे स्याम (अशुद्ध) का श्याम (शुद्ध) स्वेत का श्वेत आदि।
4. अध्यापक द्वारा शुद्धोच्चार करना।

5. प्रश्नोत्तर द्वारा छोटे-छोटे वाक्य बनाकर उत्तर देने का अभ्यास करना जैसे-कुत्र गच्छसि? विद्यालयं गच्छामि। कुत्र निवससि? ग्रामे निवसामि।
6. अभ्यास कार्य देकर संशोधन करना।
7. शुद्धोत्तर प्रतियोगिता करना।
8. विद्यालय में भाषा विशेषज्ञ विद्वानों का भाषण सुनने के अवसर प्रदान करना।
9. शुद्ध ध्वनियों को टेप-रिकार्डर द्वारा सुनवाना।

वर्णोच्चार किस प्रकार दिया जाए? इसके लिए पाणिनीय शिक्षा में स्पष्ट किया गया है कि जैसे-हिरनी अपने बच्चों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाते समय न तो अपने दांतों से पीड़ा पहुंचाती है और न ही उन्हें गिरने देती है। वैसे ही शुद्ध उच्चारण के लिए सावधानीपूर्वक वर्णों का प्रयोग करना चाहिए।

व्याघ्री यथाहरेत् पुत्रान्
दष्ट्राभ्यां न च पीडयेत्।
भीता पतन भेदाभ्यां,
तद्वद्वर्णन, प्रयोजयेत्॥

याज्ञवल्क्य शिक्षा के अनुसार उच्चारण करते समय शिक्षक व शिक्षार्थी दोनों का यह दायित्व है कि जिस तरह शुद्ध रूप से उच्चारण प्रारम्भ करें उस रूप का निर्वाह अंत तक करते समय रहे।

अर्थात् शिक्षक सप्रयास छात्रों से शुद्धोच्चारण कराये-

स्वस्थ प्रशान्तों निर्भीतो
वर्णोंनुच्चारयेत् युध:।
नाम्यहन्यान्न निर्हन्यान
गायेन्न च कम्पयेत्॥
यथादावच्चरेद् वर्णास्तथैवैतान् समापयेत्॥ (या० श० 21-22)

शब्दों का उच्चारण वागेन्द्रियों से होता है। अत: वागेन्द्रियों की आकृति व प्रकृति का प्रभाव भी शुद्धोच्चार पर पड़ता है। इसलिए 'पाणिनि' ने निर्दिष्ट किया है कि उच्चारण करते समय भाव संकुलता की स्थिति से परे रहकर शुद्ध उच्चारण करना चाहिए।

प्रकृति: यस्य कल्याणी
दन्तोष्ठौ यस्य शोभना।
प्रगल्भश्च विनीतश्च
स वर्णान् वक्तुमर्हति॥

याज्ञवल्क्य ने भी शुद्ध उच्चारण के लिए निम्नलिखित छः बातों को ध्यान में रखना आवश्यक बताया है–

माधुर्यमक्षर व्यक्तिः
मदच्छेदस्तु सुस्वरः।
धैर्यं गुरू लघुत्वं च
षडेते पाठकाः गुणाः॥

अर्थात् माधुर्य, वर्ण स्पष्टता, पदच्छेद, सुस्वर, धैर्य और गुरू–लघुत्व को ध्यान में रखकर वर्णों का उच्चारण करना चाहिए।

उच्चारण शिक्षण की विधियां

उच्चारण शिक्षण का उचित स्तर प्रारम्भिक स्तर है, किन्तु प्रारम्भिक स्तर पर अशुद्धियां रह जाने पर उनका निराकरण माध्यमिक स्तर पर कराया जा सकता है। उच्चारण शिक्षण की प्रमुख विधियां इस प्रकार हैं–

1. अनुकरण विधि–किसी भी भाषा के शिक्षण का आदर्श उच्चारण होना विद्यार्थियों के हित में परमावश्यक है। संस्कृत की प्रारम्भिक अवस्था से ही विद्यार्थियों के वर्ण दोष व स्तर दोषों को शुद्ध कराना चाहिए। अतः शिक्षक का उच्चारण अनुकरणीय होना चाहिए।

2. अभ्यास विधि–उच्चारण शुद्धि का एक मात्र सशक्त उपाय अशुद्ध उच्चारण का अभ्यास कराना है। संस्कृत की प्रारम्भिक कक्षाओं में ही शुद्ध शब्दों की सूची तैयार कर उनकी आवृति करानी चाहिए।

3. पर्यावरण विधि–भाषा के उच्चारण पर पर्यावरण का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है क्योंकि भाषा अर्जित सम्पत्ति है। अतः जिन लोगों के सम्पर्क में बालक रहता है, उनका उच्चारण विशुद्ध होना चाहिए। इस दृष्टि से अध्यापक का उच्चारण, समवयस्क अन्य बालकों का उच्चारण तथा पारिवारिक सदस्यों का शुद्ध उच्चारण सभी महत्त्वपूर्ण हैं। अतः बालक को समग्र पर्यावरण शुद्ध उच्चारण वाला मिलेगा तो छात्रों को अशुद्ध उच्चारण का अवसर ही न मिलेगा।

4. तुरन्त सुधार विधि–संस्कृत सम्पर्क भाषा न होने से इसमें शुद्ध उच्चारण के लिए शिक्षक के द्वारा तुरन्त संशोधन किया जाना आवश्यक है। कक्षा में पुस्तक पढ़ते समय मौखिक अभिव्यक्ति करते समय भाषा कार्य में कठिन निवारण के समय छात्र अशुद्ध उच्चारण करता है तो अन्य छात्रों की सहायता से या शिक्षक स्वयं तुरन्त शुद्ध उच्चारण कराये। इसके लिए वह वैयक्तिक उच्चारण अथवा सामूहिक उच्चारण विधि को अपना सकता है।

5. वाक्य शोधन विधि–भाषा शिक्षण की अनेक विधियों में वाक्य विधि सर्वाधिक महत्वपूर्ण विधि मानी जाती है क्योंकि एक वर्ण या शब्द सर्वत्र सार्थक नहीं होता। अतः सम्पूर्ण वाक्य की शुद्धता पर ध्यान दिया जाता है। जैसे–'सः अत्रैव आगच्छति' वाक्य में अकेले अत्रैव शब्द के शुद्धोच्चारण हेतु बार-बार आवृत्ति करने पर अधिक समय नष्ट हो सकता है। अतः सम्पूर्ण वाक्य का उच्चारण (सः अत्रैव आगच्छति) शुद्धि पर ध्यान देने से छात्र रुचिपूर्वक सहज शुद्ध उच्चारण करना सीख जाता है।

6. विविध विधि–वर्तमान में अनेक प्रकार की श्रव्य-दृश्य सामग्री का प्रयोग उच्चारण शुद्धि के लिए सहायक सिद्ध हो सकता है। इस दृष्टि से ग्रामोफोन, टेप रिकार्डर, टेलीविजन जैसे यंत्र विशेष लाभप्रद हैं। इनके द्वारा भाषाविदों के भाषण, व्याकरण के साधारण नियम, स्वर-व्यंजन के उच्चारण स्थान, भ्रामक ध्वनियों का मानक, उच्चारण के माध्यम से शुद्ध उच्चारण कराया जा सकता है। केन्द्रीय सरकार भाषा निदेशालय विभिन्न भाषाओं के उच्चारण सम्बन्धी डिस्क तैयार करता है।

विद्यालयीय पाठ्यक्रम के अतिरिक्त सत्र में होने वाले विभिन्न उत्सव, जयन्तियां, राष्ट्रीय पर्व, वाद-विवाद परिचर्चा, वार्तालाप, शुद्धोच्चारण एवं वाचन प्रतियोगिता आदि में संस्कृत भाषा के कार्यक्रम रखकर उच्चारण शुद्ध किया जा सकता है। शुद्ध उच्चारणकर्ता बालकों को पुरस्कार व प्रमाण-पत्र देकर प्रोत्साहित किया जाएगा जिससे वे अन्य छात्रों के लिए आदर्श प्रस्तुत कर सकें।

सत्रारम्भ के समय जब तक पाठ्य-पुस्तकें उपलब्ध न हों तब तक संस्कृत शिक्षक उच्चारण व वर्तनी सुधार पर विशेष ध्यान देकर अशुद्ध उच्चारण करने वाले बालकों पर व्यक्तिगत रूप से ध्यान दे सकता है।

निष्कर्ष–शुद्ध उच्चारण के लिए शिक्षक व शिक्षार्थी दोनों को सचेत रहने की आवश्यकता है। शिक्षक अनेक प्रकार के नैदानिक परीक्षण करके उपचारात्मक शिक्षण की व्यवस्था कर सकता है। विद्यार्थी का बहुश्रुत होना, शब्दोच्चार में भ्रम होने पर शंका को प्रस्तुत करना भी आवश्यक है। उच्चारण शुद्धि का प्रारम्भिक स्तर पर ही भली-भांति ध्यान दिया जाए क्योंकि भाषाई भवन प्रारम्भिक स्तर की नींव पर ही आधारित होता है। उच्चारण शिक्षा के लिए परिवेशगत उच्चारण संयुक्त शब्दों का विग्रह, अनुस्वार व अनुनासिक ज्ञान, आघात आदि का सप्रयास अभ्यास कराया जाए। कहा भी गया है–

'करत-करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान।'

परीक्षोपयोगी प्रश्न–संस्कृत भाषा में उच्चारण दोष कौन-कौन से हैं? उन्हें दूर करने के लिए पांच सुझाव लिखिए।

उच्चारण शिक्षण की विधियों की विवेचना कीजिए।

'उच्चारण एवं वर्तनी दोष' में परस्पर सम्बन्ध बताइए।

अभ्यास के प्रश्न

1. अशुद्ध उच्चारण के प्रमुख कारण बताते हुए उन्हें दूर करने के लिए सुझाव लिखिए। अपने अध्यापन अभ्यास के समय उच्चारण शुद्धि में आई कठिनाइयों का उदाहरण लिखिए।
2. "भाषा मूलतः उच्चरित होती है किन्तु उसे स्थायी बनाने के लिए लिपिबद्ध किया जाता है।" इस कथन को दृष्टिगत रखकर 'भाषा शिक्षण' में उच्चारण एवं वर्तनी शिक्षा का महत्त्व प्रतिपादित कीजिए।
3. गद्य, पद्य एवं व्याकरण पढ़ाते समय उच्चारण शुद्धि आप कैसे कराएंगे? कौशिक पाठ्यक्रम में उच्चारण शिक्षण की आवश्यकता को दृष्टिगत रखते हुए अपने उत्तर की पुष्टि उदाहरण करें।

❑❑❑

अध्याय 18

संस्कृत में अक्षर विन्यास शिक्षण— सामान्य अशुद्धियां कारण तथा निवारण के उपाय, सुलेख कार्य

लेख का महत्त्व

संस्कृत में मौखिक भाषा की अपेक्षा लिखित भाषा का विशेष महत्त्व है। लिखित भाषा में विन्यास या वर्तनी प्रमुख स्थान रखी है। भाषा की सुन्दरता वर्तनी की शुद्धता पर निर्भर है। भाषा की शुद्धता के सदृश वर्तनी की अशुद्धता का अर्थ भी अनर्थ कर देती है। जैसे- "निजवजनीयाभूत सकलं शकलं सकृत्च्छकृत।" अर्थात् स्वजन (आत्मीयजन) के स्थान पर (कुत्ते), सकल (सम्पूर्ण) के स्थान पर शकल (टुकड़ा) और सकृत (एक बार) के स्थान पर अस्पृश्य (अस्पृश्य मल या विष्ठा) हो जाता है। वर्तनी अशुद्ध होने के कारण उच्चारण भी अशुद्ध हो जाता है और भाषा भी दोषपूर्ण हो जाती है। अतः वर्तनी की शुद्धता का ध्यान रखकर सतर्कतापूर्वक आवश्यक होता है। इसके साथ ही संस्कृत-शिक्षक को भी संस्कृत की भी वर्तनी की वर्तनी की ज्ञान होना आवश्यक है।

वर्तनी का अर्थ

संस्कृत भाषा के सम्यक् ज्ञान के लिये संस्कृत भाषा की वर्तनी का ज्ञान नितान्त आवश्यक है। शब्दों का शुद्ध लिखना वर्तनी के ज्ञान पर निर्भर करता है। छात्र का जितना अधिकार वर्तनी पर होता जाता है उतना ही उसका अधिकार भाषा पर हो जाता है। इस प्रकार वर्तनी किसी भाषा विशेष के अध्ययन की प्रथम सीढ़ी है। वर्तनी का शाब्दिक अर्थ है वर्णक्रम या विन्यास अर्थात् किसी शब्द में प्रयुक्त ध्वनियों या वर्णों का सार्थक क्रम, जिससे वह कोई कार्य कर सके। इस प्रकार किसी भाषा की शब्द-संरचना में ध्वनियों या वर्णों का जिस क्रम में प्रयोग हो, वही क्रम विशेष उस शब्द की वर्तनी कहलाती है।

अक्षर विन्यास के उद्देश्य

संस्कृत वर्तनी के सिखाने के उद्देश्य निम्नलिखित हो सकते हैं-

(1) छात्रों को संस्कृत-शब्दों की शुद्ध वर्तनी का ज्ञान कराना।

(2) छात्रों को संस्कृत भाषा-शिक्षण में शुद्ध वर्तनी की महत्ता का ज्ञान कराना।

(3) छात्रों को संस्कृत-शब्दों की वर्तनी शुद्ध-शुद्ध लिखने की कुशलता प्रदान करना।

(4) छात्रों को संस्कृत-ध्वनियों-प्रतीकों में पारस्परिक सहसम्बन्ध स्थापित करने की कुशलता प्रदान करना।

(5) छात्रों को संस्कृत भाषा के नये-नये शब्दों की वर्तनी जानने की लिये रुचि उत्पन्न करना।

(6) छात्रों का वाचन एवं लेखन वर्तनी की शुद्धता हेतु सतर्क एवं सतत जागरूक रहने की प्रवृति का विकास करना।

(7) छात्रों को संस्कृत वर्तनी के सामान्य नियमों का ज्ञान कराना।

(8) छात्रों को संस्कृत वर्तनी में शुद्धता लाने हेतु संस्कृत शब्दकोषों के प्रयोग हेतु प्रेरित करना।

अक्षर विन्यास की अशुद्धियों का कारण

संस्कृत लिखते समय छात्र अक्षर विन्यास की अनेक अशुद्धियां करते हैं। इसके प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं–

1. **अशुद्ध उच्चारण**–वर्तनी की अशुद्धियां अशुद्ध उच्चारण के कारण होती हैं। कभी-कभी शिक्षित व्यक्तियों को भी वर्तनी की अशुद्धियां उच्चारण दोष के कारण हो जाया करती हैं। यथा–
   (अ) जो व्यक्ति 'श' के स्थान पर 'स' का उच्चारण करते हैं, वे 'श' के स्थान पर 'स' ही लिखते हैं। जैसे–देश को देस, श्याम को स्याम आदि।
   (ब) अनुनासिक (नाक से) बोलने वाले व्यक्ति प्राय: शब्दों के ऊपर अनुस्वार (ं) लगाकर लिखते हैं। जैसे अश्रु के लिये अंश्रु, हनुमान के लिये हंनुमान।
   (स) अशुद्ध उच्चारण केकारण कुछ छात्र इच्छा को इक्षा, परीक्षा को परीक्ष छात्र को क्षात्र, बीमार को बिमार और द्वितीय को द्वतीय लिखते हैं।

2. **लिपि का अपूर्ण ज्ञान**–संस्कृत वर्णमाला हिन्दी वर्णमाला से कुछ भिन्न है। अत: छात्रों को संस्कृत वर्णमाला का समुचित ज्ञान न होने के कारण वर्तनी की अशुद्धियां होती हैं। छात्रों को स, श और ष का स्पष्ट विभेद नहीं सिखाया जाता है, जिससे वर्तनी सम्बन्धी अशुद्धियां छात्र करते हैं। जैसे–अन्तर्गत को अन्तर्गत आशीर्वाद को आर्शीवाद लिखना।

3. **अनुस्वार और अनुनासिक का ज्ञान न होना**–छात्रों को अनुस्वार और अनुनासिक में समुचित भेद नहीं बताया जाता, जिससे छात्र वर्तनी की अशुद्धि करते हैं। जैसे–संसद को सन्सद, अहिंसा को अहिन्सा आदि।

4. **धातुओं और संज्ञाओं के रूपान्तरों का ज्ञान न होना**–छात्रों को धातुओं तथा संज्ञाओं के रूपान्तरों का समुचित ज्ञान न होने से वर्तनी की अशुद्धियां होती हैं। जैसे–रामान् की जगह रामाण्, रामाणम् की जगह रामानाम् और लतासु की जगह लताषु आदि।

5. **अभ्यास का अभाव**–छात्रों के वर्तनी का अभ्यास भी नहीं कराया जाता है, जिससे छात्रों से वर्तनी की अशुद्धियां अधिक होती हैं।

6. **असावधानी**–छात्र शब्दों को भली प्रकार सुनने एवं लिखने में असावधानी करते हैं, जिसके परिणामस्वरूप शीघ्रता से लिखने में प्राय: शब्दों के बीच के अक्षर छूट जाते हैं। जैसे–अध्ययन के स्थान पर अध्यन, समानान्तर के स्थान पर समान्तर और वर्णनात्मक से स्थान पर वर्णात्मक।

7. **संशोधन का अभाव**–अधिकांशत: छात्रों के लिखित कार्य का संशोधन नहीं किया जाता है। इससे छात्रों को वर्तनी-अशुद्धियों का ज्ञान नहीं हो पाता है। वे अशुद्धियां करते रहते हैं, जो उनकी आदत में आ जाती हैं और जिनका भविष्य में निराकरण करना कठिन हो जाता है।

अक्षर विन्यास की अशुद्धयों के प्रकार

संस्कृत लिखते समय छात्र वर्तनी की अनेक अशुद्धियां करते हैं। इसके प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं–

1. **लिपि की अशुद्धियां**–लिपि का समुचित ज्ञान न होने से संस्कृत में अधिकांशत: छात्र वर्तनी में लिपि की अशुद्धियां करते हैं। यथा–बिदया आदि।

2. **अनुस्वार तथा अनुनासिक के प्रयोग सम्बन्धी अशुद्धियां**–छात्र सामान्य रूप से अनुस्वार तथा अनुनासिक के अशुद्ध प्रयोग से वर्तनी में (ङ्, ञ्, ण्, न्, म्) की अशुद्धियां करते हैं। यथा–कन्ठ, सन्वाद, कण्या आदि।

3. **हल की अशुद्धियां**–छात्र हल के अशुद्ध प्रयोग के कारण वर्तनी की अशुद्धियां करते हैं। यथा–अर्थात, जगत आदि।

4. **स्वरों की अशुद्धियां**–छात्र ह्रस्व एवं दीर्घ स्वरों के अशुद्ध प्रयोग के कारण वर्तनी की अशुद्धियां करते हैं। छात्र कभी-कभी ह्रस्व स्वर के शब्दों को दीर्घ स्वर में और दीर्घ स्वरों के शब्दों को ह्रस्व स्वरों में लिख देते हैं। यथा–इति को इती, चिकित्सा को चिकीत्सा, विधि को विधी।

5. **व्यंजनों की अशुद्धियां**–व्यंजनों की अशुद्धियों के कारण भी वर्तनी की अशुद्धियां होती हैं। यथा–अनिष्ट के स्थान पर अनिष्ठ और प्रशंसा से स्थान पर प्रशंसा आदि।

6. **र, अर और संयुक्त र (्र, ◌ं, ◌ः) की अशुद्धियां**–छात्रों को र, अर और संयुक्त र (्र, ◌ं, ◌ः) के प्रयोग का ज्ञान नहीं कराया जाता है। अत: इनके अशुद्ध प्रयोग से वर्तनी में अशुद्धियां आ जाती हैं। यथा–प्रकाश के स्थान पर पृकाश, स्वर्ग के स्थान पर स्वरग और गृह के स्थान पर ग्रह आदि।
7. **ब तथा व की अशुद्धियां**–छात्र ब तथा व में विभेद न समझ पाने के कारण लिखते समय इनकी अशुद्धियां करते हैं। यथा–वानर: के लिये बानर: तथा बालक: के लिये वालक: आदि।
8. **छ, ज्ञ और क्ष की अशुद्धियां**–छात्र वर्तनी में ज्ञ, छ और क्ष की अशुद्धियां अधिक करते हैं। यथा–विज्ञान को विग्यान, छात्र को क्षात्र, लक्ष्मण को लच्छमन आदि।
9. **श, ष, स की अशुद्धियां**–वर्तनी में मुख्यता छात्रों से श, स, ष की अशुद्धियां हो जाती हैं। यथा–सकल को शकल, शस्त्र को सस्त्र, संतोष को संतोष आदि।
10. **ड और ढ की अशुद्धियां**–छात्र प्राय: लिखने में ड और ढ की अशुद्धियां करते हैं। यथा–जड़ के स्थान पर जड और मूढ़ के स्थान पर मूढ लिखते हैं।
11. **विसर्ग की अशुद्धियां**–संस्कृत लिखते समय छात्र वर्तनी में प्राय: विसर्ग की अशुद्धियां करते हैं। यथा–प्राय: के स्थान पर प्राय, पठाम: के स्थान पर पठाम।
12. **वर्ण विपर्यय की अशुद्धियां**–अधिकांश छात्रों से वर्ण विपर्यय की अशुद्धियां होती हैं जिससे वर्तनी में अशुद्धियां आ जाती हैं। यथा–अन्तर्गत को अर्न्तगत, अनिर्वचनीय को अनिवर्चनीय आदि।
13. **सन्धि की अशुद्धियां**–सन्धियों का समुचित ज्ञान न होने से छात्र अशुद्ध सन्धि करके वर्तनी अशुद्ध करते हैं। यथा–यद्यपि को यद्यापि, महर्षि को महार्षि आदि।
14. **समध्वन्यात्मक शब्दों के लेखन में अशुद्धियां**–छात्र विभिन्न ध्वनि एवं अर्थ वाले समान शब्दों के लिखने में भी अशुद्धियां करते हैं। यथा–प्रणाम के स्थान पर प्रमाण, प्रासाद के स्थान पर प्रसाद आदि।

अक्षर विन्यास की अशुद्धियों के निवारण हेतु उपाय

वर्तनी की अशुद्धियों का निवारण करने के लिये शिक्षक को निम्नलिखित उपाय करने चाहिए–

1. **शुद्ध उच्चारण की शिक्षा**–वर्तनी की शुद्धता के लिये उच्चारण की शुद्धता आवश्यक है। अत: शिक्षक का यह कर्त्तव्य है कि वह छात्रों के उच्चारण को शुद्ध कराने का प्रयास करे, जिससे वर्तनी में शुद्धता आ जाएगी। रायबर्न लिखते हैं–"शुद्ध उच्चारण की शिक्षा बालक को शुद्ध वर्तनी सीखने में अधिक सहायता देगी।"

2. **लिपि का पूर्ण एवं स्पष्ट ज्ञान**–छात्रों के संस्कृत वर्णमाला एवं मात्राओं का समुचित ज्ञान प्रारम्भ में ही करा देना चाहिये, जिससे वर्तनी की अशुद्धियां स्वत: कम हो जाएँगी।
3. **अनुस्वार एवं अनुनासिक का ज्ञान**–छात्रों को अनुस्वार, अनुनासिक और चन्द्र बिन्दु से विभेद बताते हुए उनके यथा स्थान प्रयोग का भी ज्ञान करा देना चाहिये। इससे छात्र वर्तनी की अशुद्धियां नहीं करेंगे।
4. **धातुओं एवं संज्ञाओं के रूपान्तरों का ज्ञान**–छात्रों को धातुओं एवं संज्ञाओं के रूपान्तरों का स्पष्ट ज्ञान करा देने से वर्तनी की अशुद्धियां नहीं होती हैं।
5. **वर्तनी का अभ्यास**–छात्रों को कठिन शब्दों के लिखने का अभ्यास कराना चाहिए। जिन शब्दों में छात्र वर्तनी की अधिक अशुद्धियां करते हैं, उन शब्दों को छात्रों द्वारा दस-दस बार लिखवाना चाहिये। इससे छात्रों के हाथ तथा नेत्र प्रशिक्षित होते हैं और पुन: उन शब्दों में वर्तनी की अशुद्धियां नहीं करते हैं।
6. **पूर्ण ध्यान एवं सावधानी पर बल देना**–शिक्षक को बच्चों के लिखने के समय ध्यानपूर्वक सुनने एवं सावधानी से लिखने के लिये विशेष बल देना चाहिये।
7. **पठन की शिक्षा**–छात्रों को पढ़ने के लिये प्रशिक्षित करना चाहिये, जिससे वे शुद्ध पढ़ सकें। छात्रों को पढ़ते समय शब्द के प्रत्येक अक्षर को ध्यानपूर्वक देखना चाहिये और सोच-समझकर पढ़ना चाहिए। इससे बहुत से शब्द स्मृति में आ जाते हैं और शुद्ध वर्तनी की क्षमता बढ़ जाती है।
8. **लेखन की शिक्षा**–छात्रों से अनुलेख, प्रतिलेख और श्रुतलेख लिखवाने चाहिए। ध्यानपूर्वक और सावधानी से लिखने पर वर्तनी में शुद्धता आती है। प्रारम्भिक कक्षाओं में संस्कृत लिखते समय उसका उच्चारण कराना भी उपयोगी होता है। इससे छात्रों के हाथ, मुँह और नेत्र तीनों ही क्रियाशील रहते हैं और प्रशिक्षित होते हैं।
9. **निरीक्षण एवं संशोधन पर विशेष बल**–छात्रों के लिखित कार्य का शिक्षकों द्वारा प्रतिदिन समुचित निरीक्षण एवं संशोधन किया जाना चाहिये। अशुद्ध शब्दों को कई-कई बार लिखवाना चाहिये और उनका भी संशोधन करना चाहिये।
10. **दृश्य-श्रव्य साधनों का प्रयोग**–वर्तनी शिक्षण में दृश्य-श्रव्य साधनों का प्रयोग अधिक महत्त्वपूर्ण एवं लाभदायक सिद्ध हुआ है। शिक्षक को विभिन्न दृश्य-श्रव्य साधनों जैसे–श्यामपट्ट, वर्तनी चार्ट, ध्वनि चार्ट, टेपरिकार्डर, ग्रामोफोन, लिंग्वाफोन, प्रोजेक्टर आदि की सहायता से वर्तनी की शिक्षा देने का प्रयास करना चाहिये। इससे छात्रों में शुद्ध वर्तनी लिखने की क्षमता उत्पन्न होगी।

सिखाने की विधियां

वर्तनी सिखाना अत्यन्त नीरस एवं दुरूह कार्य है। अतीत काल में वर्तनी सिखाने में लिखने एवं शब्दों को कंठस्थ करने पर विशेष बल दिया जाता था। वर्तमान समय में मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाया जाता है तथा खेल विधि द्वारा नीरस एवं कठिन विषय पूर्ण एवं सरल बनाने का प्रयास किया जाता है। वर्तनी लिखने में भी खेल विधि को प्रोत्साहन दिया गया है क्योंकि बच्चे खेल में अधिक रुचि रखते हैं। इस संदर्भ में **रायबर्न** के अनुसार, "शब्दों की वर्तनी को हम तीन प्रमुख साधनों–दृष्टि, श्रवण और मांसपेशियों; द्वारा सीख सकते हैं। इस प्रकार शब्दों की वर्तनी सीखने की सबसे उत्तम विधि वह होगी जो तीनों या इसमें कम से कम दो का प्रयोग किया जाये।" संस्कृत वर्तनी-शिक्षण की निम्नलिखित विधियां प्रचलित हैं–

1. अभ्यास विधि (Drill Method)
2. आकस्मिक विधि (Incidental Method)
3. खेल विधि (Play Method)
4. प्रतिलेख विधि (Transcription Method)
5. श्रुतलेख विधि (Dictation Method)
6. शब्दकोष विधि (Dictionary Method)
7. वर्तनी परीक्षण विधि (Spelling Test Method)

1. अभ्यास विधि–यह विधि परम्परागत विधि के रूप में भी जानी जाती है। इस विधि के अन्तर्गत संस्कृत शब्दों की सूची उनकी महत्ता अनुसार तैयार की जाती है। शिक्षक इन शब्दों की वर्तनी का एक-एक करके अभ्यास करता है और छात्रों को कंठस्थ करने के लिये प्रेरित करता है। छात्र बार-बार पढ़ते हुए कंठस्थ कर लेते हैं। इससे छात्रों के शब्द भण्डार में वृद्धि तो होती ही है, साथ ही साथ वे उनका शुद्ध उच्चारण भी सीख जाते हैं।

2. आकस्मिक विधि–इस विधि के अन्तर्गत शिक्षक केवल उन्हीं कठिन पदों, शब्दों की वर्तनी का ज्ञान कराता है, जो पाठ्यपुस्तक के पठन के अन्तर्गत आते हैं। इससे तात्पर्य यह है कि पदों की वर्तनी आकस्मिक रूप से बताई जाती है। इससे छात्रों का पठन के साथ-साथ संस्कृत के कठिन पदों की वर्तनी का ज्ञान सरलता से हो जाता है।

3. खेल विधि–इस विधि का उपयोग संस्कृति सिखाने में सफलता से किया जा सकता है। यह विधि खेल से सम्बन्धित क्रियाओं पर आधारित होती है। अतः इसमें विशेष रुचि लेते हैं। इससे छात्रों के मस्तिष्क पर अनावश्यक भार नहीं पड़ता है। छात्र खेल-खेल में ही बहुत से संस्कृत शब्दों से परिचित हो जाते हैं। संस्कृत-शिक्षण में वर्तनी खेल निम्नलिखित हो सकते हैं–

1. शिक्षक श्यामपट्ट पर कोई एक शब्द लिखकर उससे अधिक से अधिक शब्द बनाने के लिये छात्रों को कह सकता है। यथा–पठ-पठन, पाठ, पठनीय आदि।
2. शिक्षक कोई एक शब्द श्यामपट्ट पर लिखकर छात्रों को निर्देश दे सकता है कि प्रदत्त पद के अक्षरों द्वारा अधिक से अधिक सार्थक शब्द बनाओ। यथा–कमल-कल, कलश, मन, मगन, मधुर, लक्ष्मण, लखनऊ।
3. शिक्षक छात्रों को दो वर्गों में विभाजित करके एक वर्ग को किसी भी छात्र को कोई एक शब्द बोलने को कहता है। दूसरे वर्ग के छात्रों को ऐसा शब्द बनाने को कहा जाता है, जिसका प्रथम अक्षर पहले बोले हुए शब्द के अन्तिम अक्षर (वर्ण) के समान हो। इस यह प्रक्रिया निर्धारित समय तक चलती रहती है।

4. प्रतिलेख विधि–प्रतिलेख से अभिप्राय श्यामपट्ट या पुस्तक से नकल करके लिखने से है। इस विधि के अन्तर्गत शिक्षक द्वारा श्यामपट्ट पर लिखित कठिन शब्दों अथवा पाठ्यपुस्तक से कठिन शब्दों को छात्रों को अपनी अभ्यास पुस्तिकाओं पर लिखने को कहा जाता है। इस प्रकार के अभ्यास से छात्रों के मस्तिष्क में शब्द-चित्र जुड़ जाते हैं। इससे शब्दों की वर्तनी शुद्ध हो जाती है।

5. श्रुतलेख विधि–यद्यपि श्रुतलेख विधि का मुख्य उद्देश्य वर्तनी शिक्षण नहीं है, फिर भी वर्तनी शिक्षण में यह विशेष उपयोगी सिद्ध हुई है। इसके अन्तर्गत छात्र को अपने कान और मस्तिष्क को सक्रिय एवं सतर्क रखना पड़ता है क्योंकि इसमें संस्कृत ध्वनियों को शुद्ध रूप में सुनकर एवं समझकर लिखना होता है। शुद्ध-शुद्ध लिखने के लिये शब्दों की वर्तनी पर विशेष ध्यान देना पड़ता है। इससे छात्रों को शुद्ध वर्तनी का अभ्यास हो जाता है। मैसासन लिखते हैं–"श्रुतलेख बोले हुए शब्दों/पदों को शीघ्र समझने में छात्रों को प्रशिक्षित करता है तथा इसके प्रशिक्षक भी छात्रों की बोधगम्यता के प्रति अनुमान लगा सकता है। सामान्यता छात्रों को अपने पढ़े हुए शब्द/पद भलीभांति स्मरण भी रहते हैं।"

6. शब्दकोष विधि–इस विधि का उपयोग वर्तनी की शुद्धता के लिये किया जाता है। शब्दावली में वृद्धि के कारण नये-नये शब्द छात्रों के सामने आते हैं जिनके पढ़ने, लिखने और समझने में छात्रों को कठिनाई होती है। इसके निदान का सरल उपाय शब्दकोष का उपयोग ही है। शिक्षक छात्रों को शब्दकोष का उपयोग करना सिखायें और इसके प्रयोग के लिये प्रोत्साहित करें। इससे छात्रों में स्वाध्याय की प्रवृति जाग्रत होती है, वर्तनी में शुद्धता आती है और शब्द-भण्डार में वृद्धि होती है।

7. वर्तनी परीक्षण विधि–वर्तनी सिखाने को उपयोगी एवं प्रभावपूर्ण बनाने के लिये समय-समय पर शिक्षक द्वारा लिये गये वर्तनी परीक्षण विशेष लाभप्रद सिद्ध हुए हैं। इससे छात्रों को अपने द्वारा कृत वर्तनी की त्रुटियों का ज्ञान हो जाता है और वे उसमें सुधार हेतु पुनः प्रयास करते हैं। साथ ही शिक्षक को छात्रों की प्रगति का मूल्यांकन करने का अवसर मिल जाता है। इसके लिये वस्तुनिष्ठ परीक्षण अधिक उपयोगी हैं। यथा–

1. **पुनः स्मरण परीक्षण**–निम्नलिखित पदों की वर्तनी शुद्ध करके उनके समक्ष प्रदत्त कोष्ठक में लिखिए–
   (1) जन्मभूमिस्च ( )
   (2) संवतसरः ( )
   (3) पृकाशः ( )
2. **रिक्त स्थान पूर्ति परीक्षण**–निम्नलिखित पदों में रिक्त वर्णों/अक्षरों की पूर्ति करके शुद्ध कीजिए–
   (1) द्विसह–वर्षभ्यः
   (2) व्याप–णम्
   (3) र–न्द्रः
3. **एकान्तर प्रत्युत्तर परीक्षण**–निम्नलिखित पदों की वर्तनी यदि शुद्ध हो, तो अशुद्ध को और अशुद्ध हो, तो शुद्ध को काट दीजिए–
   (1) प्रासादम् शुद्ध/अशुद्ध
   (2) अर्थात शुद्ध/अशुद्ध
   (3) परीश्रमम् शुद्ध/अशुद्ध
4. **बहुसंख्यक चुनाव परीक्षण**–निम्नलिखित पदों के समूहों में से शुद्ध शब्द पर सही का निशान लगाइए–

(1) गृहित्वा	गृहीत्वा	ग्रहीत्वा
(2) महर्षिः	महार्षिः	माहर्षि
(3) मधुरं	मधूरं	मधरं

5. **मिलान परीक्षण**–नीचे तीन स्तम्भ दिये हैं। प्रथम स्तम्भ में पदद, दूसरे में उ पदों के अर्थ दिये हैं। तृतीय स्तम्भ में प्रत्येक अर्थ के सामने उसके वास्तवि पद लिखिए–

I	II	III
स्वजनः	सम्पूर्ण	
श्वजनः	एक बार	
सकलं	मल/विष्ठा	
शकलं	आत्मीयजन	
सकृत्	टुकड़ा	
शकृत्	कुत्ता	

संस्कृत भाषा व्याकरण की दृष्टि से एक क्लिष्ट भाषा है। फिर भी संस्कृत का व्याकरण सुनिश्चित है। अतः वर्तनी की शिक्षा के विषय में संस्कृत-शिक्षक के साथ-साथ विषय अध्यापकों को भी समुचित ध्यान देना चाहिए क्योंकि एक व्यक्ति कुछ भी नहीं कर सकता है। इसके लिये समन्वित प्रयास ही लाभदायक सिद्ध हो सकता है।

अभ्यास के प्रश्न

1. संस्कृत शिक्षण में अक्षर-विन्यास शिक्षण के महत्व को स्पष्ट करते हुए अशुद्ध वर्तनी के कारण बताइए।
2. "अशुद्ध वर्तनी से उच्चारण भी अशुद्ध होता है।" इस कथन की विवेचना करते हुए वर्तनी की अशुद्धियों के निवारण हेतु अपने सुझाव दीजिये।
3. अक्षर विन्यास अशुद्धियां कितने प्रकार की होती हैं? इनके कारणों पर प्रकाश डालते हुए निराकरण के उपाय सोदाहरण सहित स्पष्ट कीजिये।
4. "उच्चारण की अशुद्धता के वर्तनी दोष होता है।" व्याख्या कीजिये।
5. निम्नलिखित पर संक्षिप्त लेख लिखिए। उत्तर 15 पंक्तियों अथवा 100 शब्दों में होना चाहिए–
   (अ) अशुद्ध अक्षर विन्यास
   (ब) बर्तनी सिखाने की विधियां
   (स) शब्दकोष विधि
   (द) वर्तनी और खेल विधि
6. निम्नलिखित पर संक्षिप्त लेख लिखिये। उत्तर 15 पंक्तियों अथवा 100 शब्दों में होना चाहिए–
   (अ) संस्कृत शिक्षण के उद्देश्य
   (ब) संस्कृत वर्तनी के नियम
   (स) अक्षर विन्यास अशुद्धियों के कारण
   (द) अक्षर विन्यास परीक्षण विधि।

❑❑❑

अध्याय 19

संस्कृत विषय-वस्तु

धातु रूप–भू = होना (To be)–

यह भ्वादिगण की धातु है। इस गण में 'शप' विकरण जुड़ता, शपू का 'अ' शेष रह जाता है तथा धातु के इ, उ, व, ऋ को गुण होकर क्रमशः ए, ओ, व, र हो जाते हैं।

लट् लकार (वर्तमान काल)

प्रथम	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यम पुरुष	भवति	भवतः	भवन्ति
मध्यम पुरुष	भवसि	भवथः	भवथ
उत्तम पुरुष	भवामि	भवावः	भवामः

लङ् लकार (भूतकाल)

प्रथम	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यम पुरुष	अभवत्	अभवताम्	अभवन्
मध्यम पुरुष	अभवः	अभवतम्	अभवत
उत्तम पुरुष	अभवम्	अभवाव	अभवाम

पठ् धातु

लट् लकार (वर्तमान काल)

प्रथम	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यम पुरुष	पठति	पठतः	पठन्ति
मध्यम पुरुष	पठसि	पठसः	पठथ
उत्तम पुरुष	पठामि	पठावः	पठामः

लङ् लकार (भूतकाल)

प्रथम	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यम पुरुष	अपठत्	अपठताम्	अपठन्
मध्यम पुरुष	अपठः	अपठतम्	अपठत
उत्तम पुरुष	अपठम्	अपठाव	अपठामः

अस् धातु

लट् लकार

प्रथम	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यम पुरुष	अस्ति	स्तः	सन्ति
मध्यम पुरुष	असि	स्थः	स्थ
उत्तम पुरुष	अस्मि	स्वः	स्मः

लङ् लकार

प्रथम	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यम पुरुष	आसीत्	आस्ताम्	आसन्
मध्यम पुरुष	आसीः	आस्तम्	आस्त
उत्तम पुरुष	आसम्	आस्व	आस्म्

'कृ' करना (यद तनादिगण की धातु है, इसमें 'उ' विकरण लगता है।)

लट् लकार (वर्तमान काल)

प्रथम	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यम पुरुष	करोति	कुरूतः	कुर्वन्ति
मध्यम पुरुष	करोषि	कुरूथः	कुरूथ
उत्तम पुरुष	करोमि	कुर्वः	कुर्मः

लङ् लकार (भूतकाल)

प्रथम	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यम पुरुष	अकरोत्	अकुरूताम्	अकुर्वन
मध्यम पुरुष	अकरोः	अकुरूतम्	अकुरूत
उत्तम पुरुष	अकरवम्	अकुर्व	अकुर्म

लिख–लिखना

लट् लकार (वर्तमान काल)

प्रथम	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यम पुरुष	लिखति	लिखतः	लिखन्ति
मध्यम पुरुष	लिखसि	लिखथः	लिखथ
उत्तम पुरुष	लिखामि	लिखावः	लिखामः

लङ् लकार (भूतकाल)

प्रथम	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यम पुरुष	अलिखत	अलिखताम्	अलिखन्
मध्यम पुरुष	अलिखः	अलिखतम्	अलिखत
उत्तम पुरुष	अलिखम्	अलिखाव	अलिखाम

शब्द रूप

इकरान्त स्त्रीलिंग शब्द : लता (बेल)

प्रथम	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यम पुरुष	लता	लते	लताः
मध्यम पुरुष	लताम्	लते	लताः
उत्तम पुरुष	लतया	लताभ्याम्	लताभिः
चतुर्थ	लतायै	लताभ्याम्	लताभ्यः

पंचमी	लतायाः	लताभ्याम्	लताभ्यः
षष्ठी	लतायाः	लतयोः	लतानाम्
सप्तमी	लतायाम्	लतयोः	लतासु
सम्बोधन	हे लते!	हे लते!	हे लताः!

ईकारान्त स्त्रीलिंग शब्द नदी

प्रथम	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यम पुरुष	नदी	नद्यौ	नदयः
मध्यम पुरुष	नदीम्	नदयौ	नदीः
उत्तम पुरुष	नद्या	नदीभ्याम्	नदीभिः
चतुर्थ	नद्यै	नदीभ्याम्	नदीभ्यः
पंचमी	नद्याः	नदीभ्याम्	नदीभ्यः
षष्ठी	नद्याः	नद्योः	नदीनाम्
सप्तमी	नद्याम्	नद्योः	नदीषु
सम्बोधन	हे नदि!	हे नद्यौ!	हे नद्यः!

अकारान्त पुल्लिंग (राम)

प्रथम	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यम पुरुष	रामः	रामौ	रामाः
मध्यम पुरुष	रामम्	रामौ	रामान्
उत्तम पुरुष	रामेण	रामाभ्याम्	रामैः
चतुर्थ	रामाय	रामाभ्याम्	रामेभ्यः
पंचमी	रामात्	रामाभ्याम्	रामेभ्यः
षष्ठी	रामस्य	रामयोः	रामाणाम्
सप्तमी	रामे	रामयोः	रामेषु
सम्बोधन	हे राम!	हे रामौ!	हे रामाः!

हरि (इकारान्त पुल्लिंग)

प्रथम	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यम पुरुष	हरिः	हरी	हरयः
मध्यम पुरुष	हरिम्	हरी	हरीन्
उत्तम पुरुष	हरिणा	हरिभ्याम्	हरिभिः
चतुर्थ	हरये	हरिभ्याम्	हरिभ्यिः
पंचमी	हरेः	हरिभ्याम्	हरिभ्यः
षष्ठी	हरेः	हरयोः	हरीनाम्
सप्तमी	हरौ	हरयोः	हरिषु
सम्बोधन	हे हरे!	हे हरी!	हे हरयः

प्रत्यय–अनीयर, तव्यत्
समास (बहुव्रीहि, द्वन्द्व)

विधिलिङ् लकार (Potential Mood) के अर्थ में विधि कृदन्त (तव्यत् तथा अनीयर् आदि) प्रत्ययान्त शब्दों का प्रयोग होता है। जैसे–(1) आश्रममृगोऽयं न हन्तव्यो न हन्तव्यः (यह आश्रम का मृग है, इसे नहीं मारना चाहिए, नहीं मारना चाहिए) तथा (2) गृहमागतोऽपि शत्रुर्न सम्माननीयः (घर में आए हुए भी शत्रु का सम्मान नहीं करना चाहिए)। 'चाहिए' के अर्थ में 'तव्यत्' तथा 'चाहिए' अथवा 'योग्य है' इस अर्थ में अनीयर् प्रत्यय होता है।

नियम–

1. धातुओं से तव्यत् और अनीयर् होने पर धातु के स्वर (इ, उ, ऋ, ऌ) को गुण (ए, ओ, अर्, अल्) हो जाता है। जैसे–

   नी + तव्य = नेतव्यः (पुं०) — नी + अनीय = नयनीयः (पुं०)

   श्रु + तव्य = श्रोतव्यः (पुं०) — श्र + अनीय = अनीयः (पुं०)

   कृ + तव्य = कर्तव्यः (पुं०) — कृ + अनीय = करणीयः (पुं०)

2. यदि धातु सेट् है तो धातु और तव्य प्रत्यय के बीच में इट् (इ) लट् हो जाता है। जैसे–

   एध् + तव्य = एध + इट् (इ) + तव्य = एधितव्यम् (बढ़ना चाहिए)

   पठ् + तव्य = पठ् + इट् (इ) + तव्य = पठितव्य (पढ़ना चाहिए)

   भू + तव्य = भो + इट् (इ) + भवितव्यम् (होना चाहिए।

किन्तु 'अनीय' में सेट् धातुओं में इट् (इ) नहीं होता। जैसे–

एध + अनीय = एधनीयः, पठ् + अनीय = पठनीय, भू + अनीय = भवनीयः।

विशेष–अकर्मक धातुओं की तव्य तथा अनीय प्रत्ययान्त क्रियाएं प्रथमान्त, नपुंसकलिंग और एकवचन की होती है। उदाहरण–तेन जीवितव्यम्, जीवनीयम् वा–उसे जीना चाहिए तेन हसितव्यम् हसनीयम् वा–उसे हंसना चाहिए।

अब प्रमुख धातुओं के तव्य तथा अनीयर् प्रत्ययों के रूप दिये जाते हैं–

धातु	तव्यत् प्रत्ययान्त शब्द (पुं०)	अनीयर् प्रत्ययान्त शब्द (पुं०)
पठ् (पढ़ना)	पठितव्यः	पठनीयः
भुज् (खाना)	भोक्तव्यः	भोजनीयः
पा (पीना)	पातव्यः	पानीयः
गम् (जाना)	गन्तव्यः	गमनीयः
स्था (ठहरना)	स्थातव्यः	स्थानीयः
लभ् प्राप्त करना)	लब्धव्यः	लभनीयः
मुद् (प्रसन्न होना)	मोदितव्यः	मोदनीयः
याच् (मांगना)	याचितव्यः	याचनीयः
दिव् (चमकना)	देवितव्यः	देवनीयः
नृत् (नाचना)	नर्तितव्य	नर्तनीयः
तुद् (दुःख देना)	तोत्तव्यः	तोदनीयः
लिख् (लिखना)	लेखितव्यः	लेखनीयः
चुर् (चुराना)	चोरयितव्यः	चोरणीयः
दृश् (देखना)	द्रष्टव्यः	दर्शनीयः
नी (ले जाना)	नेतव्यः	नयनीयः
स्मृ (याद करना)	स्पर्तव्यः	स्मरणीयः
हृ (हरना)	हर्तव्यः	हरणीयः
अस् (होना)	भवितव्यः	भवनीयः
नश् (नष्ट होना)	नष्टव्यः	नशनीयः
स्पृश् (छूना)	स्प्रष्टव्यः	स्पर्शनीयः

भक्ष् (खाना)	भक्षयितव्यः	भक्षणीयः
घ्रा (सूंघना)	घ्रातव्यः	घ्राणीयः
सेव् (बोना)	सेवितव्यः	सेवनीयः
वप् (बोना)	वप्तव्यः	वपनीयः
मिल् मिलना)	मेलितव्यः	मेलनीयः
शक् (सकना)	शक्तव्यः	शकनीयः
श्रु (सुनना)	श्रोतव्यः	श्रवणीयः
हन् (मारना)	हन्तव्यः	हननीयः
दा (देना)	दान्तव्यः	दानीयः
सह् (सहन करना)	सोढव्यः, सहितव्यः	सहनीयः
त्रा (रक्षा करना)	त्रातव्यः	त्राणीयः
ज्ञा (जानना)	ज्ञातव्यः	ज्ञानीयः
ग्रह् (ग्रहण करना)	ग्रहीतव्यः	ग्रहणीयः
पच् (पकाना)	पक्तव्यः	पचनीयः
स्तु (स्तुति करना)	स्तोतव्यः	स्तवनीयः
वह् (ले जाना)	वोढव्यः	वहनीयः
वि+स्मृ (भूलना)	विस्मर्तव्यः	विस्मरणीयः
विद् (जानना)	वेदितव्यः	वेदनीयः
वच् (बोलना)	वक्तव्यः	वचनीयः
रक्ष् (रक्षा करना)	रक्षितव्यः	रक्षणीयः
यज् (पूजा करना)	यष्टव्यः	यजनीयः
मुच् (छोड़ना)	मोक्तव्यः	मोचीयः
क्री (खरीदना)	क्रेतव्यः	क्रयणीयः
क्रम् (चलना)	क्रन्तव्यः, क्रमितव्यः	क्रमणीयः
अधि+इ (पढ़ना)	अधेयव्यः	अध्ययनीयः
ईक्ष (देखना)	ईक्षितव्यः	ईक्षणीयः
इष् (चाहना)	एष्टव्यः	एषणीयः
आप् (प्राप्त करना)	आप्तव्यः	आपनीयः
प्र+आप् (प्राप्त करना)	प्राप्तव्यः	प्रापणीयः

कथ् (कहना)	कथयितव्यः	कथनीयः
अद् (खाना)	अत्तव्यः	अदनीयः
अर्च् (पूजा करान)	अर्चितव्यः	अर्चनीयः
अस् (होना)	भवितव्यः	भवनीयः
आरूह् (चढ़ना)	आरोढव्यः	आरोहणीयः
इ (जाना)	एतव्यः	अयनीयः
कृ (करना)	कर्तव्यः	करणीयः
कम्प् (कांपना)	कम्पितव्यः	कम्पनीयः
क्रन्द् (चिल्लाना)	क्रन्दितव्यः	क्रन्दनीयः
क्रीड् (खेलना)	क्रीडितव्यः	क्रीडनीयः
क्रुध् (क्रोध करना)	क्रोद्धव्यः	क्रोधनीयः
खन् (खोदना)	खनितव्यः	खननीयः
खाद् (खाना)	खादितव्यः	खादनीयः
गै (गाना)	गातव्यः	गानीयः
चर् (चरना, करना)	चरितव्यः	चरणीयः
चल् (चलना)	चलितव्यः	चलनीयः
चि (चुनना)	चेतव्यः	चयनीयः
चिन्त् (चिंता करना)	चिन्तयितव्यः	चिन्तनीयः
जन् (पैदा करना)	जनितव्यः	जननीयः
जप् (जपना)	जपितव्यः	जपनीयः
जि (जीतना)	जेतव्यः	जयनीयः
दुह् (दोहना)	दोग्धव्यः	दोहनीयः
दह् (जलना)	दग्धव्यः	दहनीयः
वस् (रहना)	वस्तव्यः	वसनीयः
हस् (हंसना)	हसितव्यः	हसनीयः

स्त्रीलिंङ्ग के उदाहरण–

ध्यै (ध्यान करना)	ध्यातवया (स्त्री०)	ध्यानीया (स्त्री०)
अभि+धा (कहना)	अभिधातव्या (स्त्री०)	अभिधानीया (स्त्री०)
शुच् (शोक करना)	शोचितव्या (स्त्री०)	शोचनीया (स्त्री०)

नपुंसकलिङ्ग के उदाहरण–

अव+स्था (ठहरना)	अवस्थातव्यम् (नपुं०)	अवस्थानीयम् (नपुं०)
त्यज् (छोड़ना)	त्यक्तव्यम् (नपुं०)	त्यजनीयम् (नपुं०)
शुच् (शोक करना)	शोचितव्यम् (नपुं०)	शोचनीयम् (नपुं०)

द्वन्द्व समास–जिस समास में पूर्वपद तथा उत्तरपद दोनों की प्रधानता होती है। उसे द्वन्द्व समास कहते हैं। इसके तीन भेद हैं–

1. इतरेत्तर द्वन्द्व–इसमें सभी पद प्रधान होते हैं।

उदाहरण–

धर्मश्य अर्थश्च	=	धर्मार्थै
धर्मश्च अर्थश्च कामश्च	=	धर्मार्थकामाः
सीता च रमा च	=	सीतारमे
हरिः च हरः च	=	हरिहरौ
लवः च कुशः च	=	लवकुशौ
पार्वती च परमेश्वरश्च	=	पार्वतीपरमेश्वरौ
सुखस्य च दुःखस्य च	=	सुखदुःखयोः, सुखदुःखस्य
शब्दश्च अथश्च	=	शब्दार्थौ
पत्रं च पुष्पं च फलं रच	=	पत्रपुष्पफलानि
कन्दः च मूलं रच फलं च	=	कन्दमूलफलानि
मित्रश्च वरूणश्च	=	मित्रावरूणौ
कृष्णश्च अर्जुनश्च	=	कृष्णार्जुनौ
गुरूः च शिष्यः च	=	गुरूशिष्यौ
वृक्षः च लता च	=	लतावृक्षो

2. समाहार द्वन्द्व–इसमें प्रत्येक पद की प्रधानता नहीं होती अपितु उससे एक सामूहिक अर्थ प्रकट होता है। यह समास सदा एकवचन नपुंसकलिंग में होता है। जैसे–

अहः च निशा च अनयोः समाहारः	=	अहर्निशम्
अहः च रात्रिः च अनयोः समाहारः	=	अहोरात्रम्
पाणी च पादौ च एषां समाहारः	=	पाणिपादम्
सर्पश्च नकुलश्च अनयोः समाहारः	=	सर्पनकुलम्
चरश्च अचरश्च अनयोः समाहारः	=	चराचरम्
मांसश्च शोणितन्च अनयोः समाहारः	=	मांसशोणितम्

यूकाश्च लिक्षाश्चः आसां समाहारः	=	यूकालिक्षम्
काकश्च उलूकश्च अनयोः समाहारः	=	काकोलूकम्
भेरी च पटहश्च अनयोः समाहारः	=	भेरीपटहम्
शीतश्च उष्णश्च अनयोः समाहारः	=	शीतोष्णम्, शीतोष्णे
सुखश्च दुःखश्च अनयोः समाहारः	=	सुखदुःखम्, सुखदुःखे
धर्मश्च अधर्मश्च अनयोः समाहारः	=	धर्माधर्मम्
पीने च पृथुलं च अनयोः समाहारः	=	पीनपृथुलम्

3. एकशेष द्वन्द्व–जहां द्वन्द्व समास में केवल एक ही पद शेष रहे वहां पर एक शेष द्वन्द्व होता है। जैसे–

माता च पिता च	=	पितरौ
भ्राता च भगिनी (अथवा स्वसा) च	=	भ्रातरौ
श्वश्रूश्च श्वशुरश्च	=	श्वशुरौ
पुत्रश्च पुत्री (दुहिता) च	=	पुत्रौ
हंसी च हंसश्च	=	हंसौ
शूद्र च शुद्रश्च	=	शूद्रौ
कुष्णश्च कुष्णश्च कुश्णश्च	=	कुष्णाः

विशेष–द्वन्द्व समास के निम्न उदाहरणों में समस्त पदों की रचना में सामान्य नियम नहीं लगते, अपितु, कुछ विशेष नियम रहते हैं। जैसे–

द्वौ च दश च	=	द्वादश
द्वौ च विंशतिश्च	=	द्वाविंशाति
अष्टौ च दश च	=	अष्टादश
अष्टौ च विंशतिश्च	=	अष्टाविंशतिः
त्रयश्च दश्च	=	त्रयोदश
त्रयश्च विंशतिश्च	=	त्रयोविंशतिः
अहश्य रात्रिश्च	=	अहोरात्रम्
द्यौश्च पृथिवी च	=	द्यावापृथिव्यौ
जाया च पतिश्च	=	दम्पती, जम्पती
स्त्री च पुमान् च	=	स्त्रीपुसौ
नक्तं च दिवा च	=	नक्तन्दिवम्

रात्रौ च दिवा च	=	रात्रिन्दिवम्
अहश्च दिवा च	=	अहर्दिवम्
उदक् च अवाक् च	=	उच्चावचम्

बहुब्रीहि समास–जिस समास में न तो पूर्व पद का अर्थ अभीष्ट होता है न उत्तर पद का अर्थ अभीष्ट होता है अपितु कोई अन्य पदार्थ ही अभीष्ट होता है, उसे बहुब्रीहि समास कहते हैं। बहुब्रीहि समास में दो या अधिक संज्ञा पद होते हैं तथा पदों का समास होने के उपरान्त समस्त पद से किसी अनय ही संज्ञा का बोध होता है।

बहुब्रीहि व कर्मधारय का भेद–कर्मधारय में प्रथम शब्द दूसरे शब्द का विशेषण होता है। जबकि बहुब्रीहि में दोनों शब्द मिलाकर (अर्थात् समस्त पद) किसी तीसरे शब्द के विशेषण हो जाते हैं। पीताम्बरम् में कर्मधारय समास है इसमें पीतम् शब्द अम्बरम् का विशेषण है। पीताम्बरः में पीतम् व अम्बरम् दोनों विष्णु के विशेषण हैं। अतः यह बहुब्रीहि समास हैं। जैसे–

प्राप्ताम् उदकं यम असौ	=	प्राप्तोदकः	(ग्रामः)
प्राप्तं धनं यं सः	=	प्राप्तधनः	(पुरुषः)
जितान इन्द्रियाणि यन सः	=	जितेन्द्रियः	(पुरुषः)
पराजिताः अरयः येन सः	=	पराजितारिः	(नृपः)
कृतं कार्य येन सः	=	उपहृतपशुः	(पुरुषः)
उपहृतः पशुः यस्मै सः	=	उपहृतपशुः	(रूद्रः)
निर्गतं भयं यस्मात् सः	=	निर्गतभयः	(पुरुषः)
निगर्त भयं यस्मात् तत	=	निर्भयं	(स्थानम्)
पतितं पत्रं यस्मात् सः	=	पतितपत्रः	(तरूः)
शुभम् आननम् यस्याः सा	=	शुभानना	(स्त्रीः)
महान् आशयः यस्य सः	=	महाशयः	(पुरुषः)
महान् अनुभावः यस्य सः	=	महानुभावः	(पुरुषः)
महत् यशः यस्य सः	=	महायशाः	(महायशस्कः)
चित्रौ गौः यस्य सः	=	चित्रगुः	(पुरुषः)
रूपवती भार्या यस्य सः	=	रूपवद्भार्याः	(पुरुषः)
महत् मनः यस्य सः	=	महामनाः	(मनस्वी पुरुषः)
उदात्तं मनः यस्य सः	=	उदात्तमनाः	(पुरुषः)
अलंकृतं शरीरं यस्य सः	=	अलंकृतशरीरः	(पुरुषः)

सत्यं प्रियं यस्य सः	=	सत्यप्रियः	(पुरुषः)
लम्बम् उदरं यस्य सः	=	लम्बोदरः	(गणेशः)
पीतम् अम्बरं यस्य सः	=	पीताम्बर	(विष्णुः)
श्वेतम् अम्बरम् यस्य सः	=	श्वेताम्बरः	(सरस्वती)
नीलम् अम्बरम् यस्य सः	=	नीलाम्बरः	(आकाशः)
दिशः अम्बराणि यस्य सः	=	दिगम्बरः	(शिवः)
यशः एव धनं यस्य सः	=	यशोधनः	(वीरः)
महान् आत्मा यस्य सः	=	महात्मा	(गन्धिः)
चत्वारि मुखानि यस्य सः	=	चतुर्मुखः	(ब्रह्मः)
दश आननानि यस्य सः	=	दशाननः	(रावणः)
मृतः पुत्र यस्य सः	=	मृतपुत्रः	(ब्राह्मणः)
मृता भार्या यस्य सः	=	मुतभार्याः	(पुरुषः)
नष्टा शक्तिः यस्य सः	=	नष्टशक्तिः	(पुरुषः)
कृष्णा मतिः यस्य सः	=	कुष्णमतिः	(पुरुषः)
विमला मतिः यस्य सः	=	विमलमतिः	(पुरुषः)
विगतः धवः यस्याः सा	=	विधवा	(स्त्रीः)
धनुः पाणौ यस्य सः	=	धनुष्पाणिः	(रामः)
अस्त्रं पाणौ यस्य सः	=	अस्त्रपाणिः	(हरः)
खड्गं पाणौ यस्य सः	=	खड्गहस्तः	(पुरुषः)
खड्गं पाणौ यस्य सः	=	खड्गपाणिः	(पुरुषः)
कण्ठे कालः यस्य सः	=	कण्ठकालः	(शिवः)
चक्र पाणौ यस्य सः	=	चक्रपाणि	(विष्णुः)
शीतः अंशवः रयस्य सः	=	सीतांशुः	(चन्द्रमाः)
चन्द्रः शेखरे यस्य सः	=	चन्द्रशेखरः	(शिवः)
लब्धा प्रतिष्ठा येन सः	=	लब्धप्रतिष्ठः	(पुरुषः)
भग्नः उत्साहः यस्य सः	=	भग्नोत्साहः	
शोभनः दन्ताः यस्य सः	=	सुदन्	(पुरुषः)
प्रियं दर्शनं यस्या सा:	=	प्रियदर्शनी	(स्त्रीः)
घोरा आकृतिः यस्य सा	=	घोराकृतिः	

अविद्यमानाः प्रजाः यस्य सः	=	अप्रजः	
भीमः पराक्रम यस्य सः	=	भीमपराक्रम	(भीमः)
अवद्यमानो वत्सः यस्या सः	=	अवत्सा	(गौः)
अविद्यमानः पुत्रः यस्य सः	=	अपुत्रः	(पुरुषः)
पुत्रेण सह विद्यमानः	=	सपुत्रः	(पिता:)
परिवारेण सह विद्यमानः	=	सपरिवार	(गृहस्वामी:)
भार्यया सह विद्यमानः	=	सभार्यः	(यतिः)
नास्ति किन्चन यस्य सः	=	अकिंचन	(पुरुषः)
चन्द्रः इव मुखं यस्याः सा	=	चन्द्रमुखी	(स्त्री:)
शुभम् आननं यस्याः सा	=	शुभानना	(स्त्री:)
मृगस्य नयने इव नयने यस्याः सा	=	मुगनयनी	(स्त्री:)
गन्तुं मनः यस्य सः	=	गन्तुमनाः	(जाने का इच्छुक)
वीराः पुरुषाः यस्मिन् सः	=	वीरपुरुषकः, वीरपुरुषः	(ग्रामः)
प्रभूतं सलिलं यस्मिन् तत्	=	प्रभूतसलिलम्	(तडागम्:)
विमलम् उदकं यस्यां सा	=	विमलोदका	(वापी:)
दण्डैश्च दण्डेश्च प्रहृत्य इदं युद्धं प्रवृत्तम्	=	दण्डादण्डि	(युद्धः)

अभ्यास के प्रश्न

1. बहुब्रीहि समास की परिभाषा उदाहरण सहित है।
2. प्रत्यय से आप क्या समझते हैं? तव्यत् और अनीयर प्रत्यय के उदाहरण दें
3. लिख् और अस् धातु के लृट और लकार लिखें।
4. निम्नलिखित समस्तपदों का विग्रह करें–
   दिगम्बर, चक्रपाणि, गणेशः, चन्द्रमुखी, स्थानम्, नष्टशक्तिः।
5. द्वन्द्व समास की परिभाषा उदाहरण सहित लिखें।

❑❑❑

अध्याय 20

शब्दार्थ तथा अनुवाद

1. प्रकृति-विवादः

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
ग्रीष्मर्तौ	गर्मी की ऋतु में	पचण्डोष्मणा	भीषण गर्मी से
विक्लम्य	निकलकर	स्वेदबिन्दवः	पसीने की बूंदें
विकासार्थम्	खिलने के लिए	द्विविधानि	दो प्रकार के
सुमुदानि	कमलनियां	वयस्य	मित्र
मण्डूकाः	मेंढक	कुर्माः	कछुए
आमर्दात्	दबाने से	भीताः	डरे हुए
विलोक्य	देखकर	अवकरैः	कूड़े-कचरे से
नक्राः	मगरमच्छ	कर्तनेन	काटने से
सजलाः	जड़ सहित	वर्तुलाकारेण	गोलाकार से
वृक्षावलिः	वृक्षों की पंक्ति	अर्पयन्ति	प्रदान करते हैं
निदाघे	भीषण गर्मी में		

2. सूर्यस्य शक्तिः

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
अस्मिन्	इसमें	दृश्यमानेषु	दिखाई देने वालों में
जनयिता	उत्पन्न करने वाला	उष्मणः	गर्मी का
संचालनाय	चलाने के लिये	पाककर्मणि	खाना बनाने के काम में
अल्पीयानि	कम	क्षेत्राणाम्	खेतों में
महती	बहुत बड़ी	यतोहि	क्योंकि
कतिपयाः	कुछ	आतपे	धूप में
चर्मणाम्	किरणों में	त्वचः	चमड़ी के

उदीयमानस्य	उगते हुए का	अर्धशिरोवेदना	आधे सिर की पीड़ा
संपोषिका	पोषण करने वाली	अवदानम्	योगदान
शैल्यम्	शीतलता	पादपानाम्	पौधों का
उपासन्ते	उपासना करते हैं		

3. वीरवरस्य स्वामिभक्तिः

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
अभूत्	हुआ	प्रजावत्सलः	प्रजा से प्रेम करने वाला
कश्चन	कोई	स्ववृत्तये	अपने वेतन के लिये
दीनारशतपंचकम्	पांच सौ दीनार	अमात्यैः सह	मन्त्रियों के साथ
तावतीम्	उतनी	विधाय	करके
धृतायुधः	हथिकार पकड़कर	निजवासम्	अपने घर को
असौ	यह	करवालम्	तलवार को
धृत्वा	पकड़कर	स्वानुचरैः	अपने सेवकों के साथ
दैनन्दिनीम्	दिनचर्या	अशृणोत	सुना
निरूपणाय	जानने के लिये	आदिशत्	आदेश दिया
सूचिभेद्ये	बहुत घने	पृष्टा	पूछी
अद्यतः	आज से	ध्रुवम्	निश्चित्
अपायः	विपत्ति	सत्त्वोत्कर्षेण	साहस की प्रमुखता से
अलक्षितः	लौटकर	आकर्ण्य	सुनकर
श्लाध्यः	प्रशंसनीय	अङ्गरागताम्बूलादिक्रयणे	प्रसाधन सामग्री और पान आदि के खरीदने में

4. यक्ष-युधिष्ठिर-संवादः

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
किस्विद्	क्या	गुरुतरम्	अधिक भारी
खात्	आकाश से	बहुतरम्	बहुत फैलने वाली
वातात्	वायु से	प्रवसतः	परदेश में रहने वाले का

	रहने वाले का	सार्थः	अर्थ सहित, धन सहित
	पत्नी	भिषङ्	दवाई
	इच्छित	वः	तुम्हारा
	तल्लीन	सापत्नम्	सौतेले भाई को
	अब		

5. शिशुर्भरतः

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
यानिर्दिष्कर्मा	निदेर्शानुसार कार्य करता हुआ	जृम्भस्व	जम्हाई लो
	हमारे	सत्त्वानि	जीवों को
	नाराज कर रहे हो	संरम्भः	हठ
करोषि	आक्रमण करेगी	विरमयितुम्	रोकने के लिये
स्थयिष्यति	कुटिया में	उपहर	दो
	पास में	एहि	आओ
र्घम्	देखकर	व्यपदेशः	कुल
र्ण्य	घबराहट के साथ	परिभ्रष्टम्	गिर गया
द्वेगम्	विकृत रूप, परिवर्तन	परिष्वजते	गले लगाता है
क्रिया			

6. हारीतस्य दयालुता

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
	प्राचीन काल में	समुपजातकरुणः	दया उत्पन्न
शिशुः	तोते का बच्चा		होने के कारण
भ्रष्ट	गिरा हुआ	प्रतिभाति	प्रतीत होता है
शोषकतजीवितः	कुछ ही क्षण	मुहुर्मुहुः	बार-बार
	जीने वाला	विवृणोति	खोलता है
भिः	प्राणों से	नय	ले जाओ
यत्	पिलाया	नवनलिनीदलस्य	नए कमलिनी
	रखकर		के पत्ते की
म्	पूजा योग्य जल	धौतवल्कलम्	धुले हुए बल्कल को

7. क्षितौ राजते भारतस्वर्णभूमिः

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
पीयूषतुल्यम्	अमृत के समान	धरा	पृथ्वी
पूरिता	भरी हुई	राष्ट्ररक्षातानाम्	राष्ट्र की रक्षा में संलग्न
वीर भोग्या	वीरों के भोगने योग्य	पर्वाणाम्	त्योहारों की
विपश्चित्	विद्वान्	भिषक्शास्त्रिणाम्	चिकित्सा शास्त्र
युतानाम्	लगे हुए		के वैद्यों की
भूधराणाम्	पर्वतों की	शिखीनाम्	मोरों की

8. ग्राम्यजीवनम्

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
अत्रत्याः	यहां के	वपन्ति	बोते हैं
कुल्या	बावड़ी	प्रभूतमात्रा ाम्	बहुत अधिक मात्रा में
एतदर्थम्	इसके लिये	महिषीम्	भैंस को
तक्रम्	लस्सी	रथ्या	गली
केदाराः	क्यारियां	जलप्लावनैः	बाढ़ से
विपन्नम	दरिद्र	वृषभाः	बैल
इक्षुरसाः	गन्ने का रस	द्रष्टव्या	देखना चाहिए
नैसर्गिक रूपेण	स्वभाविक रूप से	तर्हि	तो

कक्षा 10

1. वाङ्मयं तपः

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
(अ) शारदा	विद्या की देवी, सरस्वती	अम्बुजम्	कमल
सन्निधिम्	उपस्थिति	अपूर्वः	अलौकिक, विचित्र
व्ययतः	खर्च करने के लिये	आयाति	प्राप्त होता

प्रह्लादयति	प्रसन्न करता है	शुश्रुषा	सुनने की इच्छा
ऊह	चिन्तन करना, तर्क करना	अपोह	शंका दूर करना
माधुर्यम्	मधुरता, मिठास	अक्षरव्यक्तिः	वर्णों का स्पष्ट उच्चारण
पादम्	चतुर्थ अंश	आदत्ते	ग्रहण करता है
स्वमेधया	अपनी बुद्धि से	अनुद्वेगकरम्	व्याकुलता उत्पन्न न
प्रियहितम्	प्रिय एवं हितकारी		करने वाला
अभ्यसनम्	अभ्यास करना	वाङ्मयम्	वाणी का
(आ) शुश्रुषा	श्रोतुमिच्छा	ऊहः	पक्षे तर्क
अपोहः	विपक्षे तर्क	पादम्	चतुर्थांशम्
सन्निधिम्	निवासम्	वदनम्	मुखम्
वाक्	वाणी	भारती	सरस्वती

2. आज्ञा गुरुणां हि अविचरणीया

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
(अ) कश्मिंश्चित्	किसी	वानरयूथम्	बन्दरों के झुण्ड की
पुष्टिम्	पोषण	मेषयूथम्	भेड़ों का झुण्ड
महानसम्	रसोई	सूपकाराः	रसोइए
मृण्मयम्	मिट्टी का	आशु	शीघ्र
अवेक्ष्य	देखकर	कपीन्	बन्दरों को
आहूय	बुलाकर	रहसि	एकान्त में
नूनम्	निश्चय ही	हर्म्याणि	महल
सैहृदम्	मित्रता	अश्रद्धेयम्	विश्वास के अयोग्य
मदोद्धताः	मद से घमण्डी	विहाय	छोड़कर
ऊर्णाप्रचुरः	ऊन की अधिक मात्रा	लुठति	लोटता है
इतस्ततः	इधर-उधर	घोटकाः	घोड़े
मेदसा	चर्बी से	अवधीरिताः	तिरस्कृत किया गया
(आ) भूपतिः	नृपतिः	अहर्निशम्	दिवारात्रौ
कपीन्	वरनरान्	घोटकाः	अश्वाः
रिपवः	शत्रवः	क्षितौ	पृथिव्याम्
सपदि	शीघ्रम्		

3. किं किम् उपादेयम्

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
(अ) उपादेयम्	ग्रहण करने योग्य	हेयम्	त्यागने योग्य
सततम्	निरन्तर	अधिगत तत्त्व	जानी
पथ्यतरः	लाभकारी, गुणकारी	शुचिः	पवित्र
अवधीरणा	निन्दा, अनादर	जाड्यम्	मूर्खता, जड़ता
जागर्ति	जागता है	तरलम्	चंचल
शशिनः	चन्द्रमा की	दक्षः	चतुर, निपुण
अनर्घम्	अमूल्य	शल्यम्	कांटा
प्रच्छन्नम्	गुप्त रूप से, छिपकर	क्व	कहां
लाभाढ्ये	लाभ से परिपूर्ण	बधिरः	गूँगा
वक्तुम्	कहना, बोलना		
(आ) हेयम्	त्याज्यम्	अवधीरणा	तिरस्कारः
अनवद्यम्	निष्कलङ्कम्	दक्षः	कुशलः
पथि	मार्गे	वक्तुम्	कथयितुम्
प्रच्छन्नम्	गुप्तम्		

4. नास्ति त्यागसमं सुखम्

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
(अ) वृद्धोपसेवी	वृद्धों की सेवा करने वाला	रतः	लीन
		औदार्य	उदारता
समन्ततः	चारों ओर	अकारयत्	बनवाया
अर्थिनाम्	याचकों की	आकर्ण्य	सुनकर
विलोक्य	देखकर	नूनम्	निश्चय ही
संजातम्	हो गया	तत्पुरतः	उसके आगे
आशान्वितः	आशा से युक्त होकर	उवाच	बोला
लोकयात्रा	जीवनयात्रा	दुष्करम्	कठिन
विषण्णा	दुःखी	नीलोत्पलम्	नीलकमल

अक्षतम्	बिना घाव के	प्रयतिष्ये	प्रयत्न करूंगा
उपागतः	आया	वृणीष्व	मांगे
अन्तर्हितः	अन्तर्धान, अदृश्य		
(आ) बभूव	अभवेत्	शक्रः	इन्द्रः
प्रभूतम्	अत्यधिकम्	प्रतीत्या	प्रसन्नताय
विप्रः	ब्राह्मणः	अमात्याः	मन्त्रिणः

5. अभ्यासवशगं मनः

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
(अ) वार्ष्णेय	हे कृष्ण	नियोजित	लगाए हुए
महाशनः	बहुत खाने वाले, बहुत भोग भोगने वाला	एनम्	इसको
		विद्धि	समझ, जान
प्राक्	पहले	सोढुम्	सहन करने वाला
विषयान्	विषय-वासनाओं को	ध्यायतः	चिन्तन करते हुए
पुंसः	मनुष्य	सम्मोहः	मोह, मूढता
भरतर्षभ	हे भारतवंशियों में श्रेष्ठ	नियम्य	वश में करके, अधीन करके
प्रजहि	मार डालो	प्रमाथि	मथने वाला, उद्विग्न
निग्रहम्	नियन्त्रण को, वश में करने वाला	महाबाहो	करने वाला हे विशाल भुजाओं वाले
चहम्	चंचल		
(आ) विद्धि	जानीहि	मन्ये	अवगच्छामि
शक्नोति	अर्हति	गृह्यते	वशीक्रियते
चरति	करोति	प्रजहि	विनाशय

6. साधुवृत्तिं समाचरेत्

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
(अ) गर्तसङ्कुले	गड्ढों से भरे हुए	प्रेक्ष्य	देखकर
नतोन्नते	ऊँचे-नीचे	उद्दण्डः	जिद्दी, शरारती

श्रेयस्करम्	मंगलकारी, कल्याणकारी	प्रतिहतान्तकरण:	दु:खी मन वाला
समुन्मीलिता	खोल दी	तिरस्कृत्य	अपमानित करके
प्रतिनिवृत्त:	लौट आया	दग्धमानम:	जले हुए मन वाला
आपदाम्	विपत्ति में	तरणि:	पार लगाने वाला
व्यसनम्	दु:ख	परिदेवयेत्	विलाप करता है
समधिगच्छति	प्राप्त करता है	पूर्यते	भरता है
शस्य क्षेत्रे	फसल वाले खेत में	सुप्तोत्थित:	सोकर उठा हुआ
अश्वत्थतरुमूले	पीपल के वृक्ष की जड़ में	झटिति	शीघ्र
		दम्पती	पति-पत्नी
(आ) द्रविणम्	धनम्	वीक्ष्य	दृष्ट्वा
अक्षि	नेत्रम्	परित्यज्य	त्यक्त्वा
आदाय	नीत्वा	विषधर:	सर्प

7. रमणीया हि सृष्टि एषा

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
(अ) प्राङ्गणे	आँगन में	अधिकृत्य	आधार बनाकर
कनिष्ठ:	छोटा	काञ्चनस्य	सोने का
नीरक्षीर विवेके	पानी और दूध को अलग-अलग करने में	अवधूय	हिलाकर, फड़फड़ाकर
		सरांसि	तालाबों को
अविचलम्	स्थिर भाव से	अपरिगणयन्त:	गणना न करके
अहिभुजम्	सांपों को खाने वाले	वराकान्	बेचारे
अधिगृह्य	पकड़कर	पिच्छानाम्	पांखों के
केकारवम्	मोर की आवाज़	मधुमासे	वसन्त
मिथ:	आपस में	मोदध्वम्	आनन्द मनाइए
भावयन्त:	श्रेष्ठ भावना रखते हुए		
(आ) क्वणितै:	ध्वनिभि:	हृष्यन्ति	पुलकित
अनृतं	असत्यम्	काञ्चनस्य	स्वर्ण
अवमानितम्	तिरस्कृतम्	चारु	सुन्दर

8. तिरुक्कुरल्-सूक्ति-सौरभम्

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
(अ) अवक्रता	सरलता	समत्वम्	समानता
धर्मप्रदाम्	धर्मयुक्त, धर्मनिष्ठ	परुषाम्	कठोर
अभ्युदीरयेत्	बोले	पक्वम्	पके हुए
प्रकीर्तिता:	कहे गए	तत्त्वार्थनिर्णय:	यथार्थ ज्ञान का निर्णय
ईरित:	कहा गया	वाक्यपटु:	बोलने में निपुण
अकातर:	न घबराने वाला	परिभूयते	अपमानित किया जाता है
प्रभूतानि	अत्यधिक	आचार:	सदाचार
(आ) चित्तम्	मन:	मुखम्	वदनम्
प्रभूतम्	भूरि	चक्षुष्	नयनम्
श्रेय:	शुभम्, कल्याणम्		

9. राष्ट्रं संरक्षयमेव हि

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
(अ) पापकर्मा	पाप करने वाला	समीचीनम्	ठीक, अच्छा
हन्तुम्	मारने के लिये	अलम्	पर्याप्त
आपद्गतेन	विपत्ति में फंसने पर	आश्वस्त:	निश्चिन्त
त्वत्त:	तुम से	गृहाण	ग्रहण करो
सव्येन पाणिना	बांए हाथ से	खिन्नम्	दु:खी
प्रार्थितम्	मांगा गया	स्वान्तम्	मन ही मन में
उत्सृज्यते	छोड़ा जाता है	समन्तात्	चारों ओर से
प्रचण्डानल शिखा:	भयंकर आग की लपटें	विदीर्यन्ते	टूटती हैं
		शास्त्रविद:	शास्त्र को जानने वाले
बद्धाञ्जलि:	दोनों हाथ होड़कर	संह्रियते	लौटाया जाता है
(आ) प्रकृतिम्	स्वभावम्	रणे	युद्धे
दिव्याम्	अलौकिकम्	द्रौणि:	अश्वत्थामा
प्रार्थितम्	याचितम्		

10. सुस्वागतं भो! अरुणाचले ऽस्मिन्

	शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
(अ)	तदैव	तभी	समुत्सुकाः	इच्छुक जिज्ञासु
	स्रोतः	उद्गम स्थान	हरीतिमा	हरियाली
	कपोले	गाल पर	लिम्पन्ति	लीपते हैं, मलते हैं
	गोमहिषसदृशः	गाय और भैंस के समान	अत्रत्यानाम्	यहां के
			अवशेषाः	खण्डहर
	राजते	विराजमान है	प्रक्षेपकयन्त्रेण	प्रोजेक्टर से
	ज्ञायताम्	जानिए	अभयारणयानि	घना जंगल
(आ)	विपुलाः	अत्यधिकाः	शोभनम्	सुन्दरम्
	तुङ्गशृङ्गैः	उच्चशिखरैः	तरङ्गिणी	नदी

11. कालोऽहम्

	शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
(अ)	कलयामि	देखता हूँ	परिवर्तमानः	बदलता हुआ
	वीक्षमाणः	देखता हुआ	कृतयुगम्	सत्युग
	प्रवर्तमानस्य	प्रवृत हुए	परिचायकः	परिचय कराने वाला
	षण्मासाः	छः महीने	युता	युक्त
	संवत्सरस्य	वर्ष का	अक्षत्वेन	धुरी के रूप में
	शाश्वतः	सदा रहने वाला	शुभाशंसा	शुभकामना
(आ)	जायते	उत्पद्यते	ब्रह्मणः	प्रजापतेः
	कलनस्य	गणनायाः	विभुः	व्यापकः
	अवाप्नोतु	प्राप्नोतु		

अनुवाद

कक्षा 8 के लिए

हिन्दी में संस्कृत में अनुवाद करते समय निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना आवश्यक है–

1. वचन–संस्कृत में तीन वचन होते हैं–एकवचन, द्विवचन तथा बहुवचन। एक के लिये एकवचन, दो के लिये द्विवचन तथा तीन या अधिक के लिये बहुवचन का प्रयोग होता है।

2. लिङ्ग–संस्कृत में तीन लिङ्ग होते हैं, पुल्लिंग–रामः, हरिः; स्त्रीलिंग–लता, नदी; नपुंसकलिंग–पुस्तकम्, फलम्।

3. पुरुष–संस्कृत में तीन पुरुष होते हैं–प्रथम पुरुष (अन्य पुरुष), मध्यम पुरुष तथा उत्तम पुरुष। इसके अतिरिक्त जो भी वाक्य में किसी क्रिया के कर्ता हैं, वे सब प्रथम पुरुष में रहते हैं। जैसे–

पुल्लिंग–सः (वह), तौ (वे दोनों), ते (वे सब)।
स्त्रीलिंग–सा (वह), ते (वे दोनों), तानि (वे सब)।
नपुंसकलिंग–तत् (वह), ते (वे दोनों), तानि (वे सब)।
पुल्लिंग–भवान् (आप), भवन्तौ (आप दोनों), भवन्तः (आप सब)
स्त्रीलिंग–भवती (आप), भवत्यौ (आप दोनों), भवत्यः (आप सब)
कोई भी नाम–रामः, लताः, हरिः, गुरुः आदि।

मध्यम पुरुष में कर्ता के रूप में त्वम् (तुम) युवाम् (तुम दोनों), यूयम् (तुम सब) रहते हैं। उत्तम पुरुष में अहम् (मैं), आवाम् (हम दोनों) तथा वयम् (हम सब) होते हैं।

4. लकार–संस्कृत में दस लकार होते हैं। साधारण अनुवाद के लिये पांच लकारों का प्रयोग ही मुख्यतः होता है–

1. **लट् लकार**–वर्तमान काल–पठति (पढ़ता है)
2. **लङ् लकार**–भूतकाल–अपठत् (पढ़ा)
3. **लृट् लकार**–भविष्यत काल–पठिष्यति (पढ़ेगा)
4. **लोट् लकार**–आज्ञा देने में–पठतु (पढ़े)
5. **विधिलिंङ्**–आज्ञा, चाहिए–पठेत (पढ़ना चाहिए)

5. धातु–संस्कृत में तीन प्रकार की धातु होती हैं–

1. **परस्मैपदी धातु**–पठ्–पठि, पठतः, पठन्ति।

2. आत्मनेपदी धातु–सेव्–सेवते, सेवेते, सेवन्ते।

3. उभयपदी धातु–याच् (प.)–याचति, याचतः, याचन्ति। (आ.) याचते, याचेते, याचन्ते।

6. कर्ता के अनुसार क्रिया का वचन और पुरुष होता है अर्थात् यदि कर्ता प्रथम पुरुष–एकवचन का है तो क्रिया भी प्रथम पुरुष एकवचन की ही होगी। जैसे–सः पठति।

7. तीनों लिंगों में धातु का एक ही रूप रहता है। जैसे–

पुल्लिंग–वह जाता है–सः गच्छति।

स्त्रीलिंग–वह जाती है–सा गच्छति।

नपुंसकलिंग–वह (मित्र) जाता है–तत् (मित्रं) गच्छति।

8. 'च' (और) का प्रयोग हिन्दी के प्रयोग से एक शब्द के बाद किया जाता है। जैसे–राम और हरि जाते हैं–रामः हरिः च गच्छतः।

9. सर्वनाम शब्दों और विशेषण शब्दों का वही लिंग, विभक्ति और वचन होता है, जो विशेष्य शब्दों का होता है। जैसे–

(1) कः बालकः, कं बालकम्, का बालिका, कां बालिकाम्।

(2) सुन्दरः नरः, सुन्दरी नारी, सुन्दरं फलम्।

10. संस्कृत में छः कारक होते हैं। यद्यपि संबंध को कारक नहीं माना जाता है तथा सम्बोधन को प्रथमा का भेद माना जाता है, तो भी व्यवहार एवं प्रयोग की दृष्टि से यहां उन्हें कारकों के रूप में ही रखा जा रहा है।

कारक	चिह्न
कर्ता	ने
कर्म	को
करण	से, के द्वारा
सम्प्रदान	के लिये
अपादान	से (अलग)
संबंध	का, के, की, रा, रे, री
अधिकरण	में, पर
सम्बोधन	हे, अरे

विभक्ति		वाक्य प्रयोग
प्रथमा	राम पढ़ता है	रामः पठति।
द्वितीया	राम घर जाता है	रामः गृहं गच्छति।

तृतीया	राम गेंद से खेलता है	रामः कन्दुकेन क्रीडति।
चतुर्थी	ब्राह्मण को धन दो	ब्राह्मणाय धनं देहि।
पंचमी	पेड़ से गिरता है	वृक्षात् पतति।
षष्ठी	राम का घर है	रामस्य गृहम् अस्ति।
सप्तमी	घर में माँ है	गृहे माता अस्ति।
सम्बोधन	हे राम! यहां आओ	हे राम! अत्र आगच्छ।

संस्कृत के पांच लकारों के आधार पर वाक्य-रचना

विशेष–यहां गम् (जाना) धातु को आधार बनाकर वाक्य रचना की जा रही है।

1. लट् लकार (वर्तमान काल)

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	गच्छति	गच्छतः	गच्छन्ति
मध्यम पुरुष	गच्छसि	गच्छथः	गच्छथ
उत्तम पुरुष	गच्छामि	गच्छावः	गच्छामः

(क) प्रथम पुरुष

1. पुल्लिंग– तत् (वह)	1. वह जाता है।	सः गच्छति।
	2. वे दो जाते हैं।	तौ गच्छतः।
	3. वे सब जाते हैं।	ते गच्छन्ति।
भवत् (आप)	4. आप जाते हैं।	भवान् गच्छति।
	5. आप दो जाते हैं।	भवन्तौ गच्छतः।
	6. आप सब जाते हैं।	भवन्तः गच्छन्ति।
नाम, संज्ञा शब्द	7. राम जाता है।	रामः गच्छति।
	8. राम और हरि जाते हैं।	रामः हरिः च गच्छतः।
	9. राम, हरि और गोविंद जाते हैं	रामः, हरिः गोविन्दः च गच्छन्ति।
	10. बालक जाता है।	बालकः गच्छति।
	11. दो बालक जाते हैं।	बालकौ गच्छतः।
	12. सब बालक जाते हैं।	बालकाः गच्छन्ति।

2. स्त्रीलिंग–(तत् (वह)	1. वह जाती है।	सा गच्छति।
	2. वे दो जाती हैं।	ते गच्छतः।
	3. वे सब जाती हैं।	ताः गच्छन्ति।
भवत् (आप)	4. आप जाती हैं।	भवती गच्छति।
	5. आप दो जाती हैं।	भवत्यौ गच्छतः
	6. आप सब जाती हैं।	भवत्यः गच्छन्ति।
नाम संज्ञा शब्द	7. लता जाती है।	लता गच्छति।
	8. लता और सीता जाती है।	लता सीता च गच्छतः।
	9. लता, सीता और गीता जाती है।	लता, सीता गीता च गच्छन्ति।
	10. बालिका जाती है।	बालिका गच्छति।
	11. दो बालिकाएं जाती हैं।	बालिके गच्छतः।
	12. सब बालिकाएं जाती हैं।	बालिकाः गच्छति।
3. नपुंसकलिंग– (मित्र, फल नपुंसक लिंग है)	1. मित्र जाता है।	मित्रं गच्छति।
	2. दो मित्र जाते हैं।	मित्रे गच्छतः।
	3. सब मित्र जाते हैं।	मित्राणि गच्छन्ति।
	4. फल गिरता है।	फलं पतति।
	5. दो फल गिरते हैं।	फले पततः।
	6. बहुत फल गिरते हैं।	फलानि पतन्ति।
(ख) मध्यम पुरुष	1. तू जाता है या तुम जाते हो।	त्वं गच्छसि।
	2. तु दोनों जाते हो।	युवाम् गच्छथः।
	3. तुम सब जाते हो।	यूयं गच्छथ।
(ग) उत्तम पुरुष	4. मैं जाता हूँ।	अहं गच्छामि।
	5. हम दोनों जाते हैं।	आवां गच्छावः।
	6. हम सब जाते हैं।	वयं गच्छामः।

अभ्यास 1 (लट् लकार)

1. वह खेलता है।
2. तू आता है।
3. वे दोनों हँसते हैं।
4. तुम दोनों पढ़ते हो।
5. वह क्या करती है।
6. तुम कहाँ रहते हो।
7. नदी बहती है।
8. आप कहाँ देखते हो।
9. वे सब कहाँ से (कुतः) आते हैं।
10. राधा और रेखा गाती है।
11. वह कौन (कः) है।
12. राजा रक्षा करता है।
13. लड़कियां नमस्कार करती हैं।
13. हम सब बोलते हैं।
15. माता पकाती है और मैं खाता हूँ।
16. वे खाते हैं और हम पीते हैं।
17. आप आज नहीं पढ़ती हैं।
18. वह पुस्तक है।
19. हम दोनों वहाँ बैठते हैं।
20. दो बालक चोरी करते हैं।

2. लङ् लकार (भूतकाल)

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अगच्छत्	अगच्छताम्	अगच्छन्
मध्यम पुरुष	अगच्छः	अगच्छतम्	अगच्छत
उत्तम पुरुष	अगच्छम्	अगच्छाव	अगच्छाम

(क) प्रथम पुरुष

1. पुल्लिंग–तत् (वह)	1. वह गया।	सः अगच्छत्।
	2. वे दोनों गये।	तौ अगच्छताम्।
	3. वे सब गये।	ते अगच्छन्।
भवत (आप)	4. आप गये।	भवान् अगच्छत्।
	5. आप दोनों गये।	भवन्तौ अगच्छताम्।
	6. आप सब गये।	भवन्तः अगच्छन्।
नाम, संज्ञा शब्द	7. राम गया।	रामः अगच्छत्।
	8. रमेश और योगेश गये।	रमेशः योगेशः च अगच्छताम्।
	9. राम, रमेश और महेश गये।	रामः, रमेशः, महेशः च अगच्छन्
	10. बालक गया।	बालकः अगच्छत्।

	11. दो बालक गये।	बालकौ अगच्छताम्।
	12. सब बालक गये।	बालका: अगच्छन्।
2. स्त्रीलिंग– तत् (वह)	1. वह गयी।	सा अगच्छत्।
	2. वह दोनों गयी।	ते अगच्छताम्।
	3. वे सब गयी।	ता: अगच्छन्।
भवत (आप)	4. आप गयी।	भवाती अगच्छत्।
	5. आप दोनों गयी।	ते अगच्छताम्।
	6. आप सब गयी।	भवत्य: अगच्छन्।
नाम, संज्ञा शब्द	7. लता गयी।	लता अगच्छत्।
	8. लता और सीता गयी।	लता सीता च अगच्छताम्।
	9. लता, सीता और गीता गईं।	लता सीता गीता च अगच्छन्।
	10. बालिका गई।	बालिकां अगच्छत्।
	11. दो बालिकाएं गईं।	बालिके आगच्छताम्।
	12. सब बालिकाएं गईं।	बालिका: अगच्छन्।
3. नपुंसकलिंग– (मित्र, फल नपुंसक लिंग है)	1. मित्र गया।	मित्र अगच्छत्।
	2. दो मित्र गये।	मित्रम् अगच्छताम्।
	3. सब मित्र गये।	मित्राणि अगच्छन्।
	4. फल गिरा।	फलम् अपतत्।
	5. दो फल गिरे।	फले अपतताम्।
	6. बहुत फल गिरे।	फलानि अपतन्।
(ख) मध्य पुरुष–	1. तू गया है या तुम गये।	त्वम् अगच्छ:।
	2. तुम दोनों गये।	युवाम् अगच्छतम्।
	3. तुम सब गये।	यूयम् अगच्छम्।
(ग) उत्तम पुरुष–	1. मैं गया।	अहम् अगच्छम्।
	2. हम दोनों गये।	आवाम् अगच्छाव।
	3. हम सब गये।	वयम् अगच्छाम्।

अभ्यास 2 (लङ् लकार)

1. उसने पढ़ा।
2. तुम दोनों ने लिखा।

3. हम सब हंसे।
4. तुमने गाया।
5. उन सब ने खाया।
6. मैंने पिया।
7. सूर्य तपा।
8. सेनापति ने रक्षा की।
9. मुनि चला।
10. राम बैठा।
11. मेघ बरसा।
12. तू गया।
13. हम दोनों खेले।
14. बालक खेला।
15. राजा और रानी घूमे।
16. लता बोली।
17. मैंने सुना (अशृणवम्)
18. देव और हरि ने क्या किया।
19. जल कहां गिरा।
20. मैंने देखा।

3. लृट् लकार (भविष्यत् काल)

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	गमिष्यति	गमिष्यत:	गमिष्यन्ति
मध्यम पुरुष	गमिष्यसि	गमिष्यथ:	गमिष्यथ
उत्तम पुरुष	गमिष्यामि	गमिष्याव:	गमिष्याम:

(क) प्रथम पुरुष

1. पुल्लिंग– तत् (वह)	1. वह जाएगा	स: गमिष्यति।
	2. वे दोनों जाएंगे।	तौ गमिष्यत:।
	3. वे सब जाएंगे।	ते गमिष्यन्ति।
भवत् (आप)	4. आप जाएंगे।	भवान् गमिष्यति।
	5. आप दोनों जाएंगे।	भवन्तौ गमिष्यत:।
	6. आप सब जाएंगे।	भवन्त: गमिष्यन्ति।
नाम, संज्ञा शब्द	7. राम जाएगा	राम: गमिष्यति।
	8. रमेश और योगेश जाएंगे।	रमेश: योगेश च गमिष्यत:।
	9. राम, रमेश और योगेश जाएंगे।	राम:, रमेश:, योगेश च गमिष्यन्ति।
	10. बालक जाएगा।	बालक: गमिष्यति।
	11. दो बालक जाएंगे।	बालकौ गमिष्यत:।
	12. सब बालक जाएंगे।	बालका: गमिष्यन्ति।

2. स्त्रीलिंग–तत् (वह)–	1. वह जाएंगी।	सा गमिष्यति।
	2. वे दोनों जाएंगी।	ते गमिष्यत:।
	3. वे सब जाएंगी।	ता: गमिष्यन्ति।
भवत् (आप)	4. आप जाएंगी।	भवती गमिष्यति।
	5. आप दोनों जाएंगी।	भवत्यौ गमिष्यत:।
	6. आप सब जाएंगी।	भवत्य: गमिष्यन्ति।
नाम, संज्ञा शब्द	7. लता जाएगी।	लता गमिष्यति।
	8. लता और सीता जाएगी।	लता सीता च गमिष्यत:।
	9. लता, सीता और गीता जाएगी।	लता सीता गीता च गमिष्यन्ति।
	10. बालिका जाएगी।	बालिका गमिष्यति।
	11. दो बालिकाएं जाएंगी।	बालिके गमिष्यत:
	12. सब बालिकाएं जाएंगी।	बालिके गमिष्यन्ति।
3. नपुंसकलिंग– (मित्र, फल नपुंसक लिंग है)	1. मित्र जाएगा।	मित्रं गमिष्यति।
	2. दो मित्र जाएंगे।	मित्रे गमिष्यति:।
	3. सब मित्र जाएंगे।	मित्राणि गमिष्यन्ति।
	4. फल गिरेगा।	फलं पतत्।
	5. दो फल गिरेंगे।	फले पतताम्
	6. बहुत फल गिरेंगे।	फलानि पतन्तु।
(ख) मध्यम पुरुष–	1. तू जाएगा है या तुम जाओगे।	त्वं गमिष्यसि।
	2. तुम दोनों जाओगे।	युवां गमिष्यथ:।
	3. तुम सब जाओगे।	यूयं गमिष्यथ:
(ग) उत्तम पुरुष–	1. मैं जाऊंगा।	अहं गमिष्यामि।
	2. हम दोनों जाएंगे।	आवां गमिष्याव:।
	3. हम सब जाएंगे।	वयं गमिष्याम:।

अभ्यास 3 (लृट् लकार)

1. वे दो लिखेंगे।
2. मैं पढ़ूंगा।
3. वे सब हंसेंगे।
4. तू रोयेगा।
5. हम दोनों बोलेंगे।
6. पत्ते गिरेंगे।
7. मैं नमस्कार करूंगा (नंस्यामि)।
8. अध्यापक देखेगा।
9. दो चोर चोरी करेंगे।
10. आग जलाएगी (धक्ष्यति)।
11. शिष्य पूछेगा।
12. हम सब गाएंगे।
13. धोबी ले जाएगा।
14. बच्चा पियेगा।
15. मां पकाएगी और हम खाएंगे।
16. सीता और गोविन्द कल वहां जाएंगे।
17. तू कहां से आएगा?
18. राजा छोड़ेगा (त्यक्षति)।
19. छात्र याद करेगा।
20. हम सब खेलेंगे।

4. लृट् लकार (भविष्यत् काल)

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	गच्छतु	गच्छताम्	गच्छन्तु
मध्यम पुरुष	गच्छ	गच्छतम्	गच्छत
उत्तम पुरुष	गच्छानि	गच्छाव	गच्छाम

(क) प्रथम पुरुष

1. पुल्लिंग– तत् (वह)	1. वह जाए।	स: गच्छतु।
	2. वे दोनों जाएं।	तौ गच्छताम्।
	3. वे सब जाएं।	ते गच्छन्तु।
भवत् (आप)	4. आप जाएं।	भवान् गच्छतु।
	5. आप दोनों जाएं।	भवन्तौ गच्छताम्।
	6. आप सब जाएं।	भवन्त: गच्छन्तु।
नाम, संज्ञा शब्द	7. राम जाए।	राम: गच्छतु।
	8. रमेश और योगेश जाएं।	रमेश: योगेश च गच्छताम्।
	9. राम, रमेश और योगेश जाएं।	राम:, रमेश:, योगेश च गच्छन्तु।

	10. बालक जाए।	बालक: गच्छतु।
	11. दो बालक जाएं।	बालकौ गच्छताम्।
	12. सब बालक जाएं।	बालका: गच्छन्तु।
2. स्त्रीलिंग–तत् (वह)–	1. वह जाए।	सा गच्छतु।
	2. वे दोनों जाएं।	ते गच्छताम्।
	3. वे सब जाएं।	ता: गच्छन्तु।
भवत् (आप)	4. आप जाएं।	भवती गच्छतु
	5. आप दोनों जाएं।	भवत्यौ गच्छताम्।
	6. आप सब जाएं।	भवत्य: गच्छन्तु।
नाम, संज्ञा शब्द	7. लता जाए।	लता गच्छतु।
	8. लता और सीता जाएं।	लता सीता च गच्छताम्।
	9. लता, सीता और गीता जाएं।	लता सीता गीता च गच्छन्तु।
	10. बालिका जाए।	बालिका गच्छतु।
	11. दो बालिकाएं जाएं।	बालिके गच्छताम्।
	12. सब बालिकाएं जाएं।	बालिके गच्छन्तु।
3. नपुंसकलिंग– (मित्र,	1. मित्र जाए।	मित्रं गच्छतु।
फल नपुंसक	2. दो मित्र जाएं।	मित्रे गच्छताम्।
लिंग है)	3. सब मित्र जाएं।	मित्राणि गच्छन्तु।
	4. फल गिरेगा।	फलं पततु।
	5. दो फल गिरेंगे।	फले पतताम्
	6. बहुत फल गिरेंगे।	फलानि पतन्तु।
	1. तू जाएगा है या तुम जाओ।	त्वं गच्छ।
(ख) मध्यम पुरुष–	2. तुम दोनों जाओ।	युवां गच्छतम्।
	3. तुम सब जाओ।	यूयं गच्छत।
	1. मैं जाऊं।	अहं गच्छानि।
(ग) उत्तम पुरुष–	2. हम दोनों जाएं।	आवां गच्छाव।
	3. हम सब जाएं।	वयं गच्छाम।

अभ्यास 4 (लोट् लकार)

1. तू वहां पढ़।
2. वह यहां लिखे।
3. हम सब कहां जाएं।
4. मैं यहां से (इत:) वहां जाऊं।
5. हम दोनों खेलें।
6. सेनापति रक्षा करें।
7. रमेश और मोहन बैठे।
8. नदी बहे।
9. मनुष्य बोले।
10. लता गाये।
11. सब फूल गिरे।
12. अब मैं क्या करूं?
13. तू असत्य न बोल।
14. बादल गरजे (गर्जतु)।
15. वायु चले (सरतु)।
16. गोपी बुने (वयतु)।
17. सब छात्र नमस्कार करें।
18. कोई भी पेड़ न कटे (छिनत्तु)।
19. पक्षी उड़ें (उड्डीयताम्)

5. विधिलिङ् लकार (भविष्यत् काल)

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	गच्छेत्	गच्छेताम्	गच्छेयु:
मध्यम पुरुष	गच्छे	गच्छेतम्	गच्छेत
उत्तम पुरुष	गच्छेयम्	गच्छेव	गच्छेम

(क) प्रथम पुरुष

1. पुल्लिंग– तत् (वह)	1. उसे जाना चाहिए।	स: गच्छेत्।
	2. उन दोनों को जाना चाहिए।	तौ गच्छेताम्।
	3. उन सबको जाना चाहिए	ते गच्छेयु:।
भवत् (आप)	4. आपको जाना चाहिए।	भवान् गच्छेत्।
	5. आप दोनों को जाना चाहिए।	भवन्तौ गच्छेताम्।
	6. आप सब को जाना चाहिए।	भवन्त: गच्छेयु:।
नाम, संज्ञा शब्द	7. राम को जाना चाहिए।	राम: गच्छेत्।

	8. राम और श्याम को जाना चाहिए।	रामः श्यामः च गच्छेताम्।
	9. राम, रमेश और हरि को जाना चाहिए।	रामः, रमेशः, हरिः च गच्छेयुः।
	10. बालक को जाना चाहिए।	बालकः गच्छेत्।
	11. दो बालकों को जाना चाहिए।	बालकौ गच्छेताम्
	12. सब बालकों को	बालकाः गच्छेयुः।
2. स्त्रीलिंग–तत् (वह)–	1. उसे जाना चाहिए।	सा गच्छेत्।
	2. उसे दोनों को जाना चाहिए।	ते गच्छेताम्।
	3. उन सब को जाना चाहिए।	ताः गच्छेयुः।
भवत् (आप)	4. आपको जाना चाहिए।	भवती गच्छेत्।
	5. आप दोनों को जाना चाहिए।	भवत्यौ गच्छेताम्।
	6. आप सब को जाना चाहिए।	भवत्यः गच्छेयुः
नाम, संज्ञा शब्द	7. लता को जाना चाहिए।	लता गच्छेत्।
	8. लता और सीता को जाना चाहिए।	लती सीता च गच्छेताम्।
	9. लता, सीता और गीता को जाना चाहए।	लता, सीता, गीता च गच्छेयु।
	10. बालिका को जाना चाहिए।	बालिका गच्छेत्।
	11. दो बालिकाओं को जाना चाहिए।	बालिके गच्छेताम्।
	12. सब बालिकाओं को जाना चाहिए।	बालिकाः गच्छेयुः।

3. नपुंसकलिंग– (मित्र, फल नपुंसक	1. मित्र को जाना चाहिए।	मित्रं गच्छेत्।
	2. दो मित्रों को जाना चाहिए।	मित्रे गच्छताम्।
	3. सब मित्रों को जाना चाहिए।	मित्राणि गच्छेयुः।
	4. फल गिरान चाहिए।	फलं पतेत्।
	5. दो फल गिरने चाहिए।	फले पतेताम्।
	6. बहुत फल गिरने चाहिए।	फलानि पतेयुः।
(ख) मध्यम पुरुष–	1. तूझे जाना चाहिए।	त्वं गच्छेः।
	2. तुम दोनों को जाना चाहिए।	युवां गच्छेतम्।
	3. तुम सबको जाना चाहिए।	यूयं गच्छेत।
(ग) उत्तम पुरुष–	1. मुझे जाना चाहिए।	अहं गच्छेयम्।
	2. हम दोनों को जाना चाहिए।	आवां गच्छेव।
	3. हम सब को जाना चाहिए।	वयं गच्छेम।

अभ्यास 5 (विधिलिङ् लकार)

1. तुम्हें खेलना चाहिए।
2. हमें हंसना नहीं चाहिए।
3. उसे गाना चाहिए।
4. रमेश को आना चाहिए।
5. हरि को पढ़ना चाहिए।
6. तुम दोनों को पढ़ना चाहिए।
7. राजा को जीतना चाहिए।
8. सूर्य को तपना चाहिए।
9. वह यहां रहे।
10. तुझे वहां जाना चाहिए।
11. उन्हें यहां ठहरना चाहिए (तिष्ठेयुः)।
12. श्याम क्रोध न करे।
13. अब लता को बोलना चाहिए।
14. तुम सब को जपना चाहिए।
15. पिता रक्षा करें।
16. नर्तक को नाचना चाहिए।
17. राम को नहीं आना चाहिए।
18. आज तुम्हें पकाना चाहिए।
19. हम सब पूजें
20. उन सब को खेलना चाहिए।

कक्षा 10 के लिए

कारक एवं विभक्ति प्रयोग के नियम

हिन्दी से संस्कृत में अनुवाद के लिये संस्कृत कारकों एवं विभक्ति प्रयोग के नियमों का ज्ञान अनवार्य है। कुछ प्रसिद्ध नियम यहां द्रष्टव्य हैं–

नियम 1–कर्तृवाच्य में कर्ता में प्रथमा होती है। जैसे–

1. पढ़ता है। — **रामः** पठति।
2. रमा खेलती है। — **रमा** खेलति।
3. मैं जाता हूँ। — **अहं** गच्छामि।

नियम 2–कर्मवाच्य में कर्म में प्रथमा होती है। जैसे–

1. राम के द्वारा पाठ पढ़ा जाता है। — रामेण **पाठः** पठ्यते।
2. सीता के द्वारा लेख लिखा जाता है। — सीतया **लेखः** लिख्यते।

नियम 3–किसी को सम्बोधन करने में प्रथमा विभक्ति होती है। जैसे–

1. हे राम! पुस्तक पढ़ो। — **हे राम!** पुस्तकं पठ।
2. हे सीता! घर जाओ। — **हे सीते!** गृहं गच्छ।

यहां 'राम' और 'सीता' में सम्बोधन विभक्ति दिख रही है, परन्तु यह प्रथमा ही है।

द्वितीय विभक्ति

नियम 1–किसी वाक्य में प्रयोग किये गए पदों में से कर्ता जिसको सबसे अधिक चाहता है, उसे कर्म कहते हैं और उसमें द्वितीय विभक्ति होती है। जैसे–

1. राम पुस्तक पढ़ता है। — रामः **पुस्तकं** पठति।
2. रमा खेल खेलती है। — रमा **खेलनं** खेलति।
3. मैं घर जाता हूँ। — अहं **गृहं** गच्छामि।
4. तुम सब गाना गाते हो। — यूयं **गीतं** गायथ।

नियम 2–निम्नलिखित 16 धातुएं तथा इनके अर्थ वाली धातुएं द्विकर्मक होती हैं। इनके साथ दो कर्म होते हैं–

1. **दुह्** (दुहना)–ग्वाला गाय से दूध दूहता है। — गोपः **गां पयः** दोग्धि।
2. **याच्** (मांगना)–पुत्र पिता से धन मांगता है। — पुत्रः **पितरं धनं** याचते।

3. **भिक्ष्** (मांगना)–भिखारी राजा से वस्त्र मांगता है। — भिक्षुकः **नृपं वस्त्रं** भिक्षते।
3. **पच्** (पकाना)–नौकर चावलों से भात पकाता है। — सेवकः तण्डुलान् **ओदनं** पचति।
4. **दण्ड्** (दण्ड देना)–गुरु शिष्य को सौ रुपये दण्ड देता है। — गुरुः **शिष्यं शतं** दण्डयति।
5. **रुध्** (रोकना)–माता बच्चे को घर में रोकती है। — माता **शिशुं गृहतं** अवरुणद्धि।
6. **प्रच्छ्** (पूछना)–गुरु शिष्य को प्रश्न पूछता है। — गुरुः **शिष्यं प्रश्नं** पृच्छति।
7. **चि** (चुनना)–सीता लता से पुष्प चुनती है। — सीता **लतां पुष्पाणि** चिनोति।
8. **ब्रू** (बोलना)–ऋषि राजा को ज्ञान के विषय में बताता है। — ऋषिः **नृपं ज्ञानं** ब्रूते।
   भाषष् (बोलना)–गुरु शिष्य को प्रश्न बताता है। — गुरुः **शिष्यं प्रश्नं** भाषते।
9. **शास्** (बताना)–इन्द्र राजा को सत्य बताता है। — इन्द्र **नृपं सत्यं** शास्ति।
10. **जि** (जीतना)–देव राम के सौ रुपये जीतता है। — देवः **रामं शतं** जयति।
11. **मन्थ्** (मथना)–माला दही से मक्खन मथती है। — माला **दधिं नवनीतं** मथ्नाति।
12. **मुष्** (चुराना)–रमेश सुरेश के सौ चुराता है। — रमेशः **सुरेशं शतं** मुष्णाति।
13. **नी** (ले जाना)–पिता पुत्र को स्कूल ले जाता है। — पिता **पुत्रं विद्यालयं** नयति।
14. **हृ** (ले जाना)–माता बच्चे को घर ले जाती है। — माता **शिशुं गृहं** हरति।
15. **कृष्** (खींचना)–किसान पुत्र को खेत में ले जाता है। — कृषकः **पुत्रं क्षेत्रं** कर्षति।

16. **वह्** (ले जाना)–गुरु शिष्य को आश्रम ले जाता है। गुरुः **शियम् आश्रमं** वहति।

नियम 3–उभयतः, सर्वतः, धिक्, उपर्युपरि, अधोऽधः तथा अध्यधि के साथ द्वितीया विभक्ति होती है। जैसे–

1. **उभयतः** (दोनों ओर)–गां के दोनों ओर जल है। **ग्रामम्** उभयतः जलम् अस्ति।
2. **सर्वतः** (सब ओर)–मन्दिर के सब ओर वृक्ष हैं। **मदिरं** सर्वतः वृक्षाः सन्ति।
3. **धिक्** (धिक्कार)–दुर्जन को धिक्कार। धिक् **दुर्जनम्**।
4. **उपर्युपरि** (ऊपर-ऊपर)–पर्वत के ऊपर-ऊपर वृक्ष हैं। **पर्वतम्** उपर्युपरि वृक्षाः सन्ति।
5. **अधोऽधः** (नीचे-नीचे)–वृक्ष के नीचे-नीचे फल हैं। **वृक्षम्** अधोऽधः फलानि सन्ति।
6. **अध्यधि** (अन्दर-अन्दर)–घर के अन्दर-अन्दर बच्चे खेलते हैं। **गृहम्** अध्यधि बालकाः क्रीडन्ति।

नियम 4–अभितः, परितः, सकमया, निकषा, हा तथा प्रति के योग में द्वितीया विभक्ति होती है। जैसे–

1. **अभितः** (चारों ओर)–विद्यालय के चारों ओर पानी है। **विद्यालयम्** अभितः जलम् अस्ति।
2. **परितः** (सब ओर)–नगर के सब ओर वृक्ष हैं। **नगरं** परितः वृक्षाः सन्ति।
3. **समया** (समीप)–माता के समीप पुत्र है। **मातरं** समया शिशुः अस्ति।
4. **निकषा** (समीप)–पिता के समीप पुत्र है। **पितरं** निकषा पुत्रः अस्ति।
5. **हा** (खेद)–दुष्ट के लिए खेद है। हा **दुष्टम्**।
6. **प्रति** (ओर)–वन की ओर मन्दिर है। **वनं** प्रति देवालयः अस्ति।

नियम 5–अन्तरा और अन्तरेण शब्द के साथ भी द्वितीया विभक्ति का प्रयोग होता है। जैसे–

1. **अन्तरा** (बीच में)–राम और लक्ष्मण के बीच में सीता है। **रामं लक्ष्मणं** च अन्तरा सीता अस्ति।

2. **अन्तरेण** (विषय में)–राम के बारे में कौन जानता है। **रामम्** अन्तरेण कः जानाति।

अन्तरेण (बिना)–ज्ञान के बिना सुख नहीं है। **ज्ञानम्** अन्तरेण सुखं न अस्ति।

नियम 6–जब कोई क्रिया लगातार कुछ समय तक होती रहे अथवा कोई वस्तु कुछ दूरी तक लगातार होवे तो समय और स्थान के दूरवाची शब्दों में द्वितीया होती है। जैसे–

1. सीता दस दिन तक पढ़ती है। सीता **दश दिनानि** पठति।
2. रमेश एक कोस तक जाता है। रमेशः **क्रोशं** गच्छति।

नियम 7–दूर, अन्तिक (समीप) तथा इनके समान अर्थ वाले शब्दों में द्वितीय, तृतीया, पंचमी अथवा सप्तमी होती है। जैसे–

1. गांव से दूर विद्यालय है। ग्रामात् **दूरं** (**दूरेण, दूरात्, दूरे**) विद्यालयः अस्ति।
2. मां के समीप पुत्र है। मातुः **अन्तिकं** (**अन्तिकेन, अन्तिकात्, अन्तिके**) पुत्रः अस्ति।

नियम 8–'गति' अर्थ वाली धातुओं के साथ द्वितीया विभक्ति होती है। जैसे–

बच्चा स्कूल जाता है। बालकः **विद्यालयं** गच्छति।

आदर्श वाक्य रचना–1 : (प्रथमा-द्वितीया विभक्ति)

1. राम लिखता है।	रामः लिखति।
2. तुम दोनों हंसते हो।	युवां हसथः।
3. कवि गाता है।	कविः गायति।
4. वह खेले।	सः क्रीडतु।
5. साधु के द्वारा गाना गाया जाता है।	साधुना गीतं गीयते।
6. हे पुत्र! पुस्तक पढ़।	हे पुत्र! पुस्तकं पठ।
7. राजा वहां जायेगा।	नृपः तत्र गमिष्यति।
8. हम दोनों घर जाते हैं।	आवां गृहं गच्छावः।
9. राम और श्याम ईश्वर को प्रणाम करते हैं।	रामः श्यामः च ईश्वरं प्रणमतः।
10. तुम सब क्या लिखते हो।	यूयं किं लिखथ।
11. मैं खेल देखूंगा।	अहं क्रीडां द्रक्ष्यामि।

12. लता बकरी का दूध दुहती है।	लता अजां दुग्धं दोग्धि।
13. शिष्य गुरु से क्षमा मांगता है।	शिष्य: गुरुं क्षमां याचते।
14. रसोईयां चावलों से भात पकाएगा।	पाचक: तण्डुलान् ओदनं पक्ष्यति।
15. रमा लता से फूल चुनती है।	रमा लतां पुष्पाणि अवचिनोति।
16. किसान बैल को खेत में ले जाता है।	कृषक: वृषभं क्षेत्र नयति।
17. वृक्ष के चारों ओर विद्यार्थी हैं।	वृक्षं सर्वत: छात्रा: सन्ति।
18. झूठ बोलने वाले को धिक्कार।	धिक् असत्यवादिनम्।
19. वन के दोनों ओर नदी है।	वनम् उभवत: नदी अस्ति।
20. पेड़ के ऊपर-ऊपर फल हैं।	वृक्षम् उपर्युपरि फलानि सन्ति।
21. विद्यालय की ओर तालाब है।	विद्यालयं प्रति सरोवर: अस्ति।
22. गुरु के समीप शिष्य बैठे हैं।	गुरुं निकषा शिष्या: तिष्ठन्ति।
23. राम और लक्ष्मण के बीच सीता है।	रामं लक्ष्मणं च अन्तरा सीता अस्ति।
24. कृष्ण के बारे में कौन जातना है?	कृष्णम् अन्तरेण क: जानाति?
25. देवदत्त महीने भर पढ़ता है?	देवदत्त: मासम् पठति।
26. घर से दूर विद्यालय है।	गृहात् दूरं विद्यालय: अस्ति।
27. कृष्ण के पास राधा है।	कृष्णात् अन्तिकं राधा अस्ति।
28. बालक आज विद्यालय गया।	बालक: अद्य विद्यालयम् अगच्छत्।
29. मैं कल घर जाऊंगा।	अहं श्व: गृहं गमिष्यामि।
30. शेर जंगल में घूमता है।	सिंह वने विचरति।

अभ्यास 1 : प्रथमा द्वितीय विभक्ति

1. शिशु चलता है।	2. तुम दोनों वहां जाओ।
3. मैं पढ़ूंगा।	4. हरि और देव खेलते हैं।
5. तुमने क्या किया।	6. हम दोनों गाएंगे।
7. हे छात्रो! घर जाओ।	8. वह क्या करता है।
9. रमा गाना गाती है।	10. उसने खेल देखा।
11. तुमने फूल सूंघा।	12. हम सब राम का स्मरण करते हैं।
13. भिखारी राजा से भीख मांगता है।	14. गुरु शिष्य को सौ रुपए दण्ड देता है।
15. पिता पुत्र से प्रश्न पूछता है।	16. माता दही से मक्खन मथती है।
17. गोपी गाय को घर ले गई।	18. कृष्ण के दोनों ओर गोप हैं।

19. पानी के अंदर-अंदर मछली हैं।	20. उस पापी को धिक्कार।
21. लता के ऊपर-ऊपर फूल हैं।	22. घर के चारों ओर वृक्ष हैं।
23. देव के समीप भक्त हैं।	24. दुष्ट को धिक्कार।
25. घर की ओर कौन जा रहा है।	26. तेरे और मेरे बीच में मां है।
27. मार्ग कोश भर टेढ़ा है।	28. राघव दस दिन तक खेलता है।
29. तुम गांव कब जाओगे।	30. उसे घर जाना चाहिए।

तृतीय विभक्ति

नियम 1–कर्ता अपने कार्य की सिद्धि में जिसकी सबसे अधिक सहायता लेता है अथवा कार्य की निष्पत्ति में जो सबसे अधिक सहायक होता है, उसे करण कहते हैं तथा करण में तृतीया विभक्ति होती है। जैसे–

1. राम कलम से लिखता है	राम **कमलेन** लिखति।
2. राम गेंद से खेलती है।	राम: **कन्दुकेन** क्रीडति।

नियम 2–कर्मवाच्य में कर्ता में तृतीया होती है। जैसे–

राम के द्वारा पुस्तक पढ़ी जाती है। **रामेण** पुस्तकं पठ्यते।

नियम 3–भाववाच्य में कर्ता में तृतीया होती है। जैसे–

रमा के द्वारा हंसा जाता है। **रमया** हस्यते।

नियम 4–प्रकृति (स्वभाव) आदि क्रिया विशेषण शब्दों के साथ तृतीया विभक्ति होती है। जैसे–

1. देव स्वभाव से सरल है।	देव: **प्रकृत्या** सरल: अस्ति।
2. दुर्जन स्वभाव से क्रूर है।	दुर्जन: **स्वभावेन** क्रूर: अस्ति।
3. राम प्रकृति से साधु है।	राम: **प्रकृत्या** साधु: अस्ति।

नियम 5–साथ अर्थवाची सह, साकम्, सार्धम्, समम् के योग में अप्रधान अर्थात् क्रिया के गौण कर्ता में तृतीया विभक्ति होती है–

1. राम सीता के साथ वन जाते हैं।	राम: **सीतया** सह वनं गच्छति।
2. राधा कृष्ण के साथ खेलती है।	राधा **कृष्णेन** साकं क्रीडति।

नियम 6–पृथक् (अलग), विना (बिना) तथा नाना (बिना) शब्दों के साथ तृतीया विभक्ति होती है। द्वितीया या पंचमी भी हो सकती है। जैसे–

1. **पृथक्**–राम से अलग सीता कैसे जीती है?	रामेण (रामं, रामात्) पृथक् सीता कयं जीवति?

2. **विना**–ज्ञान के बिना सुख नहीं है? **ज्ञानेन (ज्ञानं, ज्ञानात्)** विना सुखं न अस्ति।

3. **नाना**–संतान के बिना जीवन नीरस है। **सन्तानेन (सन्तानं, सन्तानात्)** नाना जीवनं नीरसम् अस्ति।

नियम 7–शरीर के जिस विकृत अंग से शरीर का विकृत होना कहा जाए, उस विकृग अंग में तृतीया होती है। जैसे–

1. भिखारी नेत्र से काणा है। भिक्षुक: **नेत्रेण** काण: अस्ति।
2. चोर पैर से लंगड़ा है। चौर: **पादेन** खञ्ज: अस्ति।
3. मन्थरा कमर से कुबड़ी है। मन्थरा **कट्या** कुब्जा अस्ति।
4. बालक कान से बहरा है। बालक: **कर्णेन** बधिर: अस्ति।

नियम 8–तुल्यार्थक तुल्य:, सदृश:, सम: आदि के साथ तृतीया तथा षष्ठी विभक्ति होती है। परन्तु तुला और उपमा शब्दों के साथ केवल षष्ठी होती है।

1. कृष्ण राम के तुल्य है। कृष्ण: **रामेण (रामस्य)** तुल्य: अस्ति।
2. गुरु पिता के समान है। गुरु **पिता (पितु:)** सम: अस्ति।

नियम 9–किसी कारण या प्रयोजन से कोई कार्य किया जाता है या होता है, उसमें तृतीया विभक्ति होती है। जैसे–

1. रमा अध्ययन के उद्देश्य से यहां रहती है। रमा **अध्ययनेन** अत्र वसति।
2. ब्राह्मण भोजन के उद्देश्य से वहां जाता है। ब्राह्मण: **भोजनेन** तत्र गच्छति।

नियम 10–प्रयोजन अथवा लाभ अर्थवाची किम्–कार्यम्, अर्थ:, प्रयोजनम् के साथ तृतीया विभक्ति होती है। जैसे–

1. मूर्ख शिष्य से क्या लाभ:? **मूर्खेण शिष्येण** क: अर्थ:?
2. दुर्जन से क्या प्रयोजन? **दुर्जनेन** किं प्रयोजनम्।?

नियम 11–जिस चिह्न से किसी व्यक्ति अथवा वस्तु का बोध होता है, उसमें तृतीया विभक्ति होती है। जैसे–

1. वह जटाओं से साधु प्रतीत होता है स: **जटाभि:** साधु: प्रतीयते।
2. बालक पुस्तकों से विद्यार्थी लगता है। बालक: **पुस्तकै:** छात्र प्रतीयते।

नियम 12–अलम् (बस, मत) के साथ तृतीया होती है। जैसे–

पढ़ने से बस करो। अलं **पठनेन**।

आदर्श बाक्य रचना–2 : (तृतीया बिभक्ति)

1. लड़के गेंद से खेलते हैं। बालका कन्दुकेन क्रीडन्ति।
2. योगेश के द्वारा घर जाया जाता है। योगेशेन गृहं गम्यते।
3. माता के द्वारा हंसा जाता है। मात्रा हस्यते।
4. तपस्वी प्रकृति से सरल है। तापस: प्रकृत्या सरल: अस्ति।
5. दुर्जन दु:ख से जीता है। दुर्जन: दु:खेन जीवति।
6. ऋषि राम के साथ आएगा। ऋषि रामेण सह आगमिष्यति।
7. मृग बन्दरों के साथ खेला। मृग: वानरै: सह अक्रीडत्।
8. गाय बछड़े से अलग नहीं होती है। धेनु: वत्सेन पृथक् न भवति।
9. दूध के बिना बच्चा रोता है। दुग्धेन विना शिशु: रोदिति।
10. भिखारी सिर से गंजा था। भिक्षुक: शिरसा खल्वाट: आसीत्।
11. डाकू राधा के तुल्य है। लुंठक: नेत्रेण काण: अस्ति।
12. सीता राधा के तुल्य है। सीता राधया सदृशी अस्ति।
13. राकेश को पढ़ने के लिए वहां जाना चाहिए। राकेश: पठनेन तत्र गच्छेत्।
14. मूर्ख शिष्य से क्या लाभ? मूर्खेण शिष्येण किं प्रयोजनम्?
15. वायु सुख से बही। वायु: सुखेन अवहत्।
16. तुम सब आराम से खेलो। यूयम् सरलतया क्रीडत।
17. मत हंसो अलं हसितेन।
18. गाने से बस करो। अलं गायनेन।

अभ्यास 2 : तृतीया विभक्ति

1. हरि गेंद से खेलता है।
2. सूर्य किरणों से तपता है।
3. ऋणि ने ज्ञान से लोक को जीता है।
4. कृष्ण राधा के साथ नाचे।
5. गुरु शिष्यों के साथ नाचे।
6. मैं कलम से लिखूंगा।
7. तुम दोनों पिता के साथ गाओ।
8. उसे हम दोनों के साथ पढ़ना चाहिए।
9. वह लड़की पुस्तकों से छात्रा लगती है।
10. हम सब यहां पढ़ने के लिए रहते हैं।
11. दुष्ट पुत्र से क्या लाभ?
12. ऐसे धन से क्या प्रयोजन?

13. भिखारी आंखों से अंधा था।
14. बंदर कानों से बहरा हो गया।
15. पैर से लंगड़ा वह कौन है?
16. सीता स्वभाव से सरल है।
17. झगड़ा मत करो।
18. हम दोनों सरलता से जीते हैं।
19. साधु के द्वारा भोज खाया जाता है।
20. दिलीप के द्वारा हंसा जाता है।

चतुर्थ विभक्ति

नियम 1–दान आदि कार्य अथवा कोई क्रिया जिसके लिए की जाती है, उसे सम्प्रदान कहते हैं और सम्प्रदान में चतुर्थी विभक्ति होती है। जैसे–

1. राजा ब्राह्मण को धन देता है। — नृपः **ब्राह्मणाय** धनं ददाति।
2. गुरु शिष्य को पुस्तक देता है। — गुरुः **शिष्याय** पुस्तकं ददाति।

नियम 2–रुच् (चाहना) धातु तथा इस अर्थ वाली अन्य धातुओं के साथ चतुर्थी विभक्ति होती है। जैसे–

बालक को दूध अच्छा लगता है। — **बालकाय** दुग्धं रोचते।

नियम 3–क्रुध् (क्रोध करना), द्रुह (द्रोह करना), ईर्ष्या (ईर्ष्या करना) तथा असूय् (असूया करना, बुराई निकालना) धातुओं के योग में जिसके प्रति क्रोध आदि किया जाता है, उसमें चतुर्थी विभक्ति होती है। जैसे–

1. रावण राम पर क्रोध करता है। — रावणः **रामाय** क्रुध्यति।
2. दुर्जन सज्जन से द्रोह करता है। — दुर्जनः **सज्जनाय** द्रुह्यति।
3. मूर्ख विद्वान् से ईर्ष्या करता है। — मूर्खः **विदुषे** ईर्ष्यति।
4. असुर देवताओं से असूया करते हैं। — असुराः **देवेभ्यः** असूयन्ति।

नियम 4–स्पृह् (चाहना) धातु के योग में जिसे चाहा जाए, उसमें चतुर्थी होती है। जैसे–

राम फूलों को चाहता है। — रामः **पुष्पेभ्यः** स्पृहयति।

नियम 5–जिस प्रयोजन के लिए कोई कार्य किया जाता है, उस प्रयोजन में चतुर्थी विभक्ति होती है।

लता मोक्ष के लिए हरि को भजती है। लता **मोक्षाय** हरिं भजति।

नियम 6–हित तथा सुख के योग में चतुर्थी विभक्ति होती है। जैसे–

1. ब्राह्मणों का हित हो। — **ब्राह्मणेभ्यः** हितं भूयात्।
2. निर्धनों का सुख हो। — **निर्धनेभ्यः** सुखं भूयात्।

नियम 7–'अर्थम्' (के लिए) और 'कृते' (के लिए) का प्रयोग चतुर्थी में ही होता है। इसमें 'अर्थम्' के साथ समास होता है तथा 'कृते' के साथ षष्ठी होती है।

1. राधा भोजन के लिए घर जाती है। — राधा **भोजनार्थम्** गृहं गच्छति।
2. रमेश पढ़ने के लिए यहां रहता है। — रमेशः **पठनस्य** कृते अत्र वसति।

नियम 8–नमः स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा, अलम और वषट् के योग में चतुर्थी होती है। जैसे–

1. **नम (नमस्कार)**–गुरु को नमस्कार — **गुरवे** नमः।
2. **स्वस्ति (आशीर्वाद)**–शिष्य के लिए आशीर्वाद। — **शिष्याय** स्वस्ति।
3. **स्वाहा (देवताओं के लिए आहुति)**–अग्नि के लिए आहुति। — **अग्नये** स्वाहा।
4. **स्वधा (पितरों के लिए अन्नादि)**–पितरों के लिए अन्नादि। — **पितृभ्यः** स्वधा।
5. **अलम् (समर्थ)**–राम रावण के लिए समर्थ हैं। — रामः **रावणाय** अलम्।
6. **वषट् (आहुति)**–इन्द्र के लिए आहुति। — **इन्द्राय** वषट्।

आदर्श वाक्य रचना–3 : (चतुर्थी विभक्ति)

1. साधु राजा को फल देता है। — साधुः नृपाय फलं ददाति।
2. सेनापति ने सैनिक को अस्त्र दिया। — सेनापतिः सैनिकाय अस्त्रम् अयच्छत्।
3. उन ब्राह्मणों को धन दो। — तेभ्यः ब्राह्मणेभ्यः धनं देहि।
4. बच्चे को खिलौना अच्छा लगता है। — शिशवे क्रीडनकं रोचते।
5. राजा को घोड़ा अच्छा लगता है। — राज्ञे अश्वः रोचते।
6. रावण राम पर क्रोध करता है। — असुरः देवाय द्रुह्यति।
7. तुम लता से क्यों ईर्ष्या करते हो। — त्वं लतायै कथम् ईर्ष्यसि।
8. मालिक सेवक से असूया करता है। — स्वामी सेवकाय असूयति।
9. शिष्य ज्ञान चाहता है। — शिष्यः ज्ञानाय स्पृहयति।
10. पुत्र का हित हो। — पुत्राय हितम् भूयात।
11. ब्राह्मण का सुख हो। — ब्राह्मणाय सुखं भूयात्।

12. सेवक धन के लिए वहां जाता है। सेवक: धनार्थं तत्र गच्छति।
13. गुरु को नमस्कार। गुरवे नम:।
14. पुत्र को आशीर्वाद। पुत्राय स्वस्ति।
15. सूर्य के लिए आहुति। सूर्याय स्वाहा।
16. शिष्य आचार्य से निवेदन करे। शिष्य: आचार्याय निवेदयतु।
17. गुरु शिष्य को उपदेश देता है। गुरु: शिष्याय उपदिशति।
18. रोगी के लिए घूमना अच्छा है। भ्रमणं रुग्णाय हितम्।
19. आपका स्वागत है। स्वागतं भवते।

अभ्यास 3 : चतुर्थी विभक्ति

1. राजा ब्राह्मण को वस्त्र देता है।
2. तुम बच्चे को फल दो।
3. हम सब को लड्डू अच्छे लगते हैं।
4. गुरु शिष्य पर क्रोध नहीं करता है।
5. पिता पुत्र से द्रोह न करो।
6. मंथरा राम से असूया करती है।
7. तुम दोनों को धन की स्पृहा (इच्छा) नहीं करनी चाहिए।
8. श्रमिक धन के लिए नगर आया।
9. ज्ञान सुख के लिए होता है।
10. घूमना स्वास्थ्य के लिए हितकारी है।
11. इन विद्यार्थियों का भला हो।
12. आचार्य को नमस्कार।
13. बच्चे को आशीर्वाद।
14. चन्द्रमा के लिए आहुति।
15. तुम्हें प्राचार्य से कहना चाहिए।
16. ज्ञानी ने मूर्ख को क्या कहा?

पंचमी विभक्ति

नियम 1–जिस निश्चित स्थान से कोई वस्तु अलग होती है, उसे अपादान कहते हैं तथा उसमें पंचमी होती है। जैसे–

1. पेड़ से पत्ता गिरता है। **वृक्षात्** पत्रं पतति।
2. घोड़े से सैनिक गिरा। **अश्वात्** सैनिक: अपतत्।

नियम 2–जुगुप्सा (घृणा), विराम (रुकना) और प्रमाद (असावधानी) अर्थ वाली धातुओं और शब्दों के योग में पंचमी होती है। जैसे–

1. राम पाप से घृणा करता है। राम: **पापात्** जुगुप्सते।
2. रमा अधर्म से रुकती है। रमा **अधर्मात्** विरमति।
3. कृष्ण धर्म से प्रमाद करता है। कृष्ण **धर्मात्** प्रमाद्यति।

नियम 3–भय और रक्षा अर्थ वाली धातुओं में जिससे भय हो उसमें पंचमी होती है। जैसे–

1. बच्चा कुत्ते से डरता है। बालक: **कुक्कुरात्** बिभेति।
2. माता बच्चे को कुत्ते से बचाती है। माता बालकं **कुक्कुरात्** त्रायते।

नियम 4–'परा' उपसर्ग पूर्वक 'जि' धातु के योग में जो असह्य हो, उसमें पंचमी होती है। जैसे–

देवदत्त पढ़ाई से हार मानता है। देवदत्त: **अध्ययनात्** पराजयते।

नियम 5–जिससे किसी घटना को हटाया जाये, उसमें पंचमी होती है। जैसे–

किसान जौं से गाय को हटाता है। कृषक: **यवेभ्य:** गां वारयति।

नियम 6. जिस व्यक्ति से नियमपूर्वक विद्या आदि पढ़ी जाती है, उसमें पंचमी होती है। जैसे–

गोपाल गुरु से पढ़ता है। गोपाल: **गुरो:** पठति।

नियम 7–उत्पन्न होना या प्रकट होना अर्थवाली जन् और भू आदि धातुओं के साथ पंचमी होती है। जैसे–

1. ब्रह्मा से संसार पैदा होता है। **प्रजापते:** लोक: जायते।
2. गंगा हिमालय से निकलती है। गंगा **हिमालयात्** प्रभवति।

नियम 8–अन्य, आरात्, ऋते, पूर्व, पाक् आदि शब्दों के साथ पंचमी होती है।

1. **अन्य (दूसरा)**–राम से दूसरा कौन रक्षक है? **रामात्** अन्य: क: रक्षक: अस्ति?
2. **आरात् (समीप)**–वन के समीप नहीं है। **वनात्** आरात् नदी न अस्ति।
3. **इतर (अन्य)**–मित्र से अन्य कौन हितकर है? **मित्रात्** इतर: क: हितकर:?
4. **ऋते (बिना)**–ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं। ऋते **ज्ञानात्** न मुक्ति।
5. **पूर्व (पहले, पूर्व दिशा)**–गाँव से पहले वृक्ष है। **ग्रामात्** पूर्व: वृक्ष: अस्ति।

नियम 9–बहि:, प्रभूति, आरभ्य, अनन्तरम्, परम् और ऊर्ध्वम् आदि शब्दों के साथ पंचमी होती है। जैसे–

1. **बहि: (बाहर)**–गांव से बाहर विद्यालय है। **ग्रामात्** बहि: विद्यालय: अस्ति।

2. **प्रभृति** (तब से लेकर)–बचपन से लेकर यहां रहता हूँ। **शैशवात्** प्रभृति अत्र वसामि।
3. **आरभ्य** (लेकर)–उस दिन से लेकर कार्य करता है। **तस्मात् दिनात्** आरभ्य कार्यं करोति।
4. **अनन्तरम्** (के बाद)–विवाह के बाद आश्रम विवाहात् अनन्तरम् गमिष्यामि।
5. **परम्** (बाद में)–ज्ञान के बाद मोक्ष है। ज्ञानात् परं मोक्षम् अस्ति।

नियम 10–तुलना करने में जिससे तुलना की जाती है, उसमें पंचमी विभक्ति होती है। जैसे–

1. माता भूमि से श्रेष्ठ है। माता **भूमेः** गुरुतरा।
2. राम कृष्ण से चतुर है। रामः **कृष्णात्** पटुतरः।

आदर्श वाक्य-रचना : पंचमी विभक्ति

1. पेड़ से फल गिरेंगे। वृक्षात् पत्राणि पतिष्यन्ति।
2. हम मूर्ख से घृणा करते हैं। वयं मूर्खात् जुगुप्तसामहे।
3. पाप से रुको। पापात् विरम।
4. देवेश पढ़ाई से प्रमाद नहीं करेगा। देवेशः अध्ययनात् न प्रमदिष्यति।
5. यह बच्चा कुत्ते से नहीं डरा। अयं बालः कुक्करात् न अबिभेत्।
6. राजा ब्राह्मण की शेर से रक्षा करे। राजा ब्राह्मणं सिंहात् त्रायताम्।
7. वीर शत्रु से हार नहीं मानता है। वीरः शत्रोः न पराजयते।
8. माता बच्चे को आग से हटाती है। माता शिशुम् अनलात् वारयति।
9. पुत्र पिता से शास्त्र पढ़ेगा। पुत्रः पितुः शास्त्रं पठिष्यति।
10. गंगा हिमाचल से निकली। गङ्गा हिमालयात् उदभवत्।
11. हनुमान से दूसरा कौन वीर है? हनुमतः अन्यः कः वीरः अस्ति।
12. ज्ञान के बिना जीवन नहीं है। ज्ञानात् ऋते न जीवनम्।
13. घर से पूर्व की ओर वृक्ष है। गृहात् प्राक् वृक्षः अस्ति।
14. अध्यापक कक्षा से बाहर गया। अध्यापकः कक्षायाः बहिः अगच्छत्।
15. तुम बचपन से लेकर यहां रहते हो। त्वं शैशवात् प्रभृति अत्र वससि।
16. धन से ज्ञान श्रेष्ठ है। धनात् ज्ञानं गुरुतरम्।

अभ्यास 4 : पंचमी विभक्ति

1. बच्चा घोड़े से गिरेगा।
2. ग्वाला घर से आया।
3. दुर्जन अधर्म से नहीं रुकता।
4. मेरी उस चोर से रक्षा करो।
5. पिता पुत्र को कुएं से हटाता है।
6. देवदत्त ज्ञानी से गीता पढ़ेगा।
7. अंडे से पक्षी निकला।
8. कंस से दूसरा कौन दुष्ट है?
9. धन के बिना भोजन कहां?
10. गांव से पूर्व मेरा घर है।
11. मन्दिर के बाहर क्या है?
12. युवावस्था से लेकर राम नगर में रहा।
13. रमेश योगेश से चतुर है।
14. भक्त गीता से रामायण बदलता है।

षष्ठी विभक्ति

नियम 1–सम्बन्ध का बोध कराने के लिए षष्ठी विभक्ति का प्रयोग होता है। जैसे–

1. यह राम का घर है इदं **रामस्य** गृहम् अस्ति।
2. मेरी माता कहां है। **मम** माता कुत्र अस्ति।

नियम 2–जब 'हेतु' शब्द का प्रयोग होता है तो उस 'हेतु' में तथा प्रयोजन में षष्ठी विभक्ति होती है। जैसे–

सुरेश पढ़ने के लिए यहां रहता है। सुरेशः **अध्ययनस्य हेतोः** अत्र वसति।

नियम 3–निमित्त अर्थ वाले–निमित, हेतु, कारण, प्रयोजन आदि शब्दों के साथ प्रायः सभी विभक्तियां होती हैं। जैसे–

किस कारण से हंसते हो? केन हेतुना (कस्मै निमित्ताय, कस्मात्, कारणत्, कस्य हेतोः) हससि?

नियम 4–उपरि, उपरिष्ठात्, अधः अधस्तात्, पुरः, पुरस्तात्, पश्चात् अग्रे, दक्षिणतः और उत्तरतः के साथ षष्ठी होती है। जैसे–

1. **उपरि** (ऊपर)–वृक्ष के ऊपर पक्षी हैं। **वृक्षस्य** उपरि खगाः सन्ति।
2. **उपरिष्ठात्** (ऊपर की ओर)–मकान के ऊपर की ओर जहाज उड़ा। **भवनस्य** उपरिष्टात् विमानः उदपतत्।
3. **अधः** (नीचे)–पेड़ के नीचे पथिक बैठा है। **वृक्षस्य** अधः पथिकः तिष्ठति।
4. **अधस्तात्** (नीचे की ओर)–नदी के नीचे की ओर जाओ। **नद्याः** अधस्तात् गच्छ।

5. **पुरः** (सामने)–कृष्ण के सामने राधा है। **कृष्णस्य** पुरः राधा अस्ति।
6. **पुरस्तात्** (सामने की ओर)–विद्यालय के सामने की ओर मंदिर है। **विद्यालयस्य** पुरस्तात् देवालयः अस्ति।
7. **पश्चात्** (पीछे)–घर के पीछे तालाब है। **गृहस्य** पश्चात् तडागः अस्ति।
8. **अग्रे** (आगे)–मेरे अगे कौन है? **मम** अग्र कः अस्ति?
9. **दक्षिणतः** (दक्षिण की ओर)–गांव के दक्षिण की ओर नदी है। **ग्रामस्य** दक्षिणतः नदी अस्ति।
10. **उत्तरतः** (उत्तर की ओर)–नगर के उत्तर की ओर वन है। **नगरस्य** उत्तरतः वनम् अस्ति।

नियम 5–दूर तथा समीपवाची शब्दों के योग में षष्ठी तथा पंचमी होती है। जैसे–

1. गांव से दूर नगर है। **ग्रामस्य (ग्रामात्)** दूरं नगरम् अस्ति।
2. विद्यालय के समीप मन्दिर है। **विद्यालयस्य (विद्यालयात्)** समीपं देवालयः अस्ति।

नियम 6–बहुतों में से एक का निर्धारण करना (छांटना) अर्थ में जिस समूह में से छांटा जाए, उसमें षष्ठी ओर सप्तमी दोनों होती हैं–

छात्रों में राम श्रेष्ठ है। **छात्राणां (छात्रेषु)** रामः श्रेष्ठः अस्ति।

नियम 7–कृते, मध्ये तथा समक्ष आदि शब्दों के योग में षष्ठी विभक्ति होती है। जैसे–

1. जीवन के लिए भोजन है। **जीवनस्य** कृते भोजनम् अस्ति।
2. गांव के मध्य कुआं है। **ग्रामस्य** मध्ये कूपः अस्ति।
3. राम के समक्ष सीता है। **रामस्य** समक्षं सीता अस्ति।

नियम 8–अनुरूप, योग्य, सदृश अर्थ वाले शब्दों के योग में षष्ठी होती है।

1. यह राम के अनुरूप नहीं है। एतत् **रामस्य** अनुरूपं न अस्ति।
2. यह ज्ञान के अनुरूप है। एतत् **ज्ञानस्य** सदृशम् अस्ति।

नियम 9–आशीर्वाद, आयुष्य, भद्र, कुशल, सुख, अर्थ, हित तथा उनके अर्थ वाले अन्य शब्दों के लिए षष्ठी तथा चतुर्थी होती है। जैसे–

1. कृष्ण आयुष्मान् हो। **कृष्णस्य (कृष्णाय)** आयुष्यं भूयात्।

2. पुत्र सुखी हो। **पुत्रस्य (पुत्राय)** भद्रम् (सुखम्, हितम्) स्यात।

आदर्श वाक्य-रचना 5 : (षष्ठी विभक्ति)

1.	यह मेरी माता है।	इयं मम माता अस्ति।
2.	देव का घर कहां है?	देवस्य गृहं कुत्र अस्ति।
3.	शिष्य ज्ञान के लिए आया।	शिष्य ज्ञानस्य हेतोः आगच्छत्।
4.	पिता किस हेतु से बाज़ार जाएंगे।	पिता कस्य हेतोः आपणं गमिष्यति?
5.	पेड़ के ऊपर बंदर था।	वृक्षस्य उपरि वानरः आसीत्।
6.	पर्वत के नीचे की ओर वृक्ष है।	पर्वतस्य अधस्तात् वृक्षाः सन्ति।
7.	मन्दिर के सामने तालाब है।	मन्दिरस्य पुरः सरोवरः अस्ति।
8.	राम के पीछे श्याम है।	रामस्य पश्चात् श्यामः अस्ति।
9.	कृष्ण के आगे राधा है।	कृष्णस्य अग्रे राधा अस्ति।
10.	गांव से दूर विद्यालय है।	ग्रामस्य दूरं विद्यालयः अस्ति।
11.	पुस्तकों में रामायणम् श्रेष्ठ है।	पुस्तकानां रामायणं श्रेष्ठम्।
12.	काव्य धन के लिए नहीं है।	काव्यं धनस्य कृते न अस्ति।
13.	नारियों के बीच में शिशु है।	नारीणां मध्ये शिशुः अस्ति।
14.	तुम्हारे सामने कौन है?	तव समक्षं कः अस्ति?
15.	तुझ में और मुझ में क्या अन्तर है?	तव मम च किम् अन्तरम्।
16.	गुरु पिता के तुल्य है।	गुरुः पितुः समः अस्ति।
17.	माता की तुलना नहीं है।	मातुः उपमा न अस्ति।
18.	रमेश आयुष्यमान् हो।	रमेशस्य आयुष्यं भूयात्।
19.	शिष्य सुखी हो।	शिष्यस्य सुखं स्यात्।
20.	ब्राह्मण का हित हो।	ब्राह्मणस्य हितं स्यात्

अभ्यास 5 : षष्ठी विभक्ति

1. यह मेरा घर नहीं है।
2. बच्चे के वस्त्र लाओ।
3. रमेश राम के मन्दिर में गया।
4. भिखारी वस्त्र के लिए आएगा।
5. राम के पिता किस हेतु से आएंगे?
6. घर के नीचे की ओर फूल होंगे।

7. पर्वत के ऊपर की ओर हाथी है।
8. लता के नीचे की ओर फूल होंगे।
9. पिता के सामने पुत्र बैठा है।
10. माता के पीछे बच्चा है।
11. घोड़े के आगे हाथी होना चाहिए।
12. विद्यालय से दूर एक मन्दिर है।
13. राजा ब्राह्मण पर दया करता है।
14. नदियों में गंगा श्रेष्ठ है।
15. इन्द्र देवताओं के मध्य बैठे हैं।
16. तुम्हारे सामने कौन था?
17. लता और रमा में कुछ भी अन्तर नहीं है।
18. यह आचार्य के अनुरूप नहीं है।

सप्तमी विभक्ति

नियम 1–क्रिया के आधार, जहां पर अथवा जिसमें कार्य किया जाए, उसे अधिकरण कहते हैं तथा अधिकरण में सप्तमी होती है। जैसे–

1. चटाई पर बैठता है। — **कटे** आस्ते।
2. मोक्ष के विषय में इच्छा है। — **मोक्षे** इच्छा अस्ति।
3. तिलों में तेल है। — **तिलेषु** तैलम् अस्ति।

नियम 2–समय बोधक शब्दों प्रातःकाल, सायंकाल, शैशव आदि में सप्तमी विभक्ति होती है। जैसे–

1. लता प्रातःकाल मन्दिर जाती है। — लता **प्रातःकाले** मन्दिरं गच्छति।
2. राधा सायंकाल पढ़ती है। — राधा **सायंकाले** पठति।

नियम 3–दूर और समीपवाची शब्दों में सप्तमी विभक्ति होती है। जैसे–

1. गांव से दूर नहीं है। — ग्रामस्य **दूरे** नदी अस्ति।
2. नगर के पास विद्यालय है। — नगरस्य **अन्तिके** विद्यालयः अस्ति।

नियम 4–जिस निमित्त (फल) के लिए कोई काम किया जाता है तथा वह निमित्त उस क्रिया के कर्म से युक्त होता है तो उसमें सप्तमी विभक्ति होती है। जैसे–

शिकारी खाल के लिए सिंह को मारता है। — व्याधः **चर्मणि** सिंहं हन्ति।

नियम 5–बहुतों में से एक का निर्धारण करने में समूह में सप्तमी तथा षष्ठी दोनों होती हैं। जैसे–

छात्रों में राम कुशल है। — **छात्रेषु (छात्राणाम्)** रामः कुशलः अस्ति।

नियम 6–जब एक कार्य के होने पर दूसरा कार्य होना प्रतीत होता है तो पहले हो चुके कार्य में सप्तमी होती है। जैसे–

राम के वन चले जाने पर दशरथ दिवंगत हुए। — **रामे वनं गते** दशरथः दिवं गतः।

नियम 7–कुशल, निपुण, प्रवीण आदि शब्दों के योग में सप्तमी होती है। जैसे–

रमेश गीता में कुशल है। — रमेशः **गीतायां** कुशलः अस्ति।

नियम 8–विश्वास तथा श्रद्धा अर्थ वाले शब्दों तथा धातुओं में सप्तमी होती है। जैसे–

1. मेरा राम में विश्वास है। — मम **रामे** विश्वास अस्ति।
2. रमा की सत्य में श्रद्धा है। — रमायाः **सत्ये** श्रद्धा अस्ति।

आदर्श वाक्य-रचना 6 : (सप्तमी विभक्ति)

1. रमा आसन पर बैठती है। — रमा आसने आस्ते।
2. मेरी ज्ञान के विषय में इच्छा है। — मम ज्ञाने इच्छा अस्ति।
3. गांव में चोर था। — ग्रामे चौरः आसीत्।
4. प्रातःकाल भ्रमण करो। — प्रातःकाले भ्रमणं कुरु।
5. वे दोनों रात में क्या घूमते हैं। — तौ निशायां कथं भ्रमतः।
6. गांव के पास नदी थी। — ग्रामस्य अन्तिके नदी आसीत्।
7. लता और सीता मार्ग पर चलें। — लता सीता च मार्गे चलताम्।
8. मनुष्यों में विद्वान् श्रेष्ठ है। — मनुष्येषु विद्वान् श्रेष्ठः अस्ति।
9. दुष्ट बच्चे से स्नेह नहीं करता है। — दुष्टः बाले न स्निह्यति।
10. साधु सत्य में रमता है। — साधु सत्ये रमति।
11. बच्चे के सोने पर मां बाजार गई। — शिशौ शये कृते सति माता आपणम् अगच्छत्।
12. शिकारी मृग पर बाण न चलाए। — व्याधः मृगे बाणं न क्षिपतु।
13. अर्जुन धुनर्विद्या में कुशल था। — अर्जुनः धनुर्विद्यायां कुशलः आसीत्।
14. शिष्य को गुरु पर विश्वास करना चाहिए। — शिष्यः गुरौ विश्वसेत्।

अभ्यास 6 : सप्तमी विभक्ति

1. आसन पर कौन बैठा है?
2. धनिक की धन के विषय में इच्छा है।

3. बच्चे प्रातः काल विद्यालय जाते हैं तथा सायंकाल आते हैं।
4. घर से दूर वह क्या है?
5. पशुओं में सिंह श्रेष्ठ है।
6. तुम सन्मार्ग पर क्यों नहीं चलते?
7. बाबा पोते से स्नेह करता है।
8. बच्चे वृक्ष पर डंडे न फैंके।
9. भीम युद्ध विद्या में दक्ष था।
10. रमा की विष्णु में श्रद्धा है।
11. मैं शिव में विश्वास करता हूं।
12. आकाश में बादलों को देखो।
13. नदी में मछलियां नहीं हैं।

❑❑❑